सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

३७

(जुलाई-अक्टूबर १९२८)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भूमिका

सन् १९२६ के आरम्भमें गांधीजी ने सक्रिय राजनीतिसे हटकर अपनी गति-विधियोंको आश्रम और रचनात्मक कार्यक्रमके दायरेमें सीमित कर लिया था। इस खण्डमें, जिसका आरम्भ जुलाई, १९२८ में होता है और समाप्ति अक्टूबर, १९२८ में, हम उन्हें धीरे-धीरे अपने इस स्वेच्छा-स्वीकृत दायरेसे बाहर आते हुए देखते हैं। यह वह समय है जब राजनीतिक क्षेत्रमें हो रही महत्त्वपूर्ण घटनाएँ गांधीजी के नेतृत्वमें ब्रिटिश सरकारके साथ एक नई लड़ाईके लिए जमीन तैयार कर रही थीं। राजनीतिक नेता उस संसदीय आयोगकी चुनौतीके खिलाफ, जो ब्रिटिश संसद द्वारा भारतके राष्ट्रीय मतकी सम्पूर्ण अवज्ञा करके नियुक्त किया गया था, संयुक्त मोर्चा बनानेका प्रयत्न कर रहे थे। गांधीजी नेताओंके इन प्रयत्नोंको सहानुभूतिपूर्वक देख रहे थे, किन्तु उनके मनमें उनकी उपयुक्तताके सम्बन्धमें सन्देह भी था। उनका ध्यान तो राष्ट्रीय माँगको पूरी करानेके लिए आवश्यक शक्तिका निर्माण करनेपर केन्द्रित था। इसलिए एक ओर तो वे पिछले अप्रैलमें शुरू हुए बारडोली सत्याग्रहमें ज्यादा दिलचस्पी ले रहे थे और दूसरी ओर राष्ट्रीय संग्राममें उपयुक्त भूमिका निबाहनेके लिए आश्रमको तैयार करने में लगे हुए थे। काम श्रम-साध्य था (देखिए, पत्र: बी० जी० हॉर्निमैनको, पृ० ३९३), किन्तु जिस फलके लिए वह किया जा रहा था उसे देखते हुए करणीय भी था। बारडोली संघर्षकी समाप्तिके बाद मोतीलाल नेहरूको लिखे एक पत्रमें उन्होंने कहा था: "आश्रममें ही मेरे लिए बहुत ज्यादा काम है। पता नहीं, आप यह जानते हैं या नहीं कि बारडोली-संघर्ष इस आश्रमके कारण ही सम्भव हो सका है। . . . यदि मैं आश्रमको, जैसा मैं चाहता हूँ, वैसा बना सकूँ तो बहुत बड़े पैमानेपर मोर्चा लेनेको तैयार रहूँगा" (पृ० २०५)।

यदि सत्याग्रह विधानवादियोंकी माँगकी पूर्तिका प्रभावकारी साधन प्रस्तुत करता था तो स्वयं सत्याग्रह अपनी अलौकिक शक्ति जुटा रहा था — उस तपस्या और रचनात्मक कार्यसे जो आश्रममें किया जा रहा था और जिसके कारण ही न केवल बारडोली सत्याग्रह बल्कि दो वर्ष बाद दांडी-कूच और नमकके भण्डारोंपर किये जानेवाले छापे भी सम्भव हो सके।

बारडोलीका किसान सत्याग्रह, जिसका नेतृत्व वल्लभभाईने अद्भुत कौशल और वीरताके साथ किया था, ६ अगस्तको — गांधीजी उस समय कुछ दिनोंके लिए बारडोली में ही थे — सरकारसे समझौता होनेके साथ समाप्त हो गया। कहा जा सकता है कि जहाँ इस सत्याग्रहके अभियानने 'सजीव' स्वराज्य या तत्त्वात्मक स्वराज्यकी नींव डाली, वहाँ नेहरू रिपोर्टने, जिसे अगस्तके अन्तमें लखनऊमें हुए सर्वदलीय सम्मेलनने अपना अनुमोदन प्रदान किया, सांविधानिक या रूपात्मक स्वराज्यका मार्ग

प्रशस्त किया। स्वराज्यके इन दो पक्षोंके पारस्परिक सम्बन्धकी चर्चा इस खण्डमें बार-बार हुई है। 'इंडियन नेशनल हेराल्ड' को प्रेषित २८ अगस्तके अपने सन्देशमें गांधीजी कहते हैं: "लखनऊने जो रास्ता दिखाया है, उसपर चलकर संवैधानिक स्वराज्य तो प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन अन्दरसे विकसित होनेवाला जीवन्त स्वराज्य जो रामराज्यका पर्याय है, बारडोली द्वारा दिखाये रास्तेपर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है" (पृ० २२४)। यह विचार उन्होंने 'नवजीवन' के एक लेख (पृ० २६२) में भी दुहराया है।

बारडोली सत्याग्रहने जनताकी संकल्प-शक्तिकी कसौटी और उसके प्रदर्शनका एक उपयुक्त अवसर पेश किया। इस सत्याग्रहका नेतृत्व वल्लभभाईने किया था, किन्तु उसका मार्गदर्शन दूरसे स्वयं गांधीजी ही कर रहे थे। इस बातसे उनकी भूमिकाके सम्बन्धमें कुछ गलतफहमी पैदा हो गई और उन्हें उसका निरसन करनेकी जरूरत हुई थी (पृ० ८८)। गांधीजी पर इस अभियानका क्षेत्र बढ़ाकर उसे एक अखिल भारतीय राजनीतिक प्रश्न बनानेके लिए जोर डाला गया, किन्तु उन्होंने नैतिक और व्यावहारिक कारणोंसे उसका प्रतिरोध किया। सत्याग्रहकी कल्पनामें ही यह वस्तु निहित है कि जबतक परिस्थितियाँ उसे वैसा करनेके लिए बाध्य ही न कर दें तबतक सत्याग्रहीको अभियानकी अवधिमें अपनी माँगोंको बढ़ाना नहीं चाहिए। इसके सिवा, प्रस्तुत प्रसंगमें तो गांधीजी ऐसा भी महसूस कर रहे थे कि देश अभी ऐसे किसी संघर्षके लिए तैयार नहीं है जिसमें वह अपनी पूरी शक्तिसे जुट सके। इस सम्बन्धमें लिखते हुए उन्होंने कहा कि "अभी सहानुभूतिमें मर्यादित ढंगका सत्याग्रह करनेका समय भी नहीं आया है। बारडोलीको अभी यह साबित करना बाकी है कि वह खरी धातुका बना हुआ है।" आलोचककी ओरसे इस आपत्तिकी सम्भावनाका विचार करके कि उनके रवैयेमें व्यवहारकी कुशलता लक्षित नहीं होती, इसी लेखमें उन्होंने यह भी कहा है कि ईश्वरकी जीवन्त उपस्थितिका विश्वास सत्याग्रहका आधार है "और सत्याग्रही उससे मार्गदर्शन पाता है। नेता अपनी शक्तिपर नहीं, बल्कि ईश्वरकी शक्तिपर निर्भर करता है। . . . इसलिए जिसे व्यावहारिक राजनीति कहते हैं, वह चीज अकसर उसके लिए अवास्तविक होती है, यद्यपि अन्ततः उसकी अपनी नीति सबसे अधिक व्यावहारिक राजनीति साबित होती है" (पृ० ११७)।

लेकिन जहाँ गांधीजी ने बारडोली सत्याग्रहको अधिक व्यापक राजनीतिक संघर्षका रूप देनेसे इनकार कर दिया वहाँ उन्होंने लोगोंकी सम्मान-भावना और स्वाभिमानसे सम्बन्धित मूलभूत मुद्दोंपर उनकी माँगोंमें किसी तरहकी कमी करना भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने लोगोंको उस धमकीकी उपेक्षा करनेकी सलाह दी जो राज्यपालने २३ जुलाईको विधान परिषद्में अपने भाषणमें दी थी (पृ० १०३-४ और १३७-९); और उन सदाशय व्यक्तियोंके प्रयत्नोंकी चर्चा करते हुए जो सरकार और सत्याग्रहियोंके बीच समझौता करानेकी कोशिश कर रहे थे, उन्होंने उनसे आग्रह किया कि वे सत्या-

ग्रहियोंको दयाका पात्र मानकर सरकारसे उनके लिए किसी तरहकी याचना न करें: "सत्याग्रही दयाके पात्र नहीं हैं; वे दयाके भूखे भी नहीं हैं; वे तो न्यायके भूखे हैं" (पृष्ठ १४१)।

संघर्षमें विजय मिलनेके बाद गांधीजी ने सरकार और बारडोलीकी जनता तथा वल्लभभाई, दोनों पक्षोंको बधाई दी। सरकार द्वारा लगानकी वसूलीके लिए प्रयुक्त उत्पीड़क उपायोंके आरोपोंकी जाँचके सिवाय सत्याग्रहियोंकी शेष सब माँगें पूरी हो गयी थीं। वल्लभभाई द्वारा इस माँगका आग्रह छोड़नेपर गांधीजी ने कहा, "यह अच्छा ही है कि पुराने अन्यायोंका सवाल फिरसे न उठाया जाये। सिवाय इसके कि इनके लिए क्षति-पूर्ति कर दी जाये, इनका और क्या इलाज है?" (पृ० १५४)। इसी प्रकार जिन स्वयंसेवकोंने अपने त्याग और सेवा-भावसे इस संघर्षको विजयकी चोटीतक पहुँचाया था उनसे उन्होंने संघर्षके विरोधियों और सरकारी अधिकारियोंकी मित्रता हासिल करनेके लिए कहा (पृ० १६९-७०)। बारडोली की जनताको, इसी सिलसिलेमें, जनरल बोथा और स्मट्सका उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि रचनात्मक कार्य भी सत्याग्रहकी लड़ाईका एक अनिवार्य हिस्सा है। उन्होंने कहा कि यद्यपि जनरल बोथा और स्मट्स "जगत्प्रसिद्ध सेनापति थे . . . फिर भी . . . रचनात्मक कार्यके महत्त्वको अच्छी तरह समझते थे" (पृ० १७२)। उन्होंने सरकार और जनता, दोनोंसे इस संघर्षसे शिक्षा लेनेके लिए कहा। "हाँ, सरकार भी [शिक्षा] ले सकती है, बशर्ते कि जब सत्य जनताके पक्षमें हो और उसे अपने उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करानेके लिए जनता अहिंसाके आधारपर अपनेको संगठित कर सकती हो तब सरकार उसकी शक्तिको स्वीकार करनेको तैयार हो" (पृ० १८६)। और जनता उससे यह शिक्षा ले सकती है कि "जबतक वह, जिसे सामूहिक आत्म-शुद्धिकी सतत प्रक्रिया कह सकते हैं, उस प्रक्रियासे न गुजरेगी, तबतक अहिंसाके आधारपर अपनेको संगठित नहीं रख पायेगी" (पृ० १८७)।

'नवजीवन' में लिखित कई लेखोंमें गांधीजी ने अहिंसाके नैतिक और व्यावहारिक फलितार्थों पर विचार किया और इस आदर्शके बाहरी रूपों और उसकी आन्तरिक भावनाका भेद स्पष्ट किया। भारतीय परम्पराने अहिंसाको मनुष्यका परम धर्म माना है। गांधीजी भी ऐसा ही मानते है, किन्तु उनकी दृष्टिमें धर्म नैतिकताकी कोई बनी-बनाई अचल नियमावली नहीं है। उनके लिए वह कर्ममय जीवनमें सत्यकी ऐसी खोज है कि जिसका अनुसन्धान अनुदिन करना होता है। अहिंसाकी समस्याके प्रति अपने इस प्रयोगात्मक रुखके कारण गांधीजी को अहिंसाके सम्बन्धमें लोक-प्रचलित धारणाओंको अस्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं हुआ।

अहिंसाका यह सवाल सितम्बरमें जब आश्रममें एक बीमार बछड़ेको कष्टसे छुटकारा देनेके लिए गांधीजी की सलाहपर उसका प्राण-हरण किया गया तब उग्र चर्चाका विषय बन गया। अहमदाबादमें तो इस घटनाके फलस्वरूप एक तूफान ही

उठ खड़ा हुआ, जिसने गांधीजी के नैतिक साहसकी उससे भी ज्यादा कड़ी परीक्षा ली होगी जितनी कि तेरह वर्ष पहले आश्रममें एक हरिजन-परिवारको प्रवेश देने पर हुई थी। नाराज पत्र-लेखकोंने उन पर मानों पत्रोंकी बौछार ही कर डाली। ये पत्र इतने तीखे थे कि उनमें से कुछ पत्र-लेखकोंके विषयमें तो गांधीजी को अपनी आदतके खिलाफ किंचित् व्यंग्यके साथ यह कहना पड़ा कि "कोई गालियाँ देकर अपनी अहिंसा प्रकट कर रहा है, तो कोई सख्त आलोचना करके मेरी अहिंसाकी परीक्षा ले रहा है" (पृ० ३५२)। किन्तु एक सत्यान्वेषीके नाते उन्होंने अपने विचारोंकी सार्वजनिक चर्चा करनेके इस अवसरका स्वागत किया।

गांधीजी जानते थे कि लोकमत उनके इस कार्यका अनुमोदन नहीं करेगा। किन्तु वे यह भी समझते थे कि अहिंसाके "पंथ पर आदमीको अकसर अकेले ही चलना पड़ता है" (पृ० ३२४) और यह कि सत् और असत्का भेद मनुष्य केवल अपने अन्तर्यामीके आदेशका, अपने आन्तरिक प्रकाशका अनुसरण करके ही कर सकता है। उन्होंने कहा कि "अन्ततः अहिंसाकी परीक्षाका आधार भावना पर रहता है" (पृ० ३२५)। दयाभावसे प्रेरित प्राण-हरणका मतलब "शरीरमें स्थित आत्माको दुःख-मुक्त करना है" (पृ० ३२४)। अहिंसाकी प्रचलित धारणाकी आलोचना करते हुए उन्होंने कहा: "किसीको गाली देना, किसीका बुरा चाहना, किसीका ताड़न करना, कष्ट पहुँचाना, सभी कुछ हिंसा है। जो मनुष्य अपने स्वार्थके लिए दूसरेको कष्ट पहुँचाता है, उसका अंग-भंग करता है, भर-पेट खानेको नहीं देता, और अन्य किसी तरहसे उसका अपमान करता है, वह मृत्युदण्ड देनेवालेकी अपेक्षा कहीं अधिक निर्दयता दिखलाता है" (पृ० ३२४)।

दयाभावसे प्रेरित प्राणहरणके विषयमें तो गांधीजी को यह निश्चय था कि वह सदाचारकी नीतिके अनुकूल है, किन्तु आश्रमके बगीचे और खेतोंमें बन्दरोंके उत्पातको रोकनेके लिए कोई प्रभावकारी किन्तु अहिंसक उपाय ढूँढ़ निकालनेका सवाल उनके लिए फिर भी कठिन रहा। बन्दरोंने आश्रममें बड़ा उत्पात मचा रखा था। अब सवाल यह उठा कि उन्हें मारना हिंसा-धर्मके कहाँ तक अनुकूल होगा। गांधीजी ने स्वीकार किया, "बन्दरोंको मार भगाने" या "मार डालने" में "शुद्ध हिंसा ही" है, क्योंकि "उसमें बन्दरोंके हितका विचार नहीं, किन्तु आश्रमके ही हितका विचार है।" तात्पर्य यह कि स्वार्थसे प्रेरित होकर किसीको कष्ट देना हिंसा है। किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी माना कि "देहधारी जीवमात्र हिंसासे ही जीते है।" "समाजने कुछ-एक हिंसाओंको अनिवार्य गिनकर व्यक्तिको विचार करनेके भारसे मुक्त कर दिया है। तो भी प्रत्येक जिज्ञासुके लिए अपना क्षेत्र समझकर उसे नित्य छोटा करते जानेका प्रयत्न तो बच ही रहता है" (पृष्ठ ३२६)। अहिंसाके उपासकको कमसे-कम प्रत्यक्ष हिंसासे — यहाँ तक कि खेती-कार्यमें जो हिंसा होती है उससे भी — अवश्य बचना चाहिए, इस दलीलके जवाबमें गांधीजी ने कहा, "खेती करनेवाले असंख्य मनुष्य अहिंसा-

धर्मसे विमुख रहें और खेती न करनेवाले मुट्ठी-भर मनुष्य ही अहिंसाको सिद्ध कर सकें, ऐसी स्थिति मुझे परम धर्मको शोभनेवाली अथवा उसे सिद्ध करनेवाली नहीं मालूम होती" (पृ० ४०२)। गांधीजी का यह तर्क सचमुच लाजवाब था। इसी प्रसंगमें उन्होंने यह भी कहा कि "धर्ममें सर्वव्यापक होनेकी शक्ति होनी चाहिए। धर्म जगत्के शतांशका इजारा नहीं हो सकता, होना भी नहीं चाहिए।" और चूंकि उनका विश्वास था कि "सत्य और अहिंसा . . . जगद्व्यापी धर्म हैं, इसीसे उसके अर्थकी खोजमें जीवन खपाते हुए भी" वे "रस लूट" रहे थे और "दूसरोंको भी उस रसको लूटनेका आमन्त्रण दे" रहे थे (पृ० ४०३)।

गांधीजी के ये विचार रूढ़िपरायण पुराणमतवादियोंको आसानीसे पसन्द आ जायेंगे इसकी तो कोई संभावना ही नहीं थी। कुछको तो उनसे गहरा आघात भी लगा; कारण, वे तो निःशंक भावसे यह माने बैठे थे कि गांधीजी उनकी कल्पनाकी सम्पूर्ण अहिंसाकी मूर्ति हैं। किन्तु गांधीजी अविचलित रहे—बल्कि उन्हें इस बातकी खुशी थी कि बछड़े और बन्दरोंके बारेमें उनके उक्त विचारोंने उन लोगोंके भ्रमको तोड़ दिया है। उन्होंने कहा, "महात्माके पदकी अपेक्षा सत्य मुझे अनन्त गुना प्रिय है" (पृ० ४२९)। उन्होंने आगे कहा, "अपने विषयमें मैं सिर्फ इतना ही जोर देकर कह सकता हूँ कि अहिंसादि महाव्रतोंको पहचानने तथा उनका मन, वचन तथा शरीरसे पालन करनेका मै सतत् प्रयत्न कर रहा हूँ" (पृ० ४३०)।

टॉल्स्टॉयके जन्म-दिवस पर (१०-९-१९२८ को) अपने भाषणमें गांधीजी ने बताया कि उन्होंने टॉल्स्टॉय, खासकर टॉल्स्टॉयके जीवनसे क्या सीखा। इसी प्रसंगमें एक पत्र-लेखकको उन्होंने यह भी बताया कि "जहाँ मोटे तौर पर यह बात बिलकुल सही है कि मेरा जीवन 'गीता' की शिक्षा पर आधारित है, वहाँ मैं दावेके साथ यह नहीं कह सकता कि ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें मेरे निर्णयको टॉल्स्टॉयके लेखों और शिक्षाने प्रभावित नहीं किया है" (पृ० २५३-४)। बोल्शेविक विचारधाराके सम्बन्धमें गांधीजो ने बहुत ही कम लिखा या कहा है। उनके तत्सम्बन्धी विरल वचनोंमें से एक इस खण्डमें प्राप्त है। उसमें वे निजी सम्पत्ति समाप्त करनेके लिए हिंसाका आश्रय लेनेकी बोल्शेविकोंकी रीतिसे अपनी असहमति प्रगट करते हैं, किन्तु साथ ही वे यह भी कहते हैं कि "बोल्शेविज्मकी साधनामें असंख्य मनुष्योंने आत्म-बलिदान किया है, लेनिन-जैसे प्रौढ़ व्यक्तिने अपना सर्वस्व उसपर निछावर कर दिया था; ऐसा महात्याग व्यर्थ नहीं जा सकता" (पृ० ३९८)। भारतकी भावी अर्थ-रचनाके सम्बन्धमें जब उनसे प्रश्न किया गया तो उन्होंने उत्तर दिया, "आर्थिक रचना ऐसी होनी चाहिए कि जिससे एक भी प्राणी अन्न-वस्त्रके अभावसे दुःखी न हो।...और यदि हम सारे जगत्के लिए ऐसी स्थिति चाहते हों तो अन्न-वस्त्रादि उत्पन्न करनेके साधन प्रत्येक मनुष्यके पास होने ही चाहिए। . . . जैसे हवा और पानी पर सबका समान हक है, वैसे ही अन्न-वस्त्र पर भी होना चाहिए" (पृ० ४३२)।

प्रस्तुत खण्डमें संकलित पत्र सदाकी तरह इस तथ्यको उजागर करते है कि गांधीजी में अपने पत्रलेखकोंके साथ उनकी कठिनाइयोंमें एक-रूप हो जानेकी, उनके प्रश्नोंको अपना प्रश्न बना लेनेकी, कैसी अद्भुत क्षमता थी। और उनके पत्र-लेखकोंमें एक ओर जहाँ वह शिक्षक है जो गांधोजी की सलाह अपने इस विषम सवाल पर चाहता है कि शिक्षक होते हुए भो उसे नाईका अपना परम्पराप्राप्त कर्त्तव्य करते रहना चाहिए या नहीं, वहीं दूसरी ओर मोतीलाल नेहरू-जैसे राष्ट्रीय नेता भी हैं, जो उनके साथ अपनी सार्वजनिक चिन्ताएँ बँटाना चाहते हैं। मोतीलाल नेहरूको लिखे हुए पत्र उनके प्रति गांधीजी की सम्मानको भावना प्रगट करते हैं और अपनी भाषा तथा शैलीसे अपने एक ऐसे साथीको लिखे गये जान पड़ते है जो उनके साथ समानताके स्तरपर और अन्तरंग भावसे राष्ट्रीय सवालोंकी चर्चा कर सकता था। एक अन्य साथी, जिनके वैयक्तिक और पारिवारिक सवालोंमें गांधीजी गहरी दिलचस्पी लेते थे, बंगालके पथिकृत खादी-कार्यकर्त्ता सतीशचन्द्र दासगुप्त थे। उन्हें और उनकी पत्नी हेमप्रभादेवीको लिखे गांधीजी के प्रत्येक पत्रमें उनके प्रति गांधीजी का चिन्तायुक्त प्रेम तथा उनके कामकाजमें गांधीजीकी गहरी रुचि स्पष्ट झलकती है। गांधीजीकी स्पष्टवादिता और मनुष्य-सुलभ दुर्बलताओंके प्रति उनकी दृष्टि हमें शौकत अलीको लिखे एक पत्रमें मिलती है। "मै यह जरूर कहूँगा कि डॉ० अन्सारीके नाम लिखा आपका जो एकमात्र पत्र मैंने पढ़ा, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। . . . . मैं तो खुद हो अक्सर गलतियाँ करता हूँ और मुझे बराबर मित्रों और विरोधियोंको क्षमाशीलताकी आवश्यकता रहती है। इसलिए जिस चीजको मैं आपकी गलती मानूँ, उसको लेकर मै चिन्ता क्यों करूँ?" (पृ० ३१७)।

इसी खण्डमें 'यंग इंडिया' में लिखित "ईश्वर है" शीर्षकवाला वह लेख भी जा रहा है जिसे गांधीजी ने सन् १९३१ में, अपने लन्दन-प्रवासके दरम्यान, अमेरिकाको प्रेषित अपने सन्देशके लिए रिकार्ड कराया था। इस लेखमें उन्होंने ईश्वरमें अपनी श्रद्धाका स्वरूप समझाया है और दुनियामें विद्यमान बुराई पर, जिसे ईश्वर चलने देता है पर जिससे वह स्वयं अलिप्त रहता है, अपने विचारोंको स्पष्ट किया है। वे कहते हैं, "मैं यह भी जानता हूँ कि यदि मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर बुराईके विरुद्ध संघर्ष नहीं करूँगा तो मैं ईश्वरको कभी भी नहीं जान पाऊँगा" (पृ० ३६५)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन एंड मेमोरियल ट्रस्ट), नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया), नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्रीमती तहमीना खम्भाता, बम्बई; श्रीमती वसुमती पण्डित, सूरत; श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर; श्री महेश पट्टणी, भावनगर; श्री हरिइच्छा कामदार, बड़ोदा; श्रीमती मीराबहन, इंग्लैंड; श्री वालजीभाई देसाई, पूना; श्रीमती राधाबहन चौधरी, नई दिल्ली; श्री सी० एम० डोक; श्री कनुभाई नानालाल मशरूवाला, अकोला; श्री नीलकण्ठ मशरूवाला, अकोला; श्री बालकृष्ण भावे, पूना; श्री शान्तिकुमार मोरारजी, बम्बई; 'इंडियन रिव्यू', 'नवजीवन', 'प्रजाबन्धु', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'हिन्दू' इन समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं और निम्नलिखित पुस्तकोंके प्रकाशकोंके आभारी हैं: 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बापुना पत्रो-७ : श्री छगनलाल जोशीने', 'बापुना पत्रो-६ : गं० स्व० गंगाबहेनने', 'बापुना पत्रो-४ : मणिबहेन पटेलने', बापुना पत्रो-२ : सरदार वल्लभभाईने', 'बापुनी प्रसादी', 'सेल्फ रेस्ट्रेन्ट वर्सेस सेल्फ इंडलजेन्स', 'स्टोरी ऑफ बारडोली'।

अनुसन्धान व सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसंधान एवं सन्दर्भ विभाग (रिसर्च एंड रिफरेंस डिवीजन) और श्री प्यारेलाल नय्यर हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलोंको सुधारकर दिया गया है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है। और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजी ने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि कोई ऐसा अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणों-की परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजी के कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये है। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजी के नहीं हैं कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कही कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है वहाँ दायें कोनेमे ऊपर दे दी गई है। परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत, साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका; 'जी० एन०', गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०', सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ-संख्याएँ भिन्न हैं, इसलिए हवाला देनेमें केवल उसके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट भी दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ भी दी गई हैं।

विषय-सूची

१. जलियाँवाला बाग-स्मारकके लिए अभिलेखका मसविदा[1]

यह १३ अप्रैल, १९१९को अंग्रेजोंकी गोलियोंसे शहीद होनेवाले पन्द्रह सौ निर्दोष सिखों, मुसलमानों और हिन्दुओंके सम्मिलित रक्तसे अभिसिंचित पुनीत भूमि है। इसे इसके मालिकोंसे जनतासे इकट्ठा किये गये धनसे खरीदा गया।

अंग्रेजी (एस० एन० १५३६९)की माइक्रोफिल्मसे।

२. शिक्षा-विषयक प्रश्न—५[2]

प्रश्न : जबसे आपने हिन्दुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया है, तभीसे नीति-विषयक समस्याओंके उठने पर आपसे निर्णय माँगे जा रहे हैं। लोग आपसे यह जाननेकी अपेक्षा रखते हैं कि अमुक प्रसंगमें अमुक बात उचित है या नहीं। यह वस्तुस्थिति प्रकट करती है कि आपके आन्दोलनका स्वरूप धार्मिक है। क्या आपकी अनुपस्थितिमें ऐसे फैसले बहुमतसे दिये जाना उचित माना जायेगा? और अगर यह उचित न हो तो क्या धर्मविद् लोगोंकी परम्परा खड़ी नहीं करनी पड़ेगी?

उत्तर : मुझसे नीति-विषयक निर्णयोंका माँगा जाना मेरी समझमें सन्तोषकारक स्थिति नहीं है। मेरे किसी भी आन्दोलनका स्वरूप चाहे जैसा भी क्यों न हो, मगर मेरे आन्दोलनोंमें से एक भी ऐसा नहीं है जो धर्म पर आधारित न हो। फिर भी लोग मुझसे हर विषयमें प्रश्न करते रहते हैं। इससे मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जिन सिद्धान्तोंके अनुसार मैं चलता हूँ, या तो वे समझमें नहीं आते, या लोगोंको उनके औचित्यके बारेमें शंका रहती है या मैं महात्मा कहलाता हूँ और भला आदमी समझा जाता हूँ, इसलिए और चूँकि हमारे लोग श्रद्धालु हैं, और स्वयं विचार करनेका कष्ट नहीं उठाते, इस कारण भी वे मुझसे सवाल पूछते रहते हैं। इससे मेरा 'अहम्' भले ही तुष्ट होता हो, मेरा काम भी भले ही कुछ आगे बढ़ जाता हो, मगर मुझे ऐसा नहीं लगता कि इससे जनताको या पूछनेवाले को बहुत लाभ होता है। बहुत बार मुझे ऐसा लगता है कि अगर मैं फतवे देना बन्द कर सकूँ और मुझे जो काम सूझे या प्राप्त हो जाये उसे चुपचाप करता रह सकूँ तो कितना अच्छा हो। किन्तु तब तो मैं जो अखबार निकालता हूँ, सो भी बन्द कर दिये जाने चाहिए। बहुत-सा पत्र-व्यवहार बन्द कर देना चाहिए। मगर अभीतक इतनी हिम्मत मुझमें नहीं आई है। जब आ जायेगी तब यह हो सकेगा। किन्तु यदि ऐसी हिम्मत नहीं आई तो

१. यह १-७-१९२८ को मुल्कराजको लिखे पत्रके साथ भेजा गया था।

२. इससे पहलेके प्रश्नोत्तरोंके लिए देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ३८३-८४, ४०५-६, ४४२-४४ और ४७८-८१।

सबके परममित्र यमराज मौतको भेंटके रूपमें भेजकर मेरी अनिच्छासे ही सही फतवोंका यह क्रम बन्द कर देंगे।

मेरी गैरहाजिरी और हाजिरीमें मेरे सिद्धान्तोंको स्वीकार करनेवाले व्यक्तियोंका कोई समुदाय बहुमतसे निर्णय करे तो इसमें मुझे कुछ अनुचित दिखाई नहीं देता। किन्तु व्यक्तिकी भाँति ऐसे समुदायोंमें भी धर्मकी भावना होनी चाहिए।

प्रश्न : विद्यापीठमें प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षाकी तीन कक्षाएँ हैं। इन्हींको क्रमानुसार अगर हम गाँवों, शहरों और समाजकी सेवाकी शिक्षाका नाम दें तो यह कहाँ तक उचित होगा?

उत्तर : मुझे तो प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षाके ये अर्थ जरा भी नहीं रुचते। हम यह क्यों चाहें कि गाँवोंके रहनेवाले प्राथमिक शिक्षा लेकर ही सन्तुष्ट हो जायें? उनमें से भी जो लोग माध्यमिक और उच्च शिक्षा लेना चाहें, उन्हें ऐसा करनेका अधिकार है। नगर-निवासियोंके बालकोंका काम प्राथमिक शिक्षाके बिना नहीं चल सकता। तीनों प्रकारकी शिक्षाओंका उद्देश्य गाँवोंकी उन्नति होना चाहिए।

प्रश्न : आप संगीतको हमेशा इतना महत्त्व किस उद्देश्यसे देते हैं?

उत्तर : यह दुःखकी बात है कि आज इस देशमें सामान्य तौर पर संगीतकी अवगणना होती है। मुझे तो संगीतके बिना सारी शिक्षा ही अधूरी लगती है। संगीत व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनको मधुर बनाता है। श्वास पर काबू पानेके लिए जैसे प्राणायामकी जरूरत है, उसी तरह कण्ठके विकासके लिए संगीतकी जरूरत है। यदि लोगोंमें सामाजिक संगीतका पर्याप्त प्रचार हो, तो सभाओंमें होनेवाले कोलाहलको शान्त करनेमें उससे बहुत मदद मिल सकती है। संगीत क्रोधको शान्त करता है और उसका सदुपयोग ईश्वरका दर्शन करानेमें बहुत सहायक होता है। संगीतका अर्थ तान-पलटोंके साथ राग या नाटकके गीत गाना ही नहीं है। मैंने ऊपर संगीतका सामान्य अर्थ बताया है; उसका गहरा अर्थ तो यह है कि हमारा सारा जीवन संगीतमय, सुरीला होना चाहिए। सत्यादि गुणोंकी आराधना किये बिना जीवन ऐसा बन ही नहीं सकता। जीवनको संगीतमय बनानेका अर्थ है, उसे ईश्वरके साथ एकतार करना। जिसने राग-द्वेषका दमन नहीं किया है, जिसने सेवाके रसको नहीं चखा है, वह इस दिव्य संगीतको पहचानता ही नहीं है। जिस संगीतकी शिक्षामें इस गूढ़ अर्थका समावेश नहीं है, मेरे निकट उस संगीतका मूल्य बहुत ही कम है या है ही नहीं।

प्रश्न : चित्रकलाका तात्पर्य है चित्रकारके हृदयमें उठनेवाली भावनाकी लहरोंको काव्यमय रेखाओं और रंगों द्वारा व्यक्त करना। अगर इस नयी व्याख्याको स्वीकार कर लिया जाये तो आप क्या उक्त चित्रकलाको राष्ट्रीय शिक्षणमें सभी जगह अनिवार्य स्थान देंगे?

उत्तर : मैंने कभी चित्रकलाका विरोध नहीं किया है। किन्तु मैंने चित्रकलाके नामपर प्रचलित मनमानीकी अवगणना हमेशा की है। मुझे इसमें शंका है कि प्रश्नमें दी गई व्याख्याके अनुसार चित्रकला सभीको सिखाई जा सकती है। संगीत और चित्र-

कलामें एक बहुत बड़ा भेद यह है कि चित्रकला कोई व्यक्तिविशेष ही सीख सकता है, जबकि संगीत सभीको सीखना चाहिए और यह हो सकता है। चित्रकलाके अन्तर्गत सीधी रेखाएँ खीचने, स्थावर-जंगम वस्तुओंके नमूने उतारनेकी कला सबको सिखलाई जा सकती है। उसकी आवश्यकता है और मैं बहुत चाहता हूँ कि हरएक बालकको अक्षर कला सिखलानेके पहले ही इस हदतक चित्रकला सिखलाई जाये।

प्रश्न: व्याकरण, चक्रवृद्धि ब्याज, उच्च भूमिति वगैरह जिन विषयोके आगे चलकर भूल जानेकी ही अधिक सम्भावना है, कुछ लोग उन्हें राष्ट्रीय शिक्षामें न रखनेकी सलाह देते है। आप भी इससे सहमत होंगे। अगर बात ऐसी हो तो फिर उर्दूको इसी कोटिमें क्यों न रखें? हिन्दू और मुसलमान, जब एक-दूसरेसे परिचय करनेको उत्सुक होंगे, और जब उन्हें एक-दूसरेकी संस्कृतिको समझनेकी उत्कंठा होगी, तभी संस्कृत या उर्दूका ज्ञान काममें आयेगा या स्थायी होगा। आजका अनुभव भी ऐसा है कि विद्यार्थी थोड़ी-सी उर्दू सीखते हैं और फिर भूल जाते हैं। उर्दूके जरिये व्यक्त होनेवाली संस्कृतिके प्रति जब आदर और उसे सीखनेका भाव होगा तभी उर्दूके ज्ञानका इस्तेमाल होगा और तभी वह बढ़ेगा। ऐसा होने तक तो वह गणेश-पूजाके समान धार्मिक विधि ही बना रहेगा।

उत्तर: व्याकरण, चक्रवृद्धि ब्याज और उच्च भूमिति — इन तीनोंको एक साथ क्यों रखा गया है, यह मैं नहीं समझा। मै यह बात मानता आया हूँ कि भाषाके ज्ञानके लिए व्याकरण अत्यावश्यक है और व्याकरण तथा उच्च भूमिति बहुत दिलचस्प विषय है। दोनों बुद्धिके निर्दोष विनोद हैं। इसलिए उच्च शिक्षा लेनेवाले और भाषाशास्त्र जाननेवालेके लिए इन दोनों विषयोंको मैं राष्ट्रीय शिक्षामें स्थान दूँगा। जिन्हें हिसाब वगैरह करना पड़ता है, उनका तो चक्रवृद्धि ब्याजके बिना काम चल ही नही सकता। इसलिए प्रश्नमें सुझाये गये तीनों विषयोंका अपना-अपना स्थान राष्ट्रीय शिक्षामें है ही। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिक्षाके लिए कुछ विषय तो संसार-भरमें सामान्य होने चाहिए और वे है भी। आज सरकारी और राष्ट्रीय शिक्षा, इस तरहके दो भेद करने पड़ते हैं, क्योंकि सरकारी शिक्षाका झुकाव राष्ट्रके विकासके लिए विघातक है। किन्तु सरकारी शालामें बहुत-कुछ ऐसा है जो हमारी शालामें हो सकता है और होना चाहिए। ऐसा होने पर भी इन सरकारी शालाओंका वातावरण पराधीनताका पोषक है और संकटके समय उनका उपयोग राष्ट्रको दबानेमें होता है। इसलिए वे सर्वथा त्याज्य हैं। और यह तो हम देख ही चुके है कि उनमें कुछ शिक्षा बिलकुल अनावश्यक है और कुछ बोझ-रूप है; किन्तु मैं विषयसे बाहर चला गया। इस प्रश्नके पीछे क्या है, उसे मैंने शायद ठीकसे न समझा हो, इस भयसे इतना कहना जरूरी लगा।

इन तीनों विषयोंके साथ उर्दूकी तुलना नहीं की जा सकती। हिन्दुओं और मुसलमानोंको जब एक होना होगा, तब वे एक हो लेंगे; किन्तु राष्ट्रीय शालाओंमें तो हमें एक-दूसरेके प्रति प्रेमका ही पोषण करना चाहिए। ऐसा करनेके लिए एक-दूसरेके धर्मका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। विद्यार्थी अगर थोड़ी-सी उर्दू सीख-

कर भूल जाते हों तो यह बेगार टालना हुआ। मगर गुजरात विद्यापीठमें यह तो हिन्दीके लिए भी कहा जायेगा। हिन्दी अथवा उर्दूके बारेमें दिलचस्पी उत्पन्न करनेका उपाय तो परमात्मा जाने, मगर मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं है कि राष्ट्रकी उन्नतिके लिए यह ज्ञान अत्यावश्यक है।

प्रश्न : विद्यार्थियोंकी स्वतन्त्रता पूर्णतः सुरक्षित रहे और उनके स्वाभाविक रुझानमें किसी तरहकी रुकावट न आये, इसलिए शिक्षकोंको तटस्थ, निराग्रही रहना चाहिए। विद्यार्थियोंसे किसी तरहके नियम, टेव, सिद्धान्त या सद्गुणका आग्रह न रखते हुए, और अपनी हदतक उनको निभानेकी जिम्मेदारी मानते हुए और स्वयं तटस्थ रहकर शिक्षा देनेका आदर्श कई जगह रूढ़ होता जाता है। आप इस आदर्शको कहाँ तक स्वीकार करते हैं?

उत्तर : ऊपरके प्रश्नमें निहित आदर्शका समर्थन और विरोध दोनों सम्भव हैं। अगर मूल बातकी रक्षा न हो तो प्रश्नमें निहित बातका विरोध ही किया जाना चाहिए और अगर मूल बातकी रक्षा हो सकती हो तो विद्यार्थियोंको पूरी तरह स्वतन्त्र छोड़ा जा सकता है और शिक्षक इतना तटस्थ रह सकता है कि वह वर्गमें जाकर सो जाये। विद्यार्थियोंकी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेवाला शिक्षक विद्यार्थीके जीवनमें धुलमिल जानेकी शर्तपर जैसा चाहे करे। मैं तो शिक्षकसे अखाके शब्दोंमें यह कहूँगा :

सूतर आवे त्यम तुं रहे, ज्यम त्यम करीने हरीने लहे।

आदर्श शिक्षकके पास इसके सिवाय न तो कोई दूसरा आदर्श था और न होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-७-१९२८

१. यानी "जैसी सुविधा हो वैसा रह, मगर चाहे जैसे हरिको प्राप्त कर।"

३. शुद्ध व्यवहार

बम्बई खादी-भण्डारसे भाई विट्ठलदास जेराजाणी लिखते है:[1]

ऐसे बहुतसे दृष्टान्त दिये जा सकते है जिनसे यह सिद्ध करके दिखाया जा सकता है कि ऐसे व्यवहारसे अन्तमें व्यापारीको फायदा ही होता है। फिर भी बहुतसे व्यापारी अनीतिके मार्गको ही अपनाते है। इसका कारण धनी बननेकी जल्दबाजीके सिवाय दूसरा नहीं है। किन्तु खादी-सेवक या खादी बेचनेवाले को तो अटूट धैर्य रखना है। सत्य, धैर्य और श्रद्धाके सिवाय खादीका दूसरा सहारा नहीं है। इसलिए खादी-भण्डारोंको भाई जेराजाणीका सुझाव याद रखना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-७-१९२८

४. टिप्पणियाँ

व्याख्याकी पूर्ति

एक पाठक सत्याग्रहाश्रमकी नियमावलिकी[2] टीका करते हुए अहिंसाकी निम्न-लिखित व्याख्या सुझाते हैं:

> अहिंसाका तात्पर्य है सूक्ष्म जंतुओंसे लेकर परमात्मा तक किसीको भी दु:ख न पहुँचानेकी भावना। यह अर्थ 'नवजीवन'में प्रकाशित अर्थसे कहीं अधिक विस्तृत है। क्योंकि परमात्माको अनुचित व्यवहार — बुरे विचारों — से दु:खी करना भी हिंसा ही नहीं बल्कि महा हिंसा है और अनेक अहिंसाधारी इस बातको भूल जाते हैं।
>
> फिर आत्मघात भी महा हिंसा है। तो भी हमारे आसपास आत्मघातकी हृदय बेधक घटनाएँ बराबर होती ही रहती हैं। शायद लोग ऐसा समझते होंगे कि आत्मघातका सम्बन्ध तो अपनेसे ही है और इसलिए हम इसके लिए स्वतन्त्र हैं और इसमें गुनाह-जैसा तो कुछ है ही नहीं। अथवा आ पड़ने-वाले अन्याय या दु:खको धीरजसे सहन कर सकनेकी शक्तिकी कमीसे ऐसी घटनाएँ घटती होंगी। इसलिए अहिंसाके नियममें आत्मघातके सम्बन्धमें भी स्पष्ट उल्लेख हो तो जन-समाजका अधिक हित होनेकी आशा है।

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। कोई मराठा मजदूर भण्डारसे खादीका कुर्ता खरीदकर ले गया था किन्तु वह एक महीनेमें ही फट गया इसलिए उसे दूसरा नया कुर्ता दे दिया गया था। इससे भण्डारपर उस मजदूरका विश्वास जमा और फलत: वह बादमें आकर एक कोट खरीदकर ले गया।

२. देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ४१९-३१।

और स्वावलम्बनके बारेमें वे लिखते हैं:

स्वावलम्बन — 'दूसरेकी सेवा बिना कारण नहीं ली जानी चाहिए।' इसके साथ यह भी जोड़ देना चाहिए कि 'दूसरेको बिना कारण सेवा देनी भी नहीं चाहिए।' अगर यह सूत्र हिन्दुस्तान ठीक-ठीक समझ जाये तो निठल्ले घूमते रहनेवाले भिखारियोंका नामनिशान ही मिट जाये।

अहिंसाकी यह व्याख्या विचारणीय है। और स्वावलम्बनके बारेमें जो लिखा है, वह प्रासंगिक न होने पर भी समयको देखते हुए उचित है। दूसरेकी बिना कारण सेवा करनेकी इच्छा थोड़े ही लोगोंको होती है, और इसके प्रसंग बहुत नही आया करते। तो भी जहाँ धर्म-भावनावश पुण्यके नाम पर अनेक तरहके दान दिये जाते है, वहाँ उन्हें और वैसी ही दूसरी अकल्याणकारी सेवाओंको रोकनेका यह आशय उचित लगता है।

प्रोफेसरका बालिकासे-विवाह

एक पाठक लिखते हैं:[1]

इन प्रोफेसर महाशयका नाम-ठाम वगैरह लेखकने मुझे लिख भेजा है। यह सुधार सहज नही है। शिक्षित-अशिक्षितका भेद किये बिना, जहाँ तक हो सके, सुधारको द्वारा पहले वातावरणको शुद्ध करना ही आवश्यक होगा। पढ़े-लिखे लोग जब तक नहीं समझते, तब तक हम अनपढ़ोंके बारेमें उदासीन रहें, ऐसा नही होना चाहिए। जिस हद तक और जहाँ-जहाँ बाल-विवाहके बारेमें लोकमत जाग्रत किया जा सके उस हद तक और वहाँ-वहाँ वैसा करना चाहिए। हमारी आजकलकी शिक्षा का आत्मविकासके साथ बहुत कम सम्बन्ध है, यह बात ऐसे उदाहरणोंसे रोज ही स्पष्ट होती रहती है। और गहरे उतरनेपर हम यह भी देखते है कि ऐसी बातोंमें लोकमत शिथिल है, और कुछ हद तक तो वह ऐसे बुरे रिवाजोंके साथ भी है। अगर बात ऐसी न हो तो अपनी लड़की बनने लायक बालाको ब्याह लानेवाले व्यक्तिको कोई संस्था रखेगी कैसे? और सो भी प्रोफेसर? ऐसे प्रोफेसरसे विद्यार्थी पढ़ेंगे ही क्यों? ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब कि किसी एक ही विद्यार्थीका अपमान करनेवाले प्रोफेसरका विद्यार्थियोंने बहिष्कार किया है। जो प्रोफेसर किसी बालिकासे विवाह कर लेता है, वह तो विद्यार्थियों और अपने समाजका अपमान करता है। किन्तु इस अपमानको जनता और विद्यार्थी वगैरह सभी सह लेते हैं। जिस पापको सहनेके लिए समाज तैयार न हो, वह पाप करना लगभग असम्भव हो जाता है। इसलिए बाल-विवाह इत्यादि दुष्ट रिवाजोंके विरुद्ध धैर्यपूर्वक लोकमत तैयार करना और जहाँ शान्तिपूर्वक बहिष्कार सम्भव हो, वहाँ उस शस्त्रका उपयोग करके जनमतको तैयार करना चाहिए। अगर युवक-वर्ग स्वयं शुद्ध और संयमी हो, या बन जाये तो ऐसे कामोंमें वह सहायक हो सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-७-१९२८

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उसमें एक ४५ वर्षीय विधुर प्रोफेसर, जो पाँच बच्चोंके पिता थे और जिनकी एक बेटी विवाहित थी, द्वारा एक चौदह वर्षकी बालिकासे विवाह करनेका उल्लेख था।

५. स्वयंसेवककी कठिनाई

बारडोली सत्याग्रह छावनीसे एक भाई लिखते हैं:[1]

जैसी इस भाईकी स्थिति जान पड़ती है, वैसी इस देशमें बहुतोंकी होती है। न्याय तो यह है कि जिसने सेवाको धर्म माना है, वह उसकी खातिर कुटुम्बको बलिदान कर दे। किन्तु यों शुद्ध न्याय जानते हुए भी व्यवहारके क्षेत्रमें हमारे लिये सदा कोई सीधी रेखा नहीं खिंची होती। सामान्य तौर पर आदमी कुटुम्ब-धर्म और देश-धर्मके बीच झूला करता है। आदर्श स्थितिमें ये दोनों धर्म परस्पर-विरोधी नहीं होते, किन्तु वर्तमान स्थितिमें दोनोंके बीच प्रायः विरोध ही देखनेमें आता है। कारण, कुटुम्ब-प्रेम स्वार्थ पर रचा हुआ होता है तथा कुटुम्बीजन स्वार्थ-पूजक होते हैं। इसलिए सामान्य कर्त्तव्यकी दृष्टिसे यह कहा जा सकता है। कि कुटुम्बकी साधारण, यानी हिन्दुस्तानकी गरीबीमें जो उचित हो, ऐसी जरूरतें पूरी करनेके बाद ही देश-सेवामें पड़ना चाहिए। कुटुम्बको रोता छोड़कर कोई देश-सेवा नहीं कर सकता। किन्तु कुटुम्ब किसे कहें? उसमें भी किसका निर्वाह करना अनिवार्य है? एक गोत्रके सभी आदमियोंको कुटुम्ब कहकर जो मनको भ्रमित रखता है, यह लेख उसके लिए नहीं है। और न यह लेख उनके लिए है जो कुटुम्बके सशक्त लोगोंको घर बैठे खिलानेकी अभिलाषा रखते हैं। जो देश-सेवा करना चाहते हैं, वे ऐसी बातोंमें पूर्णतया शुद्ध रहकर अपना-अपना काम चलायेंगे। मेरा अनुभव ऐसा है कि ऐसे व्यक्तियोंके कुटम्बोंको भूखों नहीं मरना पड़ता। राष्ट्र-सेवामें लगे हुए लोगोंको अपनी सच्ची जरूरतें पूरी करने लायक द्रव्य लेनेका अधिकार है और इस अधिकारके अनुरूप आज सैकड़ों सेवक अपना और अपने आश्रितोंका पोषण करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-७-१९२८

६. एक सच्चा सेवक[2]

पण्डित गोपबन्धु दासकी मृत्युसे हिन्दुस्तान — विशेषकर उत्कल — ने एक सच्चा और शुद्ध सेवक खो दिया है। वे उड़ीसाके एक रत्न थे। दस वर्ष पहले जब श्री अमृतलाल ठक्कर उत्कलमें अकाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए गये थे तब वे मुझे गोपबन्धु बाबूके चरित्र, अथाह उद्यम और लोगोंके प्रति प्रेमके विषयमें समय-समयपर लिखते रहते थे। असहयोग आन्दोलनके समय गोपबन्धु बाबू विधान सभाके सदस्य थे और वकालत करते थे। वकालतसे धन बटोरनेके बदले उन्होंने साखीगोपालमें एक पाठशालाकी स्थापना

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने पूछा था कि अगर कोई व्यक्ति बिना वेतन लिये राष्ट्रीय कार्य करना या सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग लेना चाहे तो उसके परिवारका निर्वाह कैसे होगा। बारडोलीके मामलेके संक्षिप्त विवरणके लिए देखिए खण्ड ३६, परिशिष्ट ३।

२. देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ४६६-६७।

की जो काफी लोकप्रिय थी; परन्तु उस समय यह सरकारसे सम्बद्ध थी। जब उन्होंने असहयोगके तत्त्वको ठीकसे समझ लिया तब सरकारसे उसका सम्बन्ध तोड़ दिया। उन्होंने वकालत भी छोड़ दी और एकदम गरीबीका जीवन अपना लिया। विधान सभा छोड़ दी। इन दोनोंको छोड़ना तो उनके लिए कठिन नहीं था, किन्तु मित्रोंकी चेतावनीकी परवाह किये बिना अपनी अत्यन्त प्रिय शालाका — जिसका आदर्श वाक्य सत्यनिष्ठा था — सरकारसे सम्बन्ध तोड़कर उसकी हस्तीको ही जोखिममें डाल देना उनके लिए बहुत बड़ा त्याग था। फिर उन्हें कभी अपने इस कामके लिए पश्चात्ताप हुआ हो, इसका मुझे पता नहीं है। एक बार जब शालासे लगभग सभी विद्यार्थी चले गये, तब मित्रोंके कहनेपर उनके मनमें थोड़ी निर्बलता आ गई थी और उन्होंने सरकारसे पुनः सम्बन्ध जोड़नेके लिए अर्जी दी। किन्तु जब सरकारने अशोभनीय शर्तें रखी तब उन्होंने अपनी अर्जी देनेकी निर्बलता पर पश्चात्ताप प्रगट किया। सरकारने शर्तें रखकर अपनी अयोग्यता सिद्ध की और इस प्रकार गोपबन्धु बाबूको उस अनुचित सम्बन्धसे बचा लिया। इसके लिए उन्होंने ईश्वरका आभार माना। कई बार सरल और शुद्ध हृदयके लोगोंकी निर्बलतामें भी उनकी सबलता नजर आती है। यही बात गोपबन्धु बाबूकी निर्बलताके विषयमें लागू होती है। इस विषयमें जब उन्होंने मुझसे बात की तो मुझे एक तरफ उनकी आँखों और उनके कथनमें अपनी प्रिय शालाके लिए प्रेम दिखाई दिया और दूसरी ओर अपनी निर्बलताकी अतिशय सरलतासे स्वीकृति। यह मिश्रण गोपबन्धु बाबूको शोभान्वित ही कर रहा था। और जब पिछले वर्ष उत्कलके भ्रमणके दौरान वे मुझे साखीगोपाल ले गये, तब वहाँ एक सुन्दर कुंजमें स्थित शालाकी बड़ी-बड़ी इमारतोंके खण्डहर देखकर मुझे दुःख हुआ।

किन्तु गोपबन्धु बाबूको किसी प्रकारकी ग्लानि हुई हो, मुझे ऐसा अनुभव नही हुआ। उन्होंने पिछले चार वर्षोंमें यह जान लिया था कि उत्कलकी गरीबी दूर करनेमें खादीका कितना महत्त्व है। इसलिए वे खादीका काम कर रहे थे और मेरे साथ इस विषयमें सलाह-मशविरा कर रहे थे कि इस कामको कैसे बढ़ाया जाये। गोपबन्धु बाबू लालाजी के सेवा-मण्डलसे सम्बन्धित थे। वे उस मण्डलके उपाध्यक्ष थे। हम यही आशा करते हैं कि उनका काम उत्कलके स्वयंसेवक उठा लेंगे। साधु पुरुष मरकर भी जीते हैं। असाधु जीते हुए भी मरेके समान हैं। गोपबन्धु बाबू-जैसे साधु पुरुषके शारीरिक क्षयसे हम स्वार्थवश दुःख करते हैं, पर शुद्ध दृष्टिसे देखें तो ईश्वर निर्दयी नहीं, बल्कि न्यायी है। ऐसा माननेवाले के लिए ये वियोग दुःखदायी नहीं होने चाहिए। उनके जीवित रहते हुए हम उनके पवित्र जीवनका अनुकरण नहीं कर पाते; किन्तु उनके गुणोंका सच्चा स्मरण करके हमें अपनेमें ऐसा करनेकी शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। अनेक ऐसे दृष्टान्त हैं, जहाँ ऐसा हुआ है। इसलिए मोह-रहित होकर हम मृत्युका शोक और डर छोड़ दें और आत्माके अमरत्वको सिद्ध करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-७-१९२८

७. सन्देश : भड़ौच जिला परिषद्को[1]

[१ जुलाई, १९२८]

बारडोलीकी सहायता करनेवाले लोग वास्तवमें स्वयं अपनी ही सहायता करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-७-१९२८

८. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

साबरमती आश्रम
१ जुलाई, १९२८

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। सुशीला यह मानती है कि उसमें पत्र लिखनेकी योग्यता नहीं है। जो इस प्रकार अपनी अयोग्यताको सचमुच स्वीकार करता हो उसे योग्य बननेका भरसक प्रयत्न करना चाहिए। जिस हफ्ते तुमने यहाँके पावनेके बारेमें लिखा लगता है, उसी हफ्ते यहाँसे मेरी फटकार भी गई होगी।[2] मैं तो जो लिखना चाहता था, वह लिख चुका था। मै चाहता हूँ कि तुम सावधान रहो। आखिर सामान्य व्यक्ति भी कुछ नियमोंका पालन तो करता ही है।

यहाँ सभी लोग स्वस्थ है।

यह पत्र मैंने सुबह चार बजे लिखवाया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७४०)की फोटो-नकलसे।

१. परिषद् १ जुलाईको हुई थी और इसकी अध्यक्षता के० एफ० नरीमनने की थी। उपस्थित लोगोंमें वल्लभभाई पटेल, जमनालाल बजाज, अब्बास तैयबजी और एच० जे० अमीन भी शामिल थे। रिपोर्टमें बताया गया था कि "परिषद्ने कई प्रस्ताव पास किये, जिनमें बारडोलीकी जनताके पक्षका समर्थन किया गया; एक ऐसे मामलेमें, जो उनकी दृष्टिमें सिद्धान्तका मामला था, डटकर लड़नेके लिए उस ताल्लुकेके लोगोंको बधाई दी गई; भड़ौचके लोगोंसे सरकार द्वारा जब्त की गई जमीन न खरीदनेके लिए अनुरोध किया गया, बारडोलीके मामलेको लेकर बम्बई विधान-परिषद्की सदस्यता छोड़नेवाले पार्षदोंको बधाई दी गई और माननीय दीवान बहादुर हरिलाल देसाई, माननीय श्री देहलवी, माननीय सर चुन्नीलाल मेहता तथा केरवाड़ाके ठाकुर साहबसे त्यागपत्र देनेका अनुरोध किया गया।"

२. यह पत्र १९ जूनको लिखा गया था; देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ४५३।

९. पत्र : गोवर्धनभाई आई० पटेलको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१ जुलाई, १९२८

प्रिय गोवर्धनभाई,

आपका पत्र[1] मिला। मुझे तो नहीं लगता कि मैंने सचमुच कोई नई शर्त जोड़ी थी। मैं आपको बता ही चुका हूँ कि आपने अपने पत्रमें जो-कुछ लिखा था उसीको मेरी भाषामें फिरसे लिख दिया जा सकता है। यदि दाताओंकी ऐसी ही इच्छा है कि निरीक्षण-समितिको निर्बाध अधिकार प्राप्त[2] हों तो मुझे उस पर कोई आपत्ति नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गोवर्धनभाई आई० पटेल
लालावासा स्ट्रीट, साँकरी शेरी
अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १३४४६) की माइक्रोफिल्मसे।

१०. पत्र : आर० एम० देशमुखको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका २३ जूनका पत्र मिला।

आपका सुझाव[3] मुझे व्यवहार्य नहीं लगता। खादी-कार्यकर्त्ताओंने तो अनुभवसे यही जाना है कि जबतक हाथ-कताईका संगठन कुशल लोग नहीं करें, तबतक वह सफल नही हो सकती। संघको जो भी सूत दिया जाये, उसे वह यों ही स्वीकार

१. २९ जूनका पत्र, यह गांधीजी के २७ जूनके पत्र के उत्तरमें लिखा गया था; देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ४८९-९०।

२. गोवर्धनभाईने लिखा था : "निरीक्षण-समितिपर ऐसी कोई बाध्यता नहीं होगी कि वह अपने सुझाव आदि पहले दाताओंके सामने रखकर उनपर उन लोगोंकी सहमति ले ले और तभी मजदूर-संघसे उन्हें स्वीकार करनेको कहे . . .।" (एस० एन० १३४४२)

३. हाथ-कते सूतको बेचनेकी कठिनाई समझाते हुए देशमुखने अपने पत्र (एस० एन० १३६२७) में कहा था कि सहकारिता विभाग, मध्य प्रान्तमें हाथ कताईको एक सहायक धन्धा बना सके, इसके लिए केन्द्रीय बैंकके बजाय अखिल भारतीय चरखा संघको सहकारी समितियोंके सदस्यों द्वारा काते गये तमाम सूतको खरीद लेनेकी जिम्मेदारी ले लेनी चाहिए।

नहीं कर लेगा। वह तो केवल ऐसा हाथ-कता सूत ही ले सकता है जो जाँच करने पर ठीक पाया गया हो, जो काफी समान और निर्देशके अनुसार गुंडियोंमें लपेटा गया हो। और मै नही समझता कि आप संघको ऐसा सूत दे सकेंगे जो इन शर्तोंको पूरा कर सके। इसके अलावा, यदि आप छुटपुट प्रयत्नों और प्रचारके बल पर हाथ-कताईको लोक-प्रिय बनानेकी आशा रखते है तो वह आशा विफल ही होगी। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि आप उन परिस्थितियोंका अध्ययन करें जिनमें मैसूरमें हाथ-कताईका संगठन किया जा रहा है और फिर मैसूरके ढंग पर ही हाथ-कताईके कामको आगे बढ़ाइए। उस संगठनकी मुख्य विशेषता यह है कि कोई एक जिला संघको हाथ-कताईके संगठनके निमित्त सौप दिया गया है। संगठनका खर्च मैसूर राज्य उठाता है। अगर आप संघके सामने ऐसा कोई प्रस्ताव रखेंगे तो वह उसे स्वीकार करेगा या नही, इस सवाल पर अभी मैने विचार नही किया है और न तबतक विचार करनेका कोई सवाल उठता है जबतक आप कोई ठोस प्रस्ताव लेकर आगे न आयें।

हृदयसे आपका,

माननीय आर० एम० देशमुख
कृषि-मन्त्री, मध्य प्रान्त
नागपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३६३१-ए)की माइक्रोफिलमसे।

११. पत्र : मुल्कराजको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१ जुलाई, १९२८

प्रिय लाला मुल्कराज,

आपके दो पत्र मिले, जिनमें से एक पण्डित मालवीयजी को लिखे उस पत्रकी नकल है जिसमें आपने सिखों और समितिके[1] बीच पैदा हुई गलतफहमीकी[2] चर्चा की है। मेरी सलाह यह है कि आप शीघ्र ही अन्तिम रूपसे इसका समाधान कर डालिए। और मैं नहीं समझता कि केवल बाड़ा[3] लगानेसे ही बात बन जायेगी,

१. जलियाँवाला बाग-स्मारक कोष समिति।

२. सीमा-रेखाके बारेमें।

३. जलियांवाला बाग-स्मारक स्थलके चारों ओर पहले बांसकी जाफरी लगा दी गई थी, किन्तु कुछ एक अकालियों तथा अन्य लोगोंने उसे जबरदस्ती हटा दिया। अब वहां लोहेका बाड़ा लगानेकी बात चल रही थी (एस० एन० १५३६७)।

यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूँ कि बाड़ा लगाना भी जरूरी है। सिखों और समितिके बीच इस मामलेका कोई उचित और संतोषजनक निबटारा हो जाना चाहिए।

और दूसरे पत्रके सम्बन्धमें, मैं स्मारक-पटल पर अंकित करनेके लिए अभिलेखका मसविदा[1] साथमें भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत लाला मुल्कराज
मन्त्री, जलियाँवाला बाग-स्मारक कोष
अमृतसर

अंग्रेजी (एम० एन० १५३६९)की माइक्रोफिल्मसे।

१२. पत्र: शाह मुहम्मद कासिमको[2]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जबतक मैं आपके पत्रमें लिखी बातकी सचाईकी छान-बीन न[3] कर लूँ तबतक उसके बारेमें 'यंग इंडिया' में कुछ नहीं लिख सकता। अभी मैं छान-बीन कर रहा हूँ और यदि मुझे लगा कि आपका पत्र प्रकाशित करने या उसके सम्बन्ध में लिखनेसे किसी भी तरहसे कोई लाभ हो सकता है तो मैं बेशक उसके बारेमें लिखूँगा।[4]

हृदयसे आपका,

शाह मुहम्मद कासिम साहब
मार्फत — सैयद मुहम्मद हुसैन
डाकघर — नरहट
गया

अंग्रेजी (एस० एन० १२३९५ ए) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "जलियाँवाला बाग-स्मारकके लिए अभिलेखका मसविदा", १-७-१९२८।

२. शाह मुहम्मद कासिमके ९ जून, १९२८ के पत्रके उत्तरमें; शाह मुहम्मद कासिमने अपने पत्रमें शिकायत करते हुए कहा था कि किस प्रकार ईदके अवसरपर मुसलमानोंको बकरोंकी कुरबानीसे रोका गया।

३. देखिए अगला शीर्षक।

४. देखिए "पत्र: शाह मुहम्मद कासिमको", ११-७-१९२८।

१३. पत्र : जोधपुर राज्यके मन्त्रीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१ जुलाई, १९२८

प्रिय महोदय,

संलग्न पत्र[1] मुझे प्रकाशनार्थ भेजा गया है। लेकिन राज्यकी ओरसे इसका कोई उत्तर पाये बिना मैं इसे नहीं छापना चाहूँगा। यदि आप एक छोटा-सा उत्तर[2] भेजनेकी कृपा करें तो आभारी होऊँगा।

इस पत्रकी प्राप्ति सूचित करते समय संलग्न पत्र लौटा देनेकी कृपा करें।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १० सफे

अंग्रेजी (एस० एन० १२३९६)की माइक्रोफिल्मसे।

१४. तार : जमनादास गांधीको

साबरमती
२ जुलाई, १९२८

जमनादास गांधी
मिडल स्कूलके सामने
राजकोट

दो दिनोंके लिए शीघ्र आ जाओ।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ८६९८)से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

१. देखिए पिछले पृष्ठकी पा० टि० २।

२. अपने ५ जुलाई, १९२८ के पत्रमें मन्त्रीने लिखा था : "राज्यके स्थायी आदेशको भंग करके दो मुसलमान कुरबानीके एक बकरेको एक खुली सड़कसे होकर लिये जा रहे थे। उस सड़कके आसपास रूढ़िवादी हिन्दुओंकी बस्ती है। इस राज्यके हिन्दू बहुत समयसे ऐसा करते आ रहे हैं कि जब-कभी उनके इलाकेसे कुरबानीके किसी बकरेको खुले आम ले जाया जाता है, वे उसे रोक रखते हैं और उसके कानमें लोहेका छल्ला डालकर उसे अमर करार दे देते हैं और फिर जीवन-भर उसे खिलाते-पिलाते हैं। उस बकरेको भी हिन्दुओंने उपर्युक्त परिस्थितियोंमें ही रोका और उसे उक्त रीतिसे अमर करार देकर पुलिसके संरक्षणमें सौंप दिया, क्योंकि मुसलमान लोग उनके इस धार्मिक व्यवहारसे बहुत उत्तेजित हो गये

१५. पत्र : बेचर परमारको

२ जुलाई, १९२८

भाईश्री बेचर परमार,

आप जिन दोषोंको नाईके धन्धेसे जुड़ा हुआ मानते हैं वे दोष तो शायद सभी धन्धोंमें हैं। किन्तु यदि सभी अपने-अपने धन्धोंमें लगकर अपनी रोजी-रोटी कमायें तो कमसे-कम संघर्ष होगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० ५५६७)की फोटो-नकलसे।

१६. पत्र : रामनारायण पाठकको

२ जुलाई, १९२८

भाई रामनारायण,

जरा फुरसत मिलने पर तुम्हें पत्र लिखनेके विचारसे मैंने तुम्हारा १८ अप्रैलका पत्र अब तक सँभालकर रख छोड़ा था। तुम्हारे विद्यापीठ[1] छोड़ देनेसे मुझे दु:ख तो अवश्य हुआ। हालाँकि तुमने अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध तोड़ लिया है, फिर भी मैं यही मानता हूँ कि जिस संस्थाकी तुमने सेवा की है, भविष्यमें भी यथाशक्ति उसकी सहायता करते रहोगे। आशा है, तुम स्वस्थ होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६११०)की फोटो-नकलसे।

थे। पुलिसने बकरेको सिटी पुलिस स्टेशनमें रखा, लेकिन कोई ३,००० मुसलमानोंने स्टेशनको घेर लिया और मार-काटका डर दिखा बकरेको लौटा देनेको कहा। लाठियों और तलवारोंसे लैस इन आक्रमणकारियोंने पुलिस स्टेशनकी दीवारोंको चारों ओरसे बिलकुल घेर लिया और वे पुलिसपर धावा ही बोलनेवाले थे कि उन्हें भगानेके लिए सेनाको बुला लिया गया। कोई भी हताहत नहीं हुआ।" (एस० एन० १२३९७-ए)।

१. गुजरात विद्यापीठ।

१७. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२ जुलाई, १९२८

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र और रु० २७०० की हुंडी मीले है। मैं चीनके साथ संबंध तो रखता ही हुं परंतु उन लोगोंको तार भेजनेको दिल नही चाहता। उसमें कुछ अभिमानका अंश आता है। यदि आयु है तो चीन जानेका इरादा अवश्य है। कुछ शांति होनेके बाद वह लोग मुझको बुलाना चाहते हैं।

आप सब भाईयोंके पाससे आर्थिक मदद मांगनेमें मुझको हमेशा संकोच रहता है। क्योंकि जो कुछ मांगता हुं आप मुझे दे देते हैं। दक्षिणामूर्तिके बारेमें मैं समजा हुं। बात यह है कि मुलकमें अच्छे काम तो बहोत हैं परंतु दान देनेवाले कुछ कम हैं। अच्छा काम रुकता नहिं है परंतु नये देनेवाले उत्पन्न नहिं होते है। नये काम तो हमेशा बढ़ते जाते है।

ठीक कहते हो नियमावलीकी किम्मत केवल नियमोंके पालन करनेवालों पर निर्भर है। रुपैये आस्ट्रीयाके मित्रोंको[1] भेज दीये हैं।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्रकी नकल (सी० डब्ल्यू० ६१५८)से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. फ्रेडरिक स्टैंडेनेथ और उनकी पत्नी।

१८. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

आश्रम, साबरमती
३ जुलाई, १९२८

भाईश्री बहरामजी,

मगनलालके बारेमें तुम्हारा पत्र मिला था। मैं तो उसकी मृत्युकी बात भूल गया हूँ।[1] उसकी आत्मा तो आज भी आश्रममें काम कर रही है। अपना स्वास्थ्य अच्छी तरह सुधार लेना। तुम दोनों प्रसन्न रहना।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत बहरामजी खम्भाता
लाइफ्स नेचर क्योर हेल्थ हाउस
इंग्लैंड

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४३७०)की नकलसे।
सौजन्य : तहमीना खम्भाता

१९. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
३ जुलाई, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने वहाँके जलसेका जो विवरण दिया है वह ठीक है, परन्तु उससे भी अच्छा विवरण दिया जा सकता था। तुमने देवशर्माजी से पूरी बात कहकर अच्छा किया। यहाँ भी वर्षाका वही हाल है। सिर्फ कल एक बौछार आई थी, किन्तु उसे भी बुआईके लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता।

महादेव सम्भवतः दो-तीन दिनमें चलने-फिरने लायक हो जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८१)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. मगनलाल गांधीकी मृत्यु २३ अप्रैल, १९२८ को हुई थी। देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ २७८-८१।

२०. पत्र : एन० आर० मलकानीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
४ जुलाई, १९२८

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिला। सिन्धके पृथक्करणके बारेमें ये दो पक्ष क्या हैं? मेरा मतलब एक ओर जेठमल[1] और उनके साथियों और दूसरी ओर जयरामदास[2] और उनके सहयोगियोंसे है। वे कौन-से अखबार हैं, जिनका तुमने उल्लेख किया है?

तुम मानते हो कि यदि असीमित दहेजको सीमित कर दिया जाये तो काफी होगा। लेकिन फिर उन गरीब माता-पिताओंका क्या होगा जो ३,००० रुपये अर्थात् तुमने जो सबसे छोटी राशि बताई है उतना भी नही दे सकते?

जो लड़कियाँ खादीकी फेरी लगानेमें तुम्हारी मदद कर रही हैं, उन्हें मेरी ओरसे बधाई देना। हैदराबादमें तो किसी सिन्धी लड़कीके लिए खादी पहनना और खादी बेचनेके लिए फेरी लगाना सचमुच खास बहादुरीका काम है।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ८८७)की फोटो-नकलसे।

२१. पत्र : श्रीप्रकाशको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
४ जुलाई, १९२८

प्रिय श्रीप्रकाश,

आपका पत्र मिला। जब भी आ सकें, अवश्य आ जाइए। अभी कुछ-एक महीने मेरे आश्रमसे कहीं बाहर जानेकी सम्भावना नहीं है।

आपके चेककी रकमको मगनलाल-स्मारक और बारडोली संघर्षके लिए मैं बराबर-बराबर बाँट रहा हूँ।

१. जेठमल परसराम।
२. जयरामदास दौलतराम।

बड़ी खुशी हुई यह जानकर कि आखिरकार आप संघके सदस्य बन ही गये। मगर जबतक आप 'क' वर्गकी सदस्यता न प्राप्त कर लेंगे, मुझे सन्तोष नहीं होगा। 'ख' वर्ग निश्चय ही आप-जैसोंके लिए नही है।[1]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १३४५०)की फोटो-नकलसे।

२२. पत्र: बी० डब्ल्यू० टकरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
४ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके पिछले पत्रोंमें तो बेशक ऐसा कुछ नहीं था जिसके लिए आप लज्जित हों। यद्यपि मैं आपके निष्कर्षको[2] स्वीकार नहीं कर सका, लेकिन आपकी आलोचनाके पीछे जो स्नेह छिपा हुआ है, उसे तो अवश्य समझता हूँ। डिपुटी कमिश्नरके प्रति आपने जो 'रवैया'[3] अपनाया है, वह मुझे सही जान पड़ता है। सच पूछिए तो भारत-स्थित विदेशी मिशनोंका कार्य-व्यापार मुझे किसी भी तरह ठीक नही लगता। उनमें अपना काम निकालने और दुनियादारीकी प्रवृत्ति ज्यादा दिखाई देती है और कौन-सी चीज सही और धर्मसंगत है, इसकी चिन्ता बहुत कम दिखाई देती है। विदेशी मिशनों पर जो शर्तें थोपी गई हैं, उन्हें कोई धार्मिक संस्था कैसे स्वीकार कर सकती है? अंग्रेज मिशनरियोंका प्रयास तो साफ-साफ राजनैतिक उद्देश्यों

१. तात्पर्य अखिल भारतीय चरखा संघकी सदस्यतासे है। संघके संविधानके अनुसार 'क' वर्गके सदस्योंके लिए हर महीने खुदका काता १,००० गज सूत जमा कराना और 'ख' वर्गके सदस्योंके लिए प्रतिवर्ष खुदका काता २,००० गज सूत चन्देके रूपमें देना जरूरी था। देखिए खण्ड २८, पृष्ठ २४२।

२. कलकत्ताके एक स्कूलसे सम्बन्धित अमेरिकी मिशनरी टकरने अपने २८ जूनके पत्रमें लिखा था: "...अपने छिद्रान्वेषी रवैयेके लिए मैं हृदयसे लज्जित हूँ।...उनमें से अधिकांश आलोचनाएँ मेरे स्वभावके दुर्बल पक्षका परिणाम थीं और उनमें मैंने अपने कुछ-एक ऐसे रवैयोंको सही साबित करनेका प्रयत्न किया जिनके सही होनेके बारेमें खुद मेरे दिल और दिमागको बहुत शक है।..." (एस० एन० १३४४०)

३. टकरने लिखा था कि "जब मैं श्री वेयर्स [डिपुटी कमिश्नर] से मिला तो उन्होंने मुझसे जो-कुछ कहा उसे सुनकर मैं बिलकुल चकित रह गया। उन्होंने बताया कि मैंने राजनीतिक सभाओंमें शामिल होकर अपराध किया है।...ऐसी सभाओंमें जाना अमेरिकाके विदेशी मिशन बोर्ड द्वारा उसके मिशनरियोंकी ओरसे दिये गये वचनके विरुद्ध है।...यदि मैं ऐसी सभाओंमें जाना बन्द नहीं करूँगा तो... हमारे स्कूलको सरकारकी ओरसे प्रति मास १७५ रुपयेका जो अनुदान मिलता है वह बन्द कर दिया जायेगा और सरकार मिशनरी बोर्डसे...मुझे वापस बुला लेनेको कहेगी।...मैं बिशप फिशर और अमेरिकाके बोर्डके सेक्रेटरीको रिपोर्टसे अवगत करा चुका हूँ और मैंने कह दिया है कि मेरी इच्छा इस आदेशको माननेकी नहीं है। यदि उन्होंने जोर डाला कि मैं सरकारकी इच्छाका पालन अवश्य करूँ तो फिर बोर्डसे त्यागपत्र दे देनेके अलावा मेरे सामने और कोई सम्मानजनक उपाय नहीं है।..."

से परिचालित है। उनकी संस्था सरकारके इशारे पर ही चलती है। कमसे-कम मुझे तो ऐसा ही लगता है। मेरा ख्याल है कि जिन कारणोंसे प्रेरित होकर एन्ड्रयूजने[1] कैम्ब्रिज मिशन छोड़ा उनमें से एक उसका जरूरतसे ज्यादा दुनियादारीका रवैया भी था। लेकिन, यहाँ भी मैं ऐसा मानकर ही लिख रहा हूँ कि हो सकता है, मेरा खयाल गलत हो। मेरे इस निष्कर्षसे एन्ड्रयूजके रवैयेका कोई सरोकार नही है। इसलिए आप अभी जिस कठिनाईमें पड़ गये है उसे मैं एक छिपा हुआ वरदान ही मानता हूँ। यदि आपमें दृढ़ विश्वास और शक्ति होगी तो आप उस संस्थासे सदाके लिए अपना सम्बन्ध तोड़ लेंगे। और मेरा खयाल है कि आप वैसा करके और भी अधिक अच्छे सत्यदूत बन जायेंगे।

मेरे पश्चिमी देशोंकी यात्रा करनेकी बातके बारेमें आपने जो-कुछ कहा है,[2] उसे मैं समझता हूँ। अगर बाहरी परिस्थितियाँ अनुकूल रहीं और मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा तो अगले वर्ष मै वहाँ जानेकी उम्मीद रखता हूँ।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड बी० डब्ल्यू० टकर
'द मैंस', दार्जिलिंग

अंग्रेजी (एस० एन० १३४५१)की फोटो-नकलसे।

२३. पत्र : डॉ० प्र० च० घोषको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
४ जुलाई, १९२८

प्रिय प्रफुल्ल बाबू,

आपका भेजा प्रस्ताव[3] पढ़ा। इसमें न विनय दिखाई देती है और न खादीकी भावना। मैं तो नहीं समझ पा रहा हूँ कि आपने जमनालालजीके जिस पत्रकी नकल

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज।

२. टकरने लिखा था : "मैं आपकी इस योजनासे सहमत हूँ कि वहाँ आप सार्वजनिक सभाओंमें भाषण न देकर खास-खास लोगों और समूहोंसे ही मुलाकात और बातचीत करेंगे। इससे न केवल आप बहुत अधिक श्रमसे बच जायेंगे, बल्कि इस तरह आपके सन्देश और व्यक्तित्वका प्रभाव भी अधिक पड़ सकेगा।"

३. "चूँकि बशीरहाटमें हुई अ० भा० च० सं०की परिषद्की बैठकमें १०,००० रुपयेके कर्जकी मंजूरीके बारेमें संघके कार्यवाहक अध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाजका बम्बईसे १३ जून, १९२८को लिखा पत्र उस भावनाके विरुद्ध है जिस भावनासे उक्त बैठकमें प्रस्ताव स्वीकार किया गया था और चूँकि हमारे साथ किया गया व्यवहार अपमानजनक है और हमारे साथ पहले भी अन्याय किया गया और आज भी किया जा रहा है, इसलिए अभय आश्रमके सदस्योंकी यह बैठक निश्चय करती है कि १०,००० रुपयेका उक्त कर्ज लेनेसे खेदपूर्वक इनकार कर दिया जाये और भविष्यमें अ० भा० च० सं०से और कोई कर्ज न लिया जाये।" (एस० एन० १४४४८)

मुझे भेजी है, उसमें कौन-सी बात अपमानजनक है। आपको पत्रकी भाषा अपमानजनक लगती है या उसमें लिखी कोई बात? इन दिनों मुझे मालूम नहीं रहता कि परिषद्की बैठकोंमें क्या होता है। इसलिए जब यथासमय प्रस्ताव मेरे पास भेजा गया तब उसमें मैंने जो-कुछ देखा होगा, उसके अलावा दस हजार रुपयेकी मंजूरीके बारेमें मुझे कुछ भी मालूम नही है। लेकिन उसमें क्या देखा, यह अब मुझे याद नहीं है। जमनालालजी आश्रममें नहीं हैं। लेकिन एक ऐसे व्यक्तिकी हैसियतसे, जिसका इस मामलेसे कोई सरोकार नहीं है, मुझे न तो इस पत्रकी भाषा-शैलीमें और न इसमें लिखी बातोंमें ही कोई दोष नजर आता है। मान लीजिए चन्दा बिलकुल ही इकटठा न हो पाता और नब्बे हजार रुपयेके वादे, वादे-भर रह जाते तो क्या जमनालालजी आपको दस हजार रुपये दे पाते? मै इतना जानता हूँ कि इस समय संघके पास फालतू पैसा नहीं है। मैं तो आपसे सावधानी और धीरज बरतनेकी ही अपेक्षा रखूँगा और चाहूँगा कि शंकालु दृष्टि न रखें। आखिरकार परिषद्के सामने कोई छोटा-मोटा काम तो है नहीं। परिषद्की निन्दा करते हुए प्रस्ताव पास करनेके बजाय आपको उसकी कठिनाईको समझना चाहिए था और जहाँ वह गलती पर पाई जाती वहाँ उसकी गलतीको दुरुस्त कर देना चाहिए था। अगर आपकी जगह मैं होऊँ तो बिना कहे ही प्रस्ताव वापस ले लूँ। लेकिन अगर आप समझते हों कि अब आपको किसी प्रकारकी सहायताकी जरूरत नहीं है और आपको ऐसा न लगता हो कि आपने जल्दबाजीमें निर्णय लिया है तो बेशक आप अपने प्रस्ताव पर दृढ़ रहें।

हृदयसे आपका,

डॉ० प्र० च० घोष
मन्त्री, अभय आश्रम
कुमिल्ला

अंग्रेजी (एस० एन० १३६३१-बी)की फोटो-नकलसे।

२४. पत्र : नवाब मसूद जंग बहादुरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
४ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

कर्वे विश्वविद्यालयके दीक्षान्त भाषणकी प्रतिके लिए धन्यवाद। कुछ अखबारों में उस भाषणके कतिपय अंश छपे थे। मैंने अपने कामके लिए उनकी कतरनें तैयार करा ली थीं और शायद आपने 'यंग इंडिया' में देखा भी होगा कि आपके अभि-भाषणकी विषय-वस्तु पर मैं पहले ही लिख[1] चुका हूँ। अब मैं क्षण-दो-क्षणका अव-काश मिलते ही पूरे अभिभाषणको पढ़नेका आनन्द लाभ करूँगा।

हृदयसे आपका,

नवाब मसूद जंग बहादुर
लोक-शिक्षा निदेशक
महाविभव निजामकी सरकार
हैदराबाद, दक्षिण

अंग्रेजी (एस० एन० १३४४९) की फोटो-नकलसे।

२५. विदेशी माध्यमका अभिशाप

अभी हालमें हैदराबाद राज्यके लोक-शिक्षा निदेशक नवाब मसूद जंग बहादुरने कर्वे महिला विश्वविद्यालयमें देशी भाषाओंको शिक्षाका माध्यम बनानेके पक्षमें बहुत जोरदार दलील दी थी। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने उनकी दलीलका जवाब दिया है और एक भाईने उसकी कतरन मेरे पास उत्तर देनेके लिए भेजी है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' का जवाब इस प्रकार है :

> **उनकी लिखी चीजोंमें जो-कुछ भी महत्वपूर्ण और लाभदायक है वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे पाश्चात्य संस्कृतिका परिणाम है। . . . साठके बजाय हम सौ साल पीछे जाकर देख सकते हैं, लेकिन तब भी हम यही पायेंगे कि राजा राममोहन रायसे लेकर महात्मा गांधी तक जिस भारतीयने भी किसी क्षेत्रमें कहने लायक कुछ उपलब्ध करके दिखाया है वह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे पाश्चात्य शिक्षा-पद्धतिकी ही देन था या है।**

इन उद्धरणोंमें भारतमें उच्चतर शिक्षाके माध्यमके रूपमें अंग्रेजीके महत्त्व पर नहीं, बल्कि जिन लोगोंका उल्लेख किया गया है उनके लिए पाश्चात्य संस्कृतिके

१. देखिए अगला शीर्षक।

महत्त्व और उन पर पड़नेवाले उसके प्रभाव पर ही विचार किया गया है। न तो नवाब साहब और न किसी अन्य व्यक्तिने पाश्चात्य संस्कृतिके महत्त्व या प्रभाव पर कोई आपत्ति की। जो चीज लोगोंको बुरी लगती है वह है पाश्चात्य संस्कृतिकी वेदी पर भारतीय या प्राच्य संस्कृतिका बलिदान कर दिया जाना। यदि यह सिद्ध भी किया जा सकता हो कि पाश्चात्य संस्कृति प्राच्य संस्कृतिसे श्रेष्ठ है तो यह बात सम्पूर्ण भारतके लिए घातक सिद्ध होगी कि उसके अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न पुत्रों और पुत्रियोंका लालन-पालन पाश्चात्य संस्कृतिके वातावरणमें हो और इस प्रकार वे अपने राष्ट्रीय गुणोंको खोकर सामान्य जनतासे कटकर अलग हो जायें।

मेरे विचारसे, जिन लोगोंका उल्लेख किया गया है उनका सामान्य जनता पर जो भी अच्छा प्रभाव पड़ा वह उसी हदतक पड़ा जिस हदतक उन्होंने पाश्चात्य संस्कृतिके विपरीत प्रभावके बावजूद अपने व्यक्तित्वमें प्राच्य संस्कृतिके गुणोंको बचा रखा था। इस सम्बन्धमें मैं पाश्चात्य संस्कृतिके प्रभावको विपरीत उस अर्थमें मानता हूँ जिस अर्थमें उसने उस पूरे प्रभावको प्रकट नहीं होने दिया जो प्राच्य संस्कृतिके सबसे अच्छे गुण प्रकट कर सकते थे। और जहाँतक खुद मेरी बात है, मैंने पाश्चात्य संस्कृतिके ऋणको बहुत साफ-साफ स्वीकार किया है। लेकिन साथ ही मैं कह सकता हूँ कि मैं राष्ट्रकी जो भी सेवा कर पाया हूँ वह 'पूर्णतः' इसी कारणसे कि जहाँ तक सम्भव हुआ है, मैंने अपने व्यक्तित्वमें प्राच्य संस्कृतिके गुणोंको कायम रखा है। अंग्रेजियतके रंगमें रँगे, अपने राष्ट्रधर्मसे च्युत एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें — जो जन-साधारणके विषयमें कुछ न जानता हो, जिसे उसकी चिन्ता तो और भी न हो और जो शायद उसके तौर-तरीकों, विचारों और आकांक्षाओंसे घृणा करता हो — मैं जन-साधारणके लिए बिलकुल बेकार होता। जिस राष्ट्रके बच्चों पर एक ऐसी संस्कृतिके प्रहारोंसे अपनेको बचानेका काम आ पड़े जो अपने-आपमें लाख अच्छी होती हुई भी उस अवस्थामें उनके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है जब कि उन्होंने खुद अपनी संस्कृति को पूरी तरह ग्रहण नहीं किया हो और वे उसकी गहराइयोंमें न उतर पाये हों उस राष्ट्रकी कितनी शक्ति व्यर्थ नष्ट होगी, इसका अनुमान लगा पाना कठिन है।

अब जरा प्रश्न पर समग्र रूपसे विचार कीजिए। यदि चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसीदास और हमारे देशमें जो अन्य बहुत-से सन्त-सुधारक हो गये हैं, वे बचपनसे ही किसी अत्यन्त सुसंचालित अंग्रेजी स्कूलसे सम्बद्ध होते तो क्या उन्होंने जितना अच्छा काम किया उससे ज्यादा अच्छा काम वे कर पाते? उक्त लेखके लेखकने जिन लोगोंके नाम लिये हैं, उन्होंने क्या इन महान् सुधारकोंसे ज्यादा अच्छा काम कर दिखाया है? यदि दयानन्दने किसी भारतीय विश्वविद्यालयसे एम० ए०की उपाधि प्राप्त कर ली होती तो क्या वे और भी बड़ा काम कर दिखाते? चैन और ऐशो-इशरतकी जिन्दगी जीनेवाले उन अंग्रेजी-भाषी राजाओं-महाराजाओंके बीच, जिनका लालन-पालन शैशव कालसे ही पाश्चात्य संस्कृतिके वातावरणमें हुआ है, क्या कोई ऐसा है जिसका नाम शिवाजीके साथ लिया जा सकता हो — तमाम मुसीबतोंको बहादुरीसे झेलने और अपने दिलेर और हट्टे-कट्टे सैनिकोंकी तरह सादा जीवन

जीनेवाले शिवाजीके साथ? क्या वे साहसी शूर प्रतापसे अधिक अच्छे शासक हैं? क्या यही लोग पाश्चात्य संस्कृतिके अच्छे नमूने हैं—ये नीरो लोग, जो खुद तो लन्दन और पेरिसमें बैठकर चैनकी बंसी बजा रहे हैं और उधर उनके रोममें आग लगी हुई है, उनके राज्य दुःख-दर्दमें डूबे हुए हैं? उनकी संस्कृतिमें उनके लिए गर्व करनेकी कोई बात नही है। उस संस्कृतिने उन्हें अपने ही देशमें अजनबी बना दिया है, उसने उन्हें यह सिखाया है कि जिन लोगों पर शासन करनेका काम उन्हें एक उच्चतर शक्ति द्वारा सौंपा गया है उन लोगोंके सुख-दुःखके सहभागी बननेके बजाय अपनी प्रजाकी गाढ़े पसीनेकी कमाई और अपनी आत्माको यूरोपमें जाकर गँवा आओ।

लेकिन यहाँ विचारणीय प्रश्न यूरोपीय संस्कृति नही है। प्रश्न तो शिक्षाके विदेशी माध्यमका है। यदि हम इस तथ्यको एक ओर रख दें कि एकमात्र उच्चतर शिक्षा, जिसे शिक्षा कहा जा सकता है, हमने अंग्रेजी माध्यमसे पाई है तो फिर इस स्वयंसिद्ध बातको सिद्ध करनेकी कोई जरूरत ही नही रह जायेगी कि यदि किसी राष्ट्रके नौजवानोंको सचमुच एक राष्ट्रके रूपमें रहना है तो उन्हें सारी शिक्षा, उच्चतम शिक्षा भी, अपनी देशी भाषाओंके माध्यमसे ही प्राप्त करनी चाहिए। निश्चय ही इस बातको समझाने और साबित करनेकी जरूरत नहीं है कि किसी भी राष्ट्रके नौजवान तबतक जनसाधारणसे अपना सम्पर्क बनाये नहीं रख सकते या बना नहीं सकते जबतक कि वे उसी भाषामें ज्ञान प्राप्त और ग्रहण न करें जिस भाषाको जनता समझती है। यहाँके हजारों नौजवानोंको अपनी मातृभाषा और अपने साहित्यकी उपेक्षा करके एक ऐसी भाषा और उसके मुहावरों पर अधिकार प्राप्त करनेके लिए, जिस भाषाका उनके दैनिक जीवनके लिए कोई उपयोग नहीं है, जो वर्षोंका समय बरबाद करना पड़ता है, उससे राष्ट्रकी कितनी अपार क्षति होती होगी, इसका अनुमान कौन लगा सकता है? अमुक भाषा विकासक्षम या जटिल अथवा वैज्ञानिक विचारोंको व्यक्त करने योग्य नहीं है, इससे बड़े अन्धविश्वासके बारेमें तो कभी सुना ही नहीं। कोई भी भाषा उस भाषाको बोलनेवालों के चरित्र और विकास का बिलकुल सही प्रतिबिम्ब होती है।

देशके नौजवानों पर एक विदेशी माध्यम थोप देनेसे उनकी प्रतिभा कुण्ठित हो रही है और इतिहासमें इसे विदेशी शासनकी बुराइयोंमें सबसे बड़ी बुराई माना जायेगा। इसने राष्ट्रकी शक्तिमें घुन लगा दिया है, शिक्षार्थियोंके लिए विद्योपार्जनके लिए पर्याप्त समय नहीं छोड़ा है, उन्हें सर्वसाधारणसे काटकर अलग कर दिया है, शिक्षाको अनावश्यक रूपसे व्यय-साध्य बना दिया है। यदि यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही तो ऐसे आसार दिखाई दे रहे हैं कि यह राष्ट्रकी आत्माका हनन कर देगी। इसलिए शिक्षित भारतीय अपने-आपको विदेशी माध्यमके इस व्यामोहसे जितनी जल्दी मुक्त कर लेंगे, स्वयं उनके और देशकी जनताके लिए उतना ही अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ५-७-१९२८

२६. हमारा तम्बाकूका खर्च

एक भाई कई तरहके सुधारोंमें रुचि रखते हैं। उन्होंने पूछा है कि तम्बाकू पर राष्ट्रको कितना खर्च करना पड़ता है। मैंने देखा है कि हम कच्चे तम्बाकू और सिगरेटोंके लिए प्रतिवर्ष २१३ लाख रुपये चुकाते हैं। यह खर्च प्रति वर्ष बढ़ता ही जा रहा है। जहाँ १९२३ में साढ़े बारह लाख पौंड कच्चे तम्बाकूका आयात होता था वहाँ १९२७ में ५० लाख पौंडका आयात हुआ। इसी दरसे सिगरेटोंके आयातमें भी वृद्धि हुई। मैंने जिन सूत्रोंसे यह हवाला दिया है, यदि वे सही हैं तो हम अपने तम्बाकूका निर्यात बिलकुल नहीं करते। इसलिए हमारे यहाँ पैदा होनेवाली तम्बाकूकी फसलकी कीमत भी उपर्युक्त आँकड़ोंमें जोड़ देनी पड़ेगी। यदि बीड़ी-सिगरेट आदि पीनेवाला हर व्यक्ति अपनी यह गन्दी आदत छोड़ दे, यदि वह अपने मुँहको धुआँ छोड़नेवाली ऐसी चिमनी बनानेसे बाज आये जो उसकी साँसको दूषित करती है, उसके दाँतोंको नुकसान पहुँचाती और उसकी विवेकशक्तिको कुण्ठित करती है, और इस तरह होनेवाली बचतको किसी अच्छे राष्ट्रीय कामके लिए दे दे तो वह अपनी भी शोभा बढ़ायेगा और राष्ट्रकी भी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-७-१९२८

२७. एक अमेरिकीकी श्रद्धांजलि

बहुत-से अमेरिकी मित्र आश्रमको देखने आते हैं और कभी-कभी वे यहाँ ठहरते भी हैं। उन्हींमें से एकने श्रीमती मगनलाल गांधीको इस प्रकार लिखा है:[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-७-१९२८

१. यहाँ इसका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है। १९२५ में पत्र-लेखक दो दिन आश्रममें रुका था और उसने श्रीमती मगनलाल गांधीके आतिथ्यका सौभाग्य भी प्राप्त किया था। उन दो दिनोंको अपने जीवनके सौभाग्यपूर्ण दिन बताते हुए उसने स्वर्गीय श्री मगनलाल गांधीको श्रद्धांजलि अर्पित की थी। उसने लिखा था कि श्री मगनलाल गांधी एक अत्यन्त विरल व्यक्ति थे। वे यद्यपि एक सच्चे भारतीय थे, फिर भी उनका दृष्टिकोण इतना उदार था कि सम्पूर्ण मानव-समाज उनकी सहानुभूतिकी सीमामें आ जाता था। वे सत्याग्रहकी भावनाकी साक्षात् प्रतिमूर्ति थे और उनकी सारी प्रतिभा और योग्यता, उनका सम्पूर्ण जीवन उस परम उद्देश्यके लिए अर्पित था, जिसको पानेकी आकांक्षा प्रत्येक मनुष्यको होनी चाहिए। यद्यपि वे हमेशा धर्मकी दुहाई नहीं देते रहते थे और अत्यन्त व्यावहारिक व्यक्ति थे, फिर भी उनकी समस्त व्यावहारिकता, उनकी सभी सांसारिक प्रवृत्तियोंका स्रोत धर्म ही था। पत्र-लेखकने श्रीमती मगनलाल गांधीको सान्त्वना देते हुए यह भी लिखा था कि यद्यपि प्रशंसाके ये शब्द किसीके प्रियजनके बिछोहके दुःखको कम नहीं कर सकते, फिर भी यह निश्चित है कि सबके कल्याणकी भावनासे ओत-प्रोत उनकी आत्माका प्रभाव उस परिवेशमें सदा बना रहेगा जिसमें वे रहते थे और सबसे बढ़कर तो आपकी उन दो पुत्रियों और पुत्रके रूपमें वे आपके साथ हैं, जो उनके कामको अपने हाथमें लेकर उसे आगे बढ़ायेंगे।

२८. पत्र : भूपेनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
५ जुलाई, १९२८

प्रिय भूपेन,

आपका पत्र मिला और साथमें बारडोली-संघर्षके लिए भेजा चेक भी।

आपने मुझे याद दिलाया है कि अभी मैं आपके पिछले पत्रोंकी प्राप्ति भी सूचित नहीं कर पाया हूँ। बात यह है कि मेरा पत्रोत्तर देनेका काम बहुत पिछड़ गया है। और आज भी जो आपके पत्रका उत्तर दे पा रहा हूँ वह उसकी बारी आनेसे पहले ही; क्योंकि मैंने सभी पत्रोंको उत्तर देनेके लिए फाइलमें क्रमसे लगा रखा है और आपके इस पत्रको फाइलमें से ढूँढ़कर निकाला है। मैं 'यंग इंडिया' में संथालोंके बारेमें कुछ लिखनेकी उम्मीद करता हूँ। उससे ज्यादा कुछ करनेको न कहें। मैं बिड़ला-बन्धुओंके नाम आपको कोई पत्र नहीं दे सकता और न अभी कोई अन्य सहायता ही कर सकता हूँ, क्योंकि इस समय तो मैं तमाम झंझटोंसे अलग होकर आश्रममें ही स्थिर हो गया हूँ और अभी कुछ दिन यहीं रहूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३४५४) की फोटो-नकलसे।

२९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

५ जुलाई, १९२८

इस संसारमें होनेवाले अन्यायोंको तुम अन्याय क्यों मानते हो? संसारका तो अर्थ ही स्वार्थ होता है न? स्वार्थके बिना संसार कैसे चल सकता है? यों इस संसारमें अलिप्त रहनेकी शिक्षा 'गीता' ने दी है। तुम यह आशा कैसे कर सकते हो कि क्षय या ऐसे ही किसी अन्य रोगके रोगीको स्वार्थी लोग बख्श देंगे? किन्तु तुम्हारे सामने ये ज्ञानकी बातें बघारनेकी कुछ जरूरत है क्या? मकान-मालिकके व्यवहारसे तुम्हें दु:ख पहुँचा, मुझे तो इसी बातका आश्चर्य है।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

३०. सन्देश : 'हिन्दू 'को

६ जुलाई, १९२८

'हिन्दू' की स्वर्ण-जयन्तीके[1] अवसर पर बहुत-से लोग उसके लिए प्रशस्तियाँ भेजेंगे और उनमें अपनी ओरसे एक यह प्रशस्ति जोड़ते हुए मुझे प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है। मैं मानता हूँ कि भारत-भरमें हिन्दुस्तानियों द्वारा जितने भी दैनिक पत्र प्रकाशित किये जाते हैं, उनमें 'हिन्दू' यदि सबसे अच्छा नहीं तो सबसे अच्छोंमें से एक अवश्य है।

अंग्रेजी (एस० एन० १३४५६)की माइक्रोफिलमसे।

३१. पत्र : ए० रंगस्वामी अय्यंगारको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय रंगस्वामी,

स्वर्ण-जयन्ती विशेषांकके लिए अपना सन्देश[2] साथमें भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० रंगस्वामी अय्यंगार
'हिन्दू' कार्यालय
माउंट रोड, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३४५७)की माइक्रोफिलमसे।

१. ४ अक्टूबर, १९२८।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

३२. पत्र : ई० सी० डेविकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका स्नेहपूर्ण पत्र मिला। मगनलाल गांधीके निधनके कारण मेरी सारी योजनाएँ उलट-पलट गई हैं, इसलिए निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि मैसूरमें संघकी सभामें शामिल हो पाऊँगा या नहीं। लेकिन मैं कोई ऐसा अन्तिम निर्णय नही करने जा रहा हूँ कि वहाँ आऊँगा ही नहीं।

हृदयसे आपका,

रेवरेण्ड ई० सी० डेविक
२, इन्फेंट्री रोड
बंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १३४५५)की माइक्रोफिल्मसे।

३३. पत्र : पी० रामचन्द्र रावको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप १४ जूनके 'यंग इंडिया' में आश्रमका संविधान और नियमावलि[1] देख सकते हैं। मैं तो चाहूँगा कि आपकी लड़की आश्रममें रहे, लेकिन मुझे बहुत आशंका है कि यहाँके अपेक्षाकृत कठिन जीवनको वह बरदाश्त नहीं कर पायेगी। इसके अलावा हिन्दी न जाननेके कारण भी उसे बड़ी असुविधा होगी। यहाँ उसे अंग्रेजी या कन्नड़में बातचीत करनेवाला कोई नहीं मिलेगा। फिर आश्रममें वह साहित्यिक वातावरण भी नहीं है, जिसकी अभीप्सा आपकी लड़कीको शायद हो सकती हो। यहाँ तो श्रमका वातावरण बनानेके लिए विशेष रूपसे प्रयत्न किया जाता है। और अन्तमें, आप आश्रम नियमावलिमें देखेंगे कि चूँकि इधर हमने यहाँ

१. देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ४१९-३१।

बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन किये हैं, इसलिए इस साल नये लोगोंको प्रवेश देनेका इरादा नहीं है। सब-कुछ जमने-जमानेमें अभी कुछ समय तो लगेगा ही।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० रामचन्द्र राव
वस्त्र-विक्रेता
तुमकुर, मैसूर

अंग्रेजी (एस० एन० १३४५८) की माइक्रोफिल्मसे।

३४. पत्र : एम० पी० श्रीनिवासन्‌को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे विचारसे तो आप अपनी इच्छाके विरुद्ध विवाह करनेको बाध्य नहीं हैं — अपने माता-पिताको प्रसन्न करनेके लिए भी नहीं। लेकिन यदि आपके पिता चाहते हों तो आप घर छोड़नेके लिए अवश्य बँधे हुए हैं। माता-पिताकी आज्ञा माननेकी एक सुनिश्चित सीमा है। जब आज्ञा नैतिक नियमोंके विरुद्ध हो तो अवज्ञा धर्म हो जाती है।

मुझे तो उपवासके सम्बन्धमें किसी ऐसी पुस्तककी जानकारी नहीं है जिससे आपको कोई लाभ हो सकता हो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० पी० श्रीनिवासन्
उप-सम्पादक, तमिल 'स्वराज्य'
२, वल्लभ अग्रहारम्, तिरुवतीश्वरनपेठ
ट्रिप्लिकेन, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३४५९) की माइक्रोफिल्मसे।

३५. पत्र : समन्दलालको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आश्रममें अभी बहुत-से परिवर्तन किये जा रहे हैं, इसलिए प्रबन्ध समितिने ऐसा सोचा है कि फिलहाल जहाँ तक सम्भव हो, अस्थायी प्रवेश पर भी रोक लगा रखना वांछनीय है। फिर, आपका मुख्य उद्देश्य तो कताई सीखना है, इसलिए मैं कह सकता हूँ कि आप मद्रासमें भी उसे आसानीसे सीख सकते हैं, क्योंकि वहाँ आपकी सहायता करनेवाले बहुत-से लोग मिल जायेंगे।

हृदयसे आपका,

बाबू समन्दलाल
मार्फत—श्रीयुत एम० जी० कर्णीकर
९०, इमली बाजार, इंदौर (होलकर राज्य)

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६१) की माइक्रोफिल्मसे।

३६. पत्र : एम० एम० असलम खाँको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपको कुछ नहीं भेज पा रहा हूँ, उसके लिए क्षमा करेंगे। पत्रिकाको जाने बिना उसके लिए कुछ भी तैयार करना, वह चीज चाहे जितनी छोटी हो, मेरे लिए बहुत मुश्किल है।

हृदयसे आपका,

एम० एम० असलम खाँ
सूफी मंजिल
पिंडी बहाउद्दीन
पंजाब

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६२) की माइक्रोफिल्मसे।

३७. पत्र : आनन्दस्वरूपको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। 'माइ एक्सपेरिमेन्टस् विद ट्रुथ' के उर्दू और हिन्दी अनुवादोंके लिए तो अनुमति पहले ही दी जा चुकी है।

हृदयसे आपका

श्रीयुत आनन्दस्वरूप
एडवोकेट, हाईकोर्ट, सहारनपुर, सं० प्रा०

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६३)की माइक्रोफिल्मसे।

३८. पत्र : डॉ० मु० अ० अन्सारीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय डॉ० अन्सारी,

डॉ० जाकिरहुसेनसे जमकर बातचीत हुई। स्थिति सचमुच बहुत नाजुक है। देनदारियाँ बढ़ती जा रही हैं और जामिया मिलिया-कोषके लिए एकत्र की गई रकममें से तबतक कुछ निकाला नहीं जा सकता जबतक कि एक जाब्तेका न्यासपत्र तैयार नहीं हो जाता; क्योंकि मूल घोषणामें ऐसी ही शर्त रखी गई थी। जो संविधान तैयार किया गया है, वह न तो जमनालालजी को मंजूर है, न मुझे और न वह उन शर्तोंके मुताबिक ही है, जिनपर आपकी मौजूदगीमें यहाँ हमने चर्चा की थी। इस हालतमें क्या किया जाये? मेरा खयाल तो यह है कि नई समितिको तमाम अधिकार उन प्रोफेसरोंको सौंप देने चाहिए जिन्होंने जीवन-भर इस संस्थामें काम करनेका व्रत लिया है, या फिर समितिको सक्रिय कार्यकारी परिषद् बन जाना चाहिए और जहाँ तक इस संस्थाकी आर्थिक देनदारियोंका सम्बन्ध है, उसे इसको अपने हाथमें ले लेना चाहिए। लेकिन मुझे जो-कुछ डॉ० जाकिरहुसेनने बताया है और जितना-कुछ मैं खुद देख-समझ पा रहा हूँ, उससे तो यही लगता है कि समिति तेजी से और कारगर ढंगसे काम नहीं करेगी। और यदि यह न ठीकसे काम करती है और न काम करनेवाले प्रोफेसरोंको अपने अधिकार ही सौंपती है, तो फिर मुझे उसका एक ही परिणाम दिखाई देता है कि जामिया मिलिया धीरे-धीरे दम तोड़

देगी और यह एक बहुत बड़ी दुःखद घटना होगी। यदि उसका समाप्त हो जाना अवश्यम्भावी हो तो इसका फिर किसीको बुरा नही मानना चाहिए। लेकिन बात ऐसी है नहीं। अबतक अजमल जामिया-कोषमें जितना धन इकट्ठा हो पाया है, उसका क्या हो, यह कहना कठिन है। यदि कोई ऐसा न्यासपत्र नहीं तैयार किया जा सकता हो जो हम चारों चन्दा इकट्ठा करनेवालों को मंजूर हो तो फिर कोषसे खर्च करनेके लिए धन निकालनेकी सुविधा देनेका एकमात्र तरीका यही है कि जो संविधान तैयार किया गया है, उसे प्रकाशित कर दिया जाये और दाताओंसे यह बतानेको कहा जाये कि वे अपनी दानकी रकमें उक्त संविधानके अन्तर्गत समितिको सौंप देनेके पक्षमें है या नहीं। इसमें तो सन्देह ही नही कि यह अत्यन्त असन्तोषजनक हल है और यदि हमें हकीम साहब[1] की स्मृतिके प्रति स्नेह-श्रद्धा हो और यदि हम जामियासे हो सकनेवाले लाभका महत्त्व समझते हों तो ऐसा कदम उठना मुश्किल ही होगा। इसलिए क्या यह सम्भव नही है कि पूरे अधिकार काम करनेवाले प्रोफेसरोंको सौप दिये जायें और फिर वे ही एक ठीक ढंगका न्यायपत्र तैयार करके जितना धन इकट्ठा हुआ है, उसको खर्च करनेकी सुविधा दे दें तथा आगे और भी चन्दा करनेका प्रयत्न करें?

हृदयसे आपका,

डॉ० मु० अ० अन्सारी
१, दरियागंज, दिल्ली

पुनश्च :

अब डॉ० जाकिरने मुझे याद दिलाया है कि इस पत्रमें समयकी सीमाके बारेमें तो मैंने कुछ कहा ही नहीं है। लेकिन इस मामलेमें समयका महत्त्व सबसे अधिक है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप जल्दी ही किसी नतीजे पर पहुँचेंगे ताकि या तो जामियाको शानके साथ दफन कर दिया जाये या फिर वह किसी हदतक निश्चित और निरापद स्थितिमें अपना काम फिर शुरू कर दे।

अंग्रेजी (एस० एन० १४९३०)की माइक्रोफिल्मसे।

१. हकीम अजमलखाँ।

३९. पत्र : आर० एस० कड़कियाको

६ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके पूछे सभी प्रश्नोंके ब्योरेवार उत्तर देना सम्भव नहीं है। हाँ, एक सामान्य उत्तर दिया जा सकता है। वह यह है कि जहाँ-कहीं आप अपनेको गरीबोंकी श्रेणीमें लानेके लिए अपनी जरूरतें कम कर सकते हों, वहाँ उन्हें कम कीजिए, और अपनी जरूरत पर विचार करते समय आपको आम तौर पर आत्म-निग्रहकी वृत्ति अपनानी चाहिए। यदि आप ऐसा करेंगे तो अपनी जरूरतोंको वास्तवमें न्यूनतम सीमातक कम कर सकेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एस० कड़किया
कांग्रेस कार्यालय, हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६०) की फोटो-नकलसे।

४०. पत्र : शौकतअलीको[1]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
६ जुलाई, १९२८

प्रिय भाई,

जब आपका पत्र मिला, उससे पहले ही काबुलके गवर्नर साहब मुझसे मिल चुके थे। हमारी बातचीत बहुत ही स्नेह-सौहार्दपूर्ण रही। लेकिन मुझे इस बातका दुःख रहा कि उनके आनेकी सूचना मुझे पहले ही नहीं दी गई।

साथमें डॉ० अन्सारीको लिखे पत्रकी[2] एक नकल भेज रहा हूँ। इसमें पूरी बात साफ-साफ लिखी हुई है, इसके बारेमें अलगसे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। डॉ० जाकिरहुसेनने इस पत्रको देखा है और वे इसमें कही गयी बातोंसे सहमत हैं।

हृदयसे आपका,

मौलाना शौकतअली
केन्द्रीय खिलाफत समिति
डोंगरी, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६५) की फोटो-नकलसे।

१. शौकतअलीके ३ जुलाईके पत्र के उत्तरमें। इस पत्रमें शौकतकमीने गांधीजीसे काबुलके गवर्नर अली अहमदखाँसे मिलनेका अनुरोध किया था।

२. देखिए "पत्र: डॉ० मु० अ० अन्सारीको", ६-७-१९२८।

४१. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
७ जुलाई, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। मै देखता हूँ कि वहाँ सफाईकी जो हालत है, उसमें सुधार करना कठिन कार्य है। जबतक संस्थाके अध्यक्षकी ऐसे कामोमें रुचि नही होगी तबतक कैसे कोई सुधार किया जा सकता है? इसके बावजूद जो परिवर्तन कराने सम्भव हों उन्हें तुम धीरे-धीरे इस ढंगसे करानेकी कोशिश करना कि किसी प्रकारका मनमुटाव न हो। अपनी मानसिक शान्ति बिलकुल मत खोना बल्कि अटूट धीरज रखना।

यह तो तुम जानती ही होगी कि प्रभावतीने गठियाका दर्द दूर करनेके लिए चार दिनका उपवास किया था। उसने कल ही अपना उपवास तोड़ा है। फिलहाल यह नहीं कहा जा सकता कि गठिया चली गई या नही।

सम्मिलित भोजनालयके बारेमें काफी चर्चा हो रही है।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन
कन्या गुरुकुल

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८२) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

४२. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

आश्रम, साबरमती
७ जुलाई, १९२८

भाई हरिभाऊ,

साथका पत्र पढ़ जाना और उसमें कितनी सचाई है, इस बारेमें यदि कुछ जानते हो तो लिखना। यों बात तो बिहारके बारेमें कही गई है, किन्तु वास्तवमें है वह राजपूतानाके बारेमें। अतः शायद तुम इस बारेमें कुछ विशेष जानकारी दे सको।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ६०६०) से।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

४३. बन्दरोंका त्रास

एक पाठक लिखते हैं :[१]

यह प्रश्न विचारणीय है। बन्दरोंसे केवल किसान ही त्रस्त नहीं हैं। वे प्रयाग और वृन्दावन आदिमें शहरी लोगोंको भी बहुत सताते हैं। यदि कोई मनुष्य बन्दरोंको मारता अथवा उन्हें पकड़कर ले जाता है तो उससे त्रस्त लोग नाराज भी नही होते।

मैं बन्दरोंसे ऐसी परेशानीकी बात स्वीकार तो करता हूँ, फिर भी मैं उन्हें एकाएक मारनेका सुझाव नहीं दे सकता।

पागल कुत्ते और बन्दरोंमें कोई तुलना नहीं हो सकती। पागल कुत्ता तो पागल हो जानेसे वैसे भी मर ही जायेगा। इसलिए जो उसको मारता है वह उसको बड़े भारी कष्ट और दूसरोंको पागल होनेके भयसे मुक्त करता है। बन्दरोंको मारनेसे बन्दरोंका भला होगा, ऐसा तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। फिर बन्दरोंके उपद्रव उनको मारे बिना नही रोके जा सकते हैं, ऐसा भी नहीं है।

प्राय: देखा गया है कि जिन जगहोंमें बन्दरोंके उपद्रव होते हैं, वहाँ दोष हमारा भी होता है। लोग बन्दरोंके प्रति दया-भाव दिखाते है, उनके सामने खाने-पीनेकी चीजें डालते रहते हैं और फिर वे किसी हदतक मनमानी करने लगते हैं। बन्दर बहुत चालाक होता है। हमारा आशय क्या है, वह इसे बहुत जल्दी समझ जाता है। मैंने वृन्दावनमें देखा, वे भारतीयोंकी बस्तियोंमें निर्भय होकर उपद्रव करते रहते हैं, किन्तु गोरोंके मुहल्लोंमें कहीं दिखाई नहीं पड़ते। वहाँ जाने पर उनको मार खानेका भय जो रहता है। मारका भय भी हिंसा है। हमें यहाँ इस पेचीदा प्रश्न पर विचार करनेकी जरूरत नहीं है। यहाँ तो प्रश्न इतना ही है कि बन्दरोंको अन्तिम हिसा अर्थात् मृत्यु-दण्डसे बचाया जाये या नहीं। मुझे लगता है कि इस प्रश्नकी हदतक तो वे शायद देहान्त-दण्डसे बचाये जा सकते हैं।

पाठकोंको जानना चाहिए कि आजकल बन्दरोंका व्यापार बड़े पैमाने पर चलता है। हजारों बन्दर यहाँसे अनेक प्रकारके प्रयोगोंके लिए यूरोप ले जाये जाते हैं। वहाँ उनको मारनेसे पहले उनपर प्राय: अनेक प्रकारके निर्दयतापूर्ण प्रयोग किये जाते हैं। इसलिए बन्दरोंकी संख्यामें वृद्धि रोकनेका उपाय किया जा सके तो वह उचित ही है।

अब रही उनको मारनेकी बात। यदि खेतीकी रक्षा करना धर्म हो और बन्दरोंके उपद्रवोंसे खेतीकी रक्षा करनेका अन्य कोई उपाय न हो तो बन्दरोंको मारना आवश्यक हो सकता है, यह बात मेरी कल्पनासे बाहर नहीं है। किन्तु यह अहिंसा

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने पूछा था कि क्या पागल कुत्तोंकी तरह बन्दरोंको भी नष्ट नहीं किया जा सकता?

नहीं है। खेतीकी रक्षाके लिए की गई जीवहत्या भी हिंसा तो है ही। हम पग-पग पर यह अनुभव करते हैं कि इस प्रकारकी हिंसा तो मानव-जीवनके साथ लगी हुई है और अनिवार्य है। बन्दरोंकी हत्या कब अनिवार्य हो सकती है, यह कहना कठिन है। किन्तु इस हत्यासे बचनेका प्रयत्न करना कठिन नही है। जब ऐसे प्रयत्नोंके बाद भी बन्दरोंके उपद्रव कम न हों तब सभीको यह सोचना चाहिए कि अब उनका अपना धर्म क्या है। बन्दरोंकी हत्या करना कोई अनिवार्य सार्वजनिक नियम नहीं हो सकता। हिंसा किसी भी अवस्थामे स्वतन्त्र धर्म नहीं है। स्वतन्त्र धर्म तो अहिंसा ही है। हिंसा मनुष्यकी पामरताका माप है और अहिंसा उसका परम पुरुषार्थ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-७-१९२८

४४. टिप्पणियाँ

विद्यार्थियोंका त्याग

विद्यार्थी अपने खाने-पीनेके खर्चमें बचत करके और मजदूरी करके भी बारडोली सत्याग्रहके लिए पैसे भेज रहे हैं। यह एक शुभ लक्षण है। ऐसे त्यागका एक और उदाहरण माटुंगाके कच्छी वीसा ओसवाल जैन विद्यार्थियोंके छात्रालयसे प्राप्त हुआ है। उन्होंने सूचना दी है कि उनके विद्यार्थी-मण्डलने दूध पीना बन्द करके एक महीनेके दूधके २२० रुपये इस कोषमें दिये है। इस त्यागके लिए विद्यार्थियोको धन्यवाद देना उचित है। बारडोलीके सत्याग्रहियोंको इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए। इस प्रकारके त्यागसे जितना अधिक धन आता जाता है, उनका अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेका कर्त्तव्य उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि इस समय भारतकी लाज उनके हाथमें है।

विद्यार्थी क्या करें?

तीन विद्यार्थी लिखते है: "हम देश-सेवा करना चाहते हैं। आप हमें 'नवजीवन' की मार्फत बतायें कि हम पढ़ते हुए और अपनी जगह रहते हुए देश-सेवा कैसे कर सकते हैं।" इन विद्यार्थियोंने अपना नाम-धाम और अपनी उम्र लिखी है और यह भी लिखा है: "आप हमारा नाम-धाम प्रकाशित न करें। आप हमें पत्र भी न लिखें। हम पत्र पा सकनेकी स्थितिमें भी नहीं है।" मै ऐसे विद्यार्थियोंको सलाह देना मुश्किल मानता हूँ। जो अपने लिखे हुए पत्रका उत्तर प्राप्त करनेका भी साहस न रखते हों, उनको क्या सलाह दी जा सकती है? फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि आत्मशुद्धि करना उत्तम देशसेवा है। क्या इन विद्यार्थियोंने आत्मशुद्धिकी साधना की है? क्या उनका मन पवित्र है? विद्यार्थियोंमें जो बुराइयाँ मिलती हैं क्या वे उनसे बच सके हैं? क्या वे सत्य आदि गुणोंका पालन करते है? पत्रका उत्तर पानेमें भी उनको भय लगता है, इस स्थितिके पीछे उनका भी कुछ दोष है। विद्यार्थियोंको इस भयसे मुक्त होनेका उपाय सोचना चाहिए। उनमें अपने बड़े-बूढ़ोंके

सामने अपने विचार रखनेका साहस होना चाहिए और उन्हें उनके सम्मुख प्रस्तुत करना सीखना चाहिए। क्या ये विद्यार्थी खादी पहनते है? क्या वे सूत कातते हैं? यदि वे खादी पहनते और सूत कातते हों तो भी वे देश-सेवामें भाग लेते हैं। क्या वे अवकाश मिलने पर बीमार पड़ोसियोंकी सेवा करते है? यदि उनके आसपास गन्दगी रहती हो तो क्या वे अवकाश निकालकर उसे अपने शरीर-श्रमसे दूर करते है? ऐसे अनेक प्रश्न पूछे जा सकते है और यदि विद्यार्थी इनका सन्तोषजनक ढंगसे उत्तर दे सकें तो देशसेवकोंमें उनका स्थान आज भी ऊँचा माना जायेगा।

वृद्ध-बाल-विवाह

मुझे पिछले हफ्ते एक प्रोफेसरके बालिकासे विवाहका किस्सा देना पड़ा था।[1] इस हफ्ते भाटिया मित्रोंने मेरे पास एक धनिक भाटिया गृहस्थके विवाहका किस्सा लिख भेजा है। ८० वर्षीय इस भाटिया गृहस्थने कन्याके बापको पच्चीस या तीस हजार रुपये देकर शादी की है। यह कहना कठिन है कि इस भाटिया गृहस्थके ८० सालकी उम्रमें पाँचवी बार एक बालाके साथ विवाह करना अधिक बड़ा दोष है या धनके लोभी बापका रुपयेके लिए गरीब गायको कसाईके हाथ देनेका पाप! सुनता हूँ कि इसे रोकनेके लिए कई भाटिया भाइयोंने प्रयत्न भी किया मगर धनके मदमें चूर ८० वर्षके इस बूढे दूल्हेने समझानेके लिए आये हुए लोगोंसे अपना रास्ता देखनेको कहा।

ऐसी निर्दयताको रोकनेके तरीके पर मैंने पिछले ही हफ्ते विचार किया था। हम अपने अन्दर शुद्ध बहिष्कारकी क्षमता विकसित करें, इसके सिवाय मुझे इसके प्रतिकारका कोई दूसरा रास्ता नहीं सूझता। और बहिष्कारका अर्थ केवल अपनी बिरादरी द्वारा किया बहिष्कार ही नही, बल्कि सारे समाज द्वारा किया गया बहिष्कार मानना चाहिए। ऐसे आदमियोंसे उनके लिए आवश्यक भोजन तथा बीमारी और मरण-समय सहायता देनेके अलावा और सभी सम्बन्ध तोड़ लेने चाहिए। इसके बिना कामोन्मत्त लोगोंको जगाना असम्भव नहीं तो मुश्किल जरूर है।

बाल-विधवा

पाठकोंको याद होगा कि कई सप्ताह पहले मैंने मूलजीभाई बारोटके बालिकासे विवाहके इरादेके बारेमें लिखा था। उसके बाद 'नवजीवन' के लेखके असर तथा अपनी बिरादरीके ब्रह्मभट्ट लोगों द्वारा निन्दा करनेसे, उनके विवाहका इरादा छोड़ देनेपर उन्हें धन्यवाद भी दिया था। उसके बाद मेरे पास पत्र आया था कि विवाहका इरादा छोड़नेकी बात केवल दगा थी और इस तरह जातिको ठगकर मूलजीभाई बारोटने चुपकेसे विवाह कर लिया था। इस विषयमें पिछले सप्ताह ही मैंने लेख लिखनेका विचार किया था, पर समयके अभावके कारण ऐसा नही कर सका। अब खबर मिली है कि मूलजीभाईकी मृत्यु हो गई है और वह बाला विधवा बन गई है। भले या बुरे, किसी भी तरहके आदमीकी मृत्यु तो हम नही चाह सकते। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के न्यायसे हम यही कामना करें कि बुरे व्यक्तिको सुमति मिले। मगर इस बाल-

१, देखिए "टिप्पणियाँ", १-७-१९२८ का उपशीर्षक 'प्रोफेसरका बालिकासे विवाह'।

विधवाका क्या किया जाये? अब इस प्रश्नका विचार समाजको करना है। चौदह वर्षकी बाला अगर स्वेच्छासे विधवा रहना चाहे तो इसका कोई अर्थ नही हो सकता। अगर बाल-विधवाके विरुद्ध ऐसा घातक लोकमत न हो तो इस आयुकी बालिका जरूर पुनर्विवाह करना चाहेगी। ब्रह्मभट्ट जातिके अगुओंको इस गायकी रक्षा करनेके लिए आगे बढ़ना चाहिए। अगर मुखियोंको अपने धर्मकी समझ न हो तो इस जातिके नवयुवकोंको उन्हें धैर्यसे समझा-बुझाकर इस बालाको मुक्ति दिलानी चाहिए। मुखिया न समझे और इस लड़कीके सगे-सम्बन्धी समझ जायें तब भी इस मसलेका हल निकाला जा सकता है। किन्तु ऐसे प्रश्नोंके हलकी इच्छा करनेवालेमें योग्यता होनी चाहिए, पवित्रता होनी चाहिए, धैर्य होना चाहिए। जिन गुणोंकी आवश्यकता शान्तिमय स्वराज्यके लिए है, उन्ही गुणोंकी आवश्यकता बाल-विधवाके विवाह इत्यादिके बारेमें भी है।

खादीकी फेरी

वर्धा खादी-भण्डारके भाई ऋषभदास खादीकी फेरीका अपना अनुभव बताते हुए लिखते हैं:[1]

ऐसे अनुभव खादीकी फेरी करनेवाले सभी लोगोंको होते ही रहते होंगे। श्री मलकानी अपने एक पत्रमें लिखते हैं कि मेरे लिए तो खादीकी फेरी लगाना एक ऊँची राजनीतिक शिक्षा सिद्ध हो रही है। दूसरेके लिए वह धीरजकी तालीम है। ऋषभदास-जैसोंके लिए वह अधिक विश्वास बढ़ानेवाली होती है। किन्तु ईश्वरका विश्वास इतनी सहज चीज नही है। ऋषभदास और उनके साथियोंको तुरन्त सफलता मिली, मगर बहुत-से भक्तोंको तो ईश्वर मरणपर्यन्त जाँचता है। ईश्वर-भक्तको चाहिए कि वह सफलताके साथ ईश्वरके अस्तित्वका सम्बन्ध न जोड़े। सफलता और विफलता उसके लिए समान होनी चाहिए।

स्वावलम्बनकी पद्धति

खादी-प्रचारके मार्गमें स्वावलम्बन-पद्धतिका कोई छोटा-मोटा योगदान नही है। इसमें भी शंका नही कि वह लोकप्रिय हो सकती है और यही सबसे आसान रास्ता है। बिजोलियामें काम करनेवाले भाई जेठालाल गोविन्दजी उसी पद्धतिके चुस्त हिमायती हैं। वे लिखते हैं:[2]

इस दृष्टिकोणके अनुसार दूसरी पद्धतियाँ भी साथ-साथ चलनी ही चाहिए। किन्तु स्वावलम्बन-पद्धतिका शास्त्रीय अभ्यास थोड़ोंने ही किया है, उसका अनुभव तो उनसे भी कम लोगोंको है। इसलिए जहाँ यह चलती हो, वहाँके खादी कार्यकर्त्ता

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने महाराष्ट्रमें खादीकी फेरी-सम्बन्धी अपने अनुभव लिखते हुए बताया था कि इससे ईश्वरके अस्तित्वमें उसकी मान्यता और दृढ़ हुई है।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकके अनुसार किसानों और खेतीसे सम्बन्धित मजदूरोंको ज्यादा कपड़ेकी आवश्यकता नहीं रहती और खादी-उत्पादनकी शिक्षा और सुविधा देनेसे वह अपनी जरूरत-भरका कपड़ा बना सकते हैं।

अपने अनुभव लिख भेजें तो वह उपयोगी होगा। स्वावलम्बन-पद्धतिका प्रचार सभी अपने पड़ोसियोंमें तो कर सकते हैं, किन्तु 'आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता' के न्यायसे जो अपनी खादी आप ही उत्पन्न नहीं कर लेते वे तो इसका प्रचार कर ही नहीं सकते।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ८-७-१९२८

४५. पत्र : शिवदयाल साहनीको

८ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप-जैसा २७ वर्षीय नौजवान हताश हो बैठे, यह देखकर मुझे बहुत दुःख होता है। आपको हिम्मतसे काम लेना चाहिए। तमाम घरेलू कठिनाइयों पर पार पा लेना चाहिए। आपका अपनी पत्नी और बच्चेको छोड़ना गलत होगा। आत्म-हत्या निश्चय ही पाप है और आपको किसी भी हालतमें ऐसा नहीं करना चाहिए। शान्तिकी खोजमें आश्रम आना बेकार है। शान्ति तो हमें, हम जहाँ रहें, वहीं पा सकना चाहिए। लेकिन जैसा कि मैंने अपने तारमें कहा है, आप लाला लाजपतरायसे सलाह लें और उसके मुताबिक काम करें। इतनी दूरसे आपका मार्ग-दर्शन कर सकना तो मेरे लिए कठिन ही होगा। उत्तरमें मैं यह सुननेकी आशा रखता हूँ कि मनको हर परिस्थितिके अनुकूल ढाल लेनेकी क्षमता आपने पुनः प्राप्त कर ली है और अपनी कमजोरीपर काबू पा लिया है।

आपका भेजा बाकी पैसा बारडोली-कोषके खातेमें डाल दिया गया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शिवदयाल साहनी
मार्फत—पण्डित मुल्कराज
ओवरसीअर, कैम्बेलपुर, पंजाब

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६७) की माइक्रोफिल्मसे।

४६. पत्र : वसुमती पण्डितको

साबरमती आश्रम
१० जुलाई, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे प्रयासका परिणाम ठीक ही निकलता है। तुम्हारी वाणीमें जितनी मिठास होगी, उसी अनुपातमें उसका प्रभाव ज्यादा पड़ेगा। तुम्हें वहाँकी संस्थाको[1] भी अपनी ही मानकर काम करना चाहिए। लोगोंके दोष बतानेके बाद तुम्हें अपनी वृत्ति उदार रखनी चाहिए ताकि जिसका दोष बताया है उसे दुःख न हो बल्कि वह हमारा आभार माने।

आशा है तुम्हारी तबीयत बहुत अच्छी होगी। यहाँके समाचार एक वाक्यमें निबटानेकी बजाय मैंने कुसुमसे ही लिखनेको कह दिया है। इस प्रकार तुम्हें यहाँके अधिकसे-अधिक समाचार मिल जायेंगे और मेरे साथ ही उसके भी लिखनेसे बेकारमें होनेवाला टिकटोंका खर्च भी बच जायेगा। आशा है तुमने वहाँ पाई-पाईका हिसाब रखनेकी आदत बना ली होगी। यदि आदत न बनाई हो तो अब बनाना शुरू कर देना।

रामदेवजी भी मुझसे पत्र-व्यवहार करते रहते हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं पढ़ा।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८३) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

४७. पत्र : हाफिज मुहम्मद अब्दुल शकूरको[2]

१० जुलाई, १९२८

मैं पर्दा-प्रथाके खिलाफ हूँ — और किसी कारणसे नहीं तो इसी कारणसे कि मर्द तो पर्दा नहीं करते।

अंग्रेजी (एस० एन० १३४४१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. कन्या गुरुकुल; देखिए "पत्र : वसुमती पण्डितको", ७-७-१९२८।

२. एस० एन० रजिस्टरके अनुसार यह पत्र मद्रासमे २८ जून, १९२८को लिखे हाफिज मुहम्मद अब्दुल शकूरके पत्रके उत्तरमें भेजा गया था। अब्दुल शकूरने अपने पत्रमें मुसलमानोंके बीच पर्देके चलनके बारेमें गांधीजी के विचार जानने चाहे थे।

४८. पत्र : शाह मुहम्मद कासिमको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके गत मासकी ९ तारीखके पत्रका उत्तर दे चुका हूँ। अब फिर उसी पत्रके सम्बन्धमें मेरी पूछताछके जवाबमें जोधपुर दरबारसे प्राप्त एक पत्रकी[1] नकल साथमें भेज रहा हूँ।

संलग्न : २ सफे

शाह मुहम्मद कासिम
मार्फत – सैयद मुहम्मद हुसेन
डाकघर – नरहट, गया

अंग्रेजी (एस० एन० १२३९७) की माइक्रोफिल्मसे।

४९. पत्र : इंडियन प्रेस लिमिटेडके व्यवस्थापकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और 'द कमिंग रिनेसा'[2] नामक पुस्तक मिली। बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि पुस्तकको पढ़ने और उसकी समीक्षा लिखनेके लिए मेरे पास मिनट-भरका भी समय नहीं है। इसके अलावा आम तौर पर 'यंग इंडिया' में म पुस्तकोंकी समीक्षा करता भी नहीं। क्या पुस्तक लौटा दूँ?

हृदयसे आपका,

व्यवस्थापक,
इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १३४७१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र : जोधपुर राज्यके मन्त्रीको", १-७-१९२८ की पा० टि० २।
२. पी० एम० एल० वर्मा द्वारा लिखित।

५०. पत्र : के० आर० भिड़ेको

११ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके पिता जब भी आश्रम आना चाहें, उनका स्वागत है। लेकिन जब उनको आना हो, उससे पहले आप या वे स्वयं आश्रमके मन्त्रीको सूचित कर दें।

अब आपके प्रश्नोंके बारेमें। अगर आप 'यंग इंडिया' या 'नवजीवन' के नियमित पाठक हों तो सारे प्रश्नोंके उत्तर आप खुद ही पा सकते हैं। यदि नियमित पाठक न हों तो मै आपसे इन अखबारोंकी फाइलें देखनेको कहूँगा।

यदि आप एक साधारण श्रमिककी तरह काम शुरू कर सकते हों तो मेरा खयाल है कि 'यंग इंडिया' कार्यालयमें प्रशिक्षण प्राप्त करना आपके लिए सम्भव है। लेकिन यह बात मुझसे ज्यादा व्यवस्थापककी इच्छा पर निर्भर है, क्योंकि मैं प्रेसकी व्यवस्थामें दखल नही देता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० आर० भिड़े
लिमये बिल्डिंग, चिकलवाड़ी, बम्बई-७

अंग्रेजी (एस० एन० १३४७३) की माइक्रोफिल्मसे।

५१. पत्र : बी० एम० ट्वीडलको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और पेंसिलोंका पैकेट मिला। आपका यह अनुमान ठीक ही है कि कर्ज[1] चुकानेके लिए आपने पैसा इकट्ठा करनेका जो तरीका चुना है, उसे मैं शायद पसन्द न करूँ। किसी चीजको उसकी लागतसे दुगुनी-तिगुनी कीमत पर बेचा जाये, इसके बजाय दानके लिए सीधे अपील करना मुझे ज्यादा आसान लगेगा। दोनों ही दशाओंमें लोगोंकी दानशीलताकी वृत्तिको जगानेकी जरूरत तो पड़ेगी ही। फिर

१. शालाकी नई इमारत बनवानेसे सम्बन्धित कर्ज।

उसमें स्वार्थकी वृत्तिका मिश्रण क्यों होने दिया जाये? मगर इस बारेमें मुझे ज्यादा बहस नहीं करनी चाहिए।

आपकी इच्छानुसार मैं बक्सको फिरसे डाक द्वारा भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका

कुमारी बी० एम० ट्वीडल
वेसलेयन मिशन विलेज इंडस्ट्री
त्रिवल्लूर
चिंगलपेट जिला, दक्षिण भारत

अंग्रेजी (एस० एन० १३४७२) की माइक्रोफिल्मसे।

५२. पत्र: गोवर्धनभाई आई० पटेलको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय गोवर्धनभाई,

पत्रके[1] लिए धन्यवाद। समितिके निर्णयके बारेमें जानकर दुःख हुआ।[2]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३४७५)की माइक्रोफिल्मसे।

१. गांधीजीके १ जुलाईके पत्रके उत्तरमें लिखा ७ जुलाईका पत्र, जिसमें गोवर्धनभाईने लिखा था: "अभी हालमें जिस विषयपर आपके साथ मेरा पत्र-व्यवहार हुआ था वह [अहमदाबादकी मिलोंके] तिलक स्वराज्य कोषमें चन्दा देनेवालोंकी एक बैठकमें विचारार्थ पेश किया गया।... बैठकने निरीक्षण-समिति नियुक्त करनेके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया और संयुक्त व्यवस्थाके निमित्त एक समिति नियुक्त करनेके उसी प्रस्तावकी पुनः पुष्टि की, जिसका उल्लेख मैंने आपको लिखे २६ जून, १९२८के पत्रमें किया था।..."

२. शंकरलाल बैंकरको इसकी एक नकल सूचनार्थ भी भेजी गई थी।

५३. पत्र : टी० प्रकाशम्को[1]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय प्रकाशम्,

क्या मुझे अपने पिछले पत्रका[2] जवाब नहीं मिलेगा ?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० प्रकाशम्
'स्वराज्य', मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३६३४)की माइक्रोफिलमसे।

५४. पत्र : शंकरन्को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय शंकरन्,

आपका पत्र और छगनलाल जोशीको भेजा चेक मिला। नाम यथासमय प्रकाशित किये जायेंगे।

दाताने जिस उद्देश्यके लिए दान दिया हो, यदि उक्त राशिको उससे भिन्न उद्देश्यके लिए खर्च करनेकी अनुमति उससे ले ली जाये तो अस्तेयके नियमका उल्लंघन नहीं होता।

मजदूरको अपनी मजदूरी पानेका अधिकार है, इस सिद्धान्तके अनुसार देखें तो उस कार्यकर्त्ताके बारेमें जो भोजन, वस्त्र और आवासके लिए आवश्यक न्यूनतम व्यवस्थासे सन्तुष्ट है और साथ ही अपनी ओरसे कोई ऐसी शर्त नहीं लगाता कि मुझे अपनी सेवाके एवजमें भोजन-वस्त्र आदि मिलने ही चाहिए, यही माना जायेगा कि उसने अपनी सारी आवश्यकताएँ समाप्त कर दी हैं। उस अवस्थामें जो संस्था उससे काम लेगी वह उसे स्वयं अपनी ही खातिर रोटी और कपड़ा देगी। जिसने पूर्णतः आत्मोत्सर्ग कर दिया है, उसके भाग्यमें यदि भूख और अभाव ही बदा हो तो वह उसे खुशी-खुशी झेल लेगा। आखिरकार आत्मोत्सर्ग तो मनकी एक अवस्था

१. इसकी एक नकल अ० भा० च० सं० के मन्त्रीके पत्रके सन्दर्भमें अहमदाबादके पते पर उन्हें भी भेजी गई थी।

२. देखिए खण्ड ३६, "पत्र : टी० प्रकाशम्को", २४-५-१९२८।

है। जो करोड़ों लोग असहायावस्थामें भूखसे तड़प रहे हैं, उन्होंने कुछ भी उत्सर्ग नहीं किया है, क्योंकि उनके मनको वह लाचारीकी भुखमरी स्वीकार्य नही है।

आपका नया पता जाने बिना आपको यह पत्र भेज रहा हूँ। आशा है, मिल जायेगा।

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६९) की फोटो-नकलसे।

५५. पत्र: एस० ए० सहस्त्रबुद्धेको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्र मिले। जो पत्र मुझे मिलते हैं, उन सबकी प्राप्ति मैं सूचित कर ही देता होऊँ, ऐसी कोई बात नहीं है। इसका और कोई कारण न हो तो भी इतना तो समझ ही लीजिए कि मेरे पास समय नही रहता। जिन मृत अथवा जीवित व्यक्तियोंका मैं प्रशंसक हूँ, उनके सम्मानमें आयोजित तमाम समारोहोंके बारेमें मै 'यंग इंडिया' में लिखता होऊँ, ऐसा भी नही है।

शिवाजी तथा अन्य वीर पुरुषोंके बारेमें मै पहले जो विचार व्यक्त कर चुका हूँ, उनमें कोई परिवर्तन नही हुआ है। लेकिन सिर्फ इस कारणसे कि वे मेरे गुरु अथवा आदर्श नहीं है; मैं उनकी शूरता और विश्वके रंगमंच पर उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई हैं, उनकी ओरसे भी अपनी आँखें बन्द नहीं रखता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० ए० सहस्रबुद्धे
पारेख बिल्डिंग,
गिरगाँव, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३४७०)की फोटो-नकलसे।

५६. पत्र : एम० बी० नियोगीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीयुत आवारीका स्वास्थ्य ठीक चल रहा है।

मैं जानता हूँ कि खादीके बारेमें उनके विचार बहुत तीव्र हैं। खुद मेरी राय यह है कि उनके द्वारा अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनेके बावजूद यदि जेल-अधिकारी उन्हें खादीसे भिन्न कपड़ेकी जेलकी पोशाक पहननेके लिए मजबूर करते है तो उन्हें इसके कारण अनशन नहीं करना चाहिए। खादीकी बनी जेलकी पोशाकके लिए वे जो आन्दोलन कर रहे हैं, उसमें मुझे कुछ बुराई नही नजर आती और मेरा खयाल है कि आपको इस काममें उनकी मदद करनी चाहिए। जेलकी पोशाकके बारेमें उन्हें कोई आपत्ति करनेका अधिकार नहीं है, लेकिन वे उस पोशाकके लिए जो कपड़ा इस्तेमाल किया जाता है, उस पर आपत्ति कर रहे हैं और ऐसी आपत्ति करनेका उन्हें अधिकार है। वे यह भी कह सकते हैं कि मुझे मेरे ही खर्च पर खादीकी पोशाक बनवाकर दे दी जाये। मुझे तो इसमें कोई बुराई नजर नहीं आती कि उनके कहे बिना ही आप जेल-अधिकारियोंसे मिलकर ज्यादा शोर-गुलके बिना इस साधारण-से मामलेका कोई ठीक निबटारा करवा लें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० बी० नियोगी
एडवोकेट
क्रॉडाक टाउन
नागपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३४७४)की फोटो-नकलसे।

१. ७ जुलाईका पत्र, जिसमें लिखा था कि "नागपुर-निवासी मंचरशाह आवारीने तलवार सत्याग्रह नामक एक आन्दोलन चलाया था; उस अपराधमें उन्हें चार सालकी सख्त कैदकी सजा दे दी गई। . . . श्री आवारीका आग्रह है कि उन्हें अपनी खादीकी पोशाक पहनने दी जाये। . . . जेल-अधिकारी इस बातके लिए तो राजी हैं कि वे अन्दर खादी पहनें लेकिन इस बातपर आग्रह कर रहे हैं कि उसके ऊपरसे जेलकी पोशाक अवश्य पहनें। मगर श्री आवारी इसके लिए तैयार नहीं हैं। . . . अब मैं चाहता हूँ कि इस सम्बन्धमें आप अपनी राय बतायें कि क्या अन्दर निजी खादीकी पोशाक और ऊपरसे जेलकी पोशाक पहननेसे खादी पहननेकी प्रतिज्ञा भंग होती है और क्या जेल-अधिकारियों द्वारा सुझाया बीचका रास्ता स्वीकार करनेकी अपेक्षा अपने प्राण दे देना श्रेयस्कर है?"

५७. टिप्पणियाँ

सेवाके लिए शिक्षा

एक भाईने एम० ई० डी० स्मिथकी लिखी 'द सर्विस ऑफ मदरहुड' नामक पुस्तकसे निम्नलिखित रोचक उद्धरण भेजा है:

> हमारी शिक्षा-पद्धति बहुत अव्यवस्थित रही है। उदाहरणके लिए, हमारे विश्वविद्यालयोंमें यह प्रवृत्ति बहुत व्यापक रूपसे प्रचलित रही है कि विद्यार्थी यदि कुछ सीखना चाहें तो सीखें, लेकिन यदि उन्हें अध्ययनसे अरुचि हो तो उन्हें लगभग अपनी मर्जीके मुताबिक अपना समय बरबाद करने दिया जाये। किसी भी राष्ट्रका व्यक्ति वहाँ उसकी सेवा करनेके लिए पैदा हुआ है; उसका जन्म इसलिए नहीं हुआ है कि वह मुसाफिरकी तरह आये और मौज करके चला जाये। इस प्रकार इस प्रवृत्तिसे निश्चय ही बहुत हानि हो रही है, किन्तु आश्चर्यकी बात है कि लोग इतनी बड़ी हानिके कारणकी ओरसे उदासीन बने रहे हैं। शिक्षा-पद्धतिकी इस ढिलाईका बहुत बड़ा दोष हमारी शिक्षा-व्यवस्थाके बड़े-बड़े अधिकारियोंके सिर है। वे समयके तकाजेकी ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं और अलगाव तथा आत्मतोषके वातावरणमें पड़े-पड़े ऊँघ रहे हैं। वे शिक्षाके सच्चे उद्देश्य और परम महत्त्वको समझनेमें असमर्थ रहे हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि भविष्यमें कुछ सीखनेके अवसरोंका लाभ उठानेमें चूक करना उतना ही लज्जाजनक माना जायेगा, जितना लज्जाजनक किसी सिपाहीके लिए अपने कर्त्तव्य-स्थलसे भाग खड़ा होना है।

लेकिन स्मरण रहे कि यह बात राष्ट्रीय सैनिक सेवाके लिए दी जानेवाली सैनिक शिक्षाके सन्दर्भमें कही गई है। जिस सेनाको अपने भाई-बन्धुओंकी इच्छाओं और भावनाओंको कुचलनेके लिए प्रशिक्षण और पैसा दिया जाता हो, भाड़ेके टट्टुओंकी ऐसी सेनामें काम करना उतना ही गलत है जितना गलत उस शैक्षणिक संस्थासे सम्बद्ध रहना जिसका गठन किसी विदेशी शासनके उद्देश्योंको पूरा करनेमें सहायता देनेके लिए किया गया हो।

काशी विद्यापीठ

काशी विद्यापीठके प्राचार्य नरेन्द्रदेवने मुझे निम्न सूचनाएँ[1] प्रकाशनार्थ भेजी है:

यह विद्यापीठ उन थोड़ी-सी राष्ट्रीय शालाओंमें से है जिनका अस्तित्व अब भी बना हुआ है। इसका श्रेय बाबू शिवप्रसाद गुप्तकी आस्था और उदारताको है।

१. इनका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। सूचनाएँ विद्यालयके खुलनेकी तिथि, पढ़ाये जानेवाले विषय, दाखिलेके लिए न्यूनतम योग्यता आदिके बारेमें थीं।

क्या हम और भी गरीब होते जा रहे हैं?

कुछ दिन पहले प्रोफेसर सेम हिगिनबॉटमने मुझे भारतकी गरीबीके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न भेजे थे और मुझसे उनके उत्तर देनेको कहा था।[1] चूँकि उनकी जिज्ञासा गम्भीर थी और मैं जानता हूँ कि वे इस कठिन समस्याके समाधान में हमारी सहायता करना चाहते हैं, इसलिए मैंने सोचा कि सिर्फ अपनी ही समझके अनुसार उत्तर देनेके बजाय मुझे इस विषयके विशेषज्ञोंसे सहायता लेनी चाहिए। इसलिए ऐसे कुछ मित्रोंसे पत्र लिखकर मैंने पूछा कि क्या वे अपने-अपने सुविचारित मत देनेके लिए समय निकाल सकेंगे। बम्बई विश्वविद्यालयके प्रोफेसर सी० एन० वकीलने एक लेखमालामें[2] अपना मत भेजनेकी कृपा की है। इसकी पहली किस्त पाठक इसी अंकमें अन्यत्र देख सकते हैं।

अखिल भारतीय गो-रक्षा संघ[3]

इसी महीनेकी २५ तारीखको ३-३० पर सत्याग्रहाश्रम, साबरमतीमें इस संघकी आम सभाकी एक बैठक होगी, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पर विचार किया जायेगा:[4]

"चूँकि अखिल भारतीय गो-रक्षा संघने अपने लिए जिस अखिल भारतीय स्वरूपका दावा किया है, वह तदनुरूप जनताका ध्यान और सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित नही कर पाया है और चूँकि इसकी प्रवृत्ति संघके उद्देश्योंको धीरे-धीरे प्रचारित करने और विशेषकर संघके उद्देश्योके अनुसार सत्याग्रहाश्रममे एक दुग्धशाला और चर्मशोधनालयके संचालन तक ही सीमित रही है और चूँकि चन्दा और दान केवल उन्हीं लोगोंने दिया है जिनकी इस प्रयोगमें रुचि है, और चूँकि जिन अनेकानेक गोशालाओं और पिंजरापोलोंसे संघके उद्देश्यके प्रति उत्साह दिखाने और संघसे संयुक्त होनेकी अपेक्षा की गई थी वे वैसा करनेमें असफल रहे हैं, इसलिए संघके वर्तमान सदस्य यह निर्णय करते हैं कि इस संघको भंग करके अपेक्षाकृत कम व्यापकता और विस्तारका बोध करानेवाला नाम — गो-रक्षा और गो-परिरक्षण समिति — अपनाया जाये और संघके कोष और उसके भण्डारमें जो-कुछ माल हो उसका दायित्व, व्यवस्था और नियन्त्रण समितिकी निम्नलिखित प्रबन्ध समितिको सौप दिया जाये तथा उसे कोषका धन खर्च करने, उक्त प्रयोगोंके संचालन तथा नये प्रयोग कराने और अन्य प्रकारसे संघके उद्देश्योंको कार्यान्वित करने और समितिकी व्यवस्थाके लिए संविधान और नियम बनाने तथा उनमें समय-समय पर आवश्यक संशोधन करनेका पूरा अधिकार दिया जाये।"

१. देखिए "हमारी गरीबी", ६-९-१९२८।

२. इस लेख-मालाका शीर्षक था "पावर्टी प्रॉब्लेम ऑफ इंडिया" (भारतकी गरीबीकी समस्या) और यह **यंग इंडिया**के १२, १९ और २६ जुलाई तथा २ और ९ अगस्त, १९२८ के अंकोंमें प्रकाशित हुई थी।

३. २८ अप्रैल, १९२५ को गांधीजी द्वारा संस्थापित; देखिए खण्ड २६।

४. यह प्रस्ताव जिस संशोधित रूपमें स्वीकृत किया गया उसके लिए देखिए "रक्षा नहीं, सेवा", २-८-१९२८।

इस प्रस्तावको लानेका कारण बतानेके लिए और कुछ लिखना अनावश्यक है। श्रीयुत जमनालालजी को तथा मुझे बहुत दिनोंसे ऐसा लगता रहा था कि संघको इतनी व्यापकता और विस्तृत उद्देश्योंका बोध करानेवाले नामसे चलाकर हम संघ और जनताके साथ न्याय नही कर रहे हैं, क्योंकि हम उस नामको सार्थक करनेके लिए न कोई उतना व्यापक और विस्तृत काम कर रहे है और न वैसे बड़े परिणाम ही दिखा पाये हैं। कोषमें पैसा भी मुख्यतः उतना ही आ पाया है जितना श्रीयुत जमनालालजी को उनके मित्रोने दिया और जितना-कुछ मै उन प्रयोगोंके निमित्त प्राप्त कर पाया हूँ, जिन्हें मै गायोंको विनाशसे बचानेके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। इसलिए यह उचित और ज्यादा ईमानदारीकी बात लगती है कि संघको ऐसे लोगोंकी एक छोटी समितिका रूप दे दिया जाये जो गो-परिरक्षणमें रुचि रखते है और उसके लिए इन पृष्ठोंमें सुझाये गये तरीकोंको पसन्द करते है। कोषमें फिलहाल लगभग १७,००० रुपये है और संघके पास सामानके नाम पर कुछ पुस्तकें है, जिनमें से अधिकांश मुझे उपहारमें प्राप्त हुई है। इन दिनों मासिक खर्च ५५ रुपये बैठता है। संघकी देनदारीमें, उसको सौंपे गये प्रयोगोंके संचालन पर उसे जितना खर्च करना पड़ सकता है, वही खर्च आता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-७-१९२८

५८. विद्यार्थियोंमें जागृति

बारडोलीका सन्देश अभी पूरा नहीं हो पाया है। अभी वह अपूर्ण है; फिर भी उसने हमें जो सबक सिखाये हैं उन्हें हम आसानीसे नहीं भूल सकते। इसने मन्द पड़े हुए उत्साहको फिरसे जगा दिया है; यह हमारे लिए नई आशाका सन्देश लेकर आया है, इसने सामूहिक अहिंसाकी असीम सम्भावनाओंके प्रति हमारी आँखें खोल दी हैं और यह अहिंसा अभी तो वह है जिसका पालन हम उसमें अपने सम्पूर्ण विश्वासके कारण नहीं, अन्यान्य सद्गुणोंकी तरह महज नीतिके रूपमें ही कर रहे हैं। बम्बईमें श्रीयुत वल्लभभाई पटेलके सम्मानमें जैसा प्रदर्शन किया गया, लोगोंने बिना कुछ कहे अपनी इच्छासे जिस प्रकार उन्हें २५,००० रुपयेका दान दिया, जिस तरह प्रेमसे उनकी गाड़ीको घेर लिया, जब वे भारी भीड़से होकर गुजर रहे थे तब जिस प्रकार सोने और नोटोंकी उन पर वर्षा हुई, उनके सभा-भवनमें प्रवेश करते ही श्रोतृ-समुदायने जिस प्रकार उनका स्वागत किया, उस सबका जो वर्णन मैंने प्रत्यक्षदर्शियोंसे सुना है, वह इस बातका प्रमाण है कि चन्द महीनोंमें अपने साहस और कष्ट-सहनसे बारडोलीने क्या-कुछ कर दिखाया है। वैसे तो सभी क्षेत्रोंमें बहुत जबरदस्त जागृति आई है, किन्तु विद्यार्थियोंके बीच अधिक जागृति आई है और बम्बईके विद्यार्थियोंके बीच तो सबसे अधिक। मैं श्रीयुत नरीमनको और जिन बहादुर युवकों और युवतियों पर उनका ऐसा आश्चर्यजनक प्रभाव है उनको भी बधाइयाँ देता हूँ। और प्रत्यक्षदर्शियोंने विद्यार्थी-समाजमें से भी तीन पारसी युवतियों,

कुमारी डावर और भेसानिया-बहनोंकी विशेष प्रशंसा की है। कहते हैं, उन्होंने अपने असीम उत्साह और साहसके बल पर बम्बईके समस्त विद्यार्थी समाजमें उत्साह और साहसकी लहर दौड़ा दी। महादेव देसाईको पूनाके एक कॉलेजके विद्यार्थीका लिखा एक पत्र मिला है। उसके अनुसार उस कालेजके विद्यार्थियोंने गत ४ तारीखको स्वेच्छासे विद्यार्थी बारडोली-दिवस मनाया, अपना अध्ययन आदिका सारा काम बन्द रखा और दिन-भर चन्दा इकट्ठा किया। लोगोंने उन्हें खुशी-खुशी चन्दे दिये। ईश्वर करे, सरकारी कालेजों और स्कूलोंके विद्यार्थियोका यह साहस स्थायी हो और परीक्षाकी घड़ी आने पर वह किसी तरह मन्द न पड़े। विद्यार्थियोंकी ओरसे बराबर अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र आ रहे है, जिनमें वे यह सूचित करते हैं कि बारडोली-कोषमें अपनी शक्ति-भर योगदान करनेके लिए वे किस तरह आत्मसंयम बरत रहे हैं और अपनी जरूरतोंमें कटौती कर रहे है। गुरुकुल काँगड़ी, सासवणेके वैश्य विद्यालय, घाटकोपरके एक छात्रावास और नवसारीके निकट स्थित सूपा गुरुकुलके विद्यार्थी एक महीने या इससे कुछ कम समयसे बारडोली-कोषमें देनेके लिए पैसा जुटानेके लिए या तो मेहनत-मजदूरी कर रहे हैं या फिर दूध-घी वगैरह न खाकर उन पर खर्च होनेवाला पैसा बचा रहे है। अन्य अनेक संस्थाओंके विद्यार्थी भी वैसा ही कर रहे हैं; उनके नाम इस समय मुझे याद नहीं आ रहे हैं।

बारडोलीके देहाती और विशेषकर वे अनपढ़ औरतें, जिन्हें स्वातन्त्र्य संग्रामके सैनिकोंमें गिननेसे हम अब तक इनकार करते रहे है, अपने मूक कष्ट-सहन और अद्भुत साहससे हमें जो सबक सिखा रही हैं, उसका असर यदि हम पर बिलकुल न पड़ता तो यह बहुत भयंकर बात होती। यदि हम कहें कि चीनके विद्यार्थियोंने ही उस महान् देशके स्वातन्त्र्य-संग्रामका नेतृत्व किया और आज भी मिस्र जो सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए संघर्ष कर रहा है उसमें विद्यार्थी ही सबसे आगे है तो इसका कोई भी प्रतिवाद नहीं कर सकता। भारतके विद्यार्थियोसे उससे कुछ कम करनेकी आशा नही की जाती। वे स्कूलों और कालेजोंमें स्वार्थ-सिद्धिके लिए नही, बल्कि सेवाके उद्देश्यसे जाते है या उन्हें चाहिए कि वे वहाँ स्वार्थ-साधनके लिए नही, बल्कि सेवाके लिए जायें। उन्हें राष्ट्रका सबसे उपयोगी तत्त्व होना चाहिए।

विद्यार्थियोंके मार्गकी सबसे बड़ी बाधा यह भय ही है कि इस सबका परिणाम क्या होगा। अधिकांशतः यह भय काल्पनिक ही है। इसलिए विद्यार्थियोंको जो पहला सबक सीखना है, वह है भयका त्याग। आजादी उन्हें कभी हासिल नही हो सकती जिन्हें स्कूलों या कालेजोंसे निकाल दिये जानेका भय है, जिन्हें गरीबीका भय है या कि जो मृत्युसे डरते हैं। सरकारी संस्थाओंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको सबसे अधिक भय उन संस्थाओंसे निकाल दिये जानेका होता है। वे समझ लें कि साहसके बिना ज्ञानार्जन मोमकी मूर्तिके समान है, जो देखनेमें तो सुन्दर लगती है, लेकिन हलकी-सी गर्मी पाते ही पिघलकर मोमका ढेर-मात्र रह जाती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-७-१९२८

५९. पत्र : बारबरा बाउरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। मुझे नहीं मालूम कि मुझमें लोकोत्तर शक्तियाँ होनेकी बातें कैसे प्रचारित हो गई! मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि मैं केवल एक सामान्य मर्त्य प्राणी हूँ और कोई भी मानव-प्राणी जिन कमजोरियों, प्रभावों और अन्य बातोंके अधीन हो सकता है, उन सबसे ऊपर नहीं हूँ तथा मुझमें कोई अलौकिक शक्ति नहीं है।

हृदयसे आपका,

कुमारी बारबरा बाउर
बिग स्प्रिंग
टेक्सास
संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रेजी (एस० एन० १४३४९) की माइक्रोफिल्मसे।

६०. पत्र : डॉ० जोसिया ओल्डफील्डको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

इतने वर्षोंके बाद आपका पत्र[2] पाकर कितनी प्रसन्नता हुई, कह नहीं सकता।

आपने अखबारोंमें देखा ही होगा कि आखिरकार मैंने इस वर्ष यूरोप न जानेका ही फैसला किया। वैसे अगले साल जानेका इरादा है। अगर जाऊँगा तब तो हम लोग वहाँ कहीं-न-कहीं मिलेंगे ही। मगर यह नहीं कह सकता कि आपके

१. २४ मई १९२८ का पत्र, जिसमें लिखा था: "आपसे मेरा अनुरोध यह है कि आप मेरे भाई को पुनरुज्जीवित कर दें।...मैं जानती हूँ कि आप यह काम कर सकते हैं—उसी खूबीसे जिस खूबीसे स्वयं ईश्वर कर सकता है।... मुझे मालूम है कि आप दैवी शक्तियोंसे युक्त हैं।..." (एस० एन० १४३१४)।

२. २० जून, १९२८का पत्र, जिसमें लिखा था: "...अगर मेरे यहाँ कुछ समय रह सकें तो विश्वास रखिए कि आपका हार्दिक स्वागत-सत्कार किया जायेगा।...यदि आपको चिकित्सा और परिचर्या सम्बन्धी सुविधाओंकी जरूरत होगी तो हम वह सुविधा भी देंगे।..." (एस० एन० १४३३१)।

अस्पतालमें मैं आपके मित्रकी तरह उसे देखने आऊँगा या वहाँ अपनी चिकित्सा तथा परिचर्या करवाने आऊँगा।

हृदयसे आपका,

डॉ० जोसिया ओल्डफील्ड
लेडी मार्गरेट अस्पताल, डार्डिंगटन, केन्ट

अंग्रेजी (एस० एन० १४३५२) की फोटो-नकलसे।

६१. पत्र : एल० क्रैनाको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

यह आपके गत १८ मईके पत्रके[1] उत्तरमें है। मैंने 'सस्टेनिंग मेम्बर्स' (पोषक सदस्यों)के[2] नाम लिखे जिस पत्रका जवाब[3] आपको दिया था, वह खुद आपने मेरे नाम लिखा था। इस पर आपके हस्ताक्षर हैं। मूल पत्र साथमें भेज रहा हूँ।

यह बड़ी मजेदार बात है कि मेरे और मेरी मान्यताओंके बारेमें किस प्रकार कई अखबारोंमें गलत बातें छापी जाती हैं। कई बार तो ये गलतबयानियाँ जान-बूझकर की गई जान पड़ती हैं और कभी-कभी तो ऐसे अखबार भी इस तरहकी बातें करते है जिनके संचालकोंका दावा होता है कि वे उन्हें सच्चे ईसाइयोंकी ईमानदारीसे चलाते हैं।

हृदयसे आपका,

संलग्न पत्र : १

श्री एल० क्रैना
मार्फत-यं०मै०क्रि०ए०, सिंगापुर

अंग्रेजी (एस० एन० १४३४५) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र इस प्रकार था : "समझ नहीं पा रहा हूँ कि पोषक सदस्योंके नाम लिखा मेरा पत्र आपके हाथोंमें कैसे पहुँच गया। यदि इस सम्बन्धमें आप कुछ बता सकें तो आभारी होऊँगा।" (एस० एन० १४३१३)।

२. गिरजाघर-संगठनके खर्चके लिए नियमित रूपसे शुल्क देनेवाले लोग।

३. ४ मई, १९३४का; देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ३१३।

६२. पत्र : एडा रॉसेनग्रीनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और इस जर्मन पुस्तकके[1] लिए धन्यवाद। मेरा खयाल है, मैं आपको बता चुका हूँ कि मैं जर्मन नहीं जानता।

अगले साल मेरी यूरोप यात्राके बारेमें अभी कुछ भी तय नहीं हो पाया है।

तलाकके बारेमें मेरे विचार बहुत तीव्र हैं। मेरा अपना मत तो यह है कि यदि पति और पत्नीके स्वभावका मेल एक-दूसरेसे नहीं बैठता और दोनोंके बीच बराबर तनाव रहता है तो उन्हें स्वेच्छासे एक-दूसरेसे अलग होकर रहना चाहिए। लेकिन मैं किसी भी पक्ष द्वारा पुनर्विवाहके औचित्यको स्वीकार नहीं करता। ब्रह्मचर्यकी आवश्यकतामें विश्वास रखनेवाले व्यक्तिकी हैसियतसे मैं स्वभावतः यह मानता हूँ कि पुरुष अथवा स्त्री जितने अधिक संयमसे काम ले, उसके लिए उतना ही अच्छा है।

हृदयसे आपका,

एम० एडा रॉसेनग्रीन
लिंडिंगो, स्वीडन

अंग्रेजी (एस० एन० १४३४६) की फोटो-नकलसे।

६३. पत्र : एच० एन० मॉरिसको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और हेलेन केलरकी पुस्तक 'माई रिलीजन' की प्रतिके लिए धन्यवाद।

मै हेलेन केलरके नाम और उनके कार्यसे अवगत हूँ। लेकिन दुःखके साथ आपको सूचित करना पड़ता है कि बहुत चाहते हुए भी मुझे पढ़नेके लिए बिलकुल समय नहीं मिलता। इसलिए आपने जो पुस्तक मुझे भेजी है, वह अब भी यो ही पड़ी हुई है। हाँ, आश्रमके लोग उसे बड़ी रुचिसे पढ़ेंगे।

१. तटस्थ समिति द्वारा तैयार की गई पुस्तक; जिसने प्रथम विश्व युद्धके कारणोंकी जाँच की थी।

जैसा कि आपने अखबारोंमें देखा होगा, इस वर्ष यूरोप जानेका इरादा तो मुझे छोड़ना ही पड़ रहा है। यह सम्भव है कि अगले वर्ष आ सकूँ।

हृदयसे आपका,

श्री एच० एन० मॉरिस
१४०, विलिंग्टन रोड, व्हैली रेंज, मैंचेस्टर

अंग्रेजी (एस० एन० १४३४७) की फोटो-नकलसे।

६४. पत्र : सेमुएल एम० हसनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं अपने आपको इस लायक नही मानता कि आप किस पद्धतिसे चिकित्सा करायें, इस सम्बन्धमें आपको सलाह दे सकूँ।

आपका नाम यथारीति 'यंग इंडिया' कार्यालयके व्यवस्थापकको भेज दिया गया है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता आदिके सम्बन्धमें मै आपके इस विचारसे सहमत हूँ कि विभिन्न सम्प्रदायोंके बीच पूरी एकता हो; वैसी एकता स्थापित करनेके लिए पूरी कोशिश की जा रही है।

'मदर इंडिया' के सम्बन्धमें मैं आपसे 'यंग इंडिया' के १५ सितम्बर, १९२७ के अंकमें लिखा लेख[1] पढ़नेका अनुरोध करूँगा।

भारत लौटने पर आप आश्रम आयेंगे तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सेमुएल एम० हसन
जनरल केमिस्ट्री, सिराक्यूज विश्वविद्यालय
सिराक्यूज, संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रेजी (एस० एन० १४३४८) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट"; खण्ड ३४ पृष्ठ ५८४-९४।

६५. पत्र : डब्ल्यू० कोल्डस्ट्रीमको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके स्नेहपूर्ण निमन्त्रणके लिए धन्यवाद। यदि अगले वर्ष यूरोप आनेकी मेरी इच्छा पूरी हुई तो हम कहीं-न-कहीं अवश्य मिलेंगे और वह मेरे लिए प्रसन्नताकी बात होगी। लेकिन आपका आतिथ्य स्वीकार कर पाऊँगा या नहीं, इस समय यह कह सकना तो मेरे लिए बहुत मुश्किल है। सम्भावना ऐसी है कि मेरा कार्यक्रम निश्चित करनेमें केवल मेरी ही नहीं चलेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डब्ल्यू० कोल्डस्ट्रीम
६९, वेस्ट क्रामवेल रोड, लन्दन, एस० डब्ल्यू० ५

अंग्रेजी (एस० एन० १४३५०) की फोटो-नकलसे।

६६. पत्र : श्रीमती केमबसको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। श्रीमती अनसूयाबाईने[१] मुझे आपके बारेमें सब-कुछ बता दिया है। आपको यहाँ आनेकी सलाह देना सम्भव नहीं है। बहरहाल, मैं तो यही चाहूँगा कि यदि आप यहाँ आयें ही तो आजमाइशी तौर पर और सो भी तभी जब आपके पास इतने साधन हों कि यदि यहाँकी आबोहवा आपको अनुकूल न पड़े तो आप फिर वापस जा सकें। यों तो मेरा ख्याल यह है कि आपका अपने स्थानमें बने रहकर प्राप्त सेवाधर्ममें लगे रहना अधिक अच्छा होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीमती केमबस[१]
३४ डी० क्रेसपीनी पार्क
लन्दन, एस० ई० ५

अंग्रेजी (एस० एन० १४३५१) की फोटो-नकलसे।

१. अध्यापिका और सामाजिक कार्यकर्त्री।

६७. पत्र : आबिदअली जाफरभाईको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१३ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके 'वार्षिक' के लिए सन्देश :

जो लोग भारतसे बाहर सिंगापुर आदि स्थानोंमें रहते हैं उन्हें यह याद रखना चाहिए कि जिस राष्ट्रके वे सदस्य हैं, उसका सम्मान उनके हाथोंमें है और इसलिए वे जिन विदेशियोंके बीच रह रहे हों उनके प्रति उनका आचार-व्यवहार बिलकुल निर्दोष और खरा होना चाहिए। उन्हें खादी पहनकर अपनी मातृभूमिके गरीबोंके साथ अपना तादात्म्य भी बनाये रखना चाहिए।

हृदयसे आपका,

आबिद अली जाफरभाई
यूसुफ बिल्डिंग सी.
माउंट रोड, मजगाँव, बम्बई-१०

अंग्रेजी (एस० एन० १४५६८) की फोटो-नकलसे।

६८. पत्र : यू० के० ओझाको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ जुलाई, १९२८

प्रिय ओझा,[१]

आपका पत्र[२] मिला। आपने तो मुझपर ऐसा बोझ डाल दिया है, जिसे ढो सकना मेरे लिए कठिन है। आपका सुझाव बहुत अच्छा लगता है, लेकिन समस्या

१. नैरोबीसे प्रकाशित **डेमोक्रेट**के सम्पादक; पूर्व आफ्रिकी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

२. अपने २७ जून, १९२८ के इस पत्रमें ओझाने पूर्व आफ्रिकाके भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच सम्मिलित निर्वाचक सूचीके प्रश्नपर समझौतेकी शर्तें सुझाई थीं। उन्होंने लिखा था : "यूरोपीय समाज दोनों समाजोंकी सम्मिलित निर्वाचक-सूचीपर सहमत है। मताधिकार अधिवास, उम्र और शैक्षणिक अथवा साम्पत्तिक योग्यतापर आधारित होना चाहिए। शैक्षणिक योग्यता यह होनी चाहिए कि सम्बन्धित व्यक्ति अंग्रेजी पढ़ और लिख सके। साम्पत्तिक योग्यताके विषयमें भारतीयोंकी ओरसे यह मत व्यक्त किया गया है कि सम्बन्धित व्यक्ति कमसे-कम १,००० पौंडकी अचल सम्पत्तिका स्वामी हो। मैं इससे सहमत नहीं हूँ और मेरा विचार है कि यह सीमा और कम होनी चाहिए। . . . उपर्युक्त प्रस्तावोंके विषयमें यह तय हुआ कि पहले इन्हें कांग्रेसके सामने रखा जाये और यदि उसकी स्वीकृति मिल जाये तो प्रमुख भारतीय और यूरोपीय उनपर अपने हस्ताक्षर करके उन्हें कीनियावासी भारतीयोंके सवालके निपटारेका एक उचित रास्ता सुझानेवाले संयुक्त घोषणापत्रके रूपमें प्रकाशित कर दें।" (एस० एन० १२८५५)

पर पूरी तरह सोचे-विचारे बिना आपका मार्गदर्शन कर सकनेमें मै असमर्थ हूँ। इसलिए मैं तो यही कह सकता हूँ कि जो लोग वहाँ हैं, वही इस सम्बन्धमें निर्णय लेनेके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं। हाँ, मैं एक सावधानी बरतनेकी सलाह अवश्य दूँगा। वह यह कि यद्यपि वहाँ मौजूद लोग ही इस सम्बन्धमें निर्णय लेनेके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति है, फिर भी उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे ऐसा-कुछ नहीं करेंगे जो सम्पूर्ण राष्ट्रकी गरिमा या सम्मानके प्रतिकूल हो।

आपके पत्रके अन्तिम अनुच्छेदके[1] बारेमें मै यह कहूँगा कि अनुभवने अहिंसामें मेरा विश्वास दृढ़ बना दिया है। हमारे चारों ओर जो-कुछ हो रहा है, उससे मुझे हिंसाकी नहीं, बल्कि अहिंसाकी ही शिक्षा मिलती है। हो सकता है कि मैं बिलकुल गलत होऊँ, लेकिन मुझे इस गलतीका न कोई बोध है और न उसकी अनुभूति ही हो रही है।

आपको प्रतीक्षा करनेकी सलाह देते हुए एक तार भेजा है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १२८५५-ए) की माइक्रोफिलमसे।

६९. पत्र: एस० जी० वझेको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ जुलाई, १९२८

प्रिय वझे,

साथमें ओझासे प्राप्त पत्रकी एक नकल और अपना जवाब भेज रहा हूँ। मुझे इस मामलेमें मार्ग-निर्देशन करना निरापद नहीं लगता और मैंने ओझाको ऐसा ही लिख दिया है। लेकिन आपने तो वहाँ रहकर परिस्थितिका अध्ययन किया है। क्या आप उनका मार्ग-दर्शन कर सकेंगे?

मैं बनारसीदासको[2] भी लिख रहा हूँ। ओझाको तार देकर प्रतीक्षा करनेको कहा है।

बारडोली पर तैयार की गई आपकी रिपोर्ट[3] बहुत अच्छी लगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० जी० वझे
सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी, पूना

अंग्रेजी (एस० एन० १२८६१) की माइक्रोफिलमसे।

१. इस अनुच्छेदमें पत्र-लेखकने कहा था कि "मुझे लगता है कि शीघ्र ही आपको एक जबरदस्त युवक-आन्दोलनका नेतृत्व करना पड़ेगा और खुद मैं तो सोचता हूँ कि तब आपको अहिंसाको भी एक किनारे रख देना पड़ेगा। चारों ओर जो काले बादल जमते चले जा रहे है, उन्हें क्या आप नहीं देख रहे हैं?"

२. बनारसीदास चतुर्वेदी।

३. यह रिपोर्ट हृदयनाथ कुंजरू, **सर्वेंट ऑफ इंडिया**के सम्पादक वझे और अमृतलाल ठक्करने तैयार की थी। तीनों सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके सदस्य थे। महादेव देसाई द्वारा तैयार किये गये रिपोर्टके सार-संक्षेपके लिए देखिए परिशिष्ट १।

७०. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

[१४ जुलाई, १९२८][1]

भाई बनारसीदास,

यह भाई ओझाका खत है। मै तो उनको कुछ सलाह देनेकी योग्यता नही रखता हूं। इस बारेमें आप उनको कुछ लिखे।

मोहनदासका वन्देमातरम्

बनारसीदास चतुर्वेदीका ए०आई०सी०सी० के साथ पत्र-व्यवहार।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली

७१. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

आश्रम, साबरमती
१४ जुलाई, १९२८

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। यदि महादेव अस्वस्थ न होता तो मै शायद उसे उसीके सन्तोषके लिए स्टेशन भेज देता। किन्तु अब तो मैं किसीको नही भेज रहा हूँ। परन्तु चि० कुसुमबहनको अपने किसी सम्बन्धीसे मिलने स्टेशन जाना है। अतः इस पत्र द्वारा आपको सूचित करता हूँ कि हम सभी आपकी राह देख रहे हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३२२३) से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१. देखिए पिछला शीर्षक।

७२. टिप्पणियाँ

विकार-बिच्छू

कलकत्तेका एक विद्यार्थी लिखता है :[1]

मेरा और मेरे साथियोंका अनुभव तो ऐसा है कि अगर पति-पत्नी स्वेच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन करें तो आत्यन्तिक सुख पा सकते हैं, अपने सुखकी वृद्धिका नित्य अनुभव कर सकते हैं। अशिक्षित पत्नीको ब्रह्मचर्यकी महिमा समझानेमें अड़चन नहीं पड़ती। अथवा यों कह सकते हैं कि ब्रह्मचर्य शिक्षित-अशिक्षितका भेद नहीं जानता। ब्रह्मचर्यके लिए केवल हृदयकी शक्ति चाहिए। मैं ऐसी अशिक्षित स्त्रियोंको जानता हूँ जो विवाहित हैं और ब्रह्मचर्यका पालन कर रही है। ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला पति समाजके गंदे वातावरणमें भी अपनी पत्नीके शीलकी रक्षा करनेमें अधिक समर्थ होता है। ब्रह्मचर्यका अभाव पत्नीको भ्रष्ट होनेसे नहीं बचाता है, बल्कि वह पत्नीके भ्रष्टाचारका आवरण बन सकता है, इसके तो कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

ब्रह्मचर्यकी शक्ति अपरिमित है। बहुत-से मामलोंमें मेरा अनुभव है कि ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला पति स्वयं विकारोंसे मुक्त न होनेके कारण अपने प्रयत्नोंका प्रभाव अपनी पत्नी पर नहीं डाल पाता। विकार महाशय बड़े चतुर हैं। इसलिए उन्हें अपने बन्धुको पहचानते देर नहीं लगती। जो विकार-रहित नहीं बनी है, जो विकारको छोड़नेको अभी तैयार भी नहीं हुई है, वह पत्नी अपने पतिके हृदयमें छिपी हुई विकार-वासनाको तुरन्त पहचान लेती है, और उसके दुर्बल प्रयत्नोंकी मन-ही-मन हँसी उड़ाती है, और स्वयं निश्चिन्त रहती है। इसमें किसीको सन्देह नहीं होना चाहिए कि जो ब्रह्मचर्य अविचलित है, और जिसमें शुद्ध प्रेम भरा हुआ है, वह अपने साथियोंके विकारको जलाकर राख कर देता है। बेलूरमें कई सुन्दर मूर्तियोंमें एक मूर्ति मैंने ऐसी देखी जिसमें शिल्पकारने कामको बिच्छूका रूप दिया है। उसने एक कामिनीको डंक मारा है। उसके जहरके तापने उस स्त्रीको नग्न कर डाला है। और उसके बाद वह बिच्छू अपने डंकको टेढ़ा किये हुए, अपनी विजयके अभिमानमें उस स्त्रीके पैरोंके पास पड़ा-पड़ा उसकी हँसी कर रहा है। इस बिच्छूपर जिस पतिने विजय प्राप्त कर ली उसकी आँखों, उसके स्पर्श, उसकी वाणीमें ब्रह्मचर्यकी शीतलता होती है। वह अपने समीप रहनेवाले विकारोंको क्षण-भरमें ठंडा करके शान्त कर देता है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने पूछा था कि क्या अशिक्षित पत्नीको ब्रह्मचर्यकी महिमा समझाकर पति-पत्नी ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए सुखी जीवन बिता सकते हैं?

वृद्ध-बाल-विवाह या व्यभिचार?

एक बहनके पत्रके कुछ अंश यहाँ दे रहा हूँ:[1]

इस बहनकी दलीलमें सार है। किन्तु औषध तो वही है जो मैंने बतलाई है।[2] जो पुरुष व्यभिचार करता है, समाज उसका बहिष्कार भले करे किन्तु जबतक व्यभिचारीका बहिष्कार न करे तबतक उस वृद्धका भी बहिष्कार न किया जाये जो बालिकासे विवाह करता है। यदि इस दलीलको मान लें तो ऐसे बेमेल विवाहोंको रोकनेमें बहुत दिन लग जायेंगे। इसमें शक नहीं कि व्यभिचारमें बहुत-से दोष हैं, मगर मै मानता हूँ कि वृद्ध-बाल-विवाहमें उससे भी अधिक दोष हैं। व्यभिचारमें दोनों पक्ष सहमत होते है और दोनोमें से जो कोई जब पापसे छूटना चाहे, छूट सकता है। वृद्ध-बाल-विवाहमें तो सुधार या प्रायश्चित्तका अवकाश ही नही है, क्योकि उस अधर्मको रोकनेमें धर्म स्वयं ही बाधक है। इस तथाकथित विवाह-सम्बन्धमे धर्म ढालरूप बन जाता है। फिर अधर्म जब धर्मका वेश धारण करता है, तब वह और अधिक दूषित बनता है क्योंकि उसमें पाखण्डका मिश्रण होता है।

दुःखकी बात तो यह है कि आज समाज जिस तरह व्यभिचारके बारेमें उदासीन है, उसी तरह वृद्ध-बाल-विवाहके बारेमें भी है। इसलिए दोनों सवालोंको एक साथ न जोड़ते हुए यह बहन, तथा दूसरी बहनें और नवयुवक, वृद्ध-बाल-विवाहके प्रश्नको अपने हाथमें लें और उसके विरुद्ध लोकमत तैयार करें। इतना सही है कि जो लोग ये आवश्यक सुधार करना चाहते हैं, उन्हें स्वयं शुद्ध होना चाहिए। कानूनका नियम है कि जो न्याय माँगने जाते हैं, उन्हें स्वयं शुद्ध होकर न्याय-मन्दिरमें प्रवेश करना चाहिए। अनुभव इस नियमका पूरा समर्थन करता है।

आप भला तो जग भला

जब कि मैं दूसरोंकी निन्दा सुन-सुनकर दुःखी हो रहा था, एक मित्रने अचानक नीचेकी कड़ियाँ मुझे सुनाई। मुझे वे बहुत ही पसन्द आई और इसलिए इस निर्दोष विनोदमें पाठकको भी हिस्सेदार बनानेका मन हुआ:

न थी हालकी जब हमें अपने खबर,
रहे देखते औरोंके ऐब औ' हुनर।
पड़ी अपनी बुराइयों पै जब के नजर,
तो निगाहोंमें कोई बुरा न रहा।
'जफर' आदमी उसको न मानियेगा,
गो हो कैसा ही साहबेफहम ओ जका।
जिसे ऐशमें यादे खुदा न रही,
जिसे तैशमें खौफे खुदा न रहा।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखिकाने पूछा था कि बालिकाओंसे विवाह करनेवाले वृद्ध व्यक्तियोंका बहिष्कार कैसे किया जा सकता है जब कि समाजके अधिकांश लोग ऐसे विवाहको शास्त्र-सम्मत मानते हैं। फिर जो व्यक्ति रखेल रखते हैं उनका भी तो कोई बहिष्कार नहीं करता।

२. देखिए "टिप्पणियाँ," ८-७-१९२८ का उपशीर्षक 'वृद्ध-बाल-विवाह'।

किन्तु ये पंक्तियाँ देनेकी धृष्टता मैंने की है, इसलिए मुझे आशा है कि 'कवि-गण' मुझपर कविताओंकी वर्षा नहीं करेंगे। सुन्दर काव्यसे हम आत्मशुद्धि नही कर सकते, यह मै जानता हूँ। इसलिए शायद ही कभी कविताको 'नवजीवन' में स्थान मिलता है। किन्तु ऊपरकी कविताके उपयोगका इतिहास है, इसलिए उसे पाठकोंके आगे, इस आशासे रखा है कि कोई तो अपने दोषोंका दर्शन करनेके बाद परनिन्दासे बचेगा।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १५-७-१९२८

७३. स्नातकके प्रश्न

रेशम और व्याघ्रचर्म

विद्यापीठके एक स्नातक लिखते हैं:[1]

इस विषयमें मुझे कोई शंका नहीं है कि अहिंसाकी दृष्टिसे रेशम और व्याघ्र-चर्मका त्याग किया जाना चाहिए। और इसी दृष्टिसे मोती तथा दूसरी बहुत-सी वस्तुओंका भी त्याग आवश्यक है। जान पड़ता है कि जिस युगमें रेशम और बाघम्बर पहननेका रिवाज चला, उस युगमें लोग अहिंसा-धर्मको मानते थे किन्तु फिर भी ऐसी वस्तुएँ काममें लाते थे। उस समय उन्होंने बाघके चमड़े और रेशमको उपयोगी और आवश्यक माना इसलिए अहिंसा-धर्मके माननेवाले होनेपर भी, उन्होंने दोनों वस्तुएँ इस्तेमाल कीं। अहिंसाको मानते हुए भी हमारे पूर्वज यज्ञमें पशुओंकी बलि देते थे और आज भी हम कितनोंको ऐसा करते देखते हैं। पशुओंकी बलि देनेवाले शास्त्रके वचनोंका हवाला देते हुए कहते हैं कि यज्ञार्थ की गई हिंसा, हिंसा कदापि नहीं है। इसी तरह हममें से जो केवल वनस्पति आ निरामिष आहार ही करते हैं, वनस्पति इत्यादिमें जीवन होनेपर भी उनका नाश करते हैं और मानते हैं कि इससे हमारी अहिंसाको जरा भी बाधा नही पहुँचती।

इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि देहधारी पूरी तरह हिंसासे मुक्त नहीं रह सकता। सिर्फ पानी और हवा पर रहनेवाला भी थोड़ी-बहुत हिंसा तो करता ही है। इससे हम ऐसा नियम बना सकते हैं कि जिसके उपयोगमें जरा भी हिंसा है, उसका यथासम्भव त्याग करना चाहिए। स्वयं ऐसा त्याग करते हुए भी हम दूसरोंकी निन्दा न करें, और उनके प्रति उदार भाव रखें।

यद्यपि ऊपरके हिसाबसे खाने-पीनेमें अत्यन्त सादगीकी जरूरत है, और मनुष्यसे निचले दर्जेके जीवोंको बचाना हमारा धर्म है, फिर भी हमें समझ लेना चाहिए कि इस तरह जिस अहिंसाका पालन होता है वह अल्प ही है, सम्पूर्ण नहीं। हम रोज देखते हैं कि ऐसी अहिंसाका अतिशय सूक्ष्मतासे पालन करनेवाला आदमी जबरदस्त

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने पूछा था कि क्या रेशम और व्याघ्र-चर्मके उपयोगसे अहिंसाका उल्लंघन नहीं होता।

हिंसक हो सकता है, और सम्भव है उसमें अहिंसाकी लगन तो जरा भी न हो। परम्परासे चली आनेवाली रूढ़िके वश होकर हम अमुक वस्तुओंका उपयोग खाने-पीनेमें न करें तो इसके बलपर हम यह दावा नही कर सकते कि हम अहिसक हैं। जिस अहिंसाका पालन रूढ़ि या विवशताके कारण किया जाये उसके कुछ अच्छे भौतिक परिणाम तो हो सकते है, किन्तु अपने-आपमें अहिंसा एक ऊँचे प्रकारकी भावना है, और उसका आरोपण तो उसी आदमीके सम्बन्धमें किया जा सकता है, जिसका मन अहिंसक हो और जिसके मनमे प्राणि-मात्रके प्रति करुणा और प्रेम उमड़ रहा हो। जिसने कभी मांसाहार नही किया, इसलिए जो आज भी मांस नहीं खाता, किन्तु क्षण-क्षणमें क्रोध करता है, दूसरोंको लूटता है, लूटनेमें नीति-अनीति की परवाह नहीं करता, जिसे लूटता है, उसके सुख-दु:खकी फिक्र नही रखता, वह आदमी किसी तरह अहिंसक माना जाने लायक नही है; बल्कि यह कहना चाहिए कि वह घोर हिंसा करनेवाला है। इसके विपरीत परम्परासे चली आती रूढ़िको मानकर मांसाहार करनेवाला आदमी जिसके हृदयमे प्रेम है, जो राग-द्वेषादिसे मुक्त है, सबके प्रति समभाव रखता है, अहिंसक है, वह पूजा करने योग्य है। अहिसाकी बात सोचते हुए हम सदा खान-पानादिका ही विचार करते हैं। यह अहिंसा नही कही जायेगी। यह तो जड़ता है। जो मोक्षदायी है, जो परमधर्म है, जिसके निकट हिंसक प्राणी अपनी हिंसा छोड़ देते हैं, दुश्मन वैर-भावका त्याग करते है, कठोर हृदय पिघल जाते है, वह अहिंसा कोई अलौकिक शक्ति है, और वह बहुत प्रयत्नके बाद, बहुत तपश्चर्याके बाद किसी-किसीका ही वरण करती है।

पूँजी और मजदूरी

स्नातकका दूसरा प्रश्न इस प्रकार है:[1]

पूँजी और मजदूरीका भेद इसी जमानेका नहीं है। यह भेद प्राचीन कालसे चला आ रहा है। इस युगमें उसने भयंकर रूप ले लिया है क्योकि मजदूरवर्गमें बड़ी जागृति आ गई है। और फिर इस युगमें पूँजीवालोंकी संख्या भी बहुत बढ़ गई है और पूँजीवादने बहुत उग्र स्वरूप धारण कर लिया है। पहले पूँजीवालोंमें मुख्यत: राजा होते थे, और दूसरे थोड़ेसे लोग जिनका उनसे वास्ता पड़ता था। अब तो पूँजीवालोके काफिलेके-काफिले पड़े हुए हैं। तब यह कहा ही कैसे जा सकता है कि ऐसी स्थितिमें दुनिया आगे बढ़ रही है? किन्तु इस स्थितिको सुधारनेका उपाय पूँजीवालोंसे द्वेष करने यानी उनपर अत्याचार करनेसे नही निकलनेवाला है। मेरी मान्यता है कि कम अथवा अधिक प्रमाणमें पूँजी और मजदूरी, दोनों ही रहेंगी। मै यह मानता हूँ कि मनुष्यके प्रयत्नसे दोनोके बीचका विरोध बहुत-कुछ टाला जा सकता है। चीनके राजाका जो वचन[2] स्नातकने उद्धृत किया है, वह सोनेके समान

१. प्रश्न यह था कि पूँजीवादियों द्वारा मजदूरोंकी मेहनतसे खूब धन कमाते जानेका क्या यह कहा जा सकता है कि संसार आगे बढ़ रहा है?

२. "यदि मेरे राज्यमें कोई एक आदमी बिना काम किये बैठा रहे तो दूसरेको उसके निर्वाहके योग्य अतिरिक्त मजदूरी करनी पड़ेगी।"

कीमती है। जगत्‌में एक भी आदमी बेकार बैठा रहे तो उसका बोझा किसी-न-किसीको तो उठाना ही पड़ता है। इसलिए एक क्षण भी बेकार बैठे रहना पाप है। हम अगर यह बात समझ लें तो बहुत-सी कठिनाइयोंसे बच जायेंगे। और जिस तरह बेकार बैठे रहना पाप है, उसी तरह अपनी जरूरतसे अधिक लेना या संग्रह करना भी पाप है। जहाँ-जहाँ भुखमरी वर्तमान है, उसका भी कारण यही है।

खादीका आशय

स्नातकका तीसरा प्रश्न यह है:[1]

खादीका यह एक आशय है सही, मगर दूसरे भी कई आशय हैं। जैसे उससे किसानवर्गको अपने अवकाशमें घरेलू और व्यापक धन्धा मिलेगा। उससे विदेशी कपड़ेका बहिष्कार होगा, प्रजाकी संघ-शक्ति बढ़ेगी, मध्यमवर्गके हजारों लोगोंको प्रामाणिक आजीविका मिलेगी, और यदि करोड़ों आदमी खादीका मन्त्र समझ जायें तो उसमें स्वराज्य-प्राप्तिकी शक्ति तो सहज ही पड़ी हुई है।

खादीकी सफलतासे कारखानोंका साम्राज्य तो जरूर ही समाप्त होगा।

स्नातकसे दो बातें

स्नातकने और भी कई प्रश्न पूछे हैं, मगर उनके उत्तर देनेकी आवश्यकता मुझे नहीं जान पड़ती। वे प्रश्न पूर्वजन्म और पुनर्जन्म तथा दैवके विषयमें हैं। ये प्रश्न अनादिकालसे चले आ रहे। स्नातकको मेरी सलाह है कि ऐसे प्रश्नोंके उत्तरके लिए वे धीरज रखें। मैं जो-कुछ उत्तर दूँगा, उनके जवाबमें दस बातें और लिखी जा सकती हैं और यों बुद्धिबलकी आजमाइश चला ही करेगी। हमारे लिए सीधा मार्ग यह है कि हम सब अपने आगे उपस्थित कर्त्तव्यमें लगे रहें, और अपनी आध्यात्मिक उलझनोंके लिए यह आशा रखें कि परमात्मा उन्हें सुलझायेगा। पाप और पुण्यकी प्रतीति हमें होती है और प्राचीन कालसे यह धर्म चला आया है कि पुण्य करें और पाप छोड़ दें। इतनेसे हमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। दैव और पुरुषार्थका द्वन्द्व चला ही करता है। अच्छा काम करनेमें हम पुरुषार्थकी ओर ही झुकें। 'गीता' ने सुगम मार्ग बता दिया है, वह है फलेच्छा छोड़कर काम करना।

अन्तमें स्नातकको मेरी सलाह है कि वे अपने अक्षर सुधारें। सुन्दर अक्षर लिखना एक अच्छी कला है। वह बाह्य शिष्टताका लक्षण होना चाहिए। स्नातकका पत्र पढ़नेमें मुझे बहुत ही मुश्किल हुई थी। खुद मैंने सुन्दर अक्षर लिखना न सीखा। विद्याकालमें मुझे न किसीने टोका, न सिखलाया और बादमें अक्षर सुधारने लायक समय ही न मिला। लेकिन अपने अक्षर पढ़नेका कष्ट मैं बहुतोंको देता हूँ इसीसे मैंने आत्मग्लानिका अनुभव करके स्नातकका पत्र पढ़नेका कष्ट उठाया है। स्नातक —

१. प्रश्न था: क्या खादी आन्दोलनका यह आशय है कि सबमें धनका बराबर बँटवारा हो सके? क्या खादी आन्दोलनसे कभी यन्त्र-युगका नाश हो सकेगा?

विद्यार्थी-मात्र -- मेरी भूलसे सीख लेकर चेत जाये और अपने मित्रोंके लिए भी मोतीके दाने-जैसे अक्षर लिखना सीखे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-७-१९२८

७४. चींटी पर चढ़ाई

एक ओर पण्डित हृदयनाथ कुंजरू, श्री वझे और श्री अमृतलाल ठक्करकी बारडोलीकी जाँचने[1] रहे-सहे भारतीय नेताओंका संशय भी दूर कर दिया है और लोकमत सत्याग्रहियोंके पक्षम कर दिया है, तो दूसरी ओर यह अफवाह गर्म है कि सरकार चीटी पर सेना लेकर चढ़ आनेकी जबरदस्त तैयारियाँ कर रही है। कोई कहता है कि श्री वल्लभभाईके हाथमें बारडोलीकी सरदारी चले जाने देनेके कारण शिमला पहाड़ी पर विराजमान भारत-सरकार, बम्बई सरकारको नालायक कहकर धमका रही है और बागडोर अपने हाथमें ले रही है। मानो बम्बई सरकारने साम, दाम आदि चारों नीतियोंका अच्छी तरह उपयोग करनेमें कुछ कमी छोड़ी हो। अफवाह तो यह भी है कि अभी जो पुलिस और जब्ती अफसरोंका काम बन्द है सो तो सिर्फ तूफानके पहलेकी अशुभ शान्तिका चिह्न है; यह तो सरकारकी नई और अधिक उग्र व्यूह-रचनाकी तैयारियोंकी दूरसे सुनाई पड़नेवाली भनक है।

किन्तु बारडोलीके सत्याग्रहियोंका इन सभी अफवाहोंके साथ कोई सम्बन्ध नही होना चाहिए। अफवाह झूठी हो तो उस हद तक सरकारकी बुराई और सत्याग्रहियोंकी कसौटी कम होगी और अगर सच्ची हो तो सरकारी पापके घड़ेमें जो कमी होगी, वह पूरी हो जायेगी और सत्याग्रहियोंको अपनी परीक्षा करनेका वांछित संयोग मिलेगा।

कहते हैं, 'सावधान सदा सुखी।' इस न्यायसे सत्याग्रहियोंको अधिक सावधान रहना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि अफवाह सच्ची हो और सरकार अचानक छापा मारकर, कुछ ऐसा काम कर बैठे जिसकी हमने कल्पना भी न की हो, और उससे सत्याग्रही घबरा जायें और सत्याग्रह-दल तितर-बितर हो जाये, और इस प्रकार वह हमारी की-कराई कमाई पल-भरमे नष्ट कर डाले।

जहाँका सेनापति चौबीसों घंटे जाग्रत हो, वहाँ चेतावनी देनेकी क्या जरूरत? जगे हुएको क्या जगाना? निरन्तर जाग्रति तो सत्याग्रहकी अनेक अनिवार्य शर्तोंमें से एक है। फिर सत्याग्रहीको जुदी-जुदी व्यूह-रचनाके जंजालमें भी नही पड़ना होता। उसकी व्यूह-रचना सभी कालोंमें, सभी स्थलों, सभी अवसरों पर एक ही होती है। साहूजी इच्छा करें तो भी हजार आँखें कहाँसे लायें? सत्याग्रही अपना पहला और अन्तिम पाठ अपनी प्रतिज्ञाके साथ ही पढ़ लेता है। इसलिए सेनापति और उसकी सेनाका काम सरल, सीधा और सहज हो जाता है। सत्याग्रह एक तरहकी जड़ी-बूटी है। इसलिए उसकी शक्तिमें घट-बढ़की गुंजाइश ही नहीं है। सत्याग्रहीका एक ही

१. देखिए परिशिष्ट १।

टोटका छत्तीस रोगोंको हरनेवाला होता है। कोई जब्ती करे तो भी भला, जमीन छीन ले तो भी भला, जेलमें डाले तो भी भला, देश-निकाला दे तो भी भला, तलवारके घाट उतारे तो भी भला और तोपसे उड़ा दे तो भी भला। इनमें से जो किसी एक भी कसौटी पर न चढ़ सके, वह सत्याग्रही नही गिना जा सकता। सत्याग्रहीकी प्रतिज्ञाके टुकड़े नही किये जा सकते क्योंकि सत्यके टुकड़े नहीं हो सकते। सत्य एक ही है, अविभक्त है, अविभाज्य है, और तीनों कालमें उसकी यही स्थिति रहती है। सत्यकी उपमा मेहराबसे दी जा सकती है। मेहराबकी एक ईट खिसकी कि सारी मेहराब गई। खोटा रुपया निन्यानवे दुकानोंमें चल जानेके आधार पर सौवीं दूकानमें चलनेकी शक्ति नही पा जाता। वह तो जन्मसे ही खोटा था। इतना ही है कि उसकी कसौटी देरसे हुई।

इसी तरह जो अन्तिम कसौटी पर भी न चढ़ सके, वह सत्याग्रही नही हो सकता, दूसरा और कुछ भले ही हो। उसके मर्यादित दुःख सहन करनेसे भले जनता ऊँची चढ़ी हो, भले ही उसे भी उसकी सहन-शक्तिका लाभ मिला हो, किन्तु वह सत्याग्रहीकी पंक्तिमें नहीं खपता, उसे सत्याग्रही होनेका प्रमाणपत्र नही मिलता। सत्याग्रहीके बारेमें सोलनकी भाषामें कह सकते हैं, 'किसीको उसके मरणके पहले सत्याग्रही मत गिनना।[1]'

बारडोलीके सत्याग्रही इस वचनको याद कर लें और हृदयमें उतार लें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-७-१९२८

७५. आल्प्स या हिमालय

स्वदेशीकी भावनाकी समाप्ति खादीमें ही नहीं होती। जिन लोगोंमें स्वदेशीकी भावना जाग्रत है वे अपनी अधिकांश आवश्यकताएँ अपने आसपासके देश अर्थात् स्वदेशमें पूरी करेंगे, उसीसे सन्तुष्ट रहेंगे और अपनी झोंपड़ीसे निराश होकर दूसरेके राजसी भवनसे ईर्ष्या न करेंगे और न ऐसे भवनोंको प्राप्त करनेके लिए बेकार दौड़-धूप ही करेंगे।

मेरे मनमें यह विचार एक मित्र द्वारा प्रेषित अल्मोड़ाके आगे स्थित हिमालयके दृश्यके निम्न मधुर वर्णनसे आया है:[2]

हिमालयके सामने आल्प्स तो मानो बच्चा है। यूरोपके लोगोंको आल्प्स पर मुग्ध होनेका अधिकार है। वे लोग उसकी घाटियोंमें आनन्दके रसका पान करते हैं और स्वास्थ्य-लाभ करते हैं। उनको हिमालयको देखनेके लिए आनेकी जरूरत नहीं है; और यदि वे आते है तो आल्प्सके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुकनेके बाद आते हैं। हमारे पढ़े-लिखे लोग हिमालयको नहीं जानते। वे यह नहीं जानते कि उसकी वनस्पतियोंमें आरोग्य देनेका चमत्कारी गुण है। वे यह जानना भी नही चाहते।

१. 'हिस्ट्रीज' में सोलनने हेरोडोटससे कहलवाया है कि मरणके पहले तक किसीको सुखी न कहें, बहुत हुआ तो आप उसे भाग्यवान कह सकते हैं।

२. यह वर्णन यहाँ नहीं दिया गया है।

हिमालयकी वायु औषध-रूप है, यह आयुर्वेदमें बताया गया है। किन्तु हमें उसकी परवाह ही नही है। हम हिमालयके सौन्दर्यसे गर्वित नही होते।

यदि नवयुवकोके लिए हिमालयकी पैदल यात्रा करना अनिवार्य कर दिया जाये तो कैसा अच्छा हो? इससे उनके स्वास्थ्य, आयु, ज्ञान, देश-भक्ति और कलामें कितनी वृद्धि हो? ऐसी यात्रा सामान्य स्थितिके विद्यार्थी भी कर सकते है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १५-७-१९२८

७६. मानापमानमें समत्वभाव

नडियाद ताल्लुकेके लोगोंकी ओरसे २४ जूनको भाई लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आसर और इमाम अब्दुल कादिर बावजीरको मानपत्र दिया गया था। वहाँकी समितिके मन्त्रीने एक पत्र लिखकर इस सम्बन्धमें टिप्पणी लिखनेका अनुरोध किया है। सामान्यत: 'नवजीवन'में ऐसी बातों पर टिप्पणियाँ नहीं लिखी जाती। सेवकोंके भागमें मान और अपमान दोनों ही आते है। जब हम अपमानके सम्बन्धमे टिप्पणी नही लिखते, तो मानके सम्बन्धमें कैसे लिखें? फिर ये दोनों सज्जन तो आश्रमवासी है। उनको जो मानपत्र दिया गया, हम उसपर टिप्पणी किस लिए लिखें? यदि उन्हें प्रोत्साहनके लिए मानपत्र अथवा पत्रिकाओमें उनके उल्लेखकी जरूरत हो तो ये लोग आश्रमवासी नहीं रह सकते। फिर भी इन मानपत्रोंके पीछे एक ऐसी बात है जिसका उल्लेख करना अवश्य ही उचित है। इन दोनों सेवकोंको अंग्रेजी भाषाका ज्ञान नहीं है और गुजरातीका भी जो ज्ञान है वह उन्होंने किसी पाठशालामे प्राप्त नहीं किया है। उन्होंने अनुभवकी शालामें अध्ययन किया है। फिर भी पाठशालाओसे अनभिज्ञ और अंग्रेजी ज्ञानसे कोरे इन तथा अन्य लोगोंकी सहायताके बिना श्री वल्लभभाई संकट-निवारण के[1] महान कार्यमें कभी सफल न हो सके होते। भाई लक्ष्मीदास अपनी कार्यक्षमतासे सर पुरुषोत्तमदासको मुग्ध कर चुके है। "उनकी हिसाबके मामलेमें सावधानी, निष्पक्षता, ऊँचे दर्जेकी कुशलता और तन्त्र-संचालनकी शक्ति"के दर्शन सर पुरुषोत्तमदासको संकट-निवारणके प्रत्येक कार्यमें हुए थे। संकट-निवारणके अवसर पर और बारडोलीमें इस समय मिलनेवाले अनुभवसे हमें यह स्पष्ट रूपसे ज्ञान हो जाता है कि स्वराज्यका तन्त्र चलानेके लिए हमें अंग्रेजी पढ़े-लिखे अथवा अंग्रेजीमें भाषण देनेवाले विद्वान् अधिक नही चाहिए, उस तन्त्रको चलानेके लिए लोगोकी भाषा जाननेवाले, उनकी आवश्यकताओंको समझनेवाले, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्य-परायण, लोगोंसे प्रेम रखनेवाले, उद्यमी, गरीब, निडर और मानापमानके सम्बन्धमें उदासीन सेवक चाहिए।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १५-७-१९२८

१. आशय गुजरातकी बाढ़से है।

७७. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१५ जुलाई, १९२८

प्रिय मोतीलालजी,

आपका पत्र[1] मिला। सौभाग्यसे वल्लभभाई भी जिला परिषद्के सिलसिलेमें यहाँ आये थे। उनसे मेरी पूरी बातचीत हुई। उनका कहना है कि कमसे-कम इस वर्ष तो इस ताजको स्वीकार करना उनके लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि यदि बारडोली संघर्ष समाप्त भी हो जाता है तो उसके परिणामोंको स्थायी बनानेके लिए बहुत-कुछ करना शेष रह जायेगा और उसके लिए उन्हें अपना पूरा समय और शक्ति लगानी पड़ेगी। मै समझता हूँ, उनका कहना ठीक ही है। इसलिए अब उनका तो सवाल ही नही रहा। आपके बारेमें जितना ज्यादा सोचा है, उतना ही ज्यादा मुझे लगता है कि आपको किसी अधिक अनुकूल अवसरके लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए, और मैं आपके इस विचारसे पूरी तरह सहमत हूँ कि हमें नौजवानोंको अवसर देना चाहिए। और उनमें जवाहरलालसे ज्यादा तो क्या, उसके बराबर भी कोई नही है। इसलिए मैंने तार द्वारा आपको सूचित किया है कि यदि मेरे तारके उत्तरमें आप तार द्वारा अपनी असहमति नही प्रकट करते तो मै प्रान्तीय समितियोंसे उसका नाम स्वीकार करनेकी सिफारिश कर रहा हूँ।

कमेटीके सदस्योंके नाम जारी किया गया आपका परिपत्र आज मिला। मैं तो इससे भी एक कदम आगे जाकर भावी संसदके लिए संविधानके अन्तर्गत यह अधिकार सुरक्षित रखनेको कहूँगा कि तब हमें जो दायित्व अपने सिर लेने पड़ सकते हैं, वह न्याय और समानताकी खातिर उनमें संशोधन कर सके। आज, आपने जो नरम ढंगका सुझाव रखा है, उसे भी कार्यान्वित करनेकी शक्ति हममें है या नहीं, यह तो और बात है। लेकिन जैसा कि आपने कहा है, हमारे मनमें क्या है, यह तो बता ही दिया जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३६३६) की फोटो-नकलसे।

१. ११ जुलाई, १९२८ का पत्र (एस० एन० १३६३३), जिसमें कांग्रेस अध्यक्ष-पदके लिए वल्लभभाई पटेल अथवा जवाहरलाल नेहरूका नाम सुझाया गया था।

७८. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
१५ जुलाई, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्र मिले। तुम्हें वहाँ जिन समस्याओंका कोई हल न सूझे उन्हें तुम अपरिहार्य मानकर सह लेना। 'गीताजी' का कौन-सा श्लोक हमें ऐसा करनेकी सीख देता है — सोचना और यदि मिल जाये तो मुझे लिखना। तुम्हें जब-जब कठिनाइयों का सामना करना पड़े तब-तब 'गीताजी' का सहारा लेना। ऐसा करनेसे वह तुम्हारे लिए कामधेनुके समान सिद्ध होगी। मैं तो आज हूँ और कल नहीं किन्तु 'गीताजी' तो मृत्युपर्यन्त तुम्हारा साथ देगी और उसके बादकी यात्रामें भी वह तुम्हारे लिए पाथेयका काम देगी। जो भी अध्यापक या बालक तुम्हारे प्रति समुचित बरताव न करे उसके प्रति धीरज और प्रेमपूर्ण व्यवहार करना; इस तरह तुम उनका मन जीत सकोगी। विद्यावतीजी जितना समय दें उतने ही समयमें जितना सिखाया जा सकता हो उतना सिखाकर सन्तुष्ट रहना। तुम चरखेके बदले तकलीका उपयोग क्यों नही करती? हम जैसे लोगोके लिए चरखा कमाईका साधन नही बल्कि यज्ञ है। यह बात विद्यावतीको समझाना। जिस तरह यदि कोई तुम्हारी आलोचना करे, फिर वह सच्ची हो या झूठी, तो भी तुम्हें अपने मनमें रोष नही करना चाहिए और न उसका प्रत्युत्तर ही देना चाहिए; उसी प्रकार मेरे बारेमें किसी तरहकी आलोचना सुननेको मिले तो भी तुम्हें रोष नहीं करना चाहिए।

यहाँ अच्छी वर्षा हो रही है। यों कहा जा सकता है कि हमारे चाहते ही वर्षा होने लगती है। महादेवको उठ खड़े होनेमें अभी समय लगेगा किन्तु वह दिन-दिन स्वस्थ होता जा रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८४)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

७९. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

आश्रम, साबरमती
१५ जुलाई, १९२८

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम दोनोंके पत्र मिले। आजकल मुझे समय ही नही मिलता इसलिए मै अधिकतर पत्र सुबह तीनसे चारके बीच लिखवा देता हूँ और यह मेरे लिए सुविधाजनक भी है। मुझे अधिकांश समय भोजनालयके लिए देना पड़ता है। यह काम मुझे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और आवश्यक लगता है, इसलिए मैं इसमें समय देता हूँ। आजकल सम्मिलित भोजनालयमें लगभग सौ व्यक्ति भोजन करते हैं। किन्तु फिर भी भोजनके समय तनिक भी शोरगुल नही होता और पूर्ण शान्ति बनी रहती है। अगर इन दिनों तुम लोग यहाँ होते तो आश्रमको बहुत बदला हुआ पाते। चि० छगनलालके पास जो दसेक हजार रुपये थे वे उसने दे दिये है और अब वह सही मानीमें अपरिग्रह-व्रतका पालन कर रहा है। इस त्यागमें चि० काशीकी ओरसे भी पूरा सहयोग मिला। यह कुटुम्ब अब सम्मिलित भोजनालयमें भोजन करने लगा है। भाई महादेवके पास चार हजार रुपये थे; उन्होंने भी यह रकम दे दी है। अपना अलग खाना बनाने वाले जो लोग बाकी रह गये हैं वे भी आगामी कार्तिक सुदी १ तक अलग खाना बनाना बन्द कर देंगे। अब ऐसे थोड़े ही लोग बचे हैं।

हरिलाल यहाँ एक दिन रह गया। रामदास और रसिक अभी बारडोलीमें ही हैं। 'गीताजी' का पाठ रोज होता है। हर चौदहवें दिन अठारह अध्याय पूर्ण हो जाते हैं।

'आत्मकथा'[1] में मैंने रुस्तमजीके मुकदमेके बारेमें जो-कुछ लिखा है वह प्रेमवश ही लिखा है। मैंने अन्य नाम नहीं दिये किन्तु उक्त नाम इस विचारसे दिया है कि जबतक 'आत्मकथा' का महत्त्व बना रहेगा तबतक इस नामकी कीमत भी आँकी जाती रहेगी। कुमारी श्लेसिनके[2] बारेमें तुमने जो लिखा है उसे मैं समझता हूँ। क्या वह आधी पगली नही है? उसने खुद मुझे मूर्खतापूर्ण पत्र लिखा है। यदि तुम अब भी मेरी बात न समझ सके हो तो लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दुबारा नहीं पढ़ा है।

गुजराती (जी० एन० ४७४१) की फोटो-नकलसे।

१. भाग ४, अध्याय ४७; **यंग इंडिया**के १२-४-१९२८ के अंकमें प्रकाशित।

२. सोंजा श्लेसिन; **आत्मकथा** देखिए भाग ४, अध्याय १२; तथा खण्ड ३६ पृष्ठ ४९२ भी।

८०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१६ जुलाई, १९२८

भाई घनश्यामदासजी,

आपका प्रेमल पत्र मीला है। बात तो यह है कि उस पत्रकी भाषा भिक्षापात्र सामने रखनेसे मुझको और रोकेगी। परन्तु भिक्षार्थीको ज्ञान कहांसे, इसलिये जब मैं विवश हो जाउंगा तब द्वार पर खड़ा हो जाउंगा।

बारडोलीका समझौता हो जायगा ऐसा कुछ अब प्रतीत होता है।

आपका,

मोहनदास

मी० डब्ल्यू० ६१६१ से।

सौजन्य : घनश्यामदाम बिड़ला

८१. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

१७ जुलाई, १९२८

प्रिय भगिनी,

आपका पत्र मीला। यदि आप शांत सचमुच है तो लड़की आपकी शांतिमें से शांति ले लेगी।

निखिलका प्रश्न गूढ़ है। यदि आपने देहका मोह छोड़ दीया है तो निखिलको हरगीज़ धोका न दे। वह मांसकी दवा नहिं खाना चाहे तो उस पर बलात्कार न कीया जाय। यदि वह दाकतरके समझानेसे भी पीना चाहे तो उसे न रोका जाय। केवल निखिल पर इस बातको छोड़ दी जाय। परंतु यदि आपहि के दिलमें इस बारेमें कुछ शंका है तो निखिलको उस दवाको लेनेके लीये समझाना आपका धर्म हो जाता है। शास्त्रके नामसे जिसकी पहचान कराइ जाती है उन्हीं पुस्तकोंमें लीखा है कि दवाके नामसे मद्य मांसादि लेनेमें कोई हानि नहिं है। निरामिषाहारि भी ऐसे बहोत है जो दवाके नामसे मांसादि लेनेमें कोई दोष नहिं समझते हैं। आवेशमें आकर कुछ भी न करें।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० १६५८की फोटो-नकलसे।

८२. पत्र : सी० एस० विश्वनाथ अय्यरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। इससे पहले भी एक पत्र आया था। दुर्भाग्यवश अबतक मैं पाण्डुलिपि को[1] पढ़ नहीं पाया हूँ। वैसे वह बराबर मेरे सामने रहती है, लेकिन मैं काम और नई जिम्मेदारियोंके बोझसे इस तरह दबा हुआ हूँ कि इसे मैं कब पढ़ पाऊँगा सो कहना कठिन है। इतना ही कह सकता हूँ कि मै इसे पढ़ना चाहता हूँ।

मैं ऐसा मान रहा हूँ कि आपने मुझे जो पाण्डुलिपि दी थी उसकी एक अति-रिक्त प्रति आपके पास थी। यदि आपको पाण्डुलिपिकी वापसीकी जल्दी हो तो संकोच न कीजिएगा। लेकिन अगर जल्दी न हो तो जबतक मुझे इसे पढ़नेका समय नही मिल जाता तबतक तो मैं इसे अपने पास ही रखना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० एस० विश्वनाथ अय्यर, वकील
९०, एक्सटेन्शन, कोइम्बतूर

अंग्रेजी (एस० एन० १३४७८) की माइक्रोफिल्मसे।

८३. पत्र : के० वेंकटप्पैयाको[2]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

सी० वी० रंगम् चेट्टीके बारेमें लिखी आपकी लम्बी चिट्ठी मिली। मैं निश्चय ही यह नहीं चाहता था कि आप इतना विस्तृत पत्र लिखें। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मुझे इसमें कभी सन्देह नहीं रहा कि आपने अपनी समझके अनुसार जो-कुछ किया ठीक ही किया।

१. गीताके अनुवादकी पाण्डुलिपि।

२. श्री वेंकटप्पैयाके पत्रके साथ इस पत्रकी एक नकल आवश्यक कार्रवाईके लिए अ० भा० च० सं०के मन्त्रीको भेजी गई थी।

खुद मैं यह नहीं मानता कि हमें दूसरे प्रान्तोंमें बनी खादीको अपने प्रान्तमें स्थान न देनेका आग्रह रखना चाहिए। आज इस विषय पर शंकरलालसे[1] मेरी बातचीत हुई। उन्होंने आपको अधिक विस्तारसे लिखनेका वादा किया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कोंडा वेंकटप्पैया गारु
गुंटूर

अंग्रेजी (एस० एन० १३६४२) की माइक्रोफिल्मसे।

८४. पत्र : सुभाषचन्द्र बोसको

आश्रम, साबरमती
१८ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला और उसके साथ ही एक पत्र सतीश बाबूका भी मिला। आपने अपने पत्रकी नकल उनको भेजकर बिलकुल ठीक किया था; उन्होंने अपने पत्रमें आपके द्वारा उठाये सवालोंका तफसीलवार जवाब दिया है। सतीश बाबू लोक-मतको अपने विचारके पक्षमें करनेके लिए किस तरीकेसे प्रचार कर रहे हैं, इसकी तो मुझे कोई खास जानकारी नहीं है, लेकिन आपको इतना जरूर बता दूँ कि प्रदर्शनीके बारेमें सतीश बाबूके विचारसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। यही बात मैंने श्रीयुत सेनगुप्तको लिखे पत्रमें भी कही है। मेरे विचारसे, जबतक हमें पूरा भरोसा न हो कि अमुक चीज उपयोगी है और लोग उसे अपनायें इसके लिए उस चीजको प्रोत्साहन देनेकी भी जरूरत है, तबतक हमें उसको प्रदर्शनीमें स्थान नहीं देना चाहिए — ऐसे यन्त्र आदिको भी नहीं। यहाँ तक कि जो चीजें उपयोगी तो हैं किन्तु जिनका उपयोग करनेके लिए कांग्रेस द्वारा जनताको प्रोत्साहन दिया जाना जरूरी नहीं है, ऐसी उपयोगी चीजोंको भी प्रदर्शनीमें स्थान देना मैं ठीक नहीं मानता, क्योंकि उससे बेकार ही जनताका ध्यान बँटेगा। उदाहरणके लिए, मैं उसमें घड़ियोंको स्थान देनेके पक्षमें नहीं हूँ। यद्यपि हम घड़ियाँ नहीं बनाते, फिर भी हमें उनकी जरूरत तो है ही; लेकिन साथ ही यह बात भी ठीक है कि उनके विभिन्न निर्माताओंके पास उनके विज्ञापनके पर्याप्त साधन हैं। इस सवाल पर हममें मतभेद हो सकता है। लेकिन मतभेदोंके कारण हममें कटुता या तिक्तता पैदा हो जाये और हम अपना-अपना मत जनताके सामने न रख सकें ऐसा नहीं है। यदि सतीश बाबूके खिलाफ ऐसी कोई बात हो जिससे साबित होता हो कि उन्होंने अपने प्रचारमें अनुचित तरीकोंका सहारा लिया तो मुझे सूचित करें; मैं उसके सम्बन्धमें उन्हें सहर्ष लिखूँगा।

१. शंकरलाल बैंकर।

आशा है, बर्मामें नजरबन्दीके दौरान आपको जो बीमारी हो गई थी, उससे अब आप पूरी तरह छुटकारा पा गये होंगे। पण्डित मोतीलालजी के बारेमें आपका तार[1] मिल गया है। मोतीलालजी खुद ही इस सम्मानको स्वीकार करनेको तैयार नही है। मै उनके विचारसे सहमत हूँ, और 'यंग इंडिया' के आगामी अंकके लिए मैंने एक लेख भी तैयार कर लिया था, जिसे श्रीयुत सेनगुप्तकी सहमतिसे छापनेवाला था। किन्तु मेरे तारके उत्तरमें उन्होने जो-कुछ लिखा, उसके आधार पर मैंने लेखको रद कर दिया और जबतक बंगालके भाई नहीं चाहेंगे तबतक मैं चुनावके विषयमे 'यंग इंडिया' में या अन्यत्र कुछ लिखनेवाला नहीं हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३६४१)की फोटो-नकलसे।

८५. पत्र: शौकत अलीको

सत्याग्रहआश्रम, साबरमती
१८ जुलाई, १९२८

प्रिय भाई,

आपका पत्र अभी-अभी मिला। अपनी बहन और उनकी मृत्युके बारेमें अगर आपने बहुत अलंकृत भाषामे लिखा होता तो आपके दुःखकी गहराईका उतना एहसास न होता जितना कि इन सीधे-सादे शब्दोंसे होता है। वे आपकी बहन ही नही, जरूरत पर काम आनेवाली साथिन भी थी। मगर मै जानता हूँ कि आपसे यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि आप ईश्वर पर भरोसा रखें, उसकी दयाका सहारा लें। आपमें स्वयं ही उसके प्रति पर्याप्त आस्था है और इसलिए इसके लिए आपसे किसीको कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। अंग्रेज अधिकारियोंकी भर्त्सना करते हुए आपने जो-कुछ कहा है, उससे हालाँकि मै पूर्णतः सहमत हूँ, लेकिन साथ ही मृत्यु-जैसे प्रसंग पर भी नवाबने जो हृदयहीनता दिखाई है, उसके लिए आपकी तरह उसे क्षमा करनेकी उदारता मैं नहीं दिखा सकता।[2]

मुझे उम्मीद है कि उच्च न्यायालयमें आपका जो मुकदमा चल रहा है, उसमें आपकी जीत होगी।

१. १७ जुलाईका तार, जिसमें लिखा था कि "बंगाल अध्यक्ष-पदके लिए मोतीलालजीके नामपर एकमत। कृपया उनके नामकी सिफारिश करें अन्यथा तटस्थ रहें।"

२. अपने १६ जुलाईके पत्रमें शौकत अलीने लिखा था कि उन्होंने नवाबसे अपनी बहनकी कब्र देखनेकी अनुमति माँगी थी, किन्तु नवाबने तार द्वारा उसका बहुत खराब जवाब भेजा।

जामियाके सम्बन्धमें आपकी बात[1] मैं समझता हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि अगर डॉ० जाकिरहुसैनको जामियाके मामलेमें अपनी समझके अनुसार काम करनेकी पूरी छूट नहीं दे दी जाती तो संस्था बरबाद हो जायेगी। खतरे तो दोनों रास्तोंमें है। अगर आप इस बड़ी नियन्त्रण समितिको, जो इतनी बड़ी है कि उसे सँभालना मुश्किल है, बरकरार रखते हैं तो फिर डॉ० जाकिरहुसैन और उनके सहयोगियोंको फाकाकशी करनी पड़ेगी। अगर आप इसका नियन्त्रण एक ऐसी छोटी समितिको सौंप देते हैं जिसके सदस्योंसे डॉ० जाकिरहुसैन जरूरत होने पर आसानीसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हों और जिसकी बैठकें भी सुगमतासे बुला सकते हों तथा अगर आजके अस्पष्ट संविधानके बजाय स्पष्ट और पूर्णतः असहयोगवादी संविधान अपना लिया जाता है तो कठिनाइयों पर पार पा लेनेकी कुछ उम्मीद की जा सकती है। अब आप तय कीजिए कि इन दोनों रास्तोंमें से कौन-सा अच्छा है या अगर आप सोच सकते हों तो कोई तीसरा रास्ता ही सोचिए। और अजमल-कोषकी रकम, जो अभी तो बहुत छोटी ही है, तबतक जामियाके लिए नहीं दी जा सकती जबतक कि उसकी स्थिति मजबूत नहीं हो जाती और उसे ऐसा रूप नहीं दे दिया जाता जो सबके लिए स्वीकार्य हो। डॉ० अन्सारी इस कामसे यहाँ आनेवाले थे और अगर वे आ सकते तो हम तीनोंका साथ बैठकर बातचीत कर लेना ज्यादा अच्छा रहता। मगर अब तो मैं आपको डॉ० अन्सारीके बिना केवल इस विषय पर मुझसे बातचीत करनेके लिए अहमदाबाद आनेकी तकलीफ नहीं देना चाहूँगा। आपने अपना विचार बिलकुल साफ शब्दोंमें बता दिया है, और मैं यह भी उम्मीद नहीं करता कि आपके निर्णयको मैं किसी तरह प्रभावित कर सकूँगा। इसके अलावा, मैं जानता हूँ कि आप दिल्लीमें जो-कुछ भी करेंगे वह अपनी बुद्धि और अपनी मान्यताके अनुसार पूरी तरह सोच-समझकर ही करेंगे।

मोतीलालजी के बारेमें आपकी बातें पढ़कर दुःख होता है।[2] मैं इस सम्बन्धमें कुछ कहनेमें तो असमर्थ हूँ, लेकिन यह महसूस करता हूँ कि वे जान-बूझकर तो कोई उलटा-सीधा निर्णय नहीं ले सकते। क्या आप इस सम्बन्धमें मुझसे कुछ करनेकी अपेक्षा रखते हैं या चाहते हैं कि कुछ करूँ? अगर हाँ, तो फिर यह कहनेमें संकोच

१. शौकत अलीने लिखा था : "मैं समझता हूँ, अजमल-स्मारकके लिए जो पैसा इकट्ठा किया जा रहा है, वह सारा-का-सारा जामियाको दे दिया जाये, ताकि उसका कर्ज चुकाया जा सके और जबतक उसके खर्चके लिए हमें बड़ी बड़ी रकमें नहीं मिल जातीं तबतक इसी पैसे से उसका खर्च भी चलाया जा सके। जामिया बरबाद हो रहा हो और हम पैसेको पकड़कर बैठे रहें, यह कैसी बात होगी? मैं चाहता हूँ कि जामिया जिन्दा रहे, क्योंकि इसके बिना हमारे पास अपने बच्चोंको शिक्षा देनेके लिए कोई संस्था नहीं होगी।..."

२. शौकत अलीने लिखा था कि "स्पष्टतः पण्डितजी के रवैयेमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और वे चाहते हैं कि मद्रासका प्रस्ताव पास हो जाये और मुसलमान विधान मण्डलोंमें स्थान सुरक्षित करवानेका आग्रह छोड़ दें तथा सिन्धके पृथक्करणके बारेमें भी अपनी माँग छोड़ दें।...मुझे लगता है कि यदि पण्डितजी महासभाका फार्मूला अपनानेका आग्रह रखेंगे तो मुसलमान कांग्रेसियोंकी स्थिति बड़ी अटपटी हो जायेगी।

न कीजिए कि आप मुझसे क्या अपेक्षा रखते हैं या मुझसे क्या करवाना चाहते हैं। अगर मुझे आपकी बात ठीक लगेगी और आप जो-कुछ करनेको कहेंगे वह मेरे बसमें होगा तो आप भरोसा रख सकते हैं कि मैं वह अवश्य करूँगा।

हृदयसे आपका,

मौलाना शौकत अली
सुलतान मैन्शन
डोंगरी, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३४६५) की फोटो-नकलसे।

८६. पत्र: विट्ठलभाई पटेलको

१८ जुलाई, १९२८

भाईश्री विट्ठलभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। यह पत्र तुम तक पहुँचनेके पहले ही परिणामका[1] थोड़ा-बहुत पता तो हमें चल ही जायेगा। मैंने इस बारेमें रविवारको वल्लभभाईसे पूरी तरह विचार-विमर्श कर लिया था।

चाहे जो परिणाम निकले तुम रंगून अवश्य हो आओ। हमारा काम ऐसे ही चलना चाहिए।

मोतीलालजीसे तुम्हारे सम्बन्ध बने हुए हैं यह अच्छी बात है।

यात्राके दौरान मुझे पत्र तो लिखते ही रहना। मैंने रंगूनमें मगनलाल प्राण-जीवनदासको लिखा है। तुम उन्हींके यहाँ तो ठहरोगे न?

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च:]

तुम हर माह जो पैसा भेजते हो उसे फिलहाल इकट्ठा ही होने दो। यदि कोई बात सूचित करने लायक जान पड़े तो लिखना।

तुम्हारी अनुमतिके बिना मैं उन पैसोंका उपयोग नहीं करना चाहता; ब्याज तो चढ़ेगा ही।

मोहनदास

गुजराती (एस० एन० १४४५२)की फोटो-नकलसे।

१. बारडोलीके सत्याग्रहका।

८७. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

साबरमती आश्रम,
१८ जुलाई, १९२८

भाई हरिभाऊ,

इसके साथका पत्र पढ लेना। इस मामलेकी जाँच करना और भाई कमलाकरको सीधे उत्तर दे देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०६१)की नकलसे।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

८८. दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके लिए

दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस, जोहानिसबर्गके मन्त्रीने निम्न तार भेजा है :

प्रमार्जन योजना (कन्डोनेशन स्कीम) स्वीकृत। संघमें अवैध रूपसे प्रविष्ट माने गये जो लोग अभी भारतमें हैं वे या तो आगामी ३० सितम्बर तक यहाँ लौट आयें या फिर आवेदनपत्र लिख भेजें। इनका उक्त तिथिसे पहले-पहले एशियाई मामलोंके कमिश्नरके पास प्रिटोरिया पहुँच जाना जरूरी है। आवेदन-पत्र भेजनेके बाद उन्हें भी ३० मार्च, १९२९ तक संघमें अवश्य लौट आना चाहिए। इस सूचनाको भारतके सभी भागोंमें अखबारों द्वारा भली-भाँति प्रचारित करें।

इस प्रकार दक्षिण आफ्रिकामें प्रमार्जन योजनाके सम्बन्धमें जो आन्दोलन चल रहा था और जिसके कारण परम माननीय शास्त्रीकी स्थिति बड़ी विषम हो गई थी तथा जिससे दक्षिण आफ्रिका और यहाँके लोग भी काफी चिन्तित थे, वह समाप्त हो गया है। जिन भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकामें अधिवासके अधिकार प्राप्त हैं, जिनके पास प्रमाणपत्र हैं तथा जो संघमें लौटनेके इस अधिकारका लाभ उठाना चाहते हैं, वे यदि ३० सितम्बरसे पहले खुद ही वहाँ लौट जानेका इरादा न रखते हों तो एशियाई मामलोंके कमिश्नरको प्रिटोरियाके पते पर अपने-अपने आवेदनपत्र भेजनेमें शीघ्रता बरतें ताकि उनके आवेदनपत्र ३० सितम्बर तक वहाँ पहुँच जायें। हर आवेदकको अपने बारेमें पूरी जानकारी देनी चाहिए—अर्थात् अपना नाम-पता, पेशा, प्रमाणपत्रकी तिथि और संख्या तथा अन्य आवश्यक बातें। आवेदनपत्र काफी पहले ही रजिस्टर्ड डाकसे भेजना चाहिए। बड़ी खुशी होती, अगर मैं ज्यादा निश्चित सलाह दे सकता।

लेकिन, मुझे न आवेदनपत्रका प्रारूप[1] प्राप्त हुआ है और न योजनाका पाठ[2] ही। इसलिए मैं वैसी निश्चित सलाह नही दे सकता। और यद्यपि मैं आशा करता हूँ कि आगे जो जानकारी मिलेगी उसे मैं तुरन्त प्रकाशित कर दूँगा, लेकिन कोई भी और जानकारी मिलनेकी राह देखते हुए आवेदनपत्र भेजनेमें देर न लगायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-७-१९२८

८९. असहयोग या सविनय प्रतिरोध

सरकारी क्षेत्रोंमें कुछ ऐसी आशंका व्यक्त की जा रही है कि बारडोलीमें चल रहा आन्दोलन असहयोग आन्दोलन है। इसलिए असहयोग और सविनय प्रतिरोधका भेद स्पष्ट कर देना आवश्यक है। व्यापकतर शब्द सत्याग्रहमें जिसमें सत्य तथा अहिंसा पर आधारित कोई भी प्रयास शामिल है, ये दोनो ही आ जाते हैं। जब हमने अपने संघर्षके सन्दर्भमें असहयोग शब्दका प्रयोग पहले-पहले किया तो इसमें अन्य चीजोंके अलावा वे तमाम मदें शामिल मानी गई थी जिनका उल्लेख उस कार्यक्रममें हुआ था जो १९२० में कलकत्तामें आयोजित विशेष कांग्रेस अधिवेशनमें[3] स्वराज्य-प्राप्तिके उद्देश्यसे निर्धारित किया गया था और जिसकी पुष्टि बादमें नागपुर कांग्रेसने की थी।[4] इसके अनुसार यह तय पाया गया था कि स्वराज्य-प्राप्तिके उद्देश्यके अलावा और किसी भी प्रयोजनसे वर्तमान सरकारसे न कोई वार्ता चलाना सम्भव है और न उसको कोई निवेदनपत्र आदि देना ही। यह तो सच ही है कि जैसी जागृति बारडोलीमें आई है, जैसा प्रयास वहाँ किया जा रहा है, वैसी कोई भी जागृति और कोई भी प्रयास हमें स्वराज्य-प्राप्तिके लिए किये गये किसी प्रत्यक्ष प्रयत्नमे भी अधिक तेजीमे स्वराज्यकी ओर ले जाता है। लेकिन बारडोली-संघर्षका उद्देश्य एक खास शिकायतको दूर कराना है। सबसे पहले प्रार्थना और आवेदनपत्रोंका पारम्परिक तरीका ही अपनाया गया था। लेकिन जब पारम्परिक तरीका बिलकुल निष्फल सिद्ध हुआ तो बारडोलीकी जनताने श्रीयुत वल्लभभाई पटेलको सविनय प्रतिरोधके लिए अपना नेतृत्व करनेको आमन्त्रित किया। इस सविनय प्रतिरोधका मतलब संविहित सत्ता द्वारा बनाये कानूनों और नियमोंकी सविनय अवज्ञा भी नहीं है। इसका मतलब तो सिर्फ उस करका एक हिस्सा न चुकाना है जिसे पीड़ित रैयत अपने ऊपर अनुचित तथा अन्यायपूर्ण ढंगसे थोपा गया मानती है। वास्तवमें यह कर्जका एक हिस्सा, जिसके लिए उसका महाजन उसे देनदार बताता है, देनेसे इनकार करना है। यदि एक सामान्य व्यक्तिको वह ऋण न चुकानेका अधिकार है, जिसे वह स्वीकार नहीं करता तो रैयतको भी वह कर न चुकानेका उतना ही अधिकार है जिसे वह अन्यायपूर्ण मानती है। लेकिन, इस

१ व २. देखिए परिशिष्ट ३।

३. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ २४७-४८।

४. देखिए खण्ड १९, परिशिष्ट १।

लेखका उद्देश्य बारडोलीकी जनताकी कार्रवाईका औचित्य सिद्ध करना नहीं है। मेरा उद्देश्य तो स्वराज्य-प्राप्तिका लक्ष्य सामने रखकर चलनेवाले असहयोग और किसी शिकायतको दूर करनेके उद्देश्यसे किये गये वैसे सविनय प्रतिरोधका भेद स्पष्ट करना है जैसा कि बारडोलीमें चल रहा है। आशा है, अब यह भेद साफ-साफ समझमें आ गया होगा। और यह तो एक बिलकुल अलग बात है कि श्रीयुत वल्लभभाई पटेल तथा उनके नेतृत्वमें काम करनेवाले अधिकांश कार्यकर्त्ता पक्के असहयोगी हैं। ये सब जिनका प्रतिनिधित्व करते हैं, उनमें असहयोगी कम ही लोग हैं। राष्ट्रीय असहयोग स्थगित है। लेकिन असहयोगीका व्यक्तिगत धर्म उन्हे उन लोगोके पक्षमें खड़ा होनेसे नहीं रोकता जो अपनी असहायावस्थाके कारण सहयोगी बने हुए हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १९-७-१९२८

९०. सावन्तबाड़ीमें कताई

श्रीयुत एस० पी० पटवर्धन[1] द्वारा तैयार किया गया निम्नलिखित विवरण[2] कुछ दिनोंसे मेरी फाइलमें पड़ा हुआ था। आम पाठक इसे रुचिसे पढ़ेंगे और खादी-कार्यकर्त्ता इसे पढ़कर लाभ उठा सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १९-७-१९२८

९१. खादीके आनुषंगिक फल

इसी महीनेकी १४ तारीखको तमिलनाडके तिरुचेनगोडुमें श्रीयुत च० राजगोपालाचारी द्वारा संचालित गांधी आश्रममें एक धर्मार्थ-चिकित्सालय खोला गया है, जिसका उद्‌घाटन डॉ० रायने किया। सभामें पढ़ी गई रिपोर्टसे लगता है कि वहाँ खादीको केन्द्र बनाकर अस्पृश्यता और मद्यपान-निवारण, गाँवोंकी सफाई तथा चिकित्सा-सम्बन्धी सहायताकी प्रवृत्तियाँ भी प्रारम्भ कर दी गई हैं। आश्रम १७५ गाँवोंमें काम कर रहा है और खादीके जरिये इन गाँवोंको प्रति वर्ष ४५,००० रुपये प्राप्त हो रहे हैं। अस्पृश्यता-निवारणके लिए जो तरीका अपनाया गया है वह है, 'अस्पृश्यों'की उसी प्रकार सेवा-सहायता करना जिस प्रकार दूसरे लोगोंकी की जाती है। अब आश्रमका इरादा पैसेकी व्यवस्था होते ही उनके लिए ५ कुएँ खुदवाने और छोटे-छोटे घर बनवानेका है। उसे १०,००० रुपयेकी जरूरत है, जिसमें पाँच हजार रुपये पाँच कुओंके लिए चाहिए। कुओंकी बहुत सख्त जरूरत है, क्योंकि 'अस्पृश्यो'को "अपनी दैनिक आवश्यकताओंके लिए पानी लेने बहुत दूर जाना पड़ता है और तरह-तरहके

१. एक निष्ठावान खादी-कार्यकर्त्ता, जो पहले आश्रमकी राष्ट्रीय पाठशालामें काम करते थे और बादमें कोंकणमें काम करने चले गये थे।
२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

अपमान और कठिनाइयाँ सहनी पड़ती है"। १९ महीनोंमें आश्रमने १८,०९५ स्त्रियों और पुरुषोंको चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता प्रदान की। यह जरूरत इतनी बढ़ गई कि उसे ५,००० रुपये खर्च करके एक अच्छा-खासा दवाखाना खोलना पड़ा। इसीके उद्‌घाटनके लिए डॉ० राय इतनी दूरकी यात्रा करके आश्रम गये। अस्पताल पर प्रति मास २०० रुपये खर्च आता था, जिसे खादी-कार्यसे प्राप्त लाभके जरिए पूरा किया जाता था। लेकिन अब अनुदानोंकी आवश्यकता महसूस हो रही है। मैं समझता हूँ, सफाई-सम्बन्धी कार्योंके बारेमें रिपोर्टमें जो-कुछ कहा है, उसे यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देना चाहिए :[१]

ये खादीके अनेक आनुषंगिक फलोंके कुछ नमूने हैं। जो लोग खादीका मजाक उड़ाते हैं, वे जरा इसपर ध्यान दें; और मित्रोंसे मेरा यह अनुरोध है कि वे इस आश्रमकी सहायता करें, क्योंकि वह जनसाधारणको आत्मनिर्भर तथा स्वावलम्बी बनाकर उनकी सच्ची सेवा कर रहा है और इस तरह धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे उन्हें प्रभावित-अनुप्राणित कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १९-७-१९२८

९२. पत्र : टी० आर० फूकनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१९ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके यहाँ अखिल भारतीय चरखा संघकी ३१९-२-३ रुपयोंकी रकम बहुत दिनोंसे बकाया चली आ रही है। क्या अब आप उसका भुगतान कर सकेंगे?[२]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० आर० फूकन
गोहाटी (असम)

अंग्रेजी (एस० एन० १३६४४)की माइक्रोफिल्मसे।

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। रिपोर्टमें कहा गया था कि यहाँके लोग बड़े रूढ़िवादी हैं और नई चीजोंको स्वीकार करनेको तैयार नहीं होते। इसलिए सफाईका काम बच्चोंसे प्रारम्भ करनेका निश्चय किया गया। तदनुसार बच्चोंके लिए एक स्नान-योजना तैयार की गई, जिसके अन्तर्गत पड़ोसके बारह वर्षसे कम उम्रके सभी बच्चोंके लिए शनिवारको तेल और साबुन लगाकर और मंगलवारको साबुन लगाकर नहानेकी व्यवस्था की गई। इस कामको डाक्टर तथा आश्रमके सदस्य अपनी देख-रेखमें सामने खड़े होकर करवाते हैं। पहले तो बहुतसे बच्चे नहाने आते थे, लेकिन अब संख्या घटते-घटते २० रह गई है। इस योजनाका लाभ सिर्फ अस्पृश्योंने उठाया है।

२. इसकी एक प्रति अ० भा० च० सं०के मन्त्रीके १८ जुलाईके दफ्तरी पत्र, सं० ३१८३ के सम्बन्धमें उन्हें अहमदाबाद भेज दी गई थी।

९३. पत्र : टी० प्रकाशम्को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२० जुलाई, १९२८

प्रिय प्रकाशम्,

आपका पत्र पढ़कर तो मैं दंग रह गया। इससे स्पष्ट है कि सार्वजनिक कारोबारके बारेमें हम दोनोंकी मान्यताओंमें आकाश-पातालका अन्तर है। एक लोकसेवी व्यक्ति द्वारा किसी सार्वजनिक सौदेके बारेमें दी गई व्यक्तिगत गारंटीका जो अर्थ आप लगाते हैं वह मेरे लिए तो बिलकुल नया है। दक्षिण आफ्रिका और भारतमें मैंने जो-कुछ देखा-जाना है, वह आप जो-कुछ कह रहे हैं, उससे सर्वथा भिन्न है। मैंने तो यही देखा है कि यदि किसी लोकसेवी व्यक्तिने किसी सार्वजनिक सौदेके बारेमें मौखिक आश्वासन भी दे दिया और बादमें वह सौदा उसकी उन अपेक्षाओंके अनुरूप साबित नहीं हुआ जिनके आधार पर चरखा संघ-जैसी किसी सार्वजनिक संस्थाने उसमें अपना पैसा लगाया है तो फिर उस व्यक्तिने अपनी जेबसे सारा नुकसान चुका दिया है। अभी पिछले ही दिनों एक व्यक्तिने अपनी जेबसे २१,००० रुपयेका नुकसान भरा, जिससे वह आर्थिक दृष्टिसे लगभग बरबाद हो गया। उसका दोष यह था कि न केवल उसकी ईमानदारी पर बल्कि उसकी निर्णय-बुद्धि पर भरोसा करके उस रकमकी देख-रेखका भार उसे सौंपा गया था। लोकसेवी जनों और उनके कार्य-व्यवहारके मार्ग-दर्शनके लिए जो नियम आपने सुझाये हैं, यदि उन्हींके अनुसार लोग चलें तो मेरे विचारसे किसी प्रकारके विस्तृत सार्वजनिक कारोबारकी कोई सम्भावना ही नही रह जायेगी।

जब हमारी मान्यताओंमें ही मूलभूत अन्तर है तब फिर आपके द्वारा उठाये तथ्य-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करना बेकार है। हाँ, यदि आप सार्वजनिक व्यवहार और सार्वजनिक प्रामाणिकता सम्बन्धी अपने विचारोंसे सहमत हो सकें तो फिर मैं आपके बताये तथ्योंपर प्रसन्नतापूर्वक विचार करनेको तैयार हूँ। तब यदि कुछ ऐसा पता चलेगा कि तथ्योंको ध्यानमें रखते हुए आपके साथ कोई अन्याय किया गया है तो आपको पूरी राहत दी जायेगी। इस सौदेके बारेमें हम दोनोंके पत्र-व्यवहारने जो रूप ले लिया है, उसके लिए मुझे दुःख है।

मेरा ख्याल है, न्यायका तकाजा है कि मै आपको यह बता दूं कि अभी पिछले ही दिनों श्रीयुत शंकरलाल बैंकरने मुझसे कहा कि जिस गारंटीपत्र पर आपने हस्ताक्षर किये हैं . . . .[1]

अंग्रेजी (एस० एन० १४४५३)की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें ही पत्र अपूर्ण है। अपने २५ जुलाईके पत्रमें इसका उत्तर देते हुए टी० प्रकाशम्ने लिखा था : "मै आपकी यह बात स्वीकार करता हूँ कि इस मामलेमें सार्वजनिक कारोबार और सार्वजनिक प्रामाणिकताके सम्बन्धमें हम दोनोंके अनुभवों और दृष्टिकोणोंमें कहीं कोई मेल नहीं है। मैंने ऐसे बहुतसे मामले देखे है जिनमें व्यक्तिगत गारंटीकी ऐसी धाराएँ दस्तावेजोंमें सिर्फ इसलिए जोड़ दी गई हैं कि

९४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती आश्रम
२० जुलाई, १९२८

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दो पत्र मीले है।

बारडोलीके बारेमें कुछ नहि भेजा है उसमें हरज नहिं है। काफी धन मील रहा है। भीड़ [विपत्ति] होगी तब अवश्य तकलीफ दुंगा। समझोता होनेका अब कम संभव है। हुआ तो भी ठीक न हुआ तो भी ठीक। सत्याग्रहकी बागडोर ईश्वर ही के हाथोमें रहती है। वल्लभभाई आज यही हैं।

बहिष्कारके बारेमें दुबारा 'न० जी०'में लिखुंगा।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१६२ से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

९५. भेंट : बारडोलीके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियासे

अहमदाबाद,
२० जुलाई, १९२८

एक-प्रतिनिधि द्वारा बारडोलीकी समस्याके सम्बन्धमें श्री गांधीसे मुलाकात लिये जाने पर उन्होंने कहा कि इस विषयमें मेरे विचार वही हैं जो श्रीयुत वल्लभाई पटेलके हैं। उन्होंने आगे कहा कि यह बड़े दुःखकी बात है कि समझौता-वार्त्ताके विफल हो जानेकी आशंका है। लेकिन यदि ऐसा हुआ तो जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, पूरा दोष सरकारका होगा।

सम्बन्धित पक्षोंको सजाका डर बना रहे जिससे वे ठीक व्यवहार करते रहें; किन्तु वास्तवमें उन धाराओंपर अमल करनेका कोई खयाल कभी नहीं रहा। मैं एकसाधारण जनकी हैसियतसे ही बोल रहा हूँ; और मैं आप-जैसे ऊँची स्थितिके लोगोंकी श्रेणीमें आनेका दावा भी नहीं करता। मैंने कहा था कि मैं पंच-फैसलेके लिए तैयार हूँ; किन्तु अपने पत्रके अन्तिम वाक्यमें आपने लिखा है कि श्रीयुत शंकरलाल बैंकरको, उनके वकील जैसा सुझायें, वैसी कार्रवाई करनेकी आपने सलाह दी है। मुझे मालूम था कि इधर खादी-बोर्डमें पंच फैसलेके बजाय कचहरी अदालतोंमें जानेकी प्रवृत्ति खूब आ गई है। मुझे दुःख है कि इस मामलेमें आप जितना चाहिए था, उतना निष्पक्ष रवैया नहीं अपना सके।..."

सूरत परिषद्के बाद जो विज्ञप्ति[1] प्रकाशित हुई है, उसे देखकर तो मैं चकित हूँ। उसमें वह सद्भाव और विश्वासकी भावना मुझे कहीं नहीं मिली जो सम्मानजनक समझौतेके लिए आवश्यक है।

मुझ-जैसे सामान्य व्यक्तिकी बुद्धिमें तो यह बात आती ही नहीं कि लगानमें की गई वृद्धिकी अतिरिक्त रकम अग्रिम जमा करवानेका सरकार इतना आग्रह क्यों कर रही है। यदि बुरा न माना जाये तो मैं कहूँगा कि यह बात बिलकुल बेतुकी है। मेरी समझमें नहीं आता कि यह महान् सरकार लोगोंसे, जो पूरी तरह उसके अधिकार-क्षेत्र और नियन्त्रणमें हैं, यह रकम अग्रिम जमा करानेकी माँग कैसे कर सकती है। दूसरी ओर, यह समझना कठिन नहीं है कि जनता यह रकम अग्रिम जमा करानेके बिलकुल खिलाफ क्यों है; उसके लिए यह प्रतिष्ठाका प्रश्न है। अग्रिम जमा करानेका आग्रह छोड़ देनेसे सरकारका कुछ नुकसान होनेवाला नहीं है। विज्ञप्तिमें ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिनके विषयमें काफी-कुछ कहा जा सकता है, लेकिन उसके सम्बन्धमें अपने विचार मैं जनताके सामने किसी अन्य माध्यमसे[2] रखना चाहूँगा।

प्रतिनिधिके यह पूछनेपर कि क्या आपको इस बातका भान है कि समझौता-वार्त्ता विफल होनेपर बारडोलीके किसानोंको बहुत गम्भीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं, श्री गांधीने कहा कि बारडोलीकी जनताके लिए इससे बुरा और कुछ नहीं हो सकता कि वह उस प्रतिज्ञाको तोड़ दे जो उसने बहुत सोच-समझकर की है और जिसे उसने न जाने कितनी बार दोहराया है।

इसके बाद प्रतिनिधिने पूछा कि क्या आप ऐसा समझते हैं कि इस संघर्षमें लगे लोग जो तमाम कष्ट सह रहे और त्याग कर रहे हैं उससे अन्ततः बारडोलीकी जनता या देशका कोई लाभ होगा? श्री गांधीने कहा कि मैं बेशक ऐसा मानता हूँ कि लाभ होगा, और ये लोग जितना अधिक त्याग तथा बलिदान करेंगे, देश और बारडोलीकी जनताको उतना ही अधिक लाभ होगा।

१. यह परिषद् १८ जुलाईको हुई थी और इसमें वल्लभभाई पटेल, अब्बास तैयबजी, शारदा मेहता, भक्तिलक्ष्मी देसाई, मीठूबहन पेटिट और कल्याणजी मेहताने बारडोलीके किसानोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे बम्बईके गवर्नरसे बातचीत की थी। गवर्नरने समझौतेके लिए निम्नलिखित शर्तें रखी थीं:

"अव्वल तो यह कि या तो पूरा लगान तत्काल अदा कर दिया जाये या फिर पुराने और नये लगानमें जितनेका 'फर्क' पड़ता है उतनी रकम 'किसानोंकी ओरसे सरकारी खजानेमें जमा करा दी जाये।'

दूसरे, लगान न देनेका आन्दोलन उठा लिया जाये।

यदि ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिये गये तो सरकार 'सरकारी तौरपर तथ्योंका अनुमान लगानेमें गलती होनेके जो आरोप हैं', उनकी जाँच करानेके लिए तैयार है। जाँच या तो कोई ऐसा राजस्व अधिकारी करेगा जिसका इस मामलेसे कोई सम्बन्ध नहीं है या किसी न्यायाधीशके साथ मिलकर कोई अन्य राजस्व अधिकारी करेगा। इसमें न्यायाधीशका कर्तव्य 'तथ्य और आँकड़ोंके विवादास्पद प्रश्नोंका निपटारा' करना होगा . . .।" (द स्टोरी ऑफ बारडोली, पृष्ठ १५९)।

२. **नवजीवन** और **यंग इंडिया**, देखिए "सरकारकी कुबुद्धि", २२-७-१९२८ और "सरकारसे एक निवेदन", २३-७-१९२८।

इस प्रश्नके उत्तरमें कि क्या आप श्रीयुत वल्लभभाई पटेल द्वारा अपनाये गये तरीकोंसे पूरी तरह सहमत हैं, श्री गांधीने कहा कि हाँ, वे जिन तरीकोंसे काम कर रहे हैं, उन सबसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मुझे तो इस आरोपके समर्थनमें कहीं कोई बात नहीं मिली कि श्रीयुत वल्लभभाई पटेल प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें हिंसाको बढ़ावा दे रहे हैं। इसे मैं झूठा लांछन मानता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २१-७-१९२८

९६. पत्र : शंकरन्को

स्वराज आश्रम, बारडोली
२१ जुलाई, १९२८

प्रिय शंकरन्,

इधर बराबर मैं इस बातकी प्रतीक्षा करता रहा हूँ कि तुम . . . के[1] बारेमें लिखोगे। यह बात बहुत जरूरी है, क्योंकि अब समझौता-वार्त्ताके विफल हो जानेसे निश्चित है कि सरकार दमनका दौर जोर-शोरसे चलायेगी और इसलिए सम्भावना है कि हम बहुत ही ज्यादा व्यस्त हो जायें। अन्तिम परिणाम दो-चार दिनमें ही मालूम हो जायेगा।

एक मजेदार बात। पिछली रात जीवनमें पहली बार जेबकतरोंसे मेरा वास्ता पड़ गया। मैं कल्याणजी और मीठूबहनके साथ सूरत गया था। साथमें कुछ महत्त्वपूर्ण चिट्ठियाँ वगैरह थी, जो वल्लभभाईको देनी थीं। वे काठियावाड़ मेलसे बम्बई जा रहे थे[2]। ट्रेन आधी रातके बाद सुबहसे कुछ देर पहले वहाँ पहुँचनेवाली थी, इसलिए हम तीनों स्टेशनके बाहर अपनी गाड़ीमें प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहे। जैसा कि स्वाभाविक था, हम कभी-कभी झपकी भी ले लेते थे; हालाँकि मच्छर और खटमल पन्द्रह-बीस मिनटसे ज्यादा देरतक हमें उस सुखद स्थितिमें नही रहने देते थे। जब ट्रेन आई तो मैं जल्दीसे गाड़ीसे बाहर आया लेकिन जेबमें घड़ीके लिए हाथ डाला तो ऐनककी खोली गायब देखकर मै चकित रह गया। घड़ी और जंजीर मैं उसी खोलीमें रखता था। ऐसा लगता है कि जब कुछ देरके लिए मुझे झपकी लग गई थी, उसी समय अँगुलियोंकी सफाई दिखानेवाले महानुभाव-वर्गके किसी पक्के अनुभवी सदस्यने मुझपर अपनी कलाका प्रयोग किया। उस स्नेह-भेंटके साथ बहुत-सी स्मृतियाँ जुड़ी होनेके कारण और विशेषकर पिछले दो वर्षोंसे वह जितनी अच्छी तरह काम देती आ रही थी उसकी वजहसे उसे खोकर मुझे बड़ा दु:ख हुआ।

मकानकी खोजके प्रयत्नमें तुमने कितनी प्रगति की है? जहाँतक मुझे मालूम है, देवलालीमें विंडी हॉलके अलावा सिर्फ रतन टैरेस ही एक ऐसा बँगला है जिसे लेने

१. साधन-सूत्रमें स्थान खाली है।

२. अपने भाई विट्ठलभाई पटेलसे मिलने जो बर्मा जानेवाले थे।

लायक माना जा सकता है। लेकिन हो सकता है कि पिछले चार वर्षोंमें कुछ नये बॅंगले भी बन गये हों। तुम कब कहाँ रहोगे, यह निश्चित न होनेके कारण यह पत्र तुम्हारे बम्बईके पतेपर ही भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १३२६०)की माइक्रोफिल्मसे।

९७. पत्र : जी० वी० सुब्बारावको

आश्रम, साबरमती
२१ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि मैं स्वर्गीय गोपाल-कृष्णैयाके बारेमें कोई उपयोगी चीज नहीं लिख सकूँगा। अगर उनके बारेमें कुछ लिखूँगा तो कई मामलोंमें मुझे उनके आचरणकी आलोचना करनी पड़ेगी, इसलिए मैंने दिवंगत आत्माके विषयमें कुछ न कहना ही ठीक माना है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ३६२५)की फोटो-नकलसे।

९८. पत्र : अहमदाबाद केन्द्रीय जेलके अधीक्षकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२१ जुलाई, १९२८

महोदय,

सत्याग्रह आश्रमके व्यवस्थापकने इसी २० तारीखका आपका पत्र मुझे देखनेको दिया। उसमें आपने बताया है कि शामको साढ़े सात बजे तीन अजनबी दो कुत्तोंके साथ जेलका मैदान पार कर रहे थे, लेकिन आपने यह नहीं बताया कि यह बात किस दिन हुई। यद्यपि पत्रके पहले दो अनुच्छेदोंमें आश्रमके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा गया है, लेकिन तीसरेमें आश्रमके अधीक्षकसे इस मामलेकी जाँच करके सम्बन्धित व्यक्तियोंको यह हिदायत कर देनेको कहा है कि वे सरकारी मैदानोंमें इस तरह अनधिकार प्रवेश न करें। अन्तमें आपने धमकी देते हुए लिखा है,

१. देखिए "पत्र: जी० वी० सुब्बारावको", २७-७-१९२८ भी।

'अन्यथा इससे बेकारके बखेड़े खड़े होंगे।' क्या आप यह बतानेकी कृपा करेंगे कि जिस मामलेसे आश्रमका कोई सम्बन्ध ही नही है, उसकी जाँच वह कैसे करेगा और किस तरह वह एक ऐसी घटनाके विषयमें, जिसकी तिथि भी नहीं बताई गई है, लोगोंको, जो आश्रमके लिए सर्वथा अनजान हैं, हिदायतें देगा? लेकिन मैं आपको यह बता दूँ कि इसी १९ तारीखकी शामको जेलके कुछ कर्मचारियोंने, बेशक, आश्रमके अहातेमें अनधिकार प्रवेश किया, जिससे आश्रमवासियोंने बड़ी झल्लाहटका अनुभव किया। लेकिन जेल-अधिकारियोंका सौभाग्य कहिए कि आश्रमके नियम ऐसे है कि वह इस तरह अनधिकार प्रवेश करनेवालों को सजा नही दे सकता। किन्तु यदि आप अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंको अनुशासनमें रखना चाहते हों और उन्हें अपने निर्दोष पड़ोसियोंको परेशान करनेसे रोकना चाहते हों तो मैं जो आरोप लगा रहा हूँ, उसे सिद्ध करनेके लिए आवश्यक तमाम सबूत आप हमसे ले सकते है।

आपकी जानकारीके लिए यह भी बता दूँ कि कल ७ बजे शामकी प्रार्थना-सभामें मैंने आश्रमवासियोंको आपका पत्र पढ़कर सुनाया और तब मुझे बताया गया कि आपने जिस घटनाके बारेमें लिखा है, वह शायद पिछली शामको हुई होगी और आपने जो समय बताया है, उस समय, जिन लोगोंको साबरमती स्टेशनकी ओर घूमने जानेकी आदत है, उन्होंने कुछ लोगोंको दो कुत्तोंके साथ तेजीसे वाडजकी ओर जाते देखा था। इन लोगोंका आश्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

यद्यपि यह सब मैं आपके इसी २० तारीखके पत्रके उत्तरमें लिख रहा हूँ, फिर भी यहाँ मै आपके २१ मईके पत्रके बारेमें भी कुछ कहना चाहता हूँ। इस पत्रके मैत्रीपूर्ण स्वरकी मैं कद्र करता हूँ, लेकिन मुझे यह तो कहना ही पड़ेगा कि आपका यह विश्वास कि सम्बन्धित जेल-वार्डरने किसी प्रकारका उग्र व्यवहार नही किया, बहुत कमजोर आधारपर ही स्थित हो सकता है। मैं समझ नहीं पाता कि दोनों पक्षोंकी बातें सुने बिना आपने कोई निश्चित मत कैसे कायम कर लिया। आपके २१ मईके पत्रको पढ़ कर मै चकित रह गया, क्योंकि उससे मुझे यही लगा कि आप समाजमें एक अच्छा खासा दर्जा रखनेवाले ऐसे लोगोंकी अपेक्षा, जिनका ऐसा कोई स्वार्थ नहीं है कि वे किसीके खिलाफ कोई झूठा आरोप लगायें, अपने वार्डरोंकी बातोंपर अधिक भरोसा रखते हैं।

आपको यह भी मालूम होना चाहिए था कि उस . . .के तीसरे अनुच्छेदमें उल्लिखित पक्ष . . .[1]

अंग्रेजी (एस० एन० १३४८३)की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्र अपूर्ण है।

९९. तार: राजेन्द्रप्रसादको[1]

[२१ जुलाई, १९२८ या उसके बाद]

राजेन्द्रप्रसाद
मार्फत जयवती
लन्दन

मेरी अनुपस्थितिके लिए क्षमा माँग लें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४७५३)की माइक्रोफिल्मसे।

१००. रेशमका निषेध

'नवजीवन' में 'रेशम और व्याघ्रचर्म' के[2] बारेमें मैंने जो लेख लिखा था उसीके सम्बन्धमें काकासाहब कालेलकरने रेशमके निषेधमें निम्नलिखित प्रमाण[3] भेजे हैं। वे विचार करने योग्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-७-१९२८

१. राजेन्द्रप्रसादके २१ जुलाईके तारके उत्तरमें, जो इस प्रकार था: "विएना सम्मेलनमें शामिल होनेकी सोचता हूँ। तार द्वारा हिदायत भेजें। मार्फत जयवती।"

२. देखिए "स्नातकके प्रश्न", १५-७-१९२८। गांधीजीने कहा था कि अहिंसाकी दृष्टिसे रेशम और व्याघ्रचर्म त्याज्य हैं।

३. अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। काकासाहबने लिखा था कि पुराने कालमें लोग सारे संसारमें चमड़ेका प्रयोग कर थे। वैदिक-कालमें ऋषिगण व्याघ्र अथवा हरिणके चर्मका आसनकी भाँति उपयोग करते थे क्योंकि प्रजापालक क्षत्रिय राजा कृषिकी रक्षाके लिए हरिण और मवेशीकी रक्षाके लिए व्याघ्र आदिका आखेट करते थे। किन्तु आज तो पशुओंका वध केवल चमड़ा पानेकी दृष्टिसे होता है, इसलिए अहिंसाकी दृष्टिसे उसका त्याग करना ही उचित है। पहले रेशम हमारे यहाँ नहीं होता था। वह बाहरसे आता था और कदाचित् हमारे पूर्वज यह नहीं जानते थे कि उसका निर्माण कोई कीड़ा करता है और वह उसकी हत्या करके प्राप्त किया जाता है। बादमें वह रूढ़ हो गया और फिर उसका उपयोग रोकना कठिन हो गया। तथापि स्मृतिकारोंने संन्यासियोंके लिए उसके उपयोगका निषेध किया। प्रमाणमें काकासाहबने कात्यायन-स्मृतिके कुछ श्लोक उद्धृत किये थे।

१०१. सरकारकी कुबुद्धि

बम्बई अहातेके गवर्नर शिमला गए थे। उनके सम्बन्धमें प्रकाशित खबरोंके आधारपर मैंने यह मान लिया था कि श्री वल्लभभाई सरकारके जिस हृदय-परिवर्तन-की बात बार-बार कह रहे है वह हृदय-परिवर्तन हो गया है। किन्तु सूरतकी बातचीतके[1] परिणामसे तो ऐसा लगता है कि सरकारका हृदय जब नरम तक नही पड़ा है, तब उसमें परिवर्तनकी बात ही क्या करें? उसका हृदय तो पत्थरसे भी अधिक कठोर हो गया है।

सरकारकी जो विज्ञप्ति सभी अखबारोंमें प्रकाशित हुई है उसकी प्रत्येक पंक्तिमें मुझे तो सरकारकी विपरीत बुद्धि ही दिखाई दे रही है। पाँच घंटेकी बातचीतके बाद स्थिति ज्यों-की-त्यों ही रही। हम जिन बातोंको अखबारोंमें पढ़ते आ रहे हैं सरकारी विज्ञप्तिमें उनसे एक बात भी ज्यादा नहीं है। बारडोलीके सत्याग्रहियोंकी माँग क्या है, यह समझनेका तो प्रयत्न तक नहीं किया गया दिखाई देता।

जैसे कोई बालक अपनी नासमझीके कारण किसी उपयोगी वस्तुके बजाय खिलौनेकी ही जिद करता है वैसे ही सरकार न्याय-रूपी उपयोगी वस्तुको छोड़कर अपने प्रतिष्ठा-रूपी खिलौनेसे चिपटी हुई है। वह उससे जितना अधिक चिपटती है, वह उससे उतना अधिक हटता जाता है। जब यह लड़ाई खत्म होगी तो प्रतिष्ठाके बजाय नामूसी ही सरकारके हाथ लगेगी।

सरकार जिस बातकी जाँच करना स्वीकार करती है, वह जैसी जाँच सत्याग्रही चाहते हैं उससे जुदा है। सत्याग्रही इस सम्बन्धमें जाँच नहीं करवाना चाहते कि पहली जाँचमें जो बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया है या जो छोड़ दिया गया है या तथ्योंको समझनेमें जो भूल हुई है उसकी जाँच की जाये। ये त्रुटियाँ तो इतनी स्पष्ट हैं कि जाँच करनेवालोंके विवरणमें जो चाहे उसे दिखाई पड़ सकती हैं। उनका तो यह कहना है कि जाँच करनेवालोंने जाँच कायदेके मुताबिक ही नही की है। इसलिए सत्याग्रही यह माँग करते हैं कि समूची जाँच ही फिरसे की जानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो दूसरी किसी भी प्रकारकी जाँचसे तो लोगोंको न्याय नहीं मिलेगा। इसलिए जाँचकी शर्तें तो पहले ही निश्चित हो जानी चाहिए। बारडोली या बालोडके लोग यह नही कहते कि त्रुटियाँ दो-चार या इससे अधिक मामलोंमें ही हुई हैं। उनका कहना तो यह है कि पूरी जाँच त्रुटियोंसे भरपूर है। सत्याग्रहियों-का कथन है कि सरकारने जो बढ़ा हुआ लगान कूता है उसको उचित सिद्ध करनेके लिए उसके पास लगानके कायदेके मुताबिक कोई सामग्री नहीं है। इसलिए सरकारने जो बढ़ा हुआ लगान तय किया है, वह वाजिब है, यह सिद्ध करनेका बोझ सरकारके

१. देखिए "भेंट: बारडोलीके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", २०-७-१९२८ की पाद-टिप्पणी १।

ऊपर है। जाँच-समिति द्वारा की जानेवाली जाँचकी शर्तोंमें यह बात साफ-साफ आनी चाहिए। किन्तु ऐसा नही किया गया है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरी शर्त भी बहुत जरूरी है। सरकारने लगान वसूल करनेके लिए जिस दमन-नीतिका आश्रय लिया वह उचित थी या अनुचित, जाँच-समितिको इस बातकी जाँच भी करनी चाहिए।

लोगोंको दमन-नीतिसे जो क्षति उठानी पड़ी है उसके जितने अंशकी पूर्ति की जा सकती है वह की जानी चाहिए। लोगोंकी तन्दुरुस्ती बिगड़ गई है, उनके ढोर-डंगर दुबले हो गये है, और कुछ मर गये है, ऐसे कष्ट सत्याग्रहकी लड़ाईमें अनिवार्य हैं। लोग इनका हर्जाना नही माँगते। किन्तु जो कैदमें पड़े है, उनका क्या होगा? जिनकी जमीनें कुर्क हो गई है, उनका क्या होगा? जिनकी माल-मिल्कियत कौड़ीके दाम नीलाम हो गई है, उनका क्या होगा? इसलिए यदि समझौता होना है और यदि सरकार न्याय करना चाहती है तो समझौतेके[1] कागजपर दस्तखत होते ही :

१. सत्याग्रही कैदी रिहा किये जाने चाहिए।

२. कुर्ककी हुई जमीनें (वे चाहे नीलाम हुई हों या न हुई हो) वापस दी जानी चाहिए।

३. किसानोंकी भैंसें और बन्दूकें आदि जो हथियार कुर्क कर लिये गये हैं अथवा नीलाम कर दिये गये है, उनकी कीमत बाजार भावसे लौटाई जानी चाहिए।

४. जो तलाटी और पटेल आदि हटा दिए गये हैं उनको फिर बहाल किया जाना चाहिए। अथवा इनमें से जिन्होंने इस्तीफे दे दिये हैं उनको अपने इस्तीफे वापस लेनेकी अनुमति मिलनी चाहिए।

५. लोगोंको सत्याग्रहके सम्बन्धमें दी गई अन्य सजाएँ रद्द की जानी चाहिए।

इनमें से कोई भी बात सरकारी विज्ञप्तिमें दिखाई नही देती। जहाँतक हमें जानकारी है, सरकारने किसी दूसरे समझौतेके सम्बन्धमें ऐसी एकतरफा कार्रवाई नही की है।

इतना तो जाँचके सम्बन्धमें जाँचके पूर्व किया ही जाना चाहिए।

किन्तु बढ़ा हुआ लगान जमा करानेकी सरकारी माँग कायम ही है। यदि यह माँग कायम रखनी थी तो श्री वल्लभभाईको सूरत बुलानेकी क्या जरूरत थी? गवर्नर साहबको सूरत जानेकी तकलीफ करनेकी क्या जरूरत थी? सरकार कहती है कि इस माँगका कारण तो स्पष्ट ही है। हमें तो लगता है कि यह कारण सरकारके सिवा किसी दूसरेके लिए स्पष्ट नहीं है। बढ़े हुए लगानको जमा करानेकी माँग किसी तटस्थ मनुष्यने पसन्द की हो, ऐसा तो दिखाई नही देता। 'पायनियर' और 'स्टेट्समैन' जैसे अंग्रेजोंके भोंपू भी सत्याग्रहियोंकी नीतिमत्ताको पूरी तरह पसन्द करते हैं और मर्यादाके भीतर रहनेके लिए उन्हें धन्यवाद देते हैं। सरकार बढ़े हुए लगानको जमा करानेके हठसे क्यों चिपकी हुई है, इस बातको समझना मुझे तो लगभग असम्भव लगता है। सरकारको यह भय तो होना ही नहीं चाहिए कि यदि लोग इस मामलेमें

१. बारडोली-समझौतेकी शर्तोंके लिए देखिए परिशिष्ट २।

हार जायेंगे तो वे लगान नही देंगे। सरकारके पास उसको वसूल करनेके लिए दण्डका साधन मौजूद है। इस हठका कारण है श्री वल्लभभाई और जनताके प्रति सरकारके मनमें अविश्वासकी भावना। इस तरहके अपमानको श्री वल्लभभाई अथवा कोई भी दूसरा स्वाभिमान-प्रिय व्यक्ति कैसे सहन कर सकता है? सरकारके इस हठसे उसकी क्षुद्रता और कुबुद्धि उभरकर सामने आ जाती है।

सत्याग्रहियोंका मार्ग स्पष्ट है। उन्हें न्यायसंगत समझौतेके लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यदि समझौता न हो तो उन्हें निराश नही होना चाहिए और उस स्थितिमें लड़नेके लिए सदा तैयार रहना चाहिए। सत्याग्रहकी लड़ाईकी यह खूबी है कि उसमें गोला-बारूद अथवा किसी बाहरी शस्त्रकी जरूरत नही रहती। इसलिए सत्याग्रहीके हिस्सेमें जब भी लड़ाई आ जाये तभी वे उसके लिए तैयार रहते हैं।

सरकारी विज्ञप्तिको देखते हुए श्री वल्लभभाईको समझौतेकी बातको लम्बा करनेकी जरूरत नहीं रहती। किन्तु सत्याग्रही लड़नेके लिए तैयार रहते हुए ऊपर बताये हुए समझौतेकी आशा कभी न छोड़ें। इसलिए वे समझौतेका एक भी अवसर हाथसे नही जाने देंगे। उनका काम पत्थर-जैसे कठोर हृदयको भी पिघलाना है।

बारडोलीके किसानोंको सूरत, बम्बई अथवा शिमलाकी ओर नहीं देखना चाहिए। उन्हें तो ईश्वरकी ओर, अन्तर्यामी प्रभुकी ओर देखते हुए अपनी प्रतिज्ञापर कायम रहना चाहिए और उसका पालन करनेके लिए प्राण देने और बरबाद होनेके लिए तैयार रहना चाहिए। उनके प्राण भले चले जायें किन्तु उनका वचन कभी नहीं जाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-७-१९२८

१०२. टिप्पणियाँ

बारडोलीके साथ मेरा सम्बन्ध

बारडोलीकी लड़ाईसे मेरा क्या सम्बन्ध है यह 'नवजीवन'के पाठकोंको बतानेकी जरूरत नही है। फिर भी चूँकि इस समय जबरदस्त अफवाहें फैल रही हैं, इसलिए उससे अपना सम्बन्ध स्पष्ट रूपसे बता देना आवश्यक है। पाठक जानते हैं कि मैं बारडोलीके सत्याग्रहमें उसके प्रारम्भसे ही पड़ा हुआ हूँ। उसके नेता श्री वल्लभभाई हैं और वे जब भी जरूरत हो मुझे बारडोली ले जा सकते हैं। यह आवश्यक नही कि उन्हें मेरी सलाहकी जरूरत हो ही; फिर भी जब उन्हें कोई बड़ा कदम उठाना पड़ता है, तब वे मुझसे सलाह करते हैं। किन्तु जो छोटे और बड़े काम वे करते हैं, अपनी जिम्मेवारीपर करते हैं। मैं सभा-सम्मेलनोंमें नहीं जाता, यह मेरे और उनके बीच इस लड़ाईके पहलेसे निश्चित है। मेरा शरीर अब ऐसा नहीं रहा कि मैं चाहे जो काम कर सकूँ। इसलिए उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि वे मुझे अहमदाबाद अथवा गुजरातमें दूसरी जगह अकारण नहीं ले जायेंगे। उन्होंने

इस प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया है। उन्होंने इस लड़ाईमें जो कदम उठाये हैं, उनमे उनसे मेरी पूरी सहानुभूति है। इस समय जिस गम्भीर स्थितिके उत्पन्न होनेकी सम्भावना है उसके सम्बन्धमें श्री वल्लभभाई जो कदम उठायेंगे, उसमें उनसे मेरी पूरी सहानुभूति है। और यदि वे गिरफ्तार कर लिये गये तो मै बारडोली जानेके लिए पूरी तरह तैयार हूँ। वे जबतक बारडोलीमे है तबतक मेरे वहाँ जाने अथवा वहाँके आन्दोलनमे किसी अन्य प्रकारसे सक्रिय भाग लेनेकी जरूरत मुझे दिखाई नही देती। इसकी जरूरत वे भी नही समझते। जहाँ एक-दूसरे पर पूरा विश्वास हो वहाँ बाह्य शिष्टता अथवा आडम्बरके लिए अवकाश नहीं हो सकता।

चरखेका प्रभाव

बढवान राष्ट्रीय शिक्षा-मण्डलके प्राण भाई फूलचन्द प्रारम्भसे ही बारडोली-संग्राममें भाग ले रहे हैं। वे फिलहाल वेड़छीमें काम कर रहे है। वहाँसे वे लिखते है :[1]

जिन्हें चरखेके प्रति विश्वास नही है वे आलोचना करते हुए कह सकते है कि भाई फूलचन्दने चरखेके बारेमें जो दावा किया है ऐसा दावा तो किसी भी धन्धेका प्रचार करके किया जा सकता है। यह ठीक है कि किसी भी शुभ उद्यमका फल शोभनीय ही होता है, फिर भी एक धन्धेका दूसरेसे अन्तर तो होता ही है। किसी उद्यमसे मनुष्यका शरीर बनता है तो किसीसे मन; किसीसे शान्ति उत्पन्न होती है और किसीसे आदमी भाग-दौड़में पड़ जाता है। मै स्काटलैंडके एक अनुभवी शिक्षककी राय पहले दे चुका हूँ कि चरखा चलाना एक ऐसा काम है जिसे प्रारम्भ करनेसे अशान्त और चंचल व्यक्ति शान्त और स्थिर हो जाता है, और क्रोध करना छोड़ देता है। फिर धन्धेके पीछे मनकी जो भावना होती है, वही गुण उसमें पैदा किये जा सकते हैं। यदि चरखेकी प्रवृत्तिका प्रचार करनेवाले दंपती साधु प्रवृत्तिके हों और वे चरखेको लोगोंमें साधुता उत्पन्न करनेका निमित्त बनायें तो उससे वैसे गुण प्रतिफलित होते दीखेंगे। इसलिए कहा जा सकता है कि वेड़छीके आसपास फूलचन्दभाई को जो निर्भयता और खरापन आदि गुण दिखाई देते है, वास्तवमें उनका मूल चरखा न होकर, भाई चुनीलाल और उनकी पत्नी हैं। उन्होंने चरखेको अपने गुणोंसे गूँथ दिया है और यह दावा तो अवश्य किया जा सकता है कि उन्होंने जितनी सरलतासे इन गुणोंका प्रचार चरखेके माध्यमसे किया, उतनी सरलतासे किसी और माध्यमके द्वारा नहीं किया जा सकता था।

भजन-मण्डलीके बारेमें भी यही बात है। भजन-मण्डलीसे पाखण्ड भी फैल सकता है और पवित्रताके प्रचारका तो वह सनातन उपाय है। इसमें सन्देह नहीं कि भजन-मण्डलियोंने बारडोलीके संघर्षमें बहुत बड़ा हाथ बँटाया है और इन दोनों प्रवृत्तियोंका मूल धर्म ही है। यदि बारडोलीका युद्ध धार्मिक भावनाके अनुसार न

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें चरखेके प्रचारसे वेड़छीमें जो सुफल प्राप्त हुए थे, उनका विवरण दिया गया था और बताया गया था कि भजन-मण्डलियोंके द्वारा वहाँ खादी तथा अन्य सदुद्देश्योंका प्रचार कैसे किया गया था।

चलता तो आजतक उसमें जो सफलता मिली है वह कदापि देखनेमें न आती। जाने-अनजाने लोग धर्मके भूखे हैं। उन्हें सत्याग्रह तथा सत्याग्रहके सेनापतिमें धर्म-भावना दिखी, इसीलिए वे उसके पीछे चले और हम अन्ततक उनके इसी प्रकार चलनेके लक्षण देख रहे हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-७-१९२८

१०३. पत्र : वसुमती पण्डितको

२२ जुलाई, १९२८

चि० वसुमती,

आज गलतीसे १ बजे उठ गया हूँ। तुमने ठीक श्लोक[1] ढूंढ निकाला है। बुखार क्यों आता है? बरसातमें बाहर निकलनेसे ही बुखार नहीं आ जाता। शरीर रोगके लिए तैयार रहा होगा। किसीकी भूल तो अवश्य बताई जा सकती है किन्तु ऐसा प्रेमपूर्वक किया जाना चाहिए। तुम्हें छतरी मिल गई होगी। सम्मिलित भोजनालयने बढ़िया प्रगति की है।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन
कन्या गुरुकुल

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८५)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१०४. एक पत्र

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२२ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

श्रीयुत गुलजारीलालसे[2] मैंने विस्तारसे बातचीत की। वे हड़तालकी परिस्थितियों का आरम्भिक अध्ययन करके अभी-अभी बम्बईसे लौटे हैं। हड़ताल-समितिके प्रमुख नेताओंके साथ उनकी एक बैठक हुई थी। दुर्भाग्यवश, आप उसमें उपस्थित नहीं थे। हड़तालियोंके अगुआ लोग श्रमिक संघके नाम आपकी एक अपील लेकर अहमदाबाद आये थे। वे मुझसे भी मिले और उन्होंने मुझसे चन्दा उगाहनेमें सक्रिय सहायता देनेको कहा — बल्कि संघको अपने कोषसे पैसा देनेकी सलाह देनेको भी कहा।

१. देखिए "पत्र : वसुमती पण्डितको", १५-७-१९२८।
२. गुलजारीलाल नन्दा।

लेकिन मैंने कहा कि मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि मैं किसीके दान या सार्वजनिक चन्देके बलपर हड़ताल चलानेके पक्षमें नहीं हूँ। मैंने कहा कि मेरा तरीका तो हडतालियोको हड़तालके दौरान कोई और काम ढूँढ़कर करनेके लिए प्रोत्साहित करना और इस तरह उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है। उन्हें मैंने यह भी बताया कि मेरे अहमदाबादमें आ बसनेके बाद किस प्रकार अहमदाबादकी पहली बड़ी हड़तालका संगठन और संचालन किया गया था ?[1] उनसे यह भी कहा कि मैंने बम्बईकी स्थितिका अध्ययन नही किया है और मुझे ठीक-ठीक यह मालूम नही कि हड़तालियोंका पक्ष क्या है, न मुझे आपके अलावा इस आन्दोलनको चलानेवाले किसी नेताके बारेमें ही कोई जानकारी है। इन परिस्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए मैंने उनसे कहा कि मै सक्रिय सहायता तो नहीं दे सकता, लेकिन आप चाहें तो मिल-मजदूरोंके बीच जाकर, वे अपनी इच्छासे जो-कुछ दें, उगाह सकते है और मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमें मै उन्हें चन्दा देनेसे मना नही करूँगा।

लेकिन फिर यह विचार हुआ कि यह स्थिति ठीक नही है और चूँकि यहाँके संघसे सीधी अपील की गई है, इसलिए इस समस्याका अध्ययन करना जरूरी है। इसीलिए श्रीयुत गुलजारीलालको बम्बई भेजा गया। उनसे मेरी जो बातचीत हुई, उससे मुझे इस बातकी तसल्ली नही हो पाई है कि श्रमिक संघ जितनी दूर जा चुका है, उसे उससे आगे भी जाना चाहिए। अब मै आपका परामर्श चाहता हूँ। चूँकि अब आप मेरे विचारोंको जानते है, इसलिए. . .[2]

अंग्रेजी (एस० एन० १३२३७)की माइक्रोफिल्मसे।

१०५. सरकारसे एक अनुरोध[3]

इस अनुरोधके छपकर प्रकाशित होते-होते शायद बम्बई सरकार बारडोली-समस्याके बारेमें अपना निर्णय ले चुकी होगी। यह अनुरोध मै आज सोमवारको तीसरे पहर, जब शायद गवर्नर महोदय कौंसिलके सामने अपना वक्तव्य दे रहे होंगे, तैयार कर रहा हूँ। मै यह भी जानता हूँ कि अनुरोध अनसुना कर दिया जायेगा। लेकिन सत्याग्रहीके नाते मेरा काम किसी भय या आशंकासे चुपचाप बैठे रहना नहीं, बल्कि परिणामकी परवाह किये बिना, जो ठीक है, वह करते जाना है। इस आन्दोलनके साथ मेरा बहुत गहरा सरोकार रहा है। इसलिए शायद मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं सरकारसे वह रास्ता अख्तियार न करनेका अनुरोध करूँ जिसकी सभीने

१. तात्पर्य १९१८ की अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़तालसे है; देखिए खण्ड १४।

२. साधन-सूत्र अधूरा है।

३. यह 'सोमवार', २३ जुलाई, १९२८को लिखा गया था; देखिए "पत्र : वल्लभभाई पटेलको", २४-७-१९२८ भी।

एक स्वरसे निन्दा की है और जिसका औचित्य, जितनी निष्पक्ष बुद्धिसे मैं सोच सकता हूँ उतनी निष्पक्ष बुद्धिसे सोचते हुए कहूँगा, किसी भी आधारपर सिद्ध नही किया जा सकता।

सूरतमें जितना-कुछ देनेका प्रस्ताव किया गया है, वह उससे भी कम है जितना कि कुछ विश्वसनीय अफवाहोंके अनुसार खानगी तौरपर देनेका वादा किया गया था। श्रीयुत वल्लभभाई पटेलने जो शर्तें रखी हैं, वे वही हैं जो सदासे उनके मनमें रही हैं और जिनसे वे तरह-तरहसे सरकारको भी अवगत कराते रहे हैं। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा है जो सम्मानपूर्ण समझौतोमें सदासे न किया जाता रहा हो। यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है — जैसा कि कई अप्रत्याशित हलकोंमें भी किया गया है — कि बारडोली और वालोडकी जनताने, जो चीज उसके लेखे एक सिद्धान्तका सवाल है, उसके लिए घोर कष्ट सहे हैं, तो यह मानना होगा कि उसने यह सब सिर्फ इसीलिए नहीं सहा कि कुछ व्यक्तियोंके मामलोंकी जाँच एक छोटे राजस्व अधिकारीसे करा दी जाये। सरकारने जिस जाँचका प्रस्ताव किया है वह वास्तवमें ऐसी ही जाँच है। इसी तरह जनतासे यह अपेक्षा भी नही की जा सकती कि वह उस कीमती जमीनको अपने हाथसे निकल जाने दे, जो उसके खयालसे अन्यायपूर्वक जब्त की गई है; न उससे यही अपेक्षा की जा सकती है कि अपनी टेकके पक्के पुरुषों और स्त्रियोंके नाते वह उन लोगोंको मुसीबतमें पड़ा छोड़ दे, जिन्होंने सरकारके अन्यायके कारण इतनी यातनाएँ सही हैं। सरकारी प्रस्तावका मतलब तो यह निकलता है कि यद्यपि लोगोंने बढ़ी हुई दरसे लगान देनेसे इनकार करके गलत काम किया है, फिर भी यदि वे अपनी गलतीसे बाज आ जायें और उस रकमको अग्रिम जमा करवा दें जिसकी वसूलीको वे अन्यायपूर्ण मानते है तो सरकार अलग-अलग व्यक्तियोंके मामलोंकी सुनवाई फिरसे करानेका सौजन्य दिखायेगी। यह ऐसी स्थिति है जिसे कोई भी सच्चा नेता, जबकि उसका मन यह नहीं मानता हो कि जनताने ऐसी कोई गलती की है और इसके विपरीत जब उसे पूरा विश्वास हो कि जनता सर्वथा सही रास्तेपर है और सरकार बिलकुल गलत रास्तेपर है, स्वीकार नही कर सकता।

फिर भी, श्रीयुत वल्लभभाईने सरकारकी तरह असम्भव शर्तें नही रखी है। वे सरकारसे यह नही कहते कि वह स्वीकार करे कि वह गलतीपर है। उनके पत्रका सार यदि एक वाक्यमें बताऊँ तो यह है कि उन्होंने सरकारसे इस सवालको उसकी अपनी पसन्दकी एक कमेटीको सौप देनेको कहा है और उसमें केवल यह एक शर्त, जो सर्वथा उचित है, रखी है कि उसमें जनताका भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो। और सरकारके प्रस्तावके जवाबमें अपना यह प्रस्ताव सामने रखते हुए वे सरकारसे ऐसी निष्पक्ष समितिकी नियुक्तिसे निकलनेवाले स्वाभाविक और तर्कसम्मत परिणामको स्वीकार करनेको कहते हैं; अर्थात् यह कि इस संघर्षके छिड़नेसे पहलेकी स्थितिको फिरसे कायम कर दिया जाये। मैं तो कहूँगा कि यदि वे इससे कुछ कमकी माँग करते या उसे स्वीकार करते हैं तो इसका मतलब यह होगा कि उन्होंने अपने दायित्वका निर्वाह नहीं किया। उनके प्रस्तावमें सरकारको नीचा दिखानेका न

कोई मंशा है और न ऐसी कोई बात मौजूद है, जिसका मतलब प्रकारान्तरसे सरकारको नीचा दिखाना हो। सारी परिस्थितियोंको वे बिलकुल यथार्थ दृष्टिसे देखते हुए चल रहे हैं और उन्हें इस बातकी बड़ी फिक्र है कि कोई सम्मानजनक समझौता हो जाये। इसलिए उन्होंने सरकारके सामने न्यूनतम माँगे ही रखी है। वैसे, यदि वे चाहें तो बेशक सरकारकी राजस्व नीतिके पूरे प्रश्नको उठा सकते है और पिछले चार महीनोंमें बिना किसी दोषके जनताको जैसी भयंकर क्षति उठानी पड़ी है, उसकी पूर्तिकी माँग कर सकते हैं।

सरकारके सामने दो रास्ते है – या तो वह भारतके जनमतके सामने झुककर श्रीयुत वल्लभभाईके प्रस्तावको स्वीकार कर ले या फिर अपनी झूठी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेके लिए लोगोंको आतंकित करनेकी नीतिका पुनः आग्रह करे। यदि देर न हो गई हो तो बम्बई सरकारसे मेरा अनुरोध है कि वह सत्यका मार्ग अपनाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-७-१९२८

१०६. तार: मोतीलाल नेहरूको[1]

२३ जुलाई, १९२८

मुझे तो लगता है कि आपको यह भार विशेषकर बंगालके लिए अपने सिर लेना ही चाहिए। सेनगुप्तको तार दिया है।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३६४५)की फोटो-नकलसे।

१. यह तार मोतीलाल नेहरूके १९ जुलाईके पत्रके उत्तरमें दिया गया था। पत्रके अन्तमें उन्होंने लिखा था। "साथ भेजे जा रहे पत्र-व्यवहार और जो अन्य पत्र आपको मिले होंगे उनको ध्यानमें रखते हुए इस 'ताज'के बारेमें तार द्वारा अपना निर्णय सूचित करें।" उन्होंने अपने नाम लिखे दो पत्र (एस० एन० १३६४६) भी गांधीजीको देखनेके लिए भेजे थे। उनमें से एकमें, जो सुभाषचन्द्र बोसका लिखा था, कहा गया था कि "यदि आप किसी कारणवश अध्यक्षता अस्वीकार कर देते हैं तो मैं कह नहीं सकता कि पूरे बंगालको कितनी निराशा होगी।" दूसरेमें जे० एम० सेनगुप्तने लिखा था कि "कल मुझे महात्माजीका तार मिला, जिसमें उन्होंने सूचित किया है कि आप कांग्रेसकी अध्यक्षता स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं। इस समाचारसे मैं स्तम्भित रह गया . . .। हम एकमत होकर महात्माजीको आपसे इसे स्वीकार करनेका आग्रह करनेके लिए तार भेज रहे हैं. . .। हम तो आपको अध्यक्ष बनायेंगे ही। . . . आपको देशके भीतर और बाहर इस राजनीतिक संकटकी घड़ीमें अध्यक्ष बनकर हमारा नेतृत्व करना ही है। . . ." देखिए "पत्र: सुभाषचन्द्र बोसको", १८-७-१९२८ भी।

१०७. तार : सुभाषचन्द्र बोसको

२३ जुलाई, १९२८

मोतीलालजीको तार दिया है कि विशेषकर बंगालकी खातिर उन्हें यह ताज स्वीकार करना ही चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३६४५)की फोटो-नकलसे।

१०८. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ जुलाई, १९२८

भाईश्री वल्लभभाई,

मेरे खयालसे तो हमें गवर्नरके भाषणका[१] अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर देना चाहिए। उसमें लोगोंको भ्रममें डालनेका भारी प्रयत्न किया गया है। ऐसी चीजका लम्बा जवाब देकर हम नुकसान उठायेंगे, यह समझकर छोटा ही जवाब[२] भेजता हूँ। 'यंग इंडिया'में मैंने कल एक लेख[३] लिखा। भाषणके आधारपर उसे सुधारनेकी इच्छा नहीं हुई और अधिक लिखनेका विचार भी छोड़ दिया। आप वहाँसे जो-कुछ कहेंगे, अभी तो हम उतना ही काफी समझेंगे। अगला सप्ताह तो फिर है ही। मगर एक विचार आज मनमें रह-रहकर उठा करता है। ये १४ दिन बड़े नाजुक हैं। इसलिए हमारी तरफसे एक भी शब्द ऐसा न निकले, जिससे समझौता होना ही हो तो उसमें कोई विघ्न आये। इसलिए मैं मानता हूँ कि अगर फिलहाल वहाँ आपको कोई काम न हो, तो थोड़े दिन यहाँ आकर रह जाइये; या आपको ठीक लगे और आप चाहें, तो मैं वहाँ आकर डेरा डालूँ। आपको गिरफ्तार किये बिना तो अब काम चलेगा ही नहीं, इसलिए शायद मेरा पहलेसे ही वहाँ आकर बैठ जाना आवश्यक हो। इन दोनोंमें से कोई कदम उठाना जरूरी है या नहीं, इसका निश्चय सब बातोंकी जाँच करके आपको ही करना है। इसमें जिम्मेदार मैं नहीं, आप हैं, क्योंकि वहाँकी वस्तुस्थिति मैं नहीं समझ सकता।

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने

१. विधान-परिषद्में २३ जुलाईको दिया गया भाषण।
२. देखिए "टिप्पणियाँ", २६-७-१९२८ का उपशीर्षक 'श्रीयुत वल्लभभाईका उत्तर'।
३. देखिए "सरकारसे एक अनुरोध", २३-७-१९२८।

१०९. काँटोंका ताज

कांग्रेसका अध्यक्ष-पद अब फूलोंकी सेज नहीं रह गया है। फूलोंकी पँखुड़ियाँ तो हर साल झरती जा रही है और काँटे अधिकाधिक उभरते आ रहे हैं। ऐसे ताजको किसे पहनना चाहिए? पिताको या पुत्रको? तपे-परखे सेनानी मोतीलाल नेहरूको या अनुशासन-प्रिय सिपाही जवाहरलालको, जिसने अपने सच्चे गुणोंके कारण देशके युवकोंके मनको जीत लिया है? श्रीयुत वल्लभभाई पटेलका नाम स्वभावत: सभीकी जिह्वापर है। पण्डितजीने एक निजी पत्रमें कहा है कि इस समय तो राष्ट्रके सबसे बड़े सेनानीका काम वही कर रहे हैं, इसलिए अध्यक्ष उन्हींको चुना जाये और सरकारको बता दिया जाये कि उन्हें राष्ट्रका पूरा विश्वास प्राप्त है। किन्तु अभी तो श्रीयुत वल्लभभाईका सवाल ही नहीं उठता। उनके सिर इतना ज्यादा बोझ है कि उनके लिए बारडोलीके अलावा किसी और काममें ध्यान देनेकी गुंजाइश ही नहीं है और सम्भव है दिसम्बरसे पहले ही वे सरकारकी असंख्य जेलोंमें से किसी एकके मेहमान बन जायें। इस विषयमें खुद मेरा विचार तो यह है कि यह ताज पण्डित जवाहरलालको पहनना चाहिए। भविष्य देशके युवकोंके हाथोंमें ही रहना चाहिए। लेकिन बंगाल चाहता है कि कांग्रेसकी किश्तीको, अगले साल हमारे संकटके जिस समुद्रमें घिर जानेकी आशंका दिखाई दे रही है, उसमें से खेकर पार लगानेके लिए उसकी पतवार मोतीलालजीको ही सँभालनी चाहिये। हमारे भीतर फूट है और बाहर हम एक ऐसे शत्रुसे घिरे हुए हैं जो जितना शक्तिशाली है उतना ही धूर्त भी। बंगालको किसी अनुभवी वयोवृद्ध नेताकी विशेष आवश्यकता है और आवश्यकता है उस नेताकी जो उसकी परीक्षा और कष्टकी घड़ीमें उसके लिए शक्ति-स्तम्भ साबित हुआ है। यदि आज सम्पूर्ण भारतके सामने परिस्थिति विषम है तो बंगालके सामने तो विषमतर है। पण्डितजी को यह ताज पहननेके लिए चुना जाये, इसके अनगिनत कारण हैं। वे बहादुर हैं, उदार हैं, उन्हें सभी दलोंका विश्वास प्राप्त है, मुसलमान उन्हें अपना मित्र मानते हैं, उन्हें अपने विरोधियोंका भी सम्मान प्राप्त है और वे अक्सर अपने प्रखर वक्तृत्वके बलपर उनसे अपनी बात मनवा लेते हैं। इसके अतिरिक्त, उनके अन्दर सुलह-समझौतेकी गहरी भावना है, जिसके कारण वे उस राष्ट्रके विशेष उपयुक्त प्रतिनिधि हो सकते हैं जिसे सम्मानपूर्ण समझौतेको स्वीकार करनेकी जरूरत है और जो उसके लिए तैयार भी है। इन्हीं कारणोंसे प्रेरित होकर बंगालके परम साहसी और बलिदानी देशभक्त[1] भी आगामी वर्षके कर्णधारके रूपमें पण्डित मोतीलाल नेहरूको चाहते हैं। देशके अधीर युवक अभी कुछ समयतक प्रतीक्षा करें। इससे उनका बल और भी बढ़ेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-७-१९२८

१. सुभाषचन्द्र बोस; देखिए "तार: सुभाषचन्द्र बोसको", २४-७-१९२८।

११०. टिप्पणियाँ

श्रीयुत वल्लभभाईका उत्तर

श्रीयुत वल्लभभाई पटेलने परमश्रेष्ठ द्वारा कौंसिलमें इसी २३ तारीखको दिये गये भाषणके उत्तरमें निम्नलिखित वक्तव्य[1] जारी किया है:

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने परमश्रेष्ठसे ऐसे धमकी भरे भाषणकी उम्मीद नही की थी। मगर धमकियोंकी बात जाने दीजिए। मैं तो उस भ्रान्तिको दूर करना चाहता हूँ जो इस भाषणसे — चाहे वक्ताका वैसा अभिप्राय रहा हो या नहीं — पैदा हो सकती है। गवर्नर महोदय एक तरहसे यही कहते हैं कि यदि सवाल सविनय अवज्ञाका है तो मैं सरकारको सुलभ सारी शक्तिसे उसका मुकाबला करनेको तैयार हूँ, लेकिन "अगर प्रश्न केवल लगानके पुनर्निर्धारणके न्यायसंगत अथवा अन्यायपूर्ण होनेकी जाँच करनेका है, तो सरकार, उसका जितना पैसा लगानकी मदमें बाकी है उसकी पूरी अदायगी हो जाने और वर्तमान आन्दोलन बन्द कर दिये जानेपर, सारा मामला उस ढंगकी सम्यक्, खुली और स्वतन्त्र जाँचके लिए सौंप देनेको तैयार है जिसकी तजवीज हालमें प्रकाशित वक्तव्यमें की गई है।" मै यह बतानेकी धृष्टता करता हूँ कि इस मामलेमें सविनय अवज्ञाका सवाल तो कभी रहा ही नही। मैं जानता हूँ कि सविनय अवज्ञा करना बुद्धिसंगत अथवा उचित होगा, इस विषयमें सभी दल एकमत नही हैं। इस विषयमें मेरा अपना मत भी है उस मतपर मेरा प्रबल आग्रह है। लेकिन बारडोलीके लोग अपना सविनय अवज्ञा करनेका अधिकार मनवानेके लिए संघर्ष नहीं कर रहे हैं। वे सरकार द्वारा लगानमें की गई वृद्धिको समाप्त कर देने या अगर वह समझती हो कि यह वृद्धि अनुचित नहीं है तो वास्तविकताका पता लगानेके लिए एक निष्पक्ष और स्वतन्त्र जाँच समिति नियुक्त कर देनेको प्रेरित करनेके उद्देश्यसे सविनय अवज्ञाके तरीकेसे — या उनके द्वारा अपनाये तरीकेको चाहे जो नाम दिया जाये — संघर्ष कर रहे हैं। इसलिए यहाँ सवाल सिर्फ लगानके पुनर्निर्धारणके न्यायसंगत या अन्यायपूर्ण होनेका ही है। और यदि सरकार इस सवालको "सम्यक्, खुली और स्वतन्त्र जाँच" के लिए सौंपनेको तैयार है तो निश्चय ही उसे खुद अपनी ही प्रस्थापनाके तर्कसंगत परिणामको स्वीकार कर लेना चाहिए; और वह संगत परिणाम यह है कि सरकार लगानमें की गई विवादास्पद वृद्धिकी रकमकी अदायगी का आग्रह करना छोड़ दे तथा लोगोंको संघर्ष प्रारम्भ होनेसे पहलेवाली स्थितिमें पुनः पहुँचा दे। मैं जनताको भी "सम्यक्, खुली और स्वतन्त्र जाँच" की सम्भावनाओंको सीमित करनेवाला जो एक वाक्यांश है — अर्थात् "जिसकी तजवीज हालमें प्रकाशित वक्तव्यमें की गई है" — उसके खिलाफ आगाह कर देता हूँ। यह वाक्यांश खतरनाक है। कारण, सूरतकी विज्ञप्तिमें जिस चीजका वादा किया गया है वह "सम्यक्,

१. देखिए "पत्र: वल्लभभाई पटेलको", २४-७-१९२८।

खुली और स्वतन्त्र जाँच" नही, बल्कि उसका उपहास है। सूरतसे जारी किये गये वक्तव्यमें बहुत सीमित ढंगकी जाँचकी तजवीज है। यह जाँच एक न्यायिक अधिकारीकी सहायतासे कोई राजस्व अधिकारी करेगा और इसका उद्देश्य तखमीने और तथ्योंकी भूलोंका पता लगाना होगा। यह चीज "सम्यक्, खुली और स्वतन्त्र जाँच" से सर्वथा भिन्न है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जनता गवर्नर महोदयके भाषणमें भरी धमकियोंसे नहीं डरेगी और लोकमत उस एक ही मुद्दे पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित करेगा जिसका अभी मैंने उल्लेख किया है।

न्यायकी विजय

वर्धामें श्री लक्ष्मीनारायणका एक प्रसिद्ध और सुन्दर मन्दिर है। इसे सेठ जमनालालजीके पितामहने बनवाया था। यह एक निजी मन्दिर है, जिसमें जानेकी छूट आम लोगोंको भी है। जमनालालजी इस मन्दिरको तथाकथित अछूतोंके लिए खुलवानेकी बड़ी कोशिश करते रहे हैं — उसी प्रकार जिस प्रकार उन्हें वर्धाके कुओंका उपयोग करनेकी छूट दिलाने और आम तौर पर वे सभी सुविधाएँ सुलभ करानेका बहुत सफल प्रयास करते रहे है जो अन्य वर्गोंके लोगोंको प्राप्त हैं। उन्हें न्यासियोंको अपने इस विचारसे सहमत करानेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी कि इस विशेष मन्दिरके दरवाजे उन लोगोंके लिए खोल देने चाहिए जो अंधी कट्टरपंथिताके पैरों तले रौंदे जा रहे हैं। आखिर उनका प्रयास सफल हुआ। इसी महीनेकी १७ तारीखको न्यासियोंने सर्वसम्मतिसे निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया :

> **चूँकि तथाकथित अस्पृश्योंको श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें प्रवेश देनेके सवालपर समितिने कई बार विचार किया है और वह अबतक कोई दृढ़ निर्णय नहीं ले पाई है; और चूँकि भारतकी सबसे अधिक प्रातिनिधिक संस्था कांग्रेसने अस्पृश्यता-निवारणपर जोर दिया है; और चूँकि हिन्दू महासभाने यह आवश्यक और उचित माना है कि सभी मन्दिरोंके द्वार अस्पृश्योंके लिए खोल देने चाहिए; और चूँकि भारतीय जनमतका नेतृत्व करनेवाले जाने-माने नेताओंने भी यही राय जाहिर की है, इसलिए उपर्युक्त तथ्योंका खयाल करके और देशकी धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पर पूरी तरह विचार करते हुए न्यासीगण यह निर्णय करते हैं कि वर्धा-स्थित उपर्युक्त श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरके द्वार 'अस्पृश्यों' के लिए खुले घोषित किये जायें और प्रबन्धक न्यासी सेठ जमनालाल बजाजको, उन्हें जैसा ठीक लगे, उस ढंगसे इस निर्णयको लागू करनेका अधिकार दिया जाये।**

तदनुसार वर्धामें इस आशयकी मुद्रित सूचना बड़े पैमाने पर वितरित की गई कि इसी १९ तारीख, अर्थात् इस प्रस्तावके पास होनेके दो ही दिन बादसे यह मन्दिर 'अस्पृश्यों' के लिए खुला घोषित किया जायेगा। कहते हैं, यद्यपि उपर्युक्त सूचनाका वितरण करनेके अलावा और कोई संगठित प्रयास नहीं किया गया, फिर भी अबतक अस्पृश्यों-सहित कोई १,२०० स्त्री-पुरुष और बच्चे इस मन्दिरमें आकर

पूजा-प्रार्थना कर गये हैं और कोई भी अशोभन घटना नही हुई है। यह बहुत ध्यान देने योग्य बात है कि वर्धा-जैसे महत्त्वपूर्ण स्थानमें एक प्रसिद्ध मन्दिरके द्वार अस्पृश्योंके लिए खोल दिये गये, लेकिन कट्टरपन्थियोंने विरोधकी आवाज बिलकुल नही उठाई और न लोगोंने सनातन धर्मके नाम पर, जब 'अस्पृश्य लोग' इस हिन्दू-मन्दिरके पवित्र और अब तक उनके लिए वर्जित द्वारको लाँघनेकी कोशिश कर रहे थे तो, किसी प्रकारका उपद्रव ही किया। यह अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनकी जबरदस्त प्रगतिका स्पष्ट प्रमाण है। इससे यह प्रकट होता है कि यदि हम स्थिर मनसे संकल्प कर लें और अपने उद्देश्यके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें तो सुधारके सच्चे आन्दोलनके पक्षमे बहुत स्वस्थ जनमत तैयार हो सकता है। मैं सेठ जमनालालजी तथा अन्य न्यासियोंको यह साहसपूर्ण कदम उठानेके लिए बधाई देता हूँ और यह आशा व्यक्त करता हूँ कि इस दृष्टान्तका अनुकरण सारे भारतमें किया जायेगा।

बिहारमें परदेका चलन

बिहारसे एक भाई लिखते हैं, बिहारमें परदेके चलनके खिलाफ कई महत्त्वपूर्ण स्थानोंमें जो संगठित प्रदर्शन किये गये, वे आयोजकोंकी आशासे भी अधिक सफल हुए। पटनाकी सभाके बारेमें 'सर्चलाइट'की रिपोर्ट इस प्रकार शुरू होती है:

> **गत रविवार, ८ जुलाईको पटनामें राधिका सिन्हा संस्थानमें आयोजित स्त्रियों और पुरुषोंकी सम्मिलित सभाका दृश्य बड़ा अद्भुत था। तेज वर्षाके बावजूद — हालाँकि सौभाग्यवश ठीक सभाके समय वर्षा रुक गई थी — लोग भारी संख्यामें एकत्र हुए थे, इतनी भारी संख्यामें जितनीकी आशा भी नहीं की जाती थी। सच तो यह है कि राधिका सिन्हा संस्थानके विशाल सभा-कक्षका आधा हिस्सा महिलाओंसे ही भरा हुआ था। और इनमें से तीन-चौथाई महिलाएँ ऐसी थीं जो अभी कलतक, बल्कि घंटे-भर पहले तक, परदेमें रहती थीं।**

सभामें स्वीकृत प्रस्तावका अनुवाद निम्न प्रकार है:

> **हम पटनावासी स्त्री और पुरुष, जो यहाँ एकत्र हुए हैं, घोषणा करते हैं कि आज हमने परदेके उस घातक चलनको समाप्त कर दिया है जिसने देश और विशेषकर नारी समाजका बेहिसाब नुकसान किया है और आज भी कर रहा है, और हम प्रान्तकी अन्य महिलाओंसे, जो आज भी संकल्प-विकल्पकी स्थितिमें पड़ी हुई हैं, अनुरोध करते हैं कि वे जितनी जल्दी हो सके, इस प्रथासे छुटकारा पा लें और इस तरह अपनी शिक्षा और स्वास्थ्यमें वृद्धि करें।**

बिहार प्रान्तमें परदा-प्रथाके खिलाफ जोरदार प्रचार करने और स्त्री-शिक्षाका प्रसार करनेके लिए सभामें ही एक अस्थायी समितिका गठन किया गया। एक तीसरे प्रस्तावमें प्रत्येक शहर और प्रत्येक गाँवमें एक-एक महिला समितिके गठनकी सिफारिश

की गई। फिर, इस आशयका चौथा प्रस्ताव पास किया गया कि विभिन्न स्थानोंमें महिलाश्रमोंकी स्थापना करनी चाहिए, जहाँ कुछ दिन रह कर स्त्रियाँ 'अच्छी गृहिणी', 'कुशल माता' और देशकी 'योग्य सेविका' बननेका प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। सभामें ही लोगोंने इस कामके लिए ५,००० रुपये देनेका वादा किया और देखता हूँ, दान देनेवालों मे से कई महिलाओंने २५० से लेकर २५ रुपये तक दिये हैं। इस अखबारमें बिहारके अन्य स्थानोंमें आयोजित इसी तरहकी और भी सभाओंकी रिपोर्टें छपी है। यदि इस आन्दोलनको अच्छी तरह संगठित किया जाता है और उत्साहपूर्वक चलाया जाता है तो परदा-प्रथा समाप्त होकर रहेगी। ध्यान देनेकी बात है कि यह महिलाओं को अंग्रेजी रंगमें रँगनेका आन्दोलन नही है। यह आन्दोलन देशकी मिट्टीके सर्वथा अनुकूल है और इसका नेतृत्व ऐसे लोग कर रहे हैं जो स्वभावत: अपनी परम्पराओके पोषक है, लेकिन साथ ही हिन्दू समाजमें जो बुराइयाँ घुस गई है, उन सबके प्रति भी जागरूक है। बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद और बाबू राजेन्द्रप्रसाद, जो बहुत दूर लन्दनमें बैठे हुए इस आन्दोलनको गहरी रुचिसे देख रहे है और इसका समर्थन कर रहे है, कोई पाश्चात्य रंगमें रँगे भारतीय नही है। वे सनातनी हिन्दू है और भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओंसे उन्हें प्रेम है। वे पश्चिमका अन्धानुकरण करने-वाले नही है, लेकिन साथ ही उसमें जो-कुछ अच्छा है, उसे ग्रहण करनेमें भी नही हिचकिचाते। इसलिए डरने-झिझकनेवालों को मनमें ऐसा कोई भय रखनेकी जरूरत नहीं है कि यह आन्दोलन किसी भी रूपमें भारतीय संस्कृतिके सद्‌गुणों और विशेषकर नारी-सुलभ शील और सौन्दर्यके लिए, जो भारतके स्त्री-समाजका अपना विशिष्ट गुण है, बाधक होगा।

आश्रमका संविधान और नियम

सत्याग्रह आश्रमके संविधान और नियमोंके प्रकाशनके बादसे उसकी प्रतियोंकी माँग बराबर आती रही है। मगर इसे भेजनेमें यदि सिर्फ डाक-खर्चको ही देखा जाये तो वह भी खर्चकी कोई मामूली मद नहीं है। इसलिए जो लोग संविधानकी प्रति अपने पास रखना चाहते हों वे पैकिग और डाकके खर्चके लिए एक-एक आनेके टिकट भेजनेकी कृपा करेंगे।

एक भूल-सुधार

श्रीयुत गोकुलभाई पटेल, जो बारडोलीके निमित्त सान्ताक्रुज तथा विलेपार्लेसे मिले चैक लाये थे, मेरा ध्यान 'यंग इंडिया' में इन अनुदानोंकी स्वीकृति प्रकाशित करनेमें हुई एक भूलकी ओर दिलाते है। जो नाम विलेपार्ले शीर्षकके अन्तर्गत आने चाहिए थे वे सान्ताक्रुजके अन्तर्गत आ गये हैं। इस भूलके लिए मुझे खेद है। 'यंग इंडिया' के कर्मचारियोके सिर काम बहुत ज्यादा है, इसलिए तमाम सावधानीके बाव-जूद गलतियाँ होती ही रहेंगी। उदार पाठक ऐसी भूलोंके लिए, अगर वे इरादतन न की गई हों या इससे भी बदतर दर्जेकी भूलें न हों तो, क्षमा करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-७-१९२८

१११. पत्र : अहमदाबाद केन्द्रीय जेलके अधीक्षकको

आश्रम, साबरमती
२६ जुलाई, १९२८

महोदय,

आपका इसी २४ तारीखका पत्र मिला। इस लिखा-पढ़ीके सिलसिलेको जारी रखनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। आपके इस पत्रमें मुझे ऐसी कोई बात नही मिली जिससे मैं अपने गत २१ तारीखके पत्रमें[1] जाहिर की गई राय बदल सकूँ। यदि आप ऐसा नहीं समझते कि जिन लोगोंको आपने देखा वे आश्रमवासी थे तो फिर यह बात मेरी समझमें नही आती कि वे लोग कौन थे, इसकी जाँच करके उन्हें आगाह कर देनेको आश्रमसे कैसे कहा गया। और न मै यही बात समझ पा रहा हूँ कि वह अनधिकार प्रवेशी, अनधिकार प्रवेशी नहीं है जिसके साथ वे लोग, जिनके हलकेमें वह अनधिकार प्रवेश करता है, शिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं। आपको शायद मालूम हो कि हम तो चोर-डाकुओंके साथ भी शिष्टतापूर्ण व्यवहार करनेकी कोशिश करते हैं।

आपके यहाँके अधिकारियोंकी नम्रताका सबूत पानेके लिए मै श्रीयुत कोठारी या श्रीयुत कालेलकरसे पूछताछ नहीं कर रहा हूँ, इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। इसका निर्णय करनेके लिए तो आपका अपना पत्र मेरे सामने मौजूद है।

आपका विश्वस्त,

अंग्रेजी (एस० एन० १३४८६)की फोटो-नकलसे।

११२. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
[२७ जुलाई, १९२८के पूर्व][2]

प्रिय भगिनि,

आपका खत मील गया है। चि० निखिलके लीये कुछ भी चिंता न करना चाहीये। यदि उसके इस देहसे ईश्वर काम लेना नहिं चाहता है तो भले ले जाय। पुत्र प्रेम, पति प्रेम, मित्र प्रेम इ०का अर्थ एक ही है। वह यह है। सब प्रेमका परिवर्तन करके हम केवल ईश्वर प्रेम ही रखे क्योंकी सबको ईश्वरमें ही लीन होना

१. देखिए "पत्र : अहमदाबाद केन्द्रीय जेलके अधीक्षकको", २१-७-१९२८।
२. देखिए "पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको", २७-७-१९२८।

है जैसे सब नदीयां समुद्रमें जाकर मीलती हैं। यथार्थ रूपसे गंगा भी कहां है, कहां है यमुना? वैसे ही सब मनुष्यका समझना। सब लड़कोंको अनिल, निखिल समझो और सब दु:ख नष्ट हुआ। जो स्वार्थी है उसको एक दो तीन ऐसे संख्याबद्ध लड़के हैं जो नि:स्वार्थ है उसके तो असंख्य लड़के हैं।

बापुके आशीर्वाद

जी० एन० १६५२की फोटो-नकलसे।

११३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

२७ जुलाई, १९२८

प्रिय चार्ली,

नीचे तुम्हारे तारके उत्तरमें भेजे तारकी नकल दे रहा हूँ। मेरे पास अभी और समय नहीं है। सुब्बैया अपनी गर्भिणी पत्नीको मायके छोड़ने मद्रास गया है। महादेव अब भी खाट पर ही है, हालाँकि वैसे वह बिलकुल ठीक है।

तुम्हें 'आत्मकथा'की पाँच प्रतियाँ भेज रहा हूँ।

सस्नेह।

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० २६२८)की फोटो-नकलसे।

११४. पत्र : जी० वी० सुब्बारावको

२७ जुलाई, १९२८

प्रिय मित्र,

बेशक, मै सचाईको स्वीकार करनेके लिए अपना दिमाग बिलकुल खुला रखूँगा और जब-कभी मैं उधर आऊँगा आप मुझसे अवश्य मिल सकेंगे। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशीकी बात कुछ नहीं होगी कि मुझे यह भान हो जाये कि उस दिवंगत भाईके विषयमें मेरे विचार गलत थे, जिसके कई गुणोंसे मैं बिलकुल अनजान नहीं हूँ।[1]

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

श्रीयुत जी० वी० सुब्बाराव
इंडियन बैंक, बेजवाड़ा, दक्षिण भारत

अंग्रेजी (जी० एन० ३६२६)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : जी० वी० सुब्बारावको", २१-७-१९२८ भी।

११५. पत्र : वसुमती पण्डितको

[२७ जुलाई, १९२८][1]

चि० वसुमती,

कल चिन्तित हो उठा था इसलिए तार देना पड़ा। आज उत्तर मिल जानेसे कुछ शान्ति मिली। बुखार बहुत लम्बा चला। हिम्मतसे काम लेना और घबराना नहीं। जहाँ भी जाओ उस स्थानको अपना घर मानकर वहाँ रहते हुए आवश्यक सेवा स्वीकार करनेके पाठको मत भूलना। झूठा अभिमान और झूठी शर्म हमारे शत्रु हैं। तुम्हारा पत्र मुझे प्रतिदिन अवश्य मिलना चाहिए और उसमें सभी बातें विस्तारपूर्वक लिखनी अथवा लिखवानी चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे नानी-बहनने जो सात दिनका उपवास किया था वह आज पूरा हो गया।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन
कन्या गुरुकुल

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८६)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

११६. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

२७ जुलाई, १९२८

प्रिय भगिनि,

मैं आपको क्या लिखुं? निखिलके जानेके लीये हम सब तैयार हि थे। वह तो दु:खमें से छुटा। उसको तो दीव्य जन्म होनेवाला है। ऐसा वह ज्ञानी और संयमी लड़का था। सतीशबाबुने परम शांति रखी है। उससे हम सब आश्चर्यचकित हुए हैं। वैसी हि शांतिकी आप सबके तरफसे मैं आशा करता हुं।

बापुके आशीर्वाद

जी० एन० १६५९की फोटो-नकलसे।

१. डाकखानेकी मुहरसे।

११७. गवर्नरकी धमकी

हिन्दुस्तानकी नौकरशाही अनुभवसे कोई बात सीखनेसे इनकार करती हुई जान पड़ती है। वह ऐसा व्यवहार करती है मानों वह जानती ही हो कि लोगोंपर से धमकीका असर उठ गया है। लाखो लोग ऐसे है जिनपर धमकीका कोई असर होता ही नही है, इतना ही नही अब एक ऐसा वर्ग पैदा हुआ है जो मरनेपर तुला हुआ है और जिसपर धमकीमें कही गई बातोंके कार्यरूपमें परिणत किये जानेका भी कोई असर नही होता। जिसने मौतका डर छोड़ दिया है, जिसने धन-मालका मोह त्याग दिया है, भला राजदण्ड उसका क्या बिगाड़ लेगा? जिसकी सबसे प्यारी वस्तु स्वाभिमान हो, उसपर धमकीका असर क्या होगा? अर्थात् गवर्नर साहबकी धमकी, और विंटरटन साहब द्वारा उसका पूर्ण अनुमोदन भी बारडोलीके लोगों पर कोई असर नहीं कर सकेगा। इतना ही नही, सुनता तो यह हूँ कि इस धमकीसे लोग और भी दृढ़ हो गये है।

किन्तु हमें सरकारी धमकीका विश्लेषण नहीं करना है। हमें इसका पता है कि अपनी धमकी सच्ची कर दिखलानेकी शक्ति सरकारमें है और इसे हम भूलना भी चाहें तो सरकार हमें यह भूलने नही देगी। हमारी बड़ाई इसीमें है कि हम यह मानकर कि सरकार धमकीके अनुसार ही काम करेगी, सरकारी कोपका स्वागत करनेको तैयार रहें। 'सावधान नर सदा सुखी'—कहावतको बारडोलीके भाई-बहन अपने दरवाजों पर लिख रखें और बराबर सावधान रहें। लड़ाईके आरम्भसे ही श्री वल्लभभाईने लोगोंको सचेत कर रखा है:

> **तुम्हें लड़ना हो तो संकट सहन करने पड़ेंगे। सरकार जब्ती करेगी, जमीन कुर्क करेगी, तुम्हारा माल मिट्टीके मोल बेच डालेगी, तुम्हें तुम्हारी जमीनसे बेदखल कर देगी, और अगर वह तुमपर गोलियोंकी बौछार कर दे तब भी तुम पीठ मत दिखलाना, गोलियोंको छातीपर फूलके समान सहना।**

जिन्होंने ये वचन याद रखे होंगे, उन्हें अधिक चेतावनीकी जरूरत नहीं है।

किन्तु हमारा सम्बन्ध सरकारके कोपके साथ नहीं है। क्रोध करना राजाकी इजारेदारी है। सरकारके क्रोधके जवाबमें हमें क्रोध नहीं करना है। सत्याग्रहीको क्रोध करनेका अधिकार ही नहीं है। क्रोधको हमें अक्रोधसे जीतना है। सरकारके क्रुद्ध वचनोंसे हमें सत्यका मार्ग नही छोड़ना है। वह क्रोध करे या न करे, हमारी माँग तो एक ही हो सकती है। सरकार ज्वालामुखीका लावा उगलती रही है। सूरतमें जारी की गई समझमें न आने लायक सरकारी विज्ञप्ति ही गोकि उसका अन्तिम वचन समझी जाती है, तो भी समझौतेकी बातोंकी भनक हमारे कानोंमें अभी तक पड़ती ही रहती है। इस विषयकी भी हम चिन्ता न करें कि इसमें सरकारका हाथ है या नहीं। किन्तु समझौतेका अगर एक भी द्वार अभी खुला हुआ हो तो उससे

होकर जानेके लिए हम तैयार रहें। मरनेके लिए जो तैयार है, वह अगर विवेक छोड़ दे तो फिर वह शहीद नहीं, विवेकहीन मूढ़ है। बिना जरूरत ही जो अपने शरीरको नष्ट कर देता है, वह पागल या मूर्ख समझा जाता है और उस मरणमें वीरता नहीं है; इसलिए वह स्वयं अपना या अन्य किसीका उपकार भी नही कर रहा है।

इसलिए बारडोली या वालोडके लोगोंको अधिक माँगें पेश करनेका अधिकार है, तो भी उन्होंने उस अधिकारसे काम नहीं लिया है और अब सरकारने मर्यादाका उल्लंघन कर डाला है, इसलिए भी वे और अधिक माँगें पेश नहीं कर सकते। सत्याग्रहियोंकी माँगें इस प्रकार हैं:

१. उनकी शिकायतें सुनकर न्याय देनेवाली स्वतन्त्र निष्पक्ष समिति नियुक्त की जाये;

२. और समिति इस जाँचमें निहित शर्तोंका पालन करे; अर्थात्

(क) जो लोग सत्याग्रहके सम्बन्धमें कैद हुए है, उनको छोड़ दिया जाये।

(ख) सत्याग्रहके सम्बन्धमें जितनी जमीन जब्त हुई है, वह लौटा दी जाये।

(ग) लोगोंकी या उनके कारण अन्य हुई प्रत्यक्ष हानि पूरी कर दी जाये।

जो अप्रत्यक्ष नुकसान लोगोंको मवेशियों और मालका हुआ है, सत्याग्रहियोंको उसका भी मुआवजा माँगनेका पूरा अधिकार है, मगर तो भी उसे वे नहीं माँगते। अगर माँगें तो यह समझौतेका लक्षण नहीं गिना जायेगा। सत्याग्रही हमेशा जान-माल गँवानेकी तैयारी करके ही सत्याग्रह शुरू करता है। इसलिए जब्ती आदिसे होनेवाले नुकसानके अतिरिक्त जो अप्रत्यक्ष नुकसान हुआ हो, सत्याग्रही उसका मुआवजा न माँगें।

ऊपर दी हुई लोगोंकी माँगोंको सरकार स्वीकार करे तो बकाया लगान देना लोगोंका धर्म हो जाता है। यह मै मान ही लेता हूँ कि लोग पुराना लगान भरनेको हमेशा तैयार रहे है। कभी न कभी तो यह लगान भरना ही पड़ता। जिस लगानके अनुचित होनेके कारण सत्याग्रह शुरू हुआ है, उस लगानकी बढ़ी हुई रकम बम्बईके कोई गृहस्थ दे रहे है और उनका तार अखबारोंमें छपा है। इन्होंने अगर सरकारको इतनी भेंट देनेका विचार रखा हो तो इन्हें कोई रोक नही सकता। ऐसी भेंटसे सरकारके मनका समाधान हो जाये तो हमें इससे भी कोई द्वेष नहीं हो सकता। आज इसका निर्णय नही किया जा सकता कि बारडोली ताल्लुकेके इस बम्बईवासी गृहस्थने यह रकम देना स्वीकार करके अपना या जनताका अहित किया है या नहीं। सरकारके लिए अत्यन्त छोटी रकम होने पर भी, अगर इस इजाफेकी रकमकी ऐसी भरपाईसे समझौता हो सके तो उसे होने देना सत्याग्रहीका धर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-७-१९२८

११८. टिप्पणी

स्वयं ही करना पड़ेगा

खम्भातसे एक नौजवान लिखते हैं:[1]

शादी या ऐसे ही दूसरे मौकों पर दिये जानेवाले भोजको मैं क्षम्य समझता हूँ। सीमन्तके[2] समय दिये हुए भोजको मैं शर्मकी बात मानता हूँ और मरने पर खिलानेको पाप समझता हूँ, फिर भले ही वह बारहवें दिनका हो या तेरहवें दिनका, बूढ़ेकी मौतसे सम्बन्ध रखता हो या नौजवानकी। मुझे तो सभी भोज फिजूल और असभ्यतापूर्ण लगते हैं। शरीरकी रोजमर्राकी जरूरतोंको हम भोगका साधन कैसे बना डालते हैं, यह मेरी बुद्धि समझ नहीं सकती। मैं अपनी विवशताके कारण ऐसी किसी चीजको सह भले ही लूँ, तो भी अगर हम रूढ़िके गुलाम न बन गये हों, तो हमें मृत्युभोज और सीमन्तभोजमें तो हरगिज न जाना चाहिए। हमारा अपना शुद्ध आचरण ही मुख्य बात है। जैसा हम करते हैं उसी तरह माँ-बाप, स्त्री या बड़े लड़के-लड़की न करें, तो उसका दुःख नहीं होना चाहिए और उनपर जबरदस्ती न होनी चाहिए। हम यकीन रखें कि हमारा अपना आचरण शुद्ध रखनेसे दूसरोंको भी उसका स्पर्श होगा। मुझे पता नहीं, जैन साधु क्या करते हैं। लेकिन इसमें शक नहीं कि समाजकी कुरीतियोंकी वे परवाह न करते हों तो वह ठीक नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-७-१९२८

११९. बहिष्कार या असहकार

एक मित्र लिखते हैं[3]:

आजकल जब कि लोगोंके मनमें अशान्ति, हिंसा और अधर्म व्याप्त है तब अच्छीसे-अच्छी वस्तुका भी दुरुपयोग होता है। ऐसे समयमें हम बहिष्कार शब्द लिखें या असहयोग और दोनोंके पहले व्यक्तिगत या सामुदायिक विशेषण लगायें या न लगायें, हर हालतमें उसका अनर्थ तो होगा ही। इसलिए हम प्रत्येक वस्तुकी मर्यादा सूचित कर दें और अमल करनेमें उस मर्यादाका पालन करते हुए सन्तोष मानें। व्यक्तिगत बहिष्कार या असहयोगमें भी हिंसाकी गन्ध नहीं होनी चाहिए।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने पूछा था कि **नवजीवन**के लेखोंसे प्रभावित होकर जिन नवयुवकोंने तेरहवीं आदि अवसरोंपर दिये जानेवाले भोजोंमें सम्मिलित होना छोड़ दिया हो, उनके कुटुम्बके लोगोंको भी इसके लिए राजी करनेकी दृष्टिसे गांधीजी कुछ कर सकते हैं या नहीं।

२. प्रथम गर्भ-धारणके चौथे, छठे अथवा आठवें महीनेमें दिया गया भोज।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकके अनुसार बालिकासे विवाह करनेवाले वृद्धका बहिष्कार समाज भले ही करे, लेकिन ऐसा अपराध करनेवालेके कुटुम्ब या उसकी सन्तानका बहिष्कार नहीं करना चाहिए।

जो वृद्ध बालिकासे-विवाह करे मै उसका भी तिरस्कार करनेको नही कहता। वह तो दयाका पात्र है। मनुष्यको जब कामरूपी शत्रु घेर लेता है, तब वह अवस्थाका भान भूल जाता है। पवित्रसे-पवित्र सम्बन्ध भी नष्ट हो जाता है। यह नशा मद्यपानसे भी अधिक बुरा है। इसलिए हम अपनी ही निर्बलता, अपनी भूलोका विचार करके भी विषयासक्त वृद्ध पुरुष पर तरस खायें। किन्तु उसपर दया करना और उसके साथ सहयोग करना दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। सच्ची दयामें मोहको स्थान नहीं है। सच्ची दयामें अन्ध प्रेमको स्थान नही है। इसलिए जिसने भूल की है, उसने समाजके प्रति अपराध किया है। उसे इस भूलका भान कराना अत्यावश्यक है। यह ज्ञान या तो गुनहगारको दण्ड देकर कराया जा सकता है अथवा समाजने अमुक शर्तोंके साथ उसे जो अधिकार दिये थे, उन्हें छीनकर कराया जा सकता है। अधिकार ले लेने और दण्ड देनेमें भेद है। किसी आदमीको ईमानदार समझकर मैं उसे अपना प्रतिनिधि बनाऊँ और वह बेईमान साबित हो तो उससे वह हक छीन लूँ, यह एक बात है, और उसे शारीरिक दण्ड दूँ, या उसका घर-बार लूट लूँ या सरकारसे शिकायत कर उसे दण्ड दिलाऊँ, यह दूसरी बात है। और यदि मैं स्वयं उसीको दण्ड नही देता, न दिलवाता हूँ तो उसके कुटुम्बी-जनोंके प्रति ऐसे व्यवहारकी बात ही नहीं उठती। सच पूछो तो असहयोग या बहिष्कारमें जब दण्ड अथवा हिंसा दाखिल हो जाती है, तब वह प्रभावशाली अस्त्र नही रहता; क्योंकि तब दण्ड देनेवाला खुद ही अपराधीके समान बन जाता है और अपराधी स्वयं यह मानकर कि उसके अपराधका प्रायश्चित्त पूरा हो गया है अपने किये कृत्यके सम्बन्धमें अधिक आग्रही बन जाता है और प्रसंग आने पर फिर वैसा ही करनेको तैयार हो जाता है। ऐसे ही कारणोंसे आज तक दण्डनीति अथवा हिंसासे पाप अथवा गुनाह होना बन्द नहीं हुआ है और इसीलिए मैंने अपने सभी लेखोंमें कहा है कि सुधारकको शुद्ध और मर्यादाशील होना चाहिए तथा उसके प्रत्येक काममें अहिंसा अथवा प्रेम होना चाहिए। मेरे सुझाये बहिष्कारका यह अर्थ हुआ कि बहिष्कृतसे हम कोई सेवा न लें। खुद असुविधा उठा लें, और उसे जो विशेष अधिकार दिये हों, उन्हें छीन लें। किन्तु जब-जब उसकी सेवा करनेका प्रसंग आये, तब-तब उसकी सेवा जरूर करें। इस तरह बहिष्कृत आदमी बिरादरीके भोजनमें नहीं आ सकता। उसे अध्यापक बनाया हो तो यह पद उससे हम ले लें। वह अध्यापक हो और हम अगर उससे पढ़ते हों तो न पढ़ें। वह हमारा भाड़ेदार हो तो भाड़ेदार नही रह सकता, मगर बीमार हो तो हमारी सेवा ले सकता है। वह बिना कारण ही भूखों मरता हो तो हम उसकी भूख मिटायें। यह तो मैंने सहज दृष्टान्तके रूपमें बताया है। थोड़ेमें बात यह है कि हम जाग्रत स्थितिमें विचार करके जो अपने बारेमें पसन्द न करें, वह दूसरे किसीके बारेमें न चाहें, न करें।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-७-१९२८

१२०. पत्र : जेठालाल जोशीको

२९ जुलाई, १९२८

भाईश्री जेठालाल,

यदि फलाहार किया जाये तो उसे उपवास नही कहा जा सकता। उपवासका उद्देश्य शरीर-शुद्धि अथवा मनकी शुद्धि होता है या दोनों होते हैं। मनकी शुद्धिमें उपवासका हिस्सा बहुत-कम है। शेष प्रश्नोंके उत्तर तो तुम्हें नियमावलीमें[१] मिल जायेंगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० १३५२)की फोटो-नकलसे।

१२१. पत्र : वसुमती पण्डितको

२९ जुलाई, १९२८

चि० वसुमती,

इस बार तुम्हारी बीमारी बहुत लम्बी चली। तुम्हारी खाँसी कैसी है? मुझे हर वक्त ऐसा लगता रहता है कि आश्रममें होनेवाले उपचार और हवासे तुम्हें जल्दीसे-जल्दी आराम पहुँच सकता है। किन्तु तुम्हें तो वहाँ दृढ़तापूर्वक जमे रहना है। बहुत अधिक दवाएँ न पियो तो अच्छा। किन्तु यह सब लिखनेके बावजूद मैं नही चाहता कि तुम बरबस वहाँ रहो। यदि तुम्हारी कभी यहाँ आनेकी इच्छा होने लगे तो लिखना। तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें मुझे रोज खबर मिलनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

विद्यावतीजी से कहना कि उनका पत्र मुझे मिल गया है।

चि० वसुमतीबहन
कन्या विद्यालय

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८७)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. आश्रमवासियोंके लिए स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी नियमोंकी पुस्तिका।

१२२. पत्र : छगनलाल जोशीको

३० जुलाई, १९२८

भाई छगनलाल जोशी,

इसे दफ्तरके कागजोंमें रख देना। इसके सम्बन्धमें यदि कुछ कहना चाहो तो लिखना। अन्तिम विषयके बारेमें कार्यकारी मण्डलकी बैठकमें विचार करना ठीक होगा।

बापू

गुजराती (एस० एन० ११८०४) की माइक्रोफिल्मसे।

१२३. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

३० जुलाई, १९२८

भाईश्री वल्लभभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम यह जान लो कि तुम मुझे जब भी बुलाओगे, मैं तुरन्त और उसी दिन रवाना होनेको तैयार बैठा हूँ। तुम मुझे शीशीकी चौदह दिनकी रेत खत्म होनेके पहले, अर्थात् रविवारसे पहले ही बुलाना चाहते हो न? यदि मेरा यह सोचना ठीक हो तो महादेवको आज भेजनेकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह पूर्णतः स्वस्थ हो गया है यह अभी नही कहा जा सकता। उसकी तबीयत अच्छी हो या खराब, वह मेरे साथ तो आयेगा ही। किन्तु यदि तुम उसे तत्काल वहाँ बुलाना चाहो तो तार देना। फिर वह कल ही रवाना हो जायेगा। अब उसकी ऐसी हालत नहीं है कि वह जा ही न सके। वह सँभलकर बैठता-उठता और चलता है। मेरा हेतु तो यह है कि जितने दिन उसे रेलके हचकोलोंसे बचाया जा सकता है, बचाया जाये।

मजदूरोंकी पाठशालाके सम्बन्धमें क्या करना चाहिए, इस पर मैं कल सोच-विचार करूँगा। कृष्णलाल यहाँ पहुँच गया है। बहुत-सा पैसा जो प्रान्तीय समितिके पास पड़ा है, वह तो भले वही पड़ा रहे। वह उसका जो करना चाहे सो करे। मेरा विचार यह था कि आश्रमको उस रकमको अपने अधिकारमें ले लेना चाहिए। मैंने अपना यह विचार अभी बदला नहीं है, किन्तु अगर हम समय रहते मिले तो इस बारेमें विचार-विमर्श करेंगे। फिलहाल तो तुम्हारा एक पैर रकाबमें है और कौन जानता है कि तुम कब सवार हो जाओगे।

अपना स्वास्थ्य सुधार लो। एन्ड्रयूजका दूसरा तार इस प्रकार है।

'टाइम्स' और 'गार्जियन' दोनोंने मेरा सम्वाद प्रकाशित किया। 'गार्जियन'ने मित्रतापूर्ण सम्पादकीय लिखा। अगली महत्त्वपूर्ण घटनाओंकी सूचना तार द्वारा दें।[1]

अब मैं सोच रहा हूँ कि कौन-सी सूचना दी जा सकती है?[2]

मुशीका पत्र मिला था। उसका उत्तर दे दिया है; उत्तरकी नकल महादेव इसीके साथ भेजेगा।

बापू

गुजराती (एस० एन० १४४५४)की फोटो-नकलसे।

१२४. तार : सी० एफ० एन्ड्रयूजको[3]

[३० जुलाई, १९२८को या उसके पश्चात्]

स्थिति बदतर। सरकार सत्याग्रहियों और उनके नेताओंको अपमानित करनेको कृतसंकल्प जान पड़ती है और यह जानते हुए भी कि सूरत जिलेका प्रतिनिधित्व करनेवाले विधान-पार्षदोंका बारडोलीपर कोई प्रभाव नहीं है, उनपर जोर दे रही है कि वे उसकी गोलमोल शर्तोंको स्वीकार कर लेनेका अधम कार्य करें। इस तरह थोपी गई परिस्थिति वास्तविकतासे कतई दूर है। खबर है कि बारडोलीकी जनता बिलकुल दृढ़ है। वह कोई कष्ट उठानेको तैयार है। अखबारोंमें गवर्नरकी अन्तिम चेतावनीकी तिथि समाप्त होनेपर वल्लभभाई और उनके साथी कार्यकर्त्ताओंकी गिरफ्तारीकी आशंका व्यक्त की जा रही है। वल्लभभाईके आह्वान पर मैं किसी भी दिन बारडोली पहुँचनेकी आशा रखता हूँ।

मोहन

अंग्रेजी (एस० एन० १३२६४)की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें यह अंश अंग्रेजीमें है।

२. देखिए अगला शीर्षक।

३. सी० एफ० एन्ड्रयूजके २८ जुलाईके तारके उत्तरमें; देखिए पिछला शीर्षक।

१२५. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सत्याग्रहश्रम, साबरमती
३१ जुलाई, १९२८

भाईश्री वल्लभभाई,

आपका पत्र मिल गया। आज तो मैं जिसमें मुझसे वहाँ जानेको कहा जायेगा ऐसे तारकी आशा कर रहा था। मैंने अपनी सब तैयारी कर ली थी।

भाई नरीमन और हरिभाई यहाँ आ रहे हैं, इसलिए अभी ज्यादा नही लिखता। हमारा रास्ता तो सीधा है। न हमें पटवारियोंकी बात छोड़नी है और न जमीनकी जाँच-समितिकी जाँच पूरी होनी चाहिए। जांचके क्षेत्रका सीमित किया जाना हमें स्वीकार्य नही हो सकता। अगर आपको ठीक लगे तो के और डेविस भले ही रहें। मुझे कब आना चाहिए, इसके बारेमें तार दें।

मणिबहन मिल गई। बहुत सूख गई है। उसे भेज दिया यह अच्छा किया। अभी तो शहरमें ही रहेगी। पाँच तारीखको आनेकी बात कर रही है। भाई नरीमन और हरिभाई मिल गये हैं। आपको विधान सभाके सदस्य बीचमें पड़कर सार्वजनिक रूपसे बुलायें, तो उनके आमन्त्रण पर जाना मुझे इष्ट प्रतीत होता है। शर्तें तो वही हैं, जो हमने बनाई हैं।[1]

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने

१. देखिए "सरकारकी कुबुद्धि", २२-७-१९२८।

१२६. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
१ अगस्त, १९२८

चि० वसुमती,

मै यह पत्र सबेरे ३ बजेके पहले लिखवा रहा हूँ। बीमारीकी वजहसे घबराहट तो नही होती? प्रफुल्लचित्त रहना। यदि निराश होने लगो तो अर्थ-सहित

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।[1]

का पाठ कर अपने दुःखको भूल जाना और चित्त प्रसन्न रखना। जो डॉक्टर तुम्हें देखने आता है उसका क्या नाम है? फिलहाल खानेको क्या बताया है? नानी बहनका उपवास पूरा हो गया यह तो तुम जानती ही होगी। मुझे शायद आज-कलमें बारडोली जाना पड़े।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन
कन्या गुरुकुल

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८८)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१२७. पत्र : हरि-इच्छा देसाईको

१ अगस्त, १९२८

चि० हरि-इच्छा,

मुझे तुम्हारे कई पत्र मिले किन्तु मैं उनका उत्तर नही दे सका। तुम्हारे बारेमें चि० रसिकसे खबर तो मुझे मिलती ही रहती है।

रसिकने स्कूल छोड़कर कुछ गँवाया नही है। वह पढ़नेकी अपेक्षा यहाँ रहकर कहीं अधिक सीख सकेगा। अतः उसका स्कूल छूट जानेके कारण दुःख मनानेकी कोई बात ही नही है।

मुझे तो तुमसे यह आशा थी ही कि तुम वहाँ आश्रमका वातावरण बनाये रख सकोगी। मैंने सुना है कि उक्त वातावरण जिस हद तुम बनाये रख सकी प्रभा

१. **भगवद्गीता,** अध्याय २-५६।

उसी हद तक उसे भूल बैठी है। अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना और जितना अध्ययन कर सको उतना करना। रामायण पढ़ना जारी रखना और धुनाई और कताई तो है ही।

चि० सन्तोक और रुखीबहन इस सप्ताहके अन्तमें वहाँ पहुँचेगी। उनसे मिलती रहना। समय-समय पर मुझे पत्र लिखती रहना।

तुम सभी बहनोंको

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९०७) से।
सौजन्य: हरि-इच्छा कामदार

१२८. पत्र: नारणदास गांधीको

१ अगस्त, १९२८

चि० नारणदास,

मीराबहनने उत्तम प्रकारकी पाँच तोले पूनियाँ बनाकर मुझे दी हैं। ये पूनियाँ जिस खातेमें जमा करना चाहो उसमें जमा करके बहन राजकिशोरीके नामे चढ़ा देना। ये पूनियाँ मैंने उसे दे दी हैं।

बापू

गुजराती (एस० एन० ११८०६) की फोटो-नकलसे।

१२९. रक्षा नहीं, सेवा

यद्यपि अखिल भारतीय गो-रक्षा संघकी (गत २५ जुलाईको होनेवाली) बैठकका विज्ञापन 'यंग इंडिया' और हिन्दी तथा गुजराती 'नवजीवन' में भी कर दिया गया था और हालाँकि सदस्योंको — यहाँ तक कि चन्दा देनेमें चूक करनेवाले सदस्योंको भी — परिपत्रकी प्रतियाँ व्यक्तिगत रूपसे भेज दी गई थीं, फिर भी बैठकमें शायद एक दर्जनसे अधिक सदस्य शामिल नहीं हुए, और एक दर्जनमें भी अधिकांश आश्रममें रहनेवाले लोग ही थे। इन पृष्ठोंमें प्रस्तावका जो मसविदा प्रकाशित किया गया था और उक्त प्रस्तावको बादमें जिस रूपमें बैठकमें सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया गया उसके प्रास्ताविक अंशके पक्षमें यदि किसी प्रमाणकी आवश्यकता थी तो उपस्थित सदस्योंकी इस विरल संख्याने उसका एक जीता-जागता प्रमाण प्रस्तुत कर दिया। बैठकने संशोधनोपरान्त प्रस्तावको जिस रूपमें स्वीकार किया, उसका पूरा पाठ नीचे दे रहा हूँ:

चूँकि अखिल भारतीय गो-रक्षा संघ अपने जिस अखिल भारतीय स्वरूपका दावा करता आया है, उसके अनुरूप जनताने न तो उसकी ओर ध्यान दिया है और न उसे उतनी सहानुभूति ही दी है; और चूँकि इसकी प्रवृत्तियाँ संघके उद्देश्योंका धीरे-धीरे प्रसार करने और विशेषकर संघके उद्देश्योंके अनुसार सत्याग्रह आश्रममें एक दुग्धशाला और एक चर्मालयके संचालनमें सहायता देने तक ही सीमित रही हैं; और चूँकि चन्दे और अनुदान मुख्यत: केवल उन्ही भाइयोंसे मिलते रहे जिनकी इस प्रयोगमें विशेष रुचि है; और चूँकि इतनी-सारी गोशालाएँ और पिंजरापोल, जिनसे संघके प्रयत्नोंके प्रति प्रचुर उत्साह दिखाने और उसकी अधीनस्थ संस्थाएँ बन जानेकी आशा की जाती थी, वैसा करनेमें सर्वथा असमर्थ रहे हैं; इसलिए संघके वर्तमान सदस्योंका निर्णय है कि इस संस्थाको भंग कर दिया जाये और इसे किसी भी रूपमें कायम न रखते हुए, अपेक्षाकृत विनम्र नाम गो-सेवा संघ अपनाया जाये तथा संघके कामकाज, उसके कोष तथा सम्पत्तिकी व्यवस्था और नियन्त्रणका दायित्व सदाके लिए निम्नलिखित सदस्योंकी स्थायी समितिको सौंप दिया जाये:

मो० क० गांधी (अध्यक्ष), रेवाशंकर जगजीवन झवेरी (कोषाध्यक्ष), जमनालालजी बजाज, बैजनाथजी केडिया, मणिलाल वल्लभजी कोठारी, महावीरप्रसाद पोद्दार, शिवलाल मूलचन्द शाह, परमेश्वरीप्रसाद गुप्त, दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, विनोबा भावे, छगनलाल खुशालचन्द गांधी, छगनलाल नाथुभाई जोशी, नारणदास खुशालचन्द गांधी, सुरेन्द्रनाथ, चिमनलाल नरसिंहदास शाह, पन्नालाल बालभाई झवेरी, यशवन्त महादेव पारनेरकर और वालजी गोविंदजी देसाई (मन्त्री); और इस समितिको संस्थाका पैसा खर्च करने, उक्त प्रयोगोंका संचालन तथा नये प्रयोग करने, किसी सदस्यकी मृत्यु या उसके त्यागपत्र देनेपर रिक्त होनेवाले स्थानको भरने, बहुमतसे किसी सदस्यको निष्कासित करने तथा अन्य प्रकारसे विगत संघके उद्देश्योंको पूरा करनेके लिए काम करने एवं इस संस्थाके संचालनके लिए इसका संविधान तथा नियमादि बनाने और उनमें समय-समय पर आवश्यक संशोधन करनेकी पूरी सत्ता दी जाये।

प्रकाशित मसविदेमें अखिल भारतीय संघके स्थान पर जो अपेक्षाकृत बहुत छोटी संस्था बनाई जानेवाली थी, उसका नाम 'गो-रक्षा समिति' सुझाया गया था। लेकिन श्रीयुत जमनालालजी की पैनी दृष्टिसे इस नामकी असंगति नही छिप सकी। उन्होंने ठीक ही कहा कि यह छोटी-सी संस्था, जिसके अधिकांश सदस्योंकी कोई ख्याति-प्रसिद्धि नहीं है, गायकी रक्षा करने-जैसे महान् कार्यका दायित्व लेनेका दम्भ नहीं भर सकती, वह तो पूरी विनम्रतासे अपनी शक्ति-भर गायकी सेवा करनेका ही प्रयत्न कर सकती है। इसलिए उन्होंने यह उपयुक्त नाम 'गो-सेवा संघ' सुझाया। सभी उपस्थित सदस्योंने एक बेहतर नामकी तरह इसका स्वागत किया।

पाठकोंको यह सूचित कर दूँ कि इस समितिके अधिकांश सदस्य आश्रमवासी हैं और आश्रमवासियोंमें भी केवल उन्हींको सदस्य बनाया गया है जो या तो वास्तवमें दुग्धशाला और चर्मालय-सम्बन्धी प्रयोगका संचालन कर रहे हैं या जिनकी इसमें विशेष रुचि है। शेष सदस्य ऐसे हैं, जो पूरे हृदससे यह मानते हैं कि इसी

प्रकारके रचनात्मक कार्यसे गायोंको अवश्यंभावी विनाशसे बचाया जा सकता है। पशु-संरक्षण शास्त्रके प्रति चरवाहों और ग्वालोंमें रुचि पैदा करना इन कार्यकर्त्ताओंका कर्त्तव्य होगा। यदि इस वर्गके इतने सारे स्त्री-पुरुषोंको अपना धन्धा, जिससे अधिक सम्मानपूर्ण और कोई धंधा हो ही नहीं सकता, ज्यादा समझदारीसे और मानवीयतापूर्ण दृष्टिकोण रखते हुए चलानेके लिए प्रेरित किया जा सके तो समझ लीजिए कि आधा मैदान तो फतह हो गया। आज तो भारतमें ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि गाय और मनुष्य दोमें से किसका अस्तित्व रहे और किसका मिट जाये। और यदि गो-पालन और गायोंके उपयोगमें हम वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार नहीं चले तो या तो वह हमें बरबाद कर देगी या हम उसके विनाशका कारण बनेंगे। इसलिए यद्यपि बृहत् सम्भावनाओंका बोध करानेवाला नाम हटा लिया गया और उतनी ही संभावनाओं का बोध करानेवाले संविधानको भंग कर दिया गया है, लेकिन जो काम हमें कल करना था वह आज भी करना है और अधिक उत्कटतासे करना है। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि जो लोग अबतक पैसोंसे तथा अन्य प्रकारसे भूतपूर्व संघकी सहायता करते आये हैं, वे उसकी उत्तराधिकारिणी संस्थाकी भी सहायता करते रहेंगे। प्रबन्ध समिति निकट भविष्यमें नया संविधान और नये नियम प्रकाशित करनेवाली है। लेकिन दाता लोग अपने दान भेजनेके लिए उसकी प्रतीक्षा न करें।

और अन्तमें, यद्यपि पुराने संघको भंग कर देना उचित ही था, फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि उसका अस्तित्व सर्वथा निष्फल नहीं रहा। उसके कारण जनताके सामने इस विषयका ऐसा साहित्य आ सका जो लोकप्रिय शैलीमें लिखा गया है और सस्ता है तथा उपयोगकी दृष्टिसे बहुत सुविधापूर्ण है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसने चर्मशोधनके धन्धेके प्रति हिन्दुओंके मनमें जमे पूर्व-ग्रहको दूर करनेमें बहुत हद तक सफलता प्राप्त की है। जहाँ चार वर्ष पहले चर्मा-लयोंको गो-रक्षाकी योजनाका हिस्सा बनानेके खयाल पर सभी हँस देते थे, वहाँ आज गो-रक्षणमें उसके भारी महत्त्वको कमसे-कम सिद्धान्ततः तो सभी स्वीकार करते हैं। फिर, चार साल पहले गो-रक्षाके सम्बन्धमें कोई भी महत्त्वका व्यक्ति रचनात्मक कार्यकी बात नहीं सोचता था। बस, सब यही मानते थे कि यदि मुसलमानोंको बकरीदके अवसर पर गो-वध न करनेके लिए राजी किया जा सके तो गायकी रक्षा हो सकती है। अब लगभग सभी यह स्वीकार करते हैं कि भूतपूर्व संघने जिस रचनात्मक कार्यकी रूप-रेखा तैयार की, उसके बिना गायकी रक्षा नहीं हो सकती।

लेकिन जनता तो रचनात्मक तरीकेको तभी अंजाम दे सकती है, जब हम प्रत्यक्ष रूपसे व्यवहारमें यह दिखा दें कि इस तरीकेको अंजाम दिया जा सकता। यही वह काम है जो गो-सेवा संघको भूतपूर्व संस्थासे विरासतमें मिला है। चार वर्षोंके अनुभवसे मैं जानता हूँ कि यह काम कितना कठिन है, इसके लिए धैर्यपूर्वक कितना अध्ययन और परिश्रम करनेकी आवश्यकता है। इसलिए जिन भक्त-हृदय श्रद्धालु-जनोंके मनमें मूक प्राणि-जगत्की प्रतिनिधि-रूपा गायकी — हिन्दुओं द्वारा परम पूजित होकर भी उनके अज्ञान और अन्धविश्वासके कारण इतना अधिक

दुर्व्यवहार सहनेवाली गायकी — सेवा करनेकी आकांक्षा हो, उन्हें यह महत् कार्य सहायता देनेको आमन्त्रित करता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-८-१९२८

१३०. स्वावलम्बनमें ही स्वाभिमान है

इन स्तम्भोंमें अक्सर ऐसा सुझाव दिया गया है कि शिक्षाको अनिवार्य बनाने या कमसे-कम शिक्षा प्राप्त करनेको इच्छुक प्रत्येक बालक या बालिकाको शिक्षाकी सुविधा सुलभ करानेके लिए यह जरूरी है कि हमारे स्कूल और कालेज यदि पूरी तरहसे नही तो लगभग स्वावलम्बी बन जायें — लेकिन अनुदानों या सरकारी सहायता अथवा विद्यार्थियोंसे लिये शिक्षा-शुल्कके बल पर नही, बल्कि स्वयं विद्यार्थियोके ऐसे श्रमके बल पर जिससे आयकी प्राप्ति हो। ऐसा करनेका एकमात्र तरीका औद्योगिक प्रशिक्षणको अनिवार्य बना देना है। वैसे तो इस बातकी प्रतीति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक होती ही जा रही है कि विद्यार्थियोंको किताबी शिक्षाके साथ-साथ औद्योगिक प्रशिक्षण भी प्राप्त करना चाहिए, किन्तु इस देशमें औद्योगिक प्रशिक्षण देनेकी नीतिका पालन करनेका यह अतिरिक्त कारण है कि यहाँ शिक्षाको प्रत्यक्ष रूपसे स्वावलम्बी बनाना है। यह तभी हो सकता है जब कि हमारे विद्यार्थी श्रमकी महत्ताको समझने लगें और जब शारीरिक श्रमके बलपर किये जानेवाले कार्योंसे अनभिज्ञ होना लज्जास्पद बात मानी जाने लगे। अमेरिकामें अपना खर्च पूरा-पूरा या अंशत: अपनी मेहनतकी कमाईसे चलाना विद्यार्थियोंके लिए सबसे आम बात है, हालाँकि वह दुनियाका सबसे धनाढ्य देश है और इसलिए वहाँ शिक्षाको स्वावलम्बी बनानेकी शायद सबसे कम आवश्यकता है। ५०० रिवरसाइड ड्राइव, न्यूयार्क सिटीसे प्रकाशित, अमेरिकाके हिन्दुस्तान एसोसिएशनके अधिकृत बुलेटिन 'हिन्दुस्तानी स्टुडेंट', में इस सम्बन्धमें निम्नलिखित तथ्य प्रकाशित हुए हैं:[1]

यदि अमेरिकाके लिए अपने स्कूलों और कालेजोंको ऐसा रूप देना जरूरी है जिससे विद्यार्थी अपनी पढ़ाई-लिखाईके खर्चके लायक खुद कमा लें तो फिर हमारे

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें बताया गया था कि लगभग ५० प्रतिशत अमेरिकी विद्यार्थी अपनी गर्मीकी छुट्टियों और पढ़ाईके दिनोंका कुछ समय पैसा कमानेमें लगाते हैं। स्वावलम्बी विद्यार्थी सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। विद्यार्थियोंके लिए बढ़ईगिरी, सर्वेक्षण, नक्शा तैयार करना, रँगरेजी, फोटो खींचना, गाड़ी चलाना और ऐसे ही अन्य कार्योंका व्यावहारिक ज्ञान होना जरूरी है। आगे यह जानकारी भी दी गई थी कि विश्वविद्यालयों और कालेजोंमें औद्योगिक इंजीनियरीकी शिक्षाकी व्यवस्था है, जहाँ काम करके विद्यार्थी अपने वर्ष-भरके शिक्षा-शुल्कके लिए पैसे तो कमा ही लेते हैं, साथ ही उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करनेका भी श्रेय मिलता है।

स्कूलों और कॉलेजोंके लिए यह कितना ज्यादा जरूरी है? साधनहीन विद्यार्थियोंके लिए मुफ्त शिक्षाकी व्यवस्था करके उनपर दरिद्रता लादनेकी अपेक्षा क्या यह बहुत अच्छा नहीं होगा कि उनके लिए हम काम ढूँढ़ निकालें? भारतके युवक-समुदायके मनमें यह गलत धारणा पैदा करके कि अपनी जीविका अथवा पढ़ाई-लिखाईका खर्च चलानेके लिए अपने हाथ-पैरसे मेहनत करना भद्रजनोंके योग्य कार्य नही है, हम उसका जो अहित कर रहे हैं उसके बारेमें जितना कहा जाये, कम ही होगा। उनको इससे नैतिक और भौतिक दोनों तरहकी हानियाँ होती हैं, बल्कि नैतिक हानि अधिक होती है। मुफ्त शिक्षा पानेकी बात विवेकशील युवकके मन पर सदा एक बोझ बनी रहती है और रहनी भी चाहिए। बादकी जिन्दगीमें किसी-को यह याद करना अच्छा नही लगता कि उसे अपनी शिक्षाके लिए दूसरोंकी उदारता पर निर्भर करना पड़ा था। इसके विपरीत, ऐसा कौन है जिसका मन, यदि उसके जीवनमें कभी ऐसे सौभाग्यपूर्ण दिन आये हों जब अपने मस्तिष्क, शरीर और आत्माके शिक्षणके लिए उसने बढ़ईगिरी या ऐसे ही दूसरे काम किये हों तो, उनका स्मरण करके गर्वसे भर न जाये।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २-८-१९२८

१३१. सत्याग्रहकी मर्यादाएँ

सरदार शार्दूलसिंह एक सम्मानित कार्यकर्त्ता हैं। उन्होंने एक खुले पत्रमें मुझे लोगोंको बारडोलीसे सहानुभूति प्रकट करनेके लिए सविनय अवज्ञा करनेको आमन्त्रित करनेकी सलाह दी है। पत्र ऐसा है कि मुझे इसका उत्तर देना चाहिए — विशेषकर इसलिए भी कि इस तरह मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर सकूँगा। सरकारने बारडोली सत्याग्रहको अमन और कानून भंग करनेका आन्दोलन बताया है। यदि वास्तवमें यह आन्दोलन ऐसा होता तो उसकी सहानुभूतिमें सत्याग्रह करनेको कहनेसे ज्यादा सहज या स्वाभाविक और कुछ नही होता — ऐसा सत्याग्रह जिसपर सरदार साहबके पत्रमें बताई गई मर्यादाएँ लगानेकी भी कोई जरूरत न होती। लेकिन सरदार साहबने ठीक ही कहा है:

> **प्रमुख प्रतिष्ठित गुजराती कार्यकर्त्ताओंमें मुझे बारडोलीके किसानोंको अपनी लड़ाई आप लड़नेके लिए छोड़ देनेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। मेरे मनमें यह धारणा श्रीयुत वल्लभभाई पटेलके भाषणोंकी रिपोर्ट और आपके लेख पढ़कर बनी है। लोग सोचते हैं कि इस विषयमें अब ज्यादा संकोच और सावधानी बरतना व्यावहारिक राजनीतिसे बाहरकी बात होगी।**

सरदार शार्दूलसिंहकी यह धारणा ठीक ही है। यह आन्दोलन बारडोली तक और एक आर्थिक समस्याके समाधान तक ही सीमित रहे तथा इसका गैर-राजनीतिक

रूप कायम रहे, इस खयालसे श्रीयुत वल्लभभाई पटेल श्रीयुत राजगोपालाचारी या किसी अन्य नेताको बारडोली आने देनेके लिए तैयार नही थे। इसकी बाग ढीली तो तब की गई जब सरकारने इसे राजनीतिक रंग दे दिया और दमनात्मक कार्रवाइयों द्वारा इसे एक अखिल भारतीय प्रश्न बना दिया और फलतः वल्लभभाईके लिए लोक-सेवी जनोंको बारडोली जानेसे रोकना अशक्य हो गया, यद्यपि तब भी जब कभी उनकी अनुमति माँगी गई, उन्होंने यही कहा कि, 'नही, अभी नही।'

मै नही जानता कि सरदार साहबके सुझाव पर श्रीयुत वल्लभभाई क्या कहेंगे, लेकिन मै तो यही कह सकता हूँ कि 'नही, अभी नहीं।' अभी सहानुभूतिमे मर्यादित ढंगका सत्याग्रह करनेका भी समय नही आया है। बारडोलीको अभी यह साबित करना बाकी है कि वह खरी धातुका बना हुआ है। यदि बारडोली आखिरी आँच सह लेगा और यदि सरकार अन्तिम सीमा तक पहुँच जायेगी तो मै या श्रीयुत वल्लभभाई चाहे जो करें, सत्याग्रहका प्रसार रुक नही सकेगा और न यह प्रश्न मामलेकी फिरसे ईमानदारीके साथ जाँच होने और उसके तर्कसंगत परिणामों तक ही सीमित रह पायेगा। तब तो सत्याग्रहकी सीमा इसी बातसे निर्धारित हो सकेगी कि सम्पूर्ण भारत कहाँतक आत्मत्याग कर सकता है। और उसमे स्वेच्छासे कष्ट सहनेकी कितनी क्षमता है। यदि ऐसी परिस्थिति बनती है तो वह स्वाभाविक होगी और कोई भी व्यक्ति या संगठन वह चाहे जितना शक्तिशाली हो, उसे रोक नही सकेगा। लेकिन सत्याग्रहकी भावना और उसकी कार्यप्रणालीको जहाँतक मै समझता हूँ, श्रीयुत वल्लभभाईका तथा मेरा यह कर्त्तव्य है कि इस संघर्ष पर मूलतः जो मर्यादाएँ लगाई गई हैं, उन्हें सरकार द्वारा की जानेवाली उन भड़कानेवाली कार्रवाइयोंके बावजूद कायम रखा जाये जिनका स्वरूप आज भी ऐसा है कि यदि मूलतः निर्धारित सीमाओं-का उल्लंघन किया जाये तो वह बिलकुल उचित होगा।

तथ्य है कि सत्याग्रह यह मानकर चलता है कि ईश्वर है और सत्याग्रही उससे मार्गदर्शन पाता है। नेता अपनी शक्ति पर नही, बल्कि ईश्वरकी शक्ति पर निर्भर करता है। उसके अन्दरकी आवाज उसे जैसा आदेश देती है, वह वैसा ही करता है। इसलिए जिसे व्यावहारिक राजनीति कहते हैं, वह चीज अक्सर उसके लिए अवास्तविकता होती है, यद्यपि अन्ततः उसकी अपनी नीति सबसे अधिक व्यावहारिक राजनीति साबित होती है। ऐसे आसार नजर आ रहे है कि भारतको आजतक जितने संघर्ष करने पड़े हैं यह संघर्ष उनमें सबसे अधिक कठिन होगा। इसलिए इस समय यह-सब कहना मूर्खतापूर्ण और कल्पनालोकमें विचरण करनेवालेकी बात-जैसा प्रतीत हो सकता है। लेकिन जो बात मुझे एक बहुत गम्भीर सत्य जान पड़ती है वह यदि न कहूँ तो अपने राष्ट्रके प्रति और स्वयं अपने प्रति झूठा साबित होऊँगा। यदि बारडोलीकी जनता वैसी ही है जैसी कि वल्लभभाई मानते है तो भले ही सरकार, उसके पास जो भी हथियार हैं, सबका उपयोग कर डाले, अन्तमें सब-कुछ ठीक ही होगा। तो अभी हम देखें कि क्या होता है। हाँ, विधान परिषद्के सदस्यगण तथा किसी तरह समझौतेके द्वारा मामलेको रफा-दफा कर देनेमें रुचि रखनेवाले

अन्य लोग बारडोलीकी जनताको बचानेकी आशासे कोई कमजोरी-भरा कदम न उठायें। वह ईश्वरके सायेमें सर्वथा सुरक्षित है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-८-१९२८

१३२. टिप्पणियाँ

विदेशोंमें प्रचार

देखता हूँ, दीनबन्धु एन्ड्र्यूजको भेजे मेरे तारसे[1] लोगोंमें यह खयाल पैदा हो गया है कि मैंने अपने विचार बदल दिये हैं और अब मै विदेशमें प्रचारपर निर्भर करने लगा हूँ। मैं ऐसी किसी गलतफहमीको तुरन्त दूर कर देना चाहता हूँ। विदेशोंमें प्रचारके विषयमें आज भी मेरे विचार वही हैं जो १९२०में और उससे पहले थे। मैंने दीनबन्धुको जो तार भेजा था वह उनके तारके उत्तरमें था। वैसे वे मेरे बहुत अन्तरंग मित्र हैं, लेकिन बारडोलीके मामलेको लेकर मैंने उन्हें कभी परेशान नहीं किया है। लेकिन जब उन्होंने तार भेजकर मुझसे कहा कि मै समय-समयपर उन्हें बारडोलीके विषयमें जानकारी देता रहूँ तो मुझसे इनकार करते न बना। और यदि इसे विदेशोंमें प्रचार करना कहा जा सकता हो तो वैसा प्रचार मैं आगे भी करता रहूँगा और दूसरोंको भी इंग्लैंड तथा अन्य देशोंमें रहनेवाले अपने मित्रोंको ऐसी जानकारी देते रहनेकी सलाह दूंगा। लेकिन जब बात प्रचारार्थ लोगोंको यहाँसे बाहर भेजने या तदर्थ कोई संगठन स्थापित करनेपर आती है तो इसके खिलाफ मेरी आत्मा विद्रोह कर उठती है और मुझसे कहती है कि हम हवामें मुक्के चला रहे हैं। दूसरे देशोंकी जनता हमारी बातोंको या हमारे लेखोंको, वे चाहे जितने तर्कसंगत हों, सुनने-समझनेको आतुर नहीं है। वह हमसे कुछ कर दिखानेकी अपेक्षा रखती है और हमारे कार्योंके बारेमें जाननेकी आतुरता उसे अवश्य होगी। हमारे प्रचारका क्षेत्र यहाँ है और यही उस प्रचारकी घड़ी है। और जब हम अपने देशमें अपनी योग्य स्थिति प्राप्त कर लेंगे तो बाकी सब अपने-आप हो जायेगा।

भारतीय जहाजरानी

भारतीय जहाजरानीके विनाशकी कहानी और उसके राष्ट्रीय ग्रामोद्योग, अर्थात् सूती वस्त्र निर्माणके विनाशकी दु:खद गाथा, दोनों एक ही चीज हैं। भारतीय जहाजरानीका विनाश भारतके उक्त प्रमुख उद्योगकी भस्म-राशि पर लंकाशायरके उत्थानका एक तकाजा-सा था।

१. देखिए "तार: सी० एफ० एन्ड्र्यूजको", ३०-८-१९२८ को या उसके पूर्व।

स्मरणीय है कि १९२३ में भारतीय व्यापारिक जहाजरानी कमेटीकी नियुक्ति की गई थी, जिसका उद्देश्य अन्य बातोंके अलावा "खुले हाथों आर्थिक सहायता आदि देकर" देशी जहाजरानीको प्रोत्साहन देनेके उपाय ढूँढ़ना था। उसने अनिच्छापूर्वक और जरूरतसे ज्यादा सावधानी बरतते हुए जो सिफारिशें कीं उनमें एक यह है कि तटीय माल-वहनको भारतीय जहाजोंके लिए सुरक्षित रखा जाये। अब श्रीयुत साराभाई हाजी दो विधेयक पेश करके उस कमेटीकी सिफारिशोंको कानूनी सत्ता दिलानेकी कोशिश कर रहे हैं। एक विधेयकका उद्देश्य हानिकर एकाधिकारोंकी समाप्ति है और दूसरे-का उद्देश्य यह है कि पाँच वर्षोमें, तटीय व्यापारके सिलसिलेमें जितने भी मालकी ढुलाई होती है, सबकी ढुलाईका काम प्रमुख रूपसे भारतीय जहाज-मालिकोंको सौंप दिया जाये। दोनों विधेयक आवश्यक हैं और दोनों बिना किसी विलम्ब या कठिनाईके पास हो जाने चाहिए। मैं देशी उद्योग-व्यापारको संरक्षण देनेका प्रबल पक्षपाती हूँ। मैं मानता हूँ कि प्रत्येक देशको, और विशेषकर भारत जैसे गरीब देशको, जब उसके हितोंको खतरा हो तब इस बातका पूरा अधिकार है, बल्कि वास्तवमें उसका यह कर्त्तव्य है कि वह सुरक्षाके सभी वैध उपायोंसे उन्हें सुरक्षा प्रदान करे और उससे जो-कुछ अन्यायपूर्वक छीन लिया गया है उसे ऐसे उपायोंसे पुनः प्राप्त करे। वर्तमान प्रणालीके अधीन वैधानिक प्रयत्नों द्वारा कुछ ठोस चीज प्राप्त हो सकती है, इसमें मुझे पूरा सन्देह है। लेकिन कपड़ा मिलों-जैसे संगठित उद्योगोंके बारेमें मेरा रवैया वही है जो बराबर रहा है। वह यह है कि उन उद्योगोंको उनपर विदेशोंसे होनेवाले प्रहारोंसे बचानेके लिए या विदेशी स्पर्धासे मुक्त करानेके लिए — खास कर जब वह स्पर्धा विदेशी जहाजरानी और विदेशी वस्त्र उद्योग द्वारा की जा रही स्पर्धाकी तरह घोर रूपसे अन्यायपूर्ण हो — की गई सभी कार्रवाइयोंका मैं स्वागत और समर्थन करूँगा। इसलिए मैं कामना करता हूँ कि श्रीयुत साराभाई हाजीका यह प्रयत्न, जो आखिरकार बहुत नरम ढंगका ही प्रयत्न है, हर तरहसे सफल हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-८-१९२८

१३३. पत्र : मीराबहनको

[२ अगस्त, १९२८][1]

प्रिय मीरा,

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना और इसके लिए जो जरूरी हो, उसे लेनेसे अपनेको रोकना मत। यदि रसोईघरके शोर-गुलसे परेशानी महसूस हो तो वहाँ जानेकी जरूरत नहीं। किसी भी हालतमें अपनी क्षमतासे बाहर कुछ न करना। ऐसा

१. ऐसा जान पड़ता है कि यह पत्र २ अगस्तको गांधीजी के बारडाली पहुँचनेके तुरन्त बाद और बारडोलीके सम्बन्धमें समझौता वार्ता करनेके लिए ३ अगस्तको वल्लभभाई पटेलके पूना प्रस्थान करनेसे पूर्व लिखा गया था।

करना भी सत्यकी उपेक्षा करना है। और कहनेकी जरूरत नहीं कि मैं तुमसे दूर हूँ, इसके लिए भी तुम्हें परेशान नही होना है।

इधरसे अभी देने लायक कोई समाचार नहीं है। वल्लभभाई अच्छी तरह है। पूनासे उन्हें अभी कोई बुलावा नही आया है।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

धर्मकुमार और सत्यदेवीकी देख-भाल करना।

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३२८) तथा जी० एन० ८२१८से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१३४. पत्र : वालजी गो० देसाईको

स्वराज आश्रम, बारडोली
बृहस्पतिवार [अगस्त २][1] १९२८

भाईश्री वालजी,

उस बही-खातेवाले गोसेवककी माँगके बारेमें पारनेरकरने[2] जो लिखा था मैं समझता था कि वह मेरे कागजोंमें मिल जाएगा। किन्तु यहाँ जो कागजात रखे है उनमें वह कागज नही मिला। अब तुम उसे खोजना। कौन जाने मेरी कोठरीमें ही कहीं पड़ा हो। खोजकर मुझे लिखना।

क्या तुमने गोसेवा संघके संविधानका मसौदा तैयार कर लिया? मेरे वहाँ लौटने तक यदि तैयार कर लो तो अच्छा हो।

आशा है तुम अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखते होगे।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३९५)से।
सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१. इस तारीखको गांधीजी बारडोलीमें थे।
२. य० म० पारनेरकर।

१३५. पत्र : सन्तोक गांधीको

२ अगस्त, १९२८

चि० सन्तोक,

मैंने तुम्हें दुःख तो जरूर दिया है। किन्तु यह दुःख वैसा ही है जैसा कोई वैद्य देता है। मैं मंजुलाको दुःख पहुँचाते डरा इसलिए वह फिर बीमार पड़ गई। तुम्हें दुःख पहुँचानेमें मुझे इतना सन्तोष तो है कि मैंने उसमें तुम सबका कल्याण ही चाहा है। मैं तुमसे शत-प्रतिशत पूर्णताकी आशा करता हूँ। माँ-बेटी दोनों चंगी होकर प्रफुल्लित मन वापस लौटना। मुझे पत्र लिखती रहना। केशु और राधाकी चिन्ता तो तुम्हें करनी ही नही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८६७०) से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

१३६. पत्र : कुसुम देसाईको

बारडोली
२ अगस्त, १९२८

चि० कुसुम,

तुझे मैं क्या लिखूँ? जिस तन्मयतासे तूने इतने दिन काम किया है उसी तन्मयतासे करती रहना। अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। मुझे तेरी डायरीकी आवश्यकता होगी — जिसमें सारे दिनका वर्णन हो, ऐसी। डाह्याभाईको प्रेमसे पालना-पोसना। मुझे उसमें असत्यकी प्रवृत्ति देखकर अतिशय दुःख हुआ है। पत्र नियमित रूपसे लिखती रहना, मैं उनकी राह देखता रहूँगा। पाठशाला और भोजनालयमें अपने गुणोंकी सुवास फैलाना। डाहीबहनको तनिक भी ठेस नही पहुँचनी चाहिए।

यहाँके बारेमें इससे अधिक लिखने लायक आज कुछ भी नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १७५५)की फोटो-नकलसे।

१३७. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

२ अगस्त, १९२८

चि० गंगाबहन,

तुमसे मिलनेकी आशा थी किन्तु तुम आ नहीं सकीं। तुम अपना काम कुछ हलका करना। सोनेका अनुकूल प्रबन्ध तो कर ही लिया होगा। थोड़ा-सा समय निकालकर मुझे प्रतिदिन अपनी मनोदशाका हाल लिखती रहना। सामर्थ्यसे अधिक न तो किसीसे काम लेना और न खुद करना। तुम जो-कुछ करना चाहो उसके सम्बन्धमें चि० छगनलालसे विचार-विमर्श कर लेना।

भोजनालयमें खूब शान्ति बनाये रखना। बहनोंको आवाज किये बिना काम करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने

१३८. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

२ अगस्त, १९२८

भाई बनारसीदासजी,

आपका पत्र मीला है भाई ओझाको जो उत्तर[1] भेजा गया है योग्य है। तार भेजनेकी आवश्यकता नहिं है क्योंकि मैंने पहले एक तार भेजा हि था।

आपका,
मोहनदास

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी
विशाल भारत कार्यालय
९१, अपर सर्क्युलर रोड
कलकत्ता

जी० एन० २५६३ की फोटो-नकलसे।

१. देखिए “पत्र : यू० के० ओझाको”, १४-७-१९२८।

१३९. बातचीत: बारडोलीमें[1]

२ अगस्त, १९२८

बारडोलीके लिए रवाना होनेसे पहले गांधीजी ने कहा:

मैं बारडोली सरदारके आदेशपर जा रहा हूँ। यह तो है ही कि वल्लभभाई मुझसे अक्सर सलाह-मशविरा करते हैं, लेकिन क्या सेनाध्यक्ष अपने अधीन काम करनेवाले बिलकुल मामूली सैनिकसे भी सलाह-मशविरा नही करता? मैं बारडोली सरदारका स्थान लेने नही, बल्कि उनके अधीन काम करनेके लिए जा रहा हूँ।

बारडोली आने पर भी उनका वही रवैया रहा और कई जगहों पर उन्होंने इस बातपर जोर दिया ताकि लोक-सेवाका कार्य करनेवालोंके मन में अनुशासनकी भावना गहराई तक पैठ जाये।

किसान लोग कीचड़-पानीसे भरे रास्तोंको लाँघकर गांधीजी के दर्शन करनेके लिए विभिन्न स्थानोंसे आये। उनके एक दलने कहा कि "हम सरदारके हुक्म पर अपने प्राण देनेको तैयार हैं, हमने अपने सिर उनके सुपुर्द कर दिये हैं, लेकिन अपनी नाक नहीं।" इसपर गांधीजी ने कहा:

तब फिर निश्चित मानिए कि आपकी नाक बिलकुल सुरक्षित है, लेकिन अभी एक भारी अग्नि-परीक्षाका अवसर आनेवाला है। यदि आप उस अन्तिम आँचको सह लेंगे तो फिर समझ लीजिए कि आपकी जीत निश्चित है। लेकिन आप मुझे एक बात बताइए। मान लीजिए वल्लभभाईको गिरफ्तार कर लिया जाता है और उन्हींके साथ अन्य कार्यकर्त्ताओंको भी, तो क्या आप हिम्मत नहीं हार बैठेंगे?

इसपर उनमें से एकने दृढ़तापूर्वक कहा: "नहीं, डरनेका कोई सवाल ही नहीं उठता। वल्लभभाईने इतना-कुछ किया है कि यहाँका लोहा अब इस्पात बन चुका है और हम जानते हैं कि हमें बस इतना ही करना है कि चाहे आसमान उलट जाये, लेकिन हम अपना वचन पूरा करें।"

यह सुनकर गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए। किसी भाईने उनसे कहा कि उन्हें कुछ गाँवोंको जाकर देखना चाहिए। इसपर गांधीजी ने कहा कि "नहीं, जबतक वल्लभभाई मुझसे नहीं कहते, मैं ऐसा नहीं कर सकता।" वल्लभभाईकी इच्छासे ही गांधीजी सरभोंग और रायम नामक दो गाँवोंको देखने गये, जहाँ वे आसपासके बीसियों गाँवोंसे आये सैकड़ों किसानोंसे मिले।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-८-१९२८

१. महादेव देसाईके लिखे "बारडोली सप्ताह दर सप्ताह" (बारडोली वीक बाई वीक) से।

१४०. भूमिका : 'सेल्फ रेस्ट्रेंट वर्सेस सेल्फ इंडल्जेंस' को[1]

सत्याग्रह आश्रम, साबरमती[2]
३ अगस्त, १९२८

प्रसन्नताकी बात है कि जनता इस पुस्तककी तृतीय आवृत्तिकी माँग कर रही है। बड़ी इच्छा थी कि इसमें एक-दो अध्याय और जोड़ देता, लेकिन तृतीय आवृत्तिके प्रकाशनमें मैं विलम्ब नही कर सकता, और उसके बिना ये अध्याय जोड़े नही जा सकते। यदि मुझे भरोसा होता कि इसके लिए जितने समयकी जरूरत है उतना समय मैं निकाल सकूँगा तो ये अध्याय मैं अवश्य जोड़ देता।

लेकिन जिज्ञासु जनोंसे बराबर प्राप्त होते रहनेवाले पत्रोंमें मैंने जो-कुछ देखा है, उसको ध्यानमें रखते हुए मैं एक निश्चित चेतावनी देना चाहूँगा : जो लोग संयमित जीवनमें विश्वास रखते हैं उन्हें विषादरोगी (हाइपोकॉण्ड्रिऐक) नही बन जाना चाहिए। मेरे पास जो पत्र आते हैं उनसे ज्ञात होता है कि इन पत्र-लेखकोंमें से बहुत-से लोग संयम बरतनेके अपने प्रयत्नकी विफलता पर बहुत चिन्ता करते हैं। हर अच्छी चीजकी तरह संयमके लिए भी असीम धैर्यकी आवश्यकता होती है। निराश होनेका कोई कारण ही नही है और चिन्ता तो बिलकुल नहीं करनी चाहिए। मनसे बुरे विचारोंको हटानेका सीधा प्रयास नही करना चाहिए। ऐसा प्रयास तो अपने-आपमें एक भोग है।

शायद सबसे अच्छा नुस्खा है बुरे विचारोंका प्रतिरोध न करना, अर्थात् हमें बुरे विचारोंके अस्तित्वकी उपेक्षा करनी चाहिए और सामने जो काम पड़े हों, उनमें लगातार व्यस्त रहना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि हमारे पास हमें तन्मय कर लेनेवाला कोई ऐसा काम होना चाहिए, जिसपर मन, आत्मा और शरीर सबको केन्द्रित कर देनेकी जरूरत हो। "बेकार हाथ तो फिर भी करनेको कोई-न-कोई बुरा काम ढूँढ ही लेंगे" — यह कहावत जितनी इस मामलेमें लागू होती है उतनी और किसी मामलेमें नहीं। जब हम इस तरह व्यस्त रहेंगे तो बुरे विचारोंके लिए कोई गुंजाइश ही नही रह जायेगी और बुरे कार्योंके लिए तो और भी नहीं। अतएव व्यक्ति तथा विश्वकी प्रगतिके लिए अनिवार्य संयमके नियमका पालन करनेकी इच्छा रखनेवालों के लिए अपनी-अपनी शारीरिक शक्ति-भर कठिन श्रम करना नितान्त आवश्यक है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
सेल्फ रेस्ट्रेंट वर्सेस सेल्फ इंडल्जेंस

१. इसका मसविदा (एस० एन० १४०६३) साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध है।
२. स्थायी पता।

१४१. पत्र : डॉ० वि० च० रायको[1]

३ अगस्त, १९२८

प्रिय डॉ० विधान,

मै देखता हूँ कि अमेरिकी वाणिज्य-दूतके पत्रके बारेमें आपके प्रश्नका उत्तर देना ही मै भूल गया। निस्सन्देह यह सब किसीकी मनगढ़न्त है। मै नही जानता कि एस्टेल कूपर कौन है या नाजीमोवा कौन है?

वल्लभभाईने मुझे बारडोली बुला लिया है; मै आपको यह पत्र वहीसे लिख रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० विधान राय
३६, वेलिंग्टन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० २७८७)की फोटो-नकलसे।

१४२. पत्र : डी० एफ० मैकक्लीलैंडको[2]

स्वराज आश्रम, बारडोली
३ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र

पत्र और साथमें भेजे कागजके[3] लिए धन्यवाद। उत्तर देनेमें देर करनेके लिए क्षमा करेंगे। मैं बहुत व्यस्त था।

१. गांधीजी ने यह पत्र डॉ० रायके २६ जुलाईके उस पत्र (एस० एन० १३६५१)के उत्तरमें लिखा था, 'जिसके साथ' डॉ० रायने उन्हें अमेरिकी वाणिज्य दूत द्वारा भेजे गये एक पत्रकी नकल भेजी थी। अमेरिकी महावाणिज्य दूत द्वारा गांधीजी को भेजे गये पत्र तथा उसके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: राबर्ट फ्रेजरको", १०-८-१९२८।

२. मैकक्लीलैंडके २३ जुलाई, १९२८के पत्रके (एस० एन० १३४८५) उत्तरमें। "कमिशन ऑन इंटरनेशनल जस्टिस ऐंड गुडविल ऑफ द फेडरल काउन्सिल ऑफ चर्चेज ऑफ क्राइस्ट इन अमेरिका"के मन्त्री डॉ० गलिकने मैकक्लीलैंडसे पूरी तरह जाँच-पड़ताल करके यह बतानेको कहा था कि असली सवाल जातिगत भेदभावका है या निषेधात्मक नीतिका। मैकक्लीलैंडने अपने पत्रमें गांधीजी से इसी सवालपर अपनी राय देनेका अनुरोध किया था।

३. इसमें संयुक्त राज्य अमेरिकाके नागरिकोंसे एशियाइयोंपर लगे निषेधोंको समाप्त करनेके लिए प्रवास-कानूनोंमें संशोधन करानेकी अपील की गई थी।

डॉ० गलिकका प्रश्न बहुत सार्थक है। मेरी अपनी राय तो यह है कि लोग जो चीज चाहते हैं वह 'निर्बाध-प्रवेशका अधिकार' नहीं है। वे शिष्टतापूर्ण व्यवहार चाहते हैं — वास्तवमें शिष्टतापूर्ण व्यवहार, सिर्फ वैसा करनेकी घोषणा नहीं। और अगर सचमुच उन्हें शिष्टतापूर्ण व्यवहार ही देना है तो कोई ऐसा कानूनी तरीका निकाल लेना बहुत कठिन नहीं है जिसके तहत एक ओर तो "एशियाइयोंकी बाढ़", को — एशियाइयोंके निर्बाध-प्रवेशको भी यही संज्ञा दी गई है — रोका जा सके और दूसरी ओर किसी भारतीयको, जिसकी स्पर्धासे कभी भी डरनेका कोई कारण नहीं है, प्रवेश करनेसे रोकने या अपमानजनक तथा भेद-भावपूर्ण व्यवहारके बाद ही प्रवेश देनेकी आवश्यकता न रह जाये।

अब मुझे इस सवालका जवाब देनेकी कोई जरूरत नहीं रह गई है कि सौ या सौसे कम या ज्यादा भारतीयोंको प्रवेशका अधिकार देनेसे काम चल जायेगा या नहीं। संख्याका तो कोई महत्त्व ही नहीं है, महत्त्व है तो सिर्फ तरीकेका।

हृदयसे आपका,

श्री डी० एफ० मैकक्लीलैंड
यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन
एस्प्लेनेड, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३८९४)की माइक्रोफिल्मसे।

१४३. पत्र : शौकत अलीको

स्वराज आश्रम, बारडोली
३ अगस्त, १९२८

अभी पिछले ही दिनों दिल्ली जाने पर आप अपने दफ्तरमें जो टाइप किया हुआ लम्बा पत्र[1] छोड़ गये थे, वह मुझे मिल गया था। मैंने बड़ी सावधानीसे आपका पत्र पढ़ा और उसमें जो साफगोई है, उसके कारण मैंने उसे बहुत पसन्द किया। मोतीलालजी के बारेमें आपके विचारोंसे मैं सहमत नहीं हूँ। वे गलती कर सकते हैं, लेकिन वे ईमानदार और स्पष्टवादी हैं।

जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं केवल यही कह सकता हूँ कि मैं आज भी वही हूँ, जो १९२० और १९२१ में था। अभी तो मैं केवल यही आशा कर सकता हूँ

१. २३ जुलाई, १९२८ को लिखे अपने पत्र (एस० एन० १३४८४) के विषयमें शौकत अलीने कहा था : "मेरे दफ्तरसे आपको एक टाइप किया हुआ पत्र मिलेगा, जिसपर मेरे हस्ताक्षर नहीं होंगे। उस पत्रमें आपको अपने पिछले पत्रका उत्तर मिल जायेगा।..."

कि समय आने पर ईश्वर मुझे, मैं अकसर जो दावा करता रहा हूँ, अर्थात् यह कि मैं हरएक मुसलमानका मित्र व भाई हूँ — उसे सिद्ध करनेकी शक्ति देगा।

अंग्रेजी (एस० एन० १३८९५)की फोटो-नकलसे।

१४४. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय जयरामदास,

मैं इतना व्यस्त रहा हूँ कि तुम्हारे २ जूनके पत्रका उत्तर अबतक नहीं दे पाया। वह तो वल्लभभाईने मुझे बारडोली बुला लिया है, जिससे पहलेके बाकी पड़े पत्रोंको निबटानेका थोड़ा समय मिल गया है।

हाँ, तुम्हारे तर्कमें मुझे एक दोष दिखाई देता है। देशी मिलोंके बल पर तुम विदेशी कपड़ेके प्रयोगमें तबतक कमी नहीं ला सकते, जब तक कि ये मिलें पूरी तरहसे हमारे ही नियन्त्रणमें न आ जायें। इसका कारण कोई और नहीं तो यही समझो कि जब कभी इन मिलोंको विदेशी कपड़े अपने कपड़ोंसे सस्ते दिखाई देंगे या जब कभी उनके पास बाजारमें ले जानेके लिए अपने तैयार किये हुए कपड़ोंकी कमी होगी तब वे पहलेकी ही तरह स्वदेशी कपड़ोंके नामसे हम पर विदेशी कपड़े थोप देंगे। हमारे सामने जो सबसे साफ सीधा रास्ता है, वास्तवमें उससे और कोई छोटा रास्ता नहीं। क्या यूक्लिडने हमें यह नहीं सिखाया है कि दो बिन्दुओंको मिलानेवाली सरल रेखा उन दोनोंके बीचकी सबसे छोटी दूरी है? तुम्हें मालूम ही है कि मैंने मिल-मालिकोंसे समझौता करनेकी कितनी ज्यादा कोशिश की, मगर सब बेकार रही।

जयरामदास दौलतराम
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (एस० एन० १३९१०)की माइक्रोफिल्मसे।

१४५. पत्र : चिरंजीवलाल मिश्रको[1]

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

तुम्हारा पत्र मिला[1]।

मैं अब भी अंग्रेजी शासनके बारेमें लिखता हूँ, क्योंकि इससे हमारे जीवनका हरएक क्षेत्र प्रभावित है। अंग्रेजी शासनका निन्दक होनेके कारण मैं अंग्रेजोंके गुणोंके प्रति अपनी आँखें बन्द नही रखता। यदि भारतको कभी स्वराज्य प्राप्त करना है तो वह दूसरे देशोंकी नकल करके नहीं, बल्कि ऐसा मार्ग खोजकर ही प्राप्त कर सकता है जो उसकी जरूरतोंके लिए विशेष रूपसे उपयुक्त हो। यदि भारतमें और अधिक धार्मिकता आ जाये तो स्वराज्यकी दिशामें उसकी प्रगति और तेज हो जायेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

चिरंजीवलाल मिश्र, वकील
हाई कोर्ट, जयपुर सिटी

अंग्रेजी (एस० १३९०९)की माइक्रोफिल्मसे।

१४६. पत्र : विश्वनार्थांसहको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।

मुझे यह कहनेमें कोई हिचक न होगी कि यदि आप पुर्नविवाह करना चाहते हों तो आपको बाल-विधवासे विवाह करना चाहिए, भले ही वह कुछ दिन अपने

१. यह चिरंजीवलाल मिश्रके २६ जून, १९२८ के पत्र (एस० एन० १३८५०) के उत्तरमें लिखा गया था। चिरंजीवलाल मिश्रने अपने पत्रमें गांधीजी द्वारा अंग्रेजी शासनकी निन्दा करनेकी आलोचना की थी और कहा था कि कोई व्यक्ति जितना अधिक धार्मिक होता है, स्वतन्त्रता संग्रामके सैनिकके रूपमें वह उतना ही अधिक अयोग्य हो जाता है।

पतिके साथ भी रह चुकी हो। मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि जिस विधवाके बच्चे हों, उसके लिए पुनर्विवाह करना ठीक नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विश्वनाथसिंह,
१२, होरी सरकार लेन
बड़ा बाजार, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०८)की माइक्रोफिल्मसे।

१४७. पत्र : अब्दुल कयूमको[1]

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।

मैं पंजाबमें किसी प्राकृतिक चिकित्सा-विशेषज्ञको नहीं जानता। लेकिन आपको किसीकी जरूरत भी नहीं है। आपको तो बस प्रातःकाल, जब सूर्यकी किरणें खुले बदनपर सहन की जा सकती हैं, सूर्य-स्नान तथा सादे, अनुत्तेजक भोजनकी ही जरूरत है। यदि इस इलाजसे आपको फायदा नही होता तो फिर और किसीसे फायदा होनेकी सम्भावना नहीं।

हृदयसे आपका,

शेख अब्दुल कयूम
बटाला

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०६)की माइक्रोफिल्मसे।

१. अब्दुल कयूमके ४ जुलाई, १९२८ के पत्र (एस० एन० १३८७३) के उत्तरमें लिखा गया था। अब्दुल कयूमने गांधीजी से यक्ष्मा-ग्रन्थिके इलाजके लिए कोई प्राकृतिक चिकित्सा-विशेषज्ञ सुझानेका अनुरोध किया था।

१४८. पत्र : भूपेन्द्रनाथ घोषको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके उस पत्रके लिए धन्यवाद, जिसके साथ 'यंग इंडिया' में प्रकाशित आश्रम नियमावलीमें सुधार करनेके सुझाव संलग्न हैं। जब नियमोंमें सुधार किया जायेगा, तो इन पर सावधानीसे विचार किया जायगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०७) की माइक्रोफिल्मसे।

१४९. पत्र : जी० रामचन्द्रन्‌को[1]

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय रामचन्द्रन्,

पिछले महीनेकी ८ तारीखका तुम्हारा पत्र मिल गया था। तुम्हें मुझे नियमपूर्वक हर पखवाड़े एक पत्र अवश्य भेजना चाहिए। बहुत दिनोंसे बहुत सारे पत्र उत्तर देनेको पड़े हुए थे और अब उनका उत्तर इसीलिए दे पा रहा हूँ कि वल्लभभाईने मुझे बारडोली बुला लिया है, जिससे कुछ समय मिल गया है।

देवदास दिल्लीमें है। सुरेन्द्र अब एक कुशल चर्मशोधक बननेकी कोशिश कर रहा है। सामूहिक रसोईमें अब १५० आदमी खाते हैं। दूसरे लोगोंके अलावा बा, महादेव और प्यारेलाल बारडोलीमें हैं।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०५) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह पत्र भूपेन्द्रनाथ घोषके ९ जुलाई, १९२८ के पत्र (एस० एन० १३८७९) के उत्तरमें भेजा गया था। उस पत्रमें यह सुझाव दिया गया था कि सत्याग्रह आश्रमको मित्रोंके दानपर नहीं चलना चाहिए, बल्कि उसे आत्मनिर्भर होना चाहिए।

१५०. पत्र : चौधरी मुखतारसिंहको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1]

यद्यपि आपके पत्रके अन्दर एक सचाई छिपी हुई है, फिर भी मुझे लगता है कि आपका विचार बहुत उलझा हुआ है। जबतक किसी देशकी जनता किसी उपयोगी धन्धेको अपनाकर मेहनती और स्वावलम्बी नही बन जाती तबतक वह विदेशी शासनके जुएको अपने कन्धोंसे नहीं उतार सकती। खुशहाली, मेहनत करके अपना भरण-पोषण करनेकी क्षमतासे बिलकुल अलग चीज है।

हृदयसे आपका,

चौधरी मुखतारसिंह[2]

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०४)की माइक्रोफिल्मसे।

१५१. पत्र : डी० सी० राजगोपालाचारीको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।

यदि आपमें मनोबल है तो अपने मालिककी नाराजगीका खतरा उठाकर भी आप खादी पहनते रहेंगे। हमारा कर्त्तव्य इस ढँगसे काम करना है जिससे दूसरोंका नुकसान न हो। कर्त्तव्य एक ऋण है और ऋण चुकानेमें सिवाय आत्मतुष्टिके किसी प्रकारका पुरस्कार नहीं मिलता।

हम प्रार्थना इसलिए करते है कि हम अपने भीतर शक्तिका अनुभव करें और हमारा अन्तर शुद्ध हो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० सी० राजगोपालाचारी[3]
१७८३ कोरल मर्मर स्ट्रीट, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. चौधरी मुखतारसिंहने १० जुलाई, १९२८के अपने इस पत्र (एस० एन० १३८८०) में लिखा था कि "जिस देशपर विदेशियोंका शासन हो और उन विदेशियोंका उद्देश्य केवल सत्ता नहीं, बल्कि शासित देशका आर्थिक शोषण हो, उस देशमें आर्थिक पुनरुद्धारके लिए काम करना क्या समयकी बरबादी नहीं है?"

२. मेरठके एक वकील; विधानसभाके सदस्य।

३. एक अंग्रेजी पेढ़ीके कर्मचारी।

१५२. पत्र : गिरवरधरको[1]

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपकी पुस्तिकाके[2] लिए धन्यवाद। पता नहीं, इसे पढ़नेका समय कभी मिल पायेगा या नही।

१. इधर बिहारकी तरह महिलाओंके लिए खास आँगन नही होते।

२. यद्यपि महिलाओंके लिए कोई खास आंगन या कमरा नहीं होता तो भी पुरुष आसानीसे महिलाओंके पास नहीं पहुँच सकते।

३. सार्वजनिक सभाओंमें महिलाओंके बैठनेके लिए आम तौरपर अलग व्यवस्था कर दी जाती है।

४. हाँ, बहुत-सी शिक्षित महिलाएँ शारीरिक श्रम नापसन्द करती है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०२)की माइक्रोफिल्मसे।

१५३. पत्र : विशनाथ तिक्कूको

स्वराज्य आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।

यह कहना गलत है कि हम सभी लोगोंकी जरूरतके लायक हाथ-कते सूतका कपड़ा तैयार नहीं कर सकते। जिस क्षण लोगोंमें इच्छा उत्पन्न हो जायेगी, उसी

१. समस्तीपुर (बिहार) के एक वकील, जिन्होंने अपने ३० जून, १९२८ के पत्र (एस० एन० १८८७२) में गांधीजीसे निम्नलिखित प्रश्न पूछे थे: "१. क्या वहाँ हमारे प्रान्तकी तरह हरएक हिन्दू परिवारमें महिलाओंके लिए कुछ कमरोंके साथ एक आंगन अलगसे सुरक्षित होता है? २. क्या वहाँ परिवारके पुरुषोंका कोई मित्र जनाने हलकेमें बेरोक-टोक प्रवेश कर सकता है? ३. क्या सार्वजनिक सभाओंमें सभी महिलाएँ साथ साथ बैठती हैं या पुरुषोंके साथ मिल-जुलकर बैठती हैं? ४. क्या वहाँ शिक्षित महिलाएँ घरमें शारीरिक श्रम करना — जैसे कि खाना पकाना आदि — नापसन्द करती हैं या वे पढ़-लिख लेनेके बाद भी अपना काम खुद करती हैं? क्या महिलाएँ मकानके बाहरी हिस्से में अपने परिवारके पुरुष-सदस्योंके साथ उनके इष्ट मित्रों और ग्राहक-मुवक्किलोंकी मौजूदगीमें उठती-बैठती हैं, या आवश्यकता पड़नेपर खास मौकोंपर ही बाहर आती हैं?" ऐसा मालूम होता है कि गांधीजी ने पांचवें प्रश्नका उत्तर नहीं दिया।

२. **यंग इंडिया** हिन्दी, और **नवजीवन**में समीक्षार्थ भेजी गई पुस्तिका **ग्राम-सुधार**।

क्षण वे अपनी जरूरतका सारा कपड़ा तैयार कर सकते हैं और सो भी बाजारमें उसके लिए उन्हें जितनी कीमत देनी पड़ेगी, उससे कम खर्चमें ही।

हृदयसे आपका,

विशनाथ तिक्कू
शाला कदल, श्रीनगर, कश्मीर

अंग्रेजी (एस० एन० १३८९८) की माइक्रोफिल्मसे।

१५४. पत्र : प्यारेलाल चोपड़ाको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।

आपको दूध नहीं छोड़ना चाहिए। अगर थोड़ी मात्रामें लें तो बिना रँधा साग ले सकते हैं। आरम्भमें प्रतिदिन १ औंससे अधिक नहीं होना चाहिए। गेहूँ छोड़नेकी आवश्यकता नही है। मुलायम करनेके लिए पूरी रात पानीमें भिगोकर बिना पकाया गेहूँ ले सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्यारेलाल चोपड़ा
हेड क्लर्क, इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया
दरभंगा

अंग्रेजी (एस० एन० १३९०१)की माइक्रोफिल्मसे।

१५५. पत्र : मथुराप्रसादको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

मुझे खेद है कि आपके पत्रका उत्तर पहले नहीं दे सका।

आपने जिस विषयका उल्लेख किया है, उसके बारेमें मैं आपका मार्गप्रदर्शन करनेमें असमर्थ हूँ। हो सकता है, यदि आप कोशिश करें तो सरकारसे कुछ मदद मिल जाये।

मथुराप्रसाद
घमुआ (बिहार)

अंग्रेजी (एस० एन० १३९००) की माइक्रोफिल्मसे।

१५६. एक पत्र

स्वराज्य आश्रम, बारडोली
४ अगस्त १९२८

प्रिय मित्र,

उड़ीसासे आये पत्रोंके उत्तर मैं सिर्फ इसलिए नहीं दे सका हूँ कि इधर कामका बहुत ज्यादा दबाव रहा है। मेरी सारी योजनाएँ अस्तव्यस्त हो गई, इसलिए आखिरी क्षणोंमें छगनलाल गांधीको आपके पास भेजनेका फैसला स्थगित करना पड़ा। आप उसे मेरे मनोनीत सदस्यके रूपमें अपने बोर्डमें रख सकते है और सारा पत्र-व्यवहार उसीके साथ कर सकते हैं। कह नहीं सकता कि उसे आपके पास कब भेज पाऊँगा। मुझे बारडोली बुला लिया गया है, इसलिए यह अनिश्चितता और बढ़ गयी है। सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि जब उसे भेजनेकी स्थितिमें होऊँगा तब भेजनेमें एक क्षणकी भी देर न करूँगा।

मेरी सलाह यह है कि आप छगनलाल गांधीकी मार्फत मुझसे सलाह किये बिना खादीके सम्बन्धमें कुछ न करें और अगर सरकार मुझे गिरफ्तार कर लेती है तो आप सीधे उसीसे सलाह लें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३९११)की माइक्रोफिल्मसे।

१५७. पत्र : टी० के० माधवन्‌को

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय माधवन्,

आपका गत ३० मईका पत्र इतने महीनोंसे बिना उत्तर दिये मेरे पास पड़ा रहा, लेकिन मैं लाचार रहा। अब उसका उत्तर इसीलिए दे पा रहा हूँ कि मुझे बारडोली बुलाया गया है, जिससे अनुत्तरित पड़े इन पत्रोंको निबटानेका थोड़ा समय मिल गया है।

मुझे बताइएगा कि आपने कितनी प्रगति की है। अभीतक मैं फैसलेको नहीं पढ़ पाया हूँ। आप खुद ही राजगोपालाचारीसे क्यों नहीं मिल लेते? वे जैसे भी आपकी सहायता कर सकते हैं, करेंगे। लेकिन मैंने सुना है, आजकल उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्री टी० के० माधवन्
संगठन मन्त्री
श्री ना० ध० पा० योगम्[1]

अंग्रेजी (एस० एन० १४०५४)की फोटो-नकलसे।

१५८. पत्र : अब्बास तैयबजीको

४ अगस्त, १९२८

प्रिय भुर्रर्[2],

यहाँ मेरे पसन्द या नापसन्द करनेकी कोई बात नहीं है। जब सब लोग जेलमें होंगे तो सारी चीजें अपनी ही गतिसे चलेंगी। मगर ज्यादा मिलने पर। रेहानाको बता दीजिए कि मैंने 'गोपीकी डायरी'को पढ़ना शुरू कर दिया था, मगर बारडोली आनेकी वजहसे उसे जारी न रख सका।

आपका,
भुर्रर्

अंग्रेजी (एस० एन० ९५६४) की फोटो-नकलसे।

१. श्री नारायण गुरु धर्म परिपालन योगम्।
२. गांधीजी और तैयबजी एक-दूसरेका इसी प्रकार अभिवादन किया करते थे।

१५९. एक पत्र

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

खेद है कि मैं अबतक आपके पत्रका उत्तर नहीं दे पाया।

मनुष्य-जातिके अधिकांशके जीवनसे हमें इस बातकी पर्याप्त साक्षी मिलती है कि उनके पूर्वज इस कारण कि वे हिन्दुओंकी तरह उनके लिए श्राद्ध आदि कर्म नहीं करते, उनके प्रति, कमसे-कम हमारी जानकारीमें, कोई असन्तोष प्रकट नहीं करते। 'रामायण' और 'महाभारत' में श्राद्ध आदिके उल्लेखोंसे यह साबित नहीं होता कि एक समयमें हम ये सभी कियाएँ किया करते थे। मुझे तो यह लगता है कि अपने पूर्वजोंके प्रति सच्ची श्रद्धा प्रकट करने और उनका स्मरण करनेका तरीका उनके गुणोंका अनुकरण करना होना चाहिए। खुद मैं अपने पिताके लिए ऐसा कोई श्राद्ध-कर्म नहीं करता और न उनकी वर्षी ही मनाता हूँ, क्योंकि मैं हर रोज अपने माता-पिताका स्मरण करने और अपने जीवनमें उनके गुणोंको उतारनेका प्रयत्न करता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३८९६) की फोटो-नकलसे।

१६०. पत्र : वसुमती पण्डितको

स्वराज आश्रम, बारडोली
शनिवार [४ अगस्त, १९२८][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्रसे चिन्तित हुआ हूँ। ऐसा लगता है कि तुम बहुत सख्त बीमार हो। मुझे डॉक्टरसे लिखवाना कि बीमारीके बारेमें उनका क्या ख्याल है और क्या दवा दे रहे हैं। यहाँसे किसीको भेजनेकी जरूरत है क्या?

मैं आजकल बारडोलीमें हूँ। मुझे बारडोलीके पते पर उत्तर देना।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन
कन्या गुरुकुल

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४८९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. डाकखानेकी मुहरसे।

१६१. पत्र : कुसुम देसाईको

स्वराज आश्रम, बारडोली
४ अगस्त, १९२८

चि० कुसुम,

तुम्हारा पत्र मिल गया। मुझे दैनन्दिनी तो अवश्य चाहिए। तुम रोज लिखोगी तो आदत पड़ जायेगी। तुम्हें लिखना तो आता ही है। उस दिन किये हुए काम, मनमें उठनेवाले विचार और उस दिन हुए अपने अनुभव लिखनेमें कुछ बहुत योग्यता की आवश्यकता नही है।

बारडोलीके जो समाचार दे सकता हूँ वे मैंने छगनलाल (जोशी)के पत्रमें दिये हैं। यह कहा जा सकता है कि फिलहाल मैं आराम ही ले रहा हूँ।

राजकिशोरीका[1] क्या हाल है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १७५६)की फोटो-नकलसे।

१६२. भाषण : सरभोंणमें

४ अगस्त, १९२८

कुछ प्रमुख स्थानीय कार्यकर्त्ताओंके साथ गांधीजी कल मोटरगाड़ीसे सरभोंण पहुँचे। वहाँ स्वराज आश्रममें उनसे मिलनेके लिए सरभोंणके स्वयंसेवकों तथा अपने-अपने पदोंसे इस्तीफे दे देनेवाले पटेलों और तलाटियोंके अतिरिक्त सरभोंण इलाकेके २५ गाँवोंके प्रतिनिधि भी आये थे। वहाँ आनेका उद्देश्य बताते हुए गांधीजी ने कहा कि मै यहाँ सिर्फ आपको बधाई देने और आपकी सफलताओंके बारेमें कुछ और जाननेके लिए आया हूँ। तलाटियोंसे गांधीजी ने कहा :

मैं मानता हूँ कि इस संघर्षमें तलाटियोंने शेष सभी लोगोंसे अधिक साहस और बहादुरीका परिचय दिया है। क्या मैं यह आशा करूँ कि शान्ति स्थापित हो जाने पर भी आप वैसी ही शोभनीय भावना बनाये रखेंगे जैसी भावनाका परिचय आपने इस संघर्षके दौरान दिया है? यह इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने देखा है, तलाटी लोग अक्सर गरीब ग्रामवासियोंको आतंकित और परेशान करते रहते हैं। अब यह तो आप ही पर निर्भर करता है कि आप उन्हें आश्वस्त कर दें ताकि वे आपसे डरनेके बजाय आपको अपना मित्र मानने लगें। बाकी बात यह है कि लोगोंने एकता और संगठन तथा सहयोगके मर्मको समझ लिया है ओर इस चीजको एक बार समझ लेनेके बाद तो विजय पाना बहुत आसान हो जाता है।

१. बिहारकी एक बहन जो डॉ० राजेन्द्रप्रसादकी मार्फत आश्रममें शिक्षा लेने आई थी।

इसके बाद उन्होंने सरभोंण इलाकेके २५ गाँवोंके प्रतिनिधियोंसे बातचीत की। इन प्रतिनिधियोंकी संख्या लगभग साठ थी। उन्होंने बातचीतके दौरान कहा:

यद्यपि आपके नेता किसी सम्मानजनक समझौतेके मार्गमें कभी भी बाधक नहीं होंगे, लेकिन किसी अपमानजनक समझौतेको वे कभी स्वीकार न करेंगे। हम सब शान्तिके लिए बड़े उत्सुक हैं, लेकिन हम सम्मानके साथ शान्ति चाहते हैं—ऐसी शान्ति जो सत्याग्रहियों और वे जिस उद्देश्यको लेकर चल रहे हैं उसके योग्य हो। अभी पिछले ही दिनों बाजीपुराके कुछ प्रतिनिधियोंने वल्लभभाईसे कहा कि उन्होंने अपना सब-कुछ उनको समर्पित कर दिया है, लेकिन अपना सम्मान नहीं।[1] तो आपको मेरी यही सलाह है कि आप लोग अपना सम्मान किसीके हाथमें न सौंपें। और जहाँतक वल्लभभाईकी बात है, वे तो आपसे कभी भी वैसा करनेको कह ही नहीं सकते। क्योंकि उन्हें खुद अपना सम्मान बहुत प्यारा है और जितना प्यारा उन्हें अपना सम्मान है उतना ही दूसरोंका भी। यदि कोई अपना सम्मान छोड़नेको तैयार न हो तो दूसरा कोई भी आदमी उससे उसका सम्मान नहीं छीन सकता। ऐसा समय आ सकता है जब डॉ० सुमन्त,[2] अब्बास तैयबजी और दूसरे सभी स्थानीय कार्यकर्त्ता और स्वयंसेवक आपसे छीन लिये जायें और जेलोंमें बन्द कर दिये जायें। तब आपकी असली परीक्षाका समय आयेगा। जब वह घड़ी आये तो आप सभी अपने सम्मानकी रक्षा अन्तिम साँस तक करें, क्योंकि स्वराज्यका मर्म यही है। गोरी नौकरशाहीके स्थान पर रंगदार नौकरशाहीको प्रतिष्ठित कर देनेसे स्वराज्य नहीं आ जायेगा। वह तो तभी आयेगा जब हम अपने सम्मानकी रक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त कर लेंगे। और यदि आप सत्य और अहिंसाको अपनी ढाल बना लें तो मैं सच कहता हूँ कि इस संघर्षका परिणाम चाहे जो हो, आप अपने सम्मानको पूरी तरह बचा ले जायेंगे। सरकार चाहे गोलियोंसे आपको छलनी कर दे या आपको अपने घरोंसे निकाल बाहर करे, आपको दोनोंको बरदाश्त करनेको तैयार रहना चाहिए। हाँ, उस बातको याद रखिए जो वल्लभभाईने आपसे कही थी—सिपाही गोलियोंको अपनी पीठ पर नहीं, अपनी छाती पर झेलता है।

और जहाँतक आपके अपने घरबारसे वंचित कर दिये जानेकी बात है, जबतक मेहनत करनेके लिए आपके हाथ-पैर सही-सलामत हैं तबतक आपको चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है? आखिरकार आपको सरकार तो हर रोज रोटी नहीं देती। वह तो वही देता है जो सबके ऊपर बैठा सब-कुछ देख रहा है। आप पहले ही बहुत-कुछ पा चुके हैं और यदि आपने दृढ़तापूर्वक आखिरी आँचको सह लिया तो दुनिया-भरमें आपके पराक्रमका डंका बजने लगेगा। लेकिन, यदि आप उस निर्णयात्मक परीक्षामें विफल रहे तो आपका पतन भी वैसा ही जबरदस्त होगा जैसी भारी विजय आपको अभी मिली है। इसी तरह १९२२में आप सफलताके द्वार तक पहुँच गये थे, लेकिन आप अपनी टेक पर कायम नहीं रह सके और नतीजा यह हुआ कि आप फिर उसी

१. देखिए "बातचीत: बारडोलीमें", २-८-१९२८।

२. सुमन्त मेहता।

दलदलमें जा गिरे और जबतक वल्लभभाईने अपनी तपश्चर्या और बलिदानके बल पर आपको पुनः उस पुरानी ऊँचाई तक नहीं उठाया तबतक उसी अवस्थामें पड़े रहे। उन्होंने तो अपना काम कर दिया है, अब आपको अपना काम कर दिखाना शेष है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ७-८-१९२८

१६३. पत्र : मणिबहन पटेलको

स्वराज आश्रम, बारडोली
शनिवार, ४ अगस्त, १९२८

चि० मणि,

स्वामी[1] तो यहाँ नहीं हैं। परन्तु तुम्हारा उनके नाम लिखा हुआ पत्र मैंने पढ़ा। आनेका हठ करनेकी जरूरत नहीं। सिपाहीका धर्म अपना शरीर ठीक रखना और सरदार कहे सो सानन्द स्वीकार करना है। तबीयत तो जल्दी ही अच्छी हो जायेगी, यदि अच्छी बनानेमें मन लगाया जाये।

बापू[2] और महादेव तथा स्वामी पूनामें हैं। आज वहाँसे चले होंगे। पूनासे तार आना तो चाहिए था, पर नहीं आया। समझौता होगा या नहीं, यह अभी नहीं कहा जा सकता। मुझे लगता है कि अब सरकारमें लड़नेकी शक्ति नही है। लोकमत उसके बहुत विरुद्ध है और उससे बहुत भूलें हुई हैं। आज सरभोंण हो आया। आजकल बरसात नहीं है। आज बहुत से लोग तो सूरत जा रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१६४. मगनकाका

इस शीर्षकसे प्रभुदास गांधीने स्वर्गीय मगनलाल गांधीके जीवनकी सुन्दर, विस्तीर्ण किन्तु छोटी-सी जीवनी[3] लिखी है। उसमें सत्य है, भाषा पर काबू है और सत्य तथा सरल भाषाका मेल है, अतः मेरा मन्तव्य है कि उस वृतान्तके कलाकी दृष्टिसे भी शोभनीय माने जानेकी सम्भावना है। मगनलाल गांधीके जीवनसे सभी लोगोंको बहुत-कुछ सीखनेको मिलता है और उनका जीवन 'जैसी कथनी वैसी करनी' का नमूना था। इसीसे यह वृतान्त गुजराती भाषा जाननेवालों को अवश्य लाभप्रद होगा, यह समझकर उसे यहाँ स्थान दिया गया है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ५-८-१९२८

१. आनन्दानन्द।
२. मणिबहन पटेलके पिता, वल्लभभाई।
३. यहां नहीं दी जा रही है।

१६५. अभाव रुईका है या उद्यमका ?

बिहारके जिला मानभूमके कसुंडा ग्रामके बाल सम्मेलनके मन्त्री लिखते हैं :[1]

इस पत्रको लिखनेवाले भाई गुजराती हैं। ये बिहारके बालकोंके जीवनमें और खादीमें जो दिलचस्पी लेते हैं, मैं उसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ। किन्तु इस कथनसे मुझे दु:ख हुआ है कि पूनी या रुईके अभावमें उन्हें चरखे बन्द करने पड़े हैं। जिस व्यक्तिमें चरखे जुटा लेनेकी शक्ति है, वह रुई तो चाहे जहाँसे मँगा ले सकता है; और पूनियाँ तो बाहरसे मँगानेकी चीज ही नहीं है। मैंने 'नवजीवन' में कई बार लिखा है कि जिसे रुई धुननी और पूनी बनानी नहीं आती उसे कातनेवाला कहना ही नहीं चाहिए। रोटी बनानेवाले को आटा गूँधकर रोटी बेलनी और सेकनी आये, तभी कहा जा सकता है कि उसे रोटी बनानी आती है। इसी तरह जो रुई धुनकर और पूनी बनाकर कातना जानता है, वही कातना जाननेवाला कहा जायेगा। सच पूछो तो ये तीनों बातें मिलकर एक ही क्रिया है। पूनीको अगर हम मोटेसे-मोटे सूतकी संज्ञा दें तो भी शायद गलत नहीं होगा। धुननेकी क्रिया सहज और सुन्दर है। इसे सीखनेमें देर नहीं लगती। इसलिए इस पत्रके लेखकसे मेरा यह कहना है कि बिहार प्रान्तमें पूनियाँ कसुंडा गाँवमें ही मिलनी चाहिए और चरखोंको जो बन्द करना पड़ा है, उद्यमके इस अभावमें मैं तो चरखेके प्रति सच्चे प्रेमका अभाव भी देख रहा हूँ। मैं आशा रखता हूँ कि जहाँ-जहाँ यज्ञार्थ चरखे चलते हैं, वहाँ-वहाँ कातनेवाले शीघ्रतासे धुनना और पूनी बनाना सीख लेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-८-१९२८

१६६. समझौता अथवा लड़ाई ?

चारों ओर समझौतेकी बातें हो रही हैं और नेपथ्यमें सुनाई देती है लड़ाईकी गूँज। कभी सुनते हैं, 'सरकार तो दृढ़ है। जो बातें सूरतमें हुई वह उनमें से एक भी बदलनेके लिए तैयार नहीं है।' कभी यह सुननेमें आता है, 'सरकार समझौतेके लिए इच्छुक है। वह जितना झुक सकती है उतना झुकना चाहती है और यदि उसकी कोई बात ही नहीं सुनी गई तो वह लाचार होकर लड़ेगी।'

इन दोनोंमें से कौन-सी बात सच है यह तो ईश्वर ही जाने। सत्याग्रहियोंको इन दोनों बातोंके विषयमें उदासीन रहना चाहिए और फिर भी दोनोंके लिए तैयार

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने कहा था कि पूनियोंके अभावमें हमारे यहाँ कताईका काम बन्द है।

रहना चाहिए। वे समझौतेका एक भी अवसर हाथसे न जाने दें और सदा लड़ाईके लिए तैयार रहें। उनके लिए कोई टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता तो हो ही नही सकता। उनके सामने अभिमन्युकी तरह किसी चक्रव्यूहका प्रश्न ही नहीं हो सकता। उनके सामने तो एक ही स्वर्णिम और सरल ऐसा रास्ता है जिसे कोई बच्चा भी देख सकता है। उसमें न तो छिपानेकी कोई बात हो सकती है और न भेदनीति ही चल सकती है। फिर उन लोगोंको विचार किस बातका करना है? इन्हें सोमवारको समझौतेका समाचार मिले तो भी ठीक है और वल्लभभाईकी गिरफ्तारीकी खबर मिले तो भी ठीक है।

यदि सत्याग्रही श्री वल्लभभाईके नेतृत्वमें अपना पूरा पाठ पढ़ चुके होंगे, तो वे वल्लभभाई अथवा किसी दूसरे नेताकी गिरफ्तारीसे बिलकुल नही घबरायेंगे। वे जो होना होगा उसकी चिन्ता नहीं करेंगे और अपनी टेक पर कायम रहेंगे।

जो लोग समझौतेकी कोशिश कर रहे हैं, उनको इसका अधिकार है। व्यर्थ लड़ाईको रोकनेमें भाग लेना प्रत्येक नागरिकका धर्म है; किन्तु यदि वे सत्याग्रहियोंपर झूठी दया करके समझौतेके झगड़ेमें पड़ेंगे तो वे देशको हानि पहुँचाएँगे और सत्याग्रहियोंके सम्बन्धमें अपना अज्ञान सिद्ध करेंगे। सत्याग्रही दयाके पात्र नही हैं; वे दयाके भूखे भी नहीं हैं; वे तो न्यायके भूखे हैं, इसलिए जो लोग उनको निर्बल समझकर उनके लिए दयाकी याचना करने जायेंगे, उनका प्रयत्न सम्भवतः निष्फल होगा। यदि सत्याग्रहियोंकी माँग न्यायसंगत हो तो उनके लिए दृढ़तापूर्वक न्यायकी माँग करना समझौता करवानेवालों का धर्म है। इसलिए उनको जरूरत है सत्याग्रहियोंकी माँग और उनकी लड़ाईको समझनेकी। सत्याग्रही दुःख उठानेको आनन्द मानकर लड़ाईमें कूदते हैं। इसलिए उनके दुःखसे दुःखी होकर उस कारणसे समझौतेका प्रयत्न करनेका अधिकार किसीको नही है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकार बीचमें आनेवाले लोग लड़ाईको जल्दी खत्म करानेके बजाय लम्बा ही करेंगे।

सत्याग्रही सदा लोकमतको प्रशिक्षित करना चाहते हैं; इसीलिए वे अपनी ठीक स्थिति पूरी तरहसे लोगोंको बताना चाहते हैं। तिस पर भी यदि कोई अज्ञानमें रहकर कल्पित तथ्योंके आधारपर समझौतेका वितान तानता है तो उसका बनाया वह वितान किसी कागजके ताबूतकी तरह सत्यरूपी दियासलाईकी एक सींकसे जल जायेगा। समझौतेके इच्छुक सब लोगोंको यह भरोसा रखना चाहिए कि जो लोग खुद कष्ट ओढ़नेके लिए तैयार हुए होंगे वे कभी अति करनेका दोष नहीं करेंगे। अन्य सब मार्ग बन्द हो जाने पर ही वे सत्याग्रहका मार्ग ग्रहण करते है। बारडोली, वालोडके सत्याग्रही ऐसे ही सत्याग्रही हैं। उन्होंने सत्याग्रहका मार्ग तभी ग्रहण किया है जब उनके अन्य उपाय प्रायः विफल हो चुके थे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-८-१९२८

१६७. पत्र : मीराबहनको

स्वराज आश्रम, बारडोली
[५ अगस्त, १९२८][1]

प्रिय मीरा,

तुम्हारे पत्र मिले। रसोई घरके शोर-गुलको बन्द करनेके लिए मैं तुम्हारे नामका खूब इस्तेमाल कर रहा हूँ। यदि इससे तुम कुछ समयके लिए कुछ-एक बहनोंकी थोड़ी-बहुत नाराजगीकी भागी बनती हो तो उसमें कोई हर्ज नहीं है। इस सवालपर तुम्हें उनसे खुलकर बातें करनी चाहिए।

छोटेलालजीका कहना है कि मासिक धर्म सम्बन्धी नियमोंसे तुम्हें बहुत ज्यादा चिढ़ है। वे कहते हैं कि उन नियमोंके बारेमें तुम कुछ जानती ही नहीं। क्या बात ऐसी ही है? मेरा तो खयाल था कि इस विषय पर हम लोग चर्चा कर चुके हैं[2] और तुमने यह मान भी लिया था कि इस सम्बन्धमें जिन लोगोंके कुछ खास आग्रह हैं उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिए यह जरूरी है। तुम इस विषय पर छोटेलालजी से बात करके मुझे बताओ कि तुमने क्या-कुछ समझा है।

यह निश्चित-सा ही है कि 'कल या मंगलवारको' समझौतेकी घोषणा हो जायेगी। लेकिन, इससे जो नई परिस्थितियाँ बनेंगी, उनके स्थिर हो जाने तक मुझे कुछ और दिन यहाँ रुकना पड़ेगा।

सस्नेह

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३०४) तथा जी० एन० ८१९४ से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१. बारडोली-समस्याके सम्बन्धमें समझौतेकी घोषणाके उल्लेखसे।
२. देखिए खण्ड ३४, पृष्ठ ३७२-७४ और ४३४-३६

१६८. पत्र : वसुमती पण्डितको

बारडोली
रविवार, ५ अगस्त, १९२८

चि० वसुमती,

आज तुम्हारी कोई खबर ही नहीं मिली। मै कल तार देकर तुम्हारे हालचाल पूछनेवाला हूँ। यदि किसीकी मददकी जरूरत हो तो मुझे लिखनेमें जरा भी संकोच न करना। तुम्हारी तबीयत बिगड़नी नहीं चाहिए। एक महीने खाटमें पड़े रहनेकी बात मेरी समझमें नही आती। चनेके पानीकी बात भी मेरी समझमें नही आती।

बहुत करके बारडोली-समस्याका समाधान हो जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९०)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१६९. पत्र : कुसुम देसाईको

बारडोली
रविवार, ५ अगस्त, १९२८

चि० कुसुम,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे सिरमें दर्द हुआ। यह अजीब बात है। जरा ध्यान रखना।

. . . भाई[1] अपनी गलती स्वीकार क्यों नही करता, इस बारेमें सोचना और यदि कुछ कहना चाहो तो लिखना। ऐसा तो नहीं है कि कही तुम्हारे सुननेमें कुछ भूल हुई हो? मैंने तो . . . भाईको[2] मुक्त कर देनेको ही पुनः लिखा है। लिखना बाल-मन्दिरकी कैसी और क्या व्यवस्था हुई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १७५७) की फोटो-नकलसे।

१ व २. साधन-सूत्रमें से नाम निकाल दिये गये है।

१७०. भाषण : अनुशासनके सम्बन्धमें, रायममें[1]

५ अगस्त, १९२८

सरदारका आदेश स्पष्ट है, इसलिए मैं यहाँकी परिस्थितिके विषयमें कुछ बोल नही सकता। यदि वे यहाँ होते और उन्होंने मुझसे बोलनेको कहा होता तो मैं जरूर बोलता। लेकिन आज तो मैं आपकी बहादुरी और एकता पर आपको बधाई देनेके अलावा और कुछ नहीं कह सकता। कताईका प्रदर्शन देखकर मुझे बहुत खुशी हुई, लेकिन मैं चरखेके विषयमें भी नही बोल सकता। हमारा यह सिद्धान्त होना चाहिए कि जिसे हमने अपना सरदार चुन लिया है उसके आदेशों या हिदायतोंका हम पूरा-पूरा पालन करें। मै यह स्वीकार करता हूँ कि मै वल्लभभाईका बड़ा भाई हूँ, लेकिन सार्वजनिक जीवनमें जो जिस व्यक्तिके अधीन काम करता है, उसका वह पिता हो या बड़ा भाई, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे तो उसकी हिदायतोंके मुताबिक चलना है। यह कोई नया नियम नहीं है। प्राचीन कालमें भी यही नियम चलता था। यह वही अनुशासन था जिसको ध्यानमें रखकर महाप्रतापी कृष्णने विनयपूर्वक अर्जुनके सारथीका काम किया और राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सबसे छोटे सेवकका काम किया। इसलिए मैं आपको बधाई देनेके अलावा और कुछ नही कर सकता। जिस व्यक्तिने आपको भारत-भरमें प्रसिद्ध बनाया, वह वल्लभभाई ही हैं। लेकिन आपको सारी दुनियामें प्रसिद्ध बना देनेवाली तो यह सरकार ही है। भगवान् करे, भविष्यमें आप इससे भी बड़े काम कर दिखायें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-८-१९२८

१७१. तार : जमनालाल बजाजको

बारडोली
६ अगस्त, १९२८

जमनालालजी
मार्फत 'प्रताप', कानपुर

कार्य लगभग समाप्त। सन्तोषजनक। अभी यहीं ठहरूँगा।

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

१. महादेवभाईके "बारडोली सप्ताह-दर-सप्ताह" शीर्षक लेखसे।

१७२. पत्र : मीराबहनको

स्वराज आश्रम, बारडोली
६ अगस्त, १९२८

प्रिय मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। बेशक, मैं तुम्हें कोई काम करनेके लिए विवश करने नही जा रहा हूँ। लेकिन साफ है कि मेरी याददाश्त बहुत खराब हो गई है। ऐसा लगता है कि मुझे साफ याद है कि मैंने तुमसे बात की थी और तुमने भी मुझसे कहा था कि उन [बहनों]की खातिर हमें उनकी इच्छाके अनुसार ही बरतना चाहिए।[1] लेकिन या तो यह सिर्फ मेरी कल्पनाकी उपज है कि इस विषयमें मैंने तुमसे कुछ कहा है, जब कि वास्तवमें कुछ कहा नही या कोई भारी गड़बड़ी हो गई है। जो भी हो, तुम बिलकुल परेशान न होना। सब-कुछ तुम्हारी इच्छाका ध्यान रखते हुए ही किया जायेगा।

समझौता लगभग पूरा हो चुका है। लेकिन मैं कुछ दिन यहाँ रहकर स्थिति पर नजर रखूँगा।

सस्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

आशा है कुसुम अब बिलकुल ठीक होगी।

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३०५) तथा जी० एन० ८१९५ से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१७३. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

बारडोली
मौनवार, ६ अगस्त, १९२८

बहनो,

यहाँ तो समझौता हो गया-जैसा मालूम होता है। इसलिए अब मैं जल्दी आनेकी आशा रखता हूँ। थोड़े दिन तो वल्लभभाई मुझे रोकना चाहते हैं। समझौतेका पक्का पता कल लगेगा।

मेरे मनमें तो [संयुक्त] भोजनालयकी ही बात चक्कर काटती रहती है। यह सोच रहा हूँ कि तुम उसमें पूरी दिलचस्पी और भाग कैसे लेने लगो। मुझे यह

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको", ५-८-१९२८।

जरूरी मालूम होता है कि तुम उसका सारा काम-काज अपने हाथमें ले लो। तुम चाहो सो मदद तुम्हें दी जाये। मगर वह तभी हो सकता है, जब तुममें हिम्मत आ जाये। भोजनालय और भण्डारमें शोर-गुल मिट जाना चाहिए। इस शोर-गुलसे मीराबहनके लिए काम करना मुश्किल हो जाता है और छोटेलालजी भी घबरा जाते हैं। स्थितप्रज्ञके श्लोक गानेवाले को शान्तिपूर्वक काम करनेकी आदत डालनी ही चाहिए। रोटी बेलते या चावल साफ करते वक्त हम अपने काममें अन्तर्मुख होकर तन्मय क्यों नहीं रह सकते? मगर तुम तो कहती हो कि बातें न की जायें तो वक्त ही न कटे। यह सुनकर मैं मजबूर हो जाता हूँ। परन्तु मुझे यह तो कहना ही पड़ेगा कि तो भी तुम्हें शोर करनेकी जरूरत नहीं है। उस समय दिनमें सीखे हुए कुछ श्लोकोंके विचारमें ही मग्न क्यों न रहा जाये? देखो और विचारो। जो ठीक लगे वही करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३६८१) की फोटो-नकलसे।

१७४. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

स्वराज आश्रम, बारडोली
६ अगस्त, १९२८

सुज्ञ भाईश्री,

तुम्हारा पत्र मिला। क्या तुम्हें इसके लिए धन्यवाद दूँ?

मेरे बारेमें किसीको चिन्ता होनी ही नहीं चाहिए। ईश्वरको जब तक इस शरीरसे काम लेना होगा तब तक अपनी गरजसे वह मुझे ठीक रखेगा और जिस दिन वह रूठ जायेगा उस दिन हजारों वैद्य-हकीम भी काम नहीं आयेंगे। किन्तु फिलहाल ऐसा जान पड़ता हैं कि समझौता हो ही जायेगा।

लेकिन वल्लभभाई चाहते हैं कि मैं थोड़े दिन और यहीं रहूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च :]

आश्रममें आनेके बारेमें चिन्तित मत होना। यदि आनेका समय निकाल सको, तो निःसन्देह अच्छा होगा।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३२२४)से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१७५. पत्र : वसुमती पण्डितको

सोमवार [६ अगस्त, १९२८][1]

चि० वसुमती,

आज तीन पोस्टकार्ड एक साथ मिले। उनसे तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें अच्छी खबर मिली। मैं तार तो ये पोस्टकार्ड मिलनेके पहले ही भेज चुका था। यह मैं जानता हूँ कि वहाँ तुम्हें डॉक्टरके आदेशानुसार ही चलना चाहिए। भगवान् करे तुम जल्दीसे-जल्दी स्वस्थ हो जाओ।

बारडोलीके बारेमें समझौता हो जाना करीब-करीब निश्चित ही है, किन्तु मुझे यहाँ और कुछ दिन रुकना पड़ेगा।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन
कन्या गुरुकुल

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९१)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१७६. पत्र : कुसुम देसाईको

बारडोली
६ अगस्त, १९२८

चि० कुसुम,

मीराबहन लिखती हैं कि तुम अभी तक चंगी नहीं हुई। आज तुम्हारा पत्र भी नहीं मिला इसलिए उसकी बातकी पुष्टि होती है। सोच-विचारके चक्करमें तो नहीं पड़ी न?

समझौता हो जाना करीब-करीब निश्चित है इसलिए कुछ ही दिनोंमें वापस लौट आऊँगा। किन्तु जितने दिन रहनेकी सोची थी उसकी अपेक्षा कुछ अधिक रुकना पड़ेगा। वल्लभभाई ऐसा चाहते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १७५८)की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

१७७. पत्र : रेहाना तैयबजीको

६ अगस्त, १९२८

चि० रेहाना,

तुम्हारा पहला गुजराती पत्र तो अच्छा ही माना जायेगा। इसी प्रकार अभ्यास करते रहने और अक्षर सुधार लेनेसे तुम्हारी गुजराती बहुत अच्छी हो जायेगी। अब तो समझौता हो गया अतः तुम्हें यहाँ कौन-सा काम सौंपूँ?

सभीको वन्देमातरम्।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९६०८)की फोटो-नकलसे।

१७८. पत्र : बेचर परमारको

६ अगस्त, १९२८

भाईश्री बेचर,

तुम्हारा निर्मल पत्र मिला। हालाँकि तुम शिक्षक हो लेकिन पानी क्यों नहीं भरोगे? या हजामत क्यों नहीं बनाओगे? ये काम करनेके कारण भले ही सरकार तुम्हें बर्खास्त कर दे, और लोग निन्दा करें। मैं जो तुमसे शिक्षक बने रहनेका आग्रह करता हूँ उसका कारण यही है कि तुम शिक्षक रहते हुए भी मेहनत-मजदूरी करो और झूठी शर्म छोड़ दो। तुम अलिप्त रहते हुए परिवारकी जिम्मेवारियाँ अपने सिर पर ले लो, इसमें तो कोई बुराई नहीं है। इससे भाग निकलनेकी कोशिश कभी मत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० २४७४९)की फोटो-नकलसे।

१७९. पत्र : मूलचंद अग्रवालको

स्वराज आश्रम, बारडोली
६ अगस्त, १९२८

भाई मूलचंदजी,

आपके पत्रका उत्तर देनेमें विलंब हुआ है क्षमा कीजीये।

जो दूसरेके आधीन काम करता है वह यदि सचमुच उपरीसे ज्यादा योग्य है तो उपरी उसकी योग्यताकी पहचान लेगा। हां एक शर्त है; आधीन व्यक्तिमें पूर्ण नम्रता और धैर्य होना चाहिए।

आपका,
मोहनदास गांधी

जी० एन० ७६२ की फोटो-नकलसे।

१८०. पत्र : प्रभावतीको

स्वराज आश्रम, बारडोली
मौन दिवस [६ अगस्त, १९२८]

चि० प्रभावती,

तुमारे सुंदर खत आते रहते हैं। अक्षर और भाषा दोनों अच्छे हैं। ५ बजे रसोड़ेमें जानेका प्रयत्नसे बीमार नहिं होना। ५-३० बजे जाना भी काफी है। मैं अब तो थोड़े दिनोंमें आ जाउंगा। विद्यावतीकी[1] सेहत कैसी है? हिंदी वर्ग बाल-मंदीरका कैसे चलता है। रोजनिशि [डायरी] हमेशा रखो।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० ३३३१ की फोटो-नकलसे।

१. प्रभावतीकी बहन जो आश्रममें ठहरी हुई थी।

१८१. पत्र : मीराबहनको

स्वराज आश्रम, बारडोली
७ अगस्त, १९२८

प्रिय मीरा,

मैंने तुम्हें तार नहीं किया, क्योंकि समझौतेका समाचार अखबारोंमें प्रकाशित हो चुका है। जब तक वहाँ लौट नहीं आता हूँ, तब तक मैं मासिक धर्मकी अवधिमें बरती जानेवाली अस्पृश्यताके सवालको लेकर कोई चिन्ता नहीं करूँगा। मैं उस दोषको जानता हूँ, जिसकी ओर तुमने मेरा ध्यान आकर्षित किया है। यदि आश्रमके प्रमुख लोग दृढ़ होंगे तो वहाँ सब-कुछ अपने-आप ठीक हो जायेगा।

सस्नेह।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३०६) तथा जी० एन० ८१९६ से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१८२. पत्र : कुसुम देसाईको

बारडोली
मंगलवार, ७ अगस्त, १९२८

चि० कुसुम,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें समझनेमें मुझे कठिनाई होती है। तुम मुझे विनयकी भाषा तो हरगिज नहीं लिखोगी। तुम्हें डायरी लिखना नहीं आता यह कहना ठीक नहीं है।[1] तुम्हारा यह कहना भी थोथी विनय-भर है कि पत्र लम्बा हो गया है और संक्षेपमें लिखना नहीं आता। तुम्हारे सभी पत्र सरस हैं और उन्हें मैं भी संक्षिप्त नहीं कर सकता तथा संक्षिप्त और विस्तृत पत्रका भेद मैं भली-भाँति जानता हूँ। अतः यदि वास्तवमें तुम्हारा यही विश्वास हो तो उसे अपने मनसे निकाल देना। और यदि तुम विनयकी खातिर आत्मनिन्दा करती हो तो ऐसी निन्दा करना बन्द कर देना।

. . . भाईके[2] बारेमें अब फैसला हो गया लगता है। जान पड़ता है . . . भाईने[3] अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। यह स्वीकृति फिलहाल सीधी मुझ तक नहीं पहुँच सकी किन्तु ऐसा लगता है कि सुरेन्द्र और छोटेलालके सामने उन्होंने स्वीकार कर लिया है। तुमने इस मामलेमें जिस ढंगसे भाग लिया वह निश्चय ही बहुत अच्छा रहा।

१. देखिए "पत्र : कुसुम देसाईको", ४-८-१९२८।
२ और ३. साधन-सूत्रमें से नाम निकाल दिये गये हैं।

बाल-मन्दिरका कार्यक्रम अच्छा ही लगता है। अब यदि तुम इसीमें लगी रहोगी तो काम जरूर आगे बढ़ेगा।

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना।

इस सप्ताहके अन्तमें या अगले सप्ताहके आरम्भमें वहाँ पहुँच जानेकी आशा है।

आजकल तुम कब उठती हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १७५९) की फोटो-नकलसे।

१८३. पत्र : वसुमती पण्डितको

७ अगस्त, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र तथा विद्यावतीजी का तार भी मिला। यह सूचना उन्हें दे देना। तुम्हारे ठीक हो जानेपर रामदेवजी तुम्हें हरिद्वार ले जायें तो वहाँ जाने और वैद्यको दिखानेमें कोई नुकसान नहीं बल्कि शायद लाभ ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९२)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१८४. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

स्वराज आश्रम, बारडोली
७ अगस्त, १९२८

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला।

हालाँकि समझौता हो चुका है फिर भी मैं यहाँ कुछ दिन और रहूँगा।

तुम प्रार्थनामें नियमित रूपसे जाती हो, यह अच्छा ही है। तुम चाहे जितना काम करो किन्तु बीच-बीचमें आराम लेती रहना और मन शान्त रखना। अधीर होकर कुछ मत करना। मीराबहनके सहवाससे खूब लाभ उठाना और उनसे कह रखना कि वे तुम्हें टोकती रहें। जब भी वे तुम्हें ज्यादा आवाज करते हुए सुनें तो टोक दें। इससे थोड़े ही दिनोंमें चुपचाप प्रसन्नचित्त रहकर काम करनेकी आदत पड़ जायेगी और तुम्हें थकावट भी कम महसूस होगी।

कृष्णमैया देवीसे तुम बराबर काम लेती रहना। उन्हें प्रेमसे जीत सकोगी।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ६: गं० स्व० गंगाबहेनने

१८५. पत्र: मीराबहनको

सत्याग्रह आश्रम, साबरमती[1]
८ अगस्त, १९२८

चि० मीरा,[2]

सुब्बैया कल रात यहाँ पहुँचा। इसलिए हाथसे लिखनेके बजाय यह पत्र मैं बोलकर ही लिखवा रहा हूँ।

यदि मेरे वहाँ आनेसे पहले ही वह बात हो जाती है तो तुम अपना खाना अपने कमरेमें ही मँगवा लिया करना। यह ठीक रहेगा न? और अगर तुम चाहती हो कि किसीको इसका पता न लगे तो तुम अभीसे अपना खाना अपने कमरेमें मँगवाना शुरू कर सकती हो।

किसी अन्य अवसर पर या प्रार्थना-सभामें अलगाव बरतनेका कोई सवाल नहीं उठता। इसका सम्बन्ध तो सिर्फ रसोईघर और भोजन-कक्षसे है।

तुम जिस भावनासे यह जाँच कर रही हो, उसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ। बेशक, इस विषयमें मुझे बहुत-कुछ कहना है। लेकिन वह सब मैं पत्रोंमें नहीं कहना चाहता।

रविवारको या अगले सप्ताहके शुरूमें ही किसी दिन वहाँ पहुँचनेकी आशा करता हूँ।

आश्रमवासियोंके सम्बन्धमें तुमने जो बात कही है, उसका मैंने कोई गलत अर्थ नहीं लगाया है।

सस्नेह।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३०७) से; सौजन्य: मीराबहन;
जी० एन० ८१९७ से भी।

१. स्थायी पता।
२. साधन-सूत्रमें सम्बोधन देवनागरी लिपिमें है।

१८६. पत्र : कुसुम देसाईको

स्वराज आश्रम, बारडोली
बुधवार, ८ अगस्त, १९२८

चि० कुसुम,

शारदाको तूने जवाब दिया वह सचोट तो है ही, उसमें गहरा अर्थ भी है।

मेरा जवाब यह है। लाड़ली कौन है या कौन नही, यह मैं नही जानता, परन्तु लड़कियाँ खुद जानती हैं। परन्तु मै जिसे लिखना जरूरी समझता हूँ उसे लिखता हूँ अथवा जो आशा रखे उसे लिखनेका प्रयत्न करता हूँ। यह शारदाको पढ़वाना और वह आशा रखे तो मुझे लिखे।

स्त्री-विभागमें चोरी होती है तो चोरको ढूँढ़ निकालनेकी शक्ति तुम लोगोंमें होनी चाहिए। क्या चुराया, यह मुझे लिखना चाहिए था।

जिस-जिसकी जो-जो चीज चली गई हो, उसकी सूची मुझे भेजो। यह भी बताओ कि शक किस-किस पर है।

कदाचित् वहाँ रविवारको पहुँचूँ, अथवा अगले सप्ताहके शुरूमें तो किसी दिन जरूर।

बापूके आशीर्वाद

आश्रममें रतिराम है। उसके दाँत खराब हो गये हैं। उसे भड़ौंचमें जिसके नाम पत्र देना जरूरी हो उसके नाम पत्र देना। वह वहाँ जाये और दाँत दिखाकर दवा ले आये। जहाँतक हो सके, डाक्टर उसे रुकनेको न कहे, वह जिसके पास जाये यह उसे लिख देना। डाक्टरको लिखना कि क्या रोग है, यह तुझे लिखे। और उपचारके बारेमें रतिरामसे कहे, फिर भी तुझे तो लिखे ही।

बापू

गुजराती (जी० एन० १७६०) की फोटो-नकलसे तथा **बापुना पत्रो — ३ : कुसुमबहेन देसाईने** से भी।

१८७. "सब भला"

यह हार्दिक प्रसन्नताकी बात है कि अन्ततः बारडोली सत्याग्रहके विषयमें समझौता हो गया है[1]। अन्त भला तो सब भला। मैं बम्बई सरकार और बारडोली तथा वालोदकी जनता, दोनोंको बधाई देता हूँ, और श्रीयुत वल्लभभाईको भी, जिनकी दृढ़ता और साथ ही विनम्रताके बिना समझौता असम्भव था। पाठक देखेंगे कि सत्याग्रहियोंको लगभग वह सब मिल गया है जो उन्होंने माँगा था। जाँच-समितिके विचारार्थ सौंपे गये विषय सब अभीष्ट प्रकारके हैं। यह सच है कि लगान वसूल करनेके लिए सरकार द्वारा की गई जोर-जबरदस्तीसे सम्बन्धित आरोपोंकी जाँच नही होनेवाली है। लेकिन, यह शर्त हटाकर श्रीयुत वल्लभभाईने उदारता ही दिखाई है, क्योंकि नीलाम की गई जमीनके साथ-साथ जब्त की गई सारी जमीन सम्बन्धित किसानोंको वापस दे दी जानेवाली है, तलाटी लोग फिरसे बहाल कर दिये जानेवाले हैं और अन्य छोटे-मोटे मामलोंका भी निबटारा करना तय हुआ है। यह अच्छा ही है कि पुराने अन्यायोंका सवाल फिरसे न उठाया जाये। सिवाय इसके कि इनके लिए क्षतिपूर्ति कर दी जाये, इनका और क्या इलाज है? जोर-जबरदस्तीके तरीकोंसे सम्बन्धित माँगको हटा लेनेके कारण लगान-निर्धारणके सवालकी जाँच ज्यादा शान्त वातावरणमें की जा सकेगी।

सत्याग्रहियोंको जो विजय मिली है, उसके वे सुयोग्य पात्र थे। लेकिन उन्हें अपनी इस विजयसे निश्चित होकर बैठ नहीं जाना चाहिए। उन्हें लगान निर्धारण-सम्बन्धी अपने आरोपोंको सिद्ध करनेके लिए सामग्री इकट्ठा करना और उन्हें सुविन्यस्त ढंगसे एक साथ जमाना है।

और सबसे बडी बात तो यह है कि यदि उन्हें अपनी स्थितिको सुदृढ़ बनाना है तो उन्हें दूनी शक्तिसे रचनात्मक कार्य करनेमें जुट जाना जाहिए। यह रचनात्मक कार्य बहुत कठिन और धीरे-धीरे सम्पन्न होनेवाला काम है और साथ ही इसमें किसी प्रकारके दिखावेकी भी गुंजाइश नहीं है; किन्तु उनकी शक्तिका असली स्रोत इसे सम्पन्न करनेकी उनकी क्षमतामें ही है। उन्हें अपने बीचसे अनेक सामाजिक बुराइयोंको दूर करना है। चरखेकी ओर ध्यान देकर उन्हें अपनी आर्थिक स्थितिको अच्छा बनाना है। चरखेके कारण ही उनमें जागृति आई। उन्हें अपने बीचसे मद्यपानके कलंकको मिटा देना है। उन्हें गाँवोंकी सफाईकी ओर ध्यान देना है और प्रत्येक गाँवमें एक सुसंचालित स्कूलकी व्यवस्था करनी है। तथाकथित उच्च वर्गोंके लोगोंको पिछड़े और दलित वर्गोंके साथ मैत्रीका सम्बन्ध कायम करना है। अभी उन्हें जो संकट झेलना पड़ा, ऐसे संकट झेलनेकी उनकी क्षमता, वे इन मामलोंपर जितना अधिक ध्यान देंगे, उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

१. पूनामें ६ अगस्त, १९२८ को; समझौतेकी शर्तोंके लिए देखिए परिशिष्ट-२।

वल्लभभाईके अधीन काम करनेका सौभाग्य प्राप्त करनेवाले चरित्रवान स्वयं-सेवकोंका दल अपनी निष्ठा और अद्भुत अनुशासनके लिए सबसे अधिक प्रशंसाका पात्र है। लेकिन अभी काम पूरा नहीं हुआ है। जिनके पास समय हो, उन्हें हर हालतमें सरदारको रचनात्मक कार्य सम्पन्न करनेमें सहायता देनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-८-१९२८

१८८. टिप्पणियाँ

स्वर्गीय न्यायमूर्ति अमीर अली

मैं स्वर्गीय न्यायमूर्ति अमीर अलीके परिजनोंके प्रति अपनी समवेदना आदरपूर्वक प्रगट करता हूँ। दक्षिण आफ्रिकाके प्रवासी भारतीयों द्वारा १९०६ से १९१४ तक किये जानेवाले उस लम्बे सत्याग्रह–संघर्षमें न्यायमूर्ति अमीर अलीने उनके एक प्रमुख मित्र और सहायककी भूमिका निभाई थी।

दक्षिण आफ्रिकामें दी गई रियायत

अभी सामग्रीको प्रेस भेजते समय मेरे सामने 'इंडियन ओपिनियन' की वह प्रति पड़ी हुई है, जिसमें रियायत योजनाके[1] बारेमें पूरी जानकारी देनेवाला परिशिष्ट भी शामिल है। अभी तो मेरे पास सिर्फ इतना ही समय है कि जो प्रार्थनापत्र देना है, उसका प्रपत्र[2] दे सकूँ। वह नीचे दे रहा हूँ। प्रार्थनापत्र आगामी १ अक्टूबरसे पहले डिपार्टमेंट ऑफ इंटीरियर (इमिग्रेशन ऐंड एशियाटिक अफेयर्स)[3] में पहुँच जाना चाहिए। तो जो लोग दक्षिण आफ्रिका लौटना चाहते हैं, वे समयसे प्रार्थनापत्र भेज दें। बाकी दस्तावेज और जानकारी मैं अगले सप्ताह प्रकाशित करनेकी आशा करता हूँ।[4]

मगनलाल–स्मारक

पाठकोंको यह जानकर हर्ष होगा कि श्रीयुत मूलजी सिक्काने मगनलाल-स्मारकके लिए १०,००० रुपये दिये हैं। इस परिवारके खादी-प्रेमका पर्याप्त परिचय अक्सर कई तरहसे मिला है।

एक भूल-सुधार

गत १९ जुलाईके 'यंग इंडिया' में यह सूचना प्रकाशित हुई थी कि लाला लाजपतरायकी मार्फत बारडोली–कोषके लिए २०,०० रुपये मिले। इसमें ५०० रुपये 'दूसरों द्वारा दिये चन्दे' के रूपमें दिखाये गये हैं। लेकिन वास्तवमें यह रकम खुद लालाजी ने दी है। इस भारी भूलके लिए मुझे खेद है, लेकिन जब प्रतिदिन बहुत सारे इन्दराज प्रकाशित करने पड़ते हों और जब इन्हें कई हाथोंसे गुजरना पड़ता

१ और २. देखिए परिशिष्ट ३।
३. गृह-विभाग (प्रवासियों और एशियाइयोंके मामलोंसे सम्बन्धित खण्ड)।
४. देखिए "दक्षिण आफ्रिकी प्रमार्जन योजना", पृष्ठ १८६।

हो तो, गलतियोंसे बचनेके लिए पूरी कोशिशके बावजूद, कुछ-न-कुछ छूट रह जाना अक्सर अनिवार्य हो जाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-८-१९२८

१८९. पत्र: वसुमती पण्डितको

९ अगस्त, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारा विस्तृत पत्र आज मिला। अभी ऐसा नही लगता कि तुम्हें बीमारीसे पूरी तरह मुक्ति मिल गई है। अगर किसीको यहाँसे बुलानेकी आवश्यकता समझो तो लिखना। ऐसा लगता है कि मैं रविवारको बारडोलीसे रवाना हो जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

यदि तुम्हें अपने केश मुसीबत जान पड़ते हों तो उन्हें कटवा देनेमें तनिक भी संकोच मत करना।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९३)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१९०. पत्र: मीराबहनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती[1]
१० अगस्त, १९२८

चि० मीरा,

इस सप्ताहके अंत तक बारडोलीसे रवाना होनेकी आशा करता हूँ। फिलहाल सबसे अच्छा यही रहेगा कि तुम्हारा खाना तुम्हें अपने कमरेमें ही मिल जाया करे और तुम रसोईघरसे कोई वास्ता न रखो। तुमने जो दलील दी है, उस पर मुझे बहुत-कुछ कहना है। लेकिन चूँकि मैं सोमवारको आश्रम पहुँच जानेकी आशा करता हूँ, इसलिए अपनी बात पत्रोंमें नहीं कहना चाहता। तुम्हें जो स्थिति अपनानेकी जरूरत महसूस हो रही है, उसको लेकर मैं जरा भी परेशान नहीं हूँ।

यहाँ स्वराज आश्रममें एक बहुत ही बहादुर लड़कीकी मृत्यु हो गई। कल वह बिलकुल ठीक थी और अपने पितासे मिलने आई थी जो अभी साबरमती जेलमें हैं और जल्दी ही छूटनेवाले हैं। उसके पेटमें भयंकर दर्द शुरू हो गया। डाक्टर लोग मर्जका पता नहीं लगा सके। आज सुबह-सुबह उसने बहुत शान्तिपूर्वक शरीर त्याग

१. स्थायी पता।

दिया।[1] और इसलिए यद्यपि मैं आजका काम-काज यन्त्रवत् किये जा रहा हूँ, किन्तु मृत्युके देवतासे मेरा मूक संलाप चल रहा है और मृत्युका अर्थ मेरे सामने अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है।

शेष मिलने पर।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३०८) तथा जी० एन० ८१९८ से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१९१. पत्र : रॉबर्ट फ्रेजरको

बारडोली
१० अगस्त, १९२८

आपका पत्र[2] मिला। डॉ० विधान रायने उसके मजमूनके बारेमें मुझे लिखा था। मेरा खयाल है आपको उसका एक जवाब भी मिल गया है।

शुरूसे आखिर तक सारी कहानी मनगढ़न्त है। पत्रमें उल्लिखित लोगोंके बारेमें मैं कुछ नहीं जानता।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३४८७) की फोटो-नकलसे।

१. इस घटनाका वर्णन करते हुए महादेवभाईने लिखा था कि "वह वांकानेरसे बिल्कुल पैदल चलकर आई थी।... सुबह तीन बजे उसने कहा, 'कृपया महात्माजी को बुलवा दीजिए। मैं उनके अन्तिम दर्शन करना चाहती हूँ।' गांधीजी तुरन्त वहाँ आ गये। उसकी आँखोंकी ज्योति समाप्त हो चुकी थी, लेकिन ज्यों ही गांधीजी ने उसे सम्बोधित किया, उसने कहा: 'मैं आपको देख नहीं सकती, लेकिन आपकी आवाज पहचानती हूँ। क्या कोई मेरे हाथ साथ जोड़ देगा? मैं गांधीजी को अन्तिम बार नमस्कार करना चाहती हूँ।' इसके बाद उसने वल्लभभाईको बुलानेको कहा और दिन निकलनेसे पहले ही चल बसी।" (**द स्टोरी ऑफ बारडोली**, पृष्ठ १४०-१)।

२. २ अगस्त, १९२८ के अपने इस पत्रमें फ्रेजरने लिखा था: "आपको सूचित करना चाहता हूँ कि हालमें एस्टेल कूपर गांधीने संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपतिको निम्नलिखित तार भेजा है: 'महात्मा गांधीने मुझे आपको यह सूचित करनेको कहा है कि नाजिमोवाके कारण उनके सामने सम्पूर्ण अमेरिकी मालके बहिष्कारकी घोषणा करने और जहाँ रंगदार लोग काम करते है, ऐसे तमाम अमेरिकी बागानोंमें आम हड़ताल करानेके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया है। बहिष्कार तभी बन्द किया जायेगा जब नाजिमोवाको देश-निकाला दे दिया जाये और कैथीरिन मेयोको अपने अपलेखकी सजा भुगतनेके लिए यहाँ भेज दिया जाये।' बड़ी कृपा होगी, यदि आप यह बता सकें कि यह एस्टेल कूपर गांधी कौन है और उक्त तार आपकी जानकारीमें और आपकी सहमतिसे भेजा गया था या नहीं। इस मामलेके सम्बन्धमें यदि आपको कोई टिप्पणी करनी हो तो वैसी टिप्पणी भी करके भेजिए। उसे प्राप्त करके मुझे खुशी होगी।" देखिए "पत्र : डॉ. वि० च० रायको", ३-८-१९२८।

१९२. पत्र : चार्ल्स फ्रेड्रिक वेलरको[1]

१० अगस्त, १९२८

बेशक, यह बात मुझे बहुत पसन्द आई कि आप धार्मिक सहिष्णुतासे ही संतुष्ट नहीं हैं, बल्कि चाहते हैं कि एक धर्मके अनुयायी दूसरे धर्मको समझें-सराहें। आप शिकागो आदिमें ऐसा प्रयत्न प्रारम्भ कर देनेके लिए तैयार हैं या नहीं, यह तो, खैर, मैं नहीं ही कह सकता। यह बात तो खुद आपके हृदयकी भावना और व्यक्तिगत अनुभवपर निर्भर करती है। मैं तो एक सामान्य सिद्धान्तकी ही बात कह सकता हूँ कि ऐसे सभी मामलोंमें कार्यके क्षेत्रको विस्तार देनेके बजाय उसको सीमित क्षेत्रमें ही गहराई तक ले जानेका प्रयत्न करना चाहिए।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४३३३)की फोटो-नकलसे।

१९३. पत्र : वसुमती पण्डितको

शुक्रवार [१० अगस्त, १९२८][2]

चि० वसुमती,

पूर्ण विवरण सहित तुम्हारा लम्बा पत्र आज मिला। यह बहुत अच्छे ढंगसे लिखा गया है और उससे मुझे उन सब बातोंकी जानकारी हो गई जो मैं जानना चाहता था। मैं कोई सुझाव नहीं देना चाहता। डॉक्टर भले आदमी हैं और जो कुछ वे कर रहे हैं उसमें मैं क्यों दखल दूँ? अलबत्ता, चनेका और सो भी मसालेदार पानी देना मुझे तो ठीक नहीं लगता।

मो० क० गांधी

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९४)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. लीग ऑफ नेबर्सके कार्यकारी अध्यक्ष; 'फेलोशिप ऑफ फेथ' और 'यूनियन ऑफ ईस्ट एंड वेस्ट'से सम्बद्ध। अपने २१ जून, १९२८के पत्रमें वेलरने लिखा था कि चिरकालसे मेरी एक आकांक्षा यह रही है कि मैं भारत आऊँ . . . वहाँ ऐसी सभाओंमें शरीक होऊँ जिनमें हिन्दू मुसलमानोंके धर्मकी हृदयसे प्रशंसा करें और मुसलमान हिन्दुओंके धर्मकी तथा ईसाई इन दोनोंके धर्मोंकी"।

२. डाककी मुहरसे।

१९४. पत्र : ऑलिव डोकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती[१]
११ अगस्त, १९२८

प्रिय ऑलिव,[२]

तुम्हारा वह पत्र मिला जिसमें तुमने अपना समाचार और अपने बहादुरी-भरे अद्भुत कार्यके बारेमें लिखा है। इसके लिए धन्यवाद। क्लीमेंट[३] और कॉम्बरका हाल[४] बतानेके लिए भी धन्यवाद।

तुमने मुझे अपने लड़कोंके बारेमें कुछ बतानेको लिखा है। सबसे बड़ा लड़का हरिलाल तो विद्रोही हो गया है। वह पीने तक लगा है और मौज-मजेकी जिन्दगी बिताता है और हृदयसे ऐसा मानता है कि मै जो-कुछ कर रहा हूँ वह एक पथभ्रष्ट आदमीका काम है। मणिलाल फीनिक्समें 'इंडियन ओपिनियन'की देख-रेख करता है। उसका विवाह दो साल पहले हुआ था और अपनी पत्नीको भी वह साथ ले गया। दोनों सुखी हैं। रामदास और देवदास मेरे साथ हैं और मेरे काममें हाथ बँटाते हैं। रामदासका विवाह हुए साल-भर हुआ है। देवदास अभी तक अविवाहित है। यहाँ मैं एक खासी बड़ी संस्था चला रहा हूँ। साथके कागजमें संविधान और उसका गठन किस प्रकार किया गया है, यह देख सकती हो।

जब अपने परिवारके विभिन्न सदस्योंको पत्र लिखो तो सबसे मेरा स्नेहाभिवादन कहना।

सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

कुमारी ऑलिव सी० डोक
काफुलाफुटा, डाकघर नौला
उ० प० रोडेशिया (दक्षिण आफ्रिका)

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९२२६) से।
सौजन्य : सी० एम० डोक

१. स्थायी पता।
२. रेवरेंड जे० जे० डोककी पुत्री।
३. और ४. ऑलिव डोकके भाई।

१९५. भाषण : वालोडमें[1]

[११ अगस्त, १९२८][2]

आप यह तो मानेंगे ही कि मैं सत्याग्रह शास्त्रका आचार्य हूँ, और उसके आचार्यकी हैसियतसे मै आपसे कहता हूँ कि इससे अधिक शुद्ध, खरी और निर्णायक विजय और कोई नहीं हो सकती थी। यदि सरकारने निर्णय करनेमें आपके सरदारसे सलाह-मशविरा नहीं किया तो उससे क्या फर्क पड़ता है? आपकी हरएक शर्त पूरी कर दी गई है और आप इससे कुछ-अधिक तो चाहते नही हैं। आपको इस बातकी चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नही है कि समझौता कैसे और किसके प्रयत्नोंसे हुआ। सत्याग्रही सारसे ही सन्तुष्ट हो रहता है, वह छायाके पीछे नही भागता। और आप अन्त तक लड़नेकी बात क्यों करते हैं? क्या इसलिए कि आपको बड़ीसे-बड़ी कठिनाइयों, बारूद और गोलियोंके मुकाबले अपना जौहर दिखानेका मौका नहीं मिला? यदि ऐसा हो तो यह समझ लीजिए कि सत्याग्रही कभी भी यह नहीं चाहता कि उसका विरोधी पशुता पर उतर आये ताकि वह खुद दुनियाको अपनी बहादुरी दिखा सके। वह तो ईश्वरसे सदा यही प्रार्थना करता है कि उसकी कृपासे उसके विरोधी का हृदय-परिवर्तन हो जाये। वह यह नहीं चाहता कि उसका हृदय और भी कठोर हो जाये। और आप लोग अधीर हो रहे है? बड़ी लड़ाई तो अब भी हमारे सामने है — स्वतन्त्रताकी वह लड़ाई जिसकी योजना १९२१ में बनाई गई और जिसे लड़ना अभी शेष है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-८-१९२८

१९६. निर्बलके बल राम

"सत्याग्रही जीत गये हैं" यह कहना अतिशयोक्ति है; क्यों कि सत्याग्रहीकी हार तो होती ही नहीं। वह तो मरने तक जुटा ही रहता है। तो भी ऐसा कहना चाहिए कि व्यावहारिक दृष्टिसे तो बारडोलीके सत्याग्रही ही जीते हैं। मृत्युपर्यन्त जूझनेवाले की स्तुति सभी करेंगे किन्तु वह जीत गया है यह कोई नहीं कहेगा। बारडोलीके सत्याग्रहियोंने जो माँगा सो पाया, इसलिए यह माना जायेगा कि वे जीत गये हैं।

१. महादेव देसाईके लिखे "बारडोली वीक बाई वीक" ("बारडोली सप्ताह दर-सप्ताह") शीर्षक लेखसे। इस भाषणका प्रसंग बताते हुए महादेव देसाईने लिखा है कि सत्याग्रहियोंमें से भी कुछ लोग समझौतेसे सन्तुष्ट नहीं थे और उन्होंने गांधीजी तथा सरदार वल्लभभाईसे कहा था कि वे समझौतेके बजाय अन्ततक लड़ना पसन्द करते।

२. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्सट्रैक्ट्स, पृष्ठ ५५२, पैरा १३५३ (३) से।

इस जीतका यश व्यावहारिक दृष्टिसे चाहे जिसे दें, किसी सत्याग्रही और वल्लभ-भाईकी दृष्टिसे तो यह यश केवल ईश्वरको ही दिया जा सकता है। वल्लभभाईने भी यह यश ईश्वरको ही दिया है। सत्याग्रही ईश्वरको सर्वार्पण करके ही युद्धमें उतरता है इसलिए यश-अपयशका भागी वह नही रहता। लौकिक दृष्टिसे सत्याग्रही निर्बल दिखाई देता है, उसके पास शरीरबल नही होता, इसलिए उसके पास शस्त्र भी नहीं हो सकता। कहाँ बारडोलीके लोग और कहाँ ब्रिटिश साम्राज्य? एक चींटी और दूसरा हाथी। किन्तु जब सत्याग्रही चींटी-जैसा बन जाता है, तब ईश्वर उसे हाथीके पैरके नीचे आई हुई चींटीकी तरह बचा लेता है। यही बारडोलीके सत्याग्रहियोके विषयमें हुआ है।

इस प्रकार हम पहले ईश्वरको धन्यवाद दें और फिर आगे बढ़ें।

यदि माननीय गवर्नर निश्चय न करते तो समझौता नही हो सकता था। अपने तीखे भाषणके अनुरूप व्यवहार न करते हुए उन्होंने शान्त नीति ग्रहण करके सत्याग्रहियोंकी माँग स्वीकार की। इसके लिए वे धन्यवादके पात्र है।

किन्तु यदि वल्लभभाई पटेल उदार न बनते तो समझौता सम्भव ही न था। बाजी उनके हाथमें थी। लगान वसूल करते समय राज्यने जो निरंकुश व्यवहार किया था उसकी जाँचका आग्रह करनेका अधिकार उन्हें था; पर उन्होंने वह आग्रह छोड़ दिया। दूसरी कई छोटी-मोटी बातोंके बारेमें वे न्यायकी दृष्टि रखकर अड़ सकते थे; किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपने पदका आग्रह न करना तो उनका सबसे बड़ा त्याग है। उन्होंने अपना विचार ही नही किया। सरकारी तौरपर वल्लभभाईको समझौतेकी अभीतक कोई खबर नही दी गई है। समझौता हो गया है, यह बात उन्हें मित्रोके पत्रों तथा समाचारपत्रोंमें प्रकाशित समाचारोसे मालूम हुई है। पर उन्हें तो आम खानेसे मतलब है, गुठलियाँ गिननेसे नही, इसलिए वे मानापमानके विषयमें उदासीन रह सकते है। सत्याग्रहीको अपने व्यक्तिगत सम्मानकी चिन्ता नहीं होती। अगर किसी समय वह मानका आग्रह करता हुआ दिखाई दे तो अन्य लोगोंके मानकी खातिर। इसलिए जिस प्रकार वल्लभभाई पटेलके बिना संघर्ष नही हो सकता था उसी प्रकार उनकी सहमतिके बिना समझौता भी नहीं हो सकता था।

यशके तीसरे पात्र बारडोलीके स्त्री-पुरुष तो हैं ही। उनकी वीरता और सन्तु-लनके बिना यह लड़ाई जोर पकड़ ही नही सकती थी और न उसका शुभ अन्त ही हो सकता था।

और लोग धन्यवादके पात्र नहीं हैं सो बात नहीं है। इस लेखका उद्देश्य सम्बन्धित व्यक्तियोंको धन्यवाद देना नही है। वह तो उन सबको कई स्थानोंसे प्राप्त हो गया है। मैंने मुख्य पात्रोंका जो उल्लेख किया है वह भी मूल हेतुको देखते हुए ही।

मूल हेतु है भविष्यका विचार करना। जो जीत हुई है उसके उपलक्ष्यमें हम मिठाई खाकर सो जायें तो जीत निरर्थक हो जायेगी और लोग जैसे थे, वैसे ही बने रहेंगे। इसलिए भविष्यका विचार करते समय हमें उक्त तीनों पात्रोंको ध्यानमें रखना जरूरी है।

सत्याग्रहियोंने हमेशा यह दावा किया है कि लगान बढ़ानेका कोई कारण नही था और बारडोलीकी जमीनमें पुराना लगान सह सकनेकी शक्ति भी नहीं है। इस बातकी जाँचके लिए समिति नियुक्त करनेकी जो माँग की गई वह बहुत परिश्रमके बाद स्वीकार हुई। इसलिए प्रमाण इकट्ठे करके लोगोंको अब यह सिद्ध करना है कि प्रश्न उनके द्वारा लगानमें वृद्धि सहन कर सकनेका नही बल्कि यह है कि इस लगानमें कमी होनी चाहिए। लोगोंके लिए यह प्रमाणित करना भी बाकी है कि सरकारने जिन विवरणोंको लगानमें वृद्धिका आधार माना है वे विवरण भी सही नहीं हैं।

और फिर लोगोंमें जो जागृति आ चुकी है, उसके साथ-साथ जो रचनात्मक कार्य होना चाहिए उसका बहुत महत्त्व है। स्त्रियोंमें अद्भुत जागृति हुई है। उसका लाभ उठाते हुए उनमें फैले हुए अन्धविश्वास और हानिकारक रिवाजोंको दूर किया जाये। पुरुषोंमें जो एकता आई है उसका उपयोग उनके संगठनके लिए और उनमें रूढ़ बुरी आदतोंको दूर करनेके लिए हो। रानीपरज, दुबला, अन्त्यज आदिके प्रति हमारे व्यवहारमें परिवर्तन होना चाहिए। मद्य-निषेधका कार्य सहज ढंगसे हुआ है, उसे कायम रखनेके लिए प्रयत्न करने चाहिए। विदेशी वस्त्रोंका पूर्ण बहिष्कार करनेके लिए बहुत प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। इस प्रदेशमें कपास पैदा होती है; फिर भी घर-घर चरखा नहीं चलता। यह स्थिति बदली जानी चाहिए। यह और ऐसे दूसरे काम हों तो जनतामें आई हुई जागृति कायम रह सकती है और इससे लोग अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे।

इस संघर्षमें बहिष्कारका काफी उपयोग हुआ। शान्त अहिंसक बहिष्कारका सत्याग्रहमें पूरा-पूरा स्थान है लेकिन हिंसक और कटुतापूर्ण बहिष्कारका उसमें तनिक भी स्थान नहीं है। इसलिए जहाँ-जहाँ ऐसा बहिष्कार किया गया हो वहाँ उसे समाप्त करना आवश्यक होगा। शुद्ध बहिष्कारके फलस्वरूप द्वेष या झगड़ा कभी नही फैलता; बल्कि उससे प्रेममें वृद्धि ही होती है। जिन्होंने दुर्बलता दिखाई है उनपर ताने नहीं कसे जाने चाहिए। जिन अधिकारियोंने दुर्व्यवहार किया है, उनपर क्रोध नही करना चाहिए और न उनकी खुशामद ही की जानी चाहिए। अपनी स्वतन्त्रता कायम रखते हुए लोग अधिकारियोंके प्रति मिठाससे काम लें। तलाटियोंने बहादुरी दिखाई है। अब वे पुनः अपने पदोंपर बहाल किये जायेंगे। किन्तु वफादारीसे अपनी नौकरी करते हुए भी वे भविष्यमें लोगोंके प्रति सम्मान और वफादारीसे पेश आयेंगे, जनता ऐसी ही आशा करती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-८-१९२८

१९७. टिप्पणियाँ

कन्याओंका त्याग

देहरादून कन्या गुरुकुलसे श्रीमती विद्यावतीदेवीने जो पत्र लिखा है उसका सार नीचे दे रहा हूँ:[1]

उक्त हुंडी तीन सौ से ज्यादा की है और उनमें से दो सौ रुपये तो छात्राओंके त्यागका परिणाम है। मैं इन बालिकाओंको धन्यवाद देता हूँ। ईश्वर उनकी सेवा-भावना बनाये रखे।

विद्यापीठको बड़ा दान

श्री नगीनदास अमुलखरायने राष्ट्रीय शिक्षामें सदा रस लिया है। उन्होंने उसके लिए समय-समय पर दान भी दिया है। अब उन्होंने इसके लिए एक लाख रुपये दानमें दिये हैं। उन्होंने इतनी बड़ी रकम मेरी इच्छाके अनुसार विद्याकी वृद्धिके लिए भेजी थी और मैंने यह रकम उनकी सम्मतिसे विद्यापीठको दे दी है एवं उसकी व्यवस्थाके लिए पाँच प्रतिनिधि नियुक्त कर दिये है। मै इस दानके लिए भाई नगीनदासको धन्यवाद देता हूँ। मेरा ऐसा विश्वास है कि हम विद्यापीठके द्वारा जो कार्य करना चाहते है, उसके लिए जितना दान दिया जाये उतना ही कम है। आज हम विद्यापीठके कार्यका परिणाम अपनी स्थूल दृष्टिसे भले ही न देख सकें; किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जब राष्ट्रके विकासमें विद्यापीठके भागको सभी लोग देखेंगे, क्योंकि उसका उद्देश्य शुद्ध है और उसके विकासमें निःस्वार्थ सेवक संलग्न हैं।

मगनलाल गांधी-स्मारकको बड़ी सहायता

नेपाणी और गोंदियाके बड़े व्यापारी श्री मूलजी सिक्काने श्री मणिलाल कोठारीकी मार्फत दस हजार रुपये इस स्मारकके लिए दिये है। इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने खादीके प्रति अपना प्रेम कई बार सिद्ध किया है। इस स्मारक-निधिमें रुपया धीरे-धीरे आ रहा है। स्वभावतः लोगोंका ध्यान और दान बारडोलीकी ओर खिंच आता था। इसलिए मैं इसके सम्बन्धमें कुछ लिखता नहीं था। अब बार-डोली प्रकरणका पूर्वभाग समाप्त होनेसे और श्री मूलजी सिक्काकी उदारताका निमित्त उपस्थित हो जानेसे मैं खादीप्रेमियों और स्वर्गीय मगनलालकी सेवाओंको समझनेवाले सज्जनोंका ध्यान इस स्मारककी ओर आकर्षित करता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-८-१९२८

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखिकाने कन्या गुरुकुलकी छात्राओंकी ओरसे एक हुंडी भेजी थी। छात्राओंने एक मासतक फल और मिठाईका त्याग करके यह रकम जमा की थी।

१९८. हमारी जड़ता

एक युवक लिखता है:

> **हमारे शहरमें लगभग एक हजार जैन बसते हैं। इनमें १५० विधवाएँ और २५० कुँआरे हैं। ४० कुँआरे तो ४० से ६० वर्ष तकके होंगे। हजारों रुपये खर्च करके ही वे अपना विवाह कर सकते हैं। कन्या प्राप्त करनेके लिए पाँचसे बीस हजार रुपयेतक खर्च करने पड़ते हैं। इससे दुराचार बढ़ता है। जैन साधु इन मामलोंमें कुछ भी नहीं करते। कहनेपर जवाब देते हैं— "यह तो संसारी काम है। इसमें पड़ना महावीरजीकी आज्ञाका उल्लंघन करना होगा।" क्या आप इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखेंगे?**

एक दूसरे पाठक लिखते हैं:

> **मेरे एक मित्र लगभग ४२ वर्षकी उम्रके हैं। विवाहित हैं, किन्तु उनके सन्तान नहीं है। इसलिए फिर विवाह करना चाहते हैं और बारह-चौदह वर्षकी किसी कन्याका जीवन बरबाद करना चाहते हैं। यह मोह कैसे दूर किया जाये?**

ये दोनों पत्र मैंने साथ ले लिये हैं; क्योंकि दोनों स्थितियोंके मूलमें हमारी जड़ता छिपी हुई है। कितने ही लोग मानते हैं कि जो चल रहा है, वह ठीक ही है। उसके औचित्य-अनौचित्यके बारेमें विचार करनेकी हमें कोई जरूरत नहीं है और रूढ़ प्रथाके विषयमें शंका उठाना पाप है। इस वृत्तिमें जब विषय-वृत्ति मिल जाये, तो फिर वह कुप्रथा अच्छी मानी जाने लगती है। ऐसी दयनीय स्थितिसे निकलनेके लिए युवक वर्गमें बहुत शक्ति और शक्तिके साथ शुद्धिकी आवश्यकता होती है। वे अपनी तपश्चर्या, अपने सत्याग्रहसे लोकमत तैयार कर सकते हैं और विषयासक्त व्यक्तियोंको शर्मिन्दा कर सकते हैं। जैन-जैसी छोटी बिरादरीके लिए और भी छोटे बने रहनेकी कोई जरूरत नहीं है। जैन युवकोंको जैनेतर कन्याओंके साथ विवाह करनेका आग्रह करना चाहिए। जैन प्रायः वणिक-वर्गके ही हैं या वैश्य-वर्गके हैं। उन्हें अपना वर्ग बदलनेकी जरूरत नहीं। वैश्य-वर्गके करोड़ों आदमी भारतवर्षमें हैं और उनमें से योग्य वरको कन्या मिलनेमें देर नहीं लग सकती। ऐसे वरको एक कौड़ी भी न लेने-देनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। फिर उक्त नगरकी १५० विधवा बहनोंमें से, जो बाल-विधवाएँ हों, उनके साथ विवाह करनेके लिए जैन युवकोंको अपनी तत्परता दिखानी चाहिए। इतना ही नहीं, किन्तु ऐसी किसी विधवाके बजाय यथा-सम्भव कुँआरी कन्याको ढूँढ़नेका प्रयत्न न करना ही इष्ट है।

जैन और दूसरे साधुओं अथवा धर्म-गुरुओंसे फिलहाल बहुत आशा करना मैं बेकार मानता हूँ। उनके सामने भी पेटका विकट प्रश्न है अथवा उन्होंने उसे विकट प्रश्न बना डाला है। इसलिए लोकमतके विरुद्ध जाकर सुधार करनेकी सलाह वे एकाएक

नहीं देते। कुछ लोग अपवाद-रूपमें सुधार करनेके लिए प्रयत्नशील हैं; लोग उनकी बात सुननेको तैयार नहीं होते। सुधार करनेवाले साधुओंमें इतना चरित्रबल नहीं होता कि उनका प्रभाव लोगों पर पड़े। यह सच है कि यदि इस साधु-वर्गका उद्धार हो तो इनके जरिये दूसरोंका उद्धार होगा। किन्तु उस वर्गमें आज साधुके बदले असाधु व्यक्ति घुसे हुए हैं और बहुत-से तो धर्मके नामपर अधर्म या अन्ध-विश्वासका प्रचार करते हैं।

उम्र ४२ वर्षके आदमीको, जो एक पत्नीकी जीवितावस्थामें दूसरीसे विवाह करना चाहता है, समझानेका काम मुश्किल है। उसे कौन समझाये कि सन्तति-जनन धर्म नहीं है। मनुष्यका धर्म एक स्त्रीसे सन्तुष्ट रहना है। पुत्रकी उम्रके जितने बालक दिखलाई पड़ें, उन्हें पुत्र माननेकी भावना पैदा करनी चाहिए। हिन्दुस्तानके समान दरिद्र देशमें तो अनेकों बालक माँ-बापके बिना मारे-मारे फिरते हैं। ऐसी स्थितिमें बिना पुत्रवाले अगर ऐसे एक-एक बालकको अपनाकर पालें-पोसें, तो वे पुण्य कर्म करेंगे और विषय-भोगमें लिप्त हुए बिना पुत्र पानेका लाभ उठायेंगे। दत्तक लेनेकी प्रथा हिन्दू धर्ममें प्रचलित और प्रसिद्ध है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-८-१९२८

१९९. यंत्रोंका उपयोग

स्वर्गीय मगनलालने मुझे बहुत-से समाजोपयोगी पत्र लिखे थे। किन्तु अपने स्वभावानुसार मैं उन्हें फाड़ डालता था। मैंने यह सोचा ही नहीं था कि वे मुझसे पहले ही चले जायेंगे। उनके देहावसानके कोई १५ दिन पहलेका लिखा हुआ एक पत्र बचा रह गया है। उसका उपयोगी भाग मैं नीचे देता हूँ:[1]

इन दोनों बातोंकी आलोचना विचार करने लायक है। हमें चाहे जिस प्रदर्शनीमें कूद पड़नेकी आवश्यकता नहीं है। प्रदर्शनीमें आनेवाली प्रत्येक चीजके बारेमें ज्ञान और विवेकबुद्धि होनेपर ही लोग उसका सदुपयोग करेंगे। पूरी जानकारी प्राप्त किये बिना अपने कुछ पुराने घरेलू यन्त्रोंको त्याग देनेसे हमारा कितना नुकसान हुआ है, इसका हिसाब कौन लगा सकता है? जैसे यह कहना एक बेहूदी बात मानी जायेगी कि पुराना सभी-कुछ अच्छा था, उसी तरह यह कहना भी बहुत बुरा है कि पुराना सभी-कुछ बेकार है। यन्त्रका विरोध कोई नहीं करता। विरोध तो यन्त्रके दुरुपयोग, अति उपयोगका है। चेतन शक्तिसे चलनेवाले यन्त्रोंपर १५ प्रतिशत चुंगी और जड़ शक्तिसे चलनेवाले यन्त्रोंपर चुंगी ५ प्रतिशत है, यह मुझे तो मालूम था ही नहीं; बहुतसे पाठकोंको भी यह बात मालूम न होगी। किन्तु इस पक्षपातके ज्ञानसे

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें कृषि प्रदर्शनियोंमें बेचे जानेवाले औजारों तथा यन्त्रोंकी उपयोगिता पर सन्देह प्रकट किया गया था और उनपर कम चुंगी लगानेकी सरकारी नीतिकी आलोचना की गई थी।

आश्चर्य नहीं होता। क्योंकि सरकारके हर काममें भेदनीति नजर आनेपर ही मुझे असहयोग सूझा था।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-८-१९२८

२००. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

बारडोली

१२ अगस्त, १९२८

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। पत्रोंकी नीरसताके बारेमें अब और अधिक नहीं लिखता।

सुशीलाने सुदामाके बारेमें जो प्रश्न पूछा है उसका उत्तर यह है। सुदामा नामक कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था या नहीं इस बारेमें हम कुछ नहीं जानते। 'भागवत' में सुदामाके बारेमें क्या कहा गया है वह मुझे याद नही आता। नरसिंह मेहता और प्रेमानन्दने जो लिखा है हम तो सिर्फ उतना ही जानते हैं। दोनोंकी कथाएँ काल्पनिक हैं। इन कवियोंको जैसा उचित जान पड़ा उन्होंने ये चित्र वैसे ही उरेहे हैं। इसलिए इन कथाओंके हर शब्दको पकड़कर हम प्रसंग-विशेषके औचित्य-अनौचित्यका निर्णय नही कर सकते। मुझे तो पति-पत्नी दोनोंका ही चरित्र-चित्रण अच्छा लगता है। भक्तिकी महिमा दरसानेके लिए इन काव्योंकी रचना हुई है। इनमें स्त्रीको घर-गृहस्थी को सुशोभित करनेवाली, उसकी रक्षा और चिन्ता करनेवालीके रूपमें चित्रित किया गया है। सुदामा भक्तिवश अपना काम जैसे-तैसे चला लेता था। किन्तु स्त्रीको बाल-बच्चोंको पालन-पोसना है अतः वह विरक्त सुदामाको चेताती है। भक्त स्वार्थकी दृष्टिसे कुछ माँग ही नहीं सकता, इसलिए सुदामा माँगनेमें संकोच करता है। हालाँकि सुदामाका माँगना स्वार्थपूर्ण लगता है किन्तु वास्तवमें वह निःस्वार्थ ही है। अपनी पत्नी द्वारा प्रेरित किये जानेपर वह उदासीन भावसे कृष्णके पास पहुँचता है और वापस लौट आता है। इसलिए हमें तो इस कथासे भक्तिका रस पान करना है। इस काव्यके द्वारा हम ऐसे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकते कि स्त्री-पुरुष दोनोंमें कैसा सम्बन्ध होना चाहिए। इसके लिए तो हम अपनी बुद्धिका उपयोग करें और जो उचित हो वही करें। प्राचीन दृष्टान्तोंको लेकर उन्हें आधुनिक बुद्धिके चौखटेमें बैठानेका प्रयत्न करना न सिर्फ निरर्थक और अनावश्यक है बल्कि ऐसा करना कभी-कभी हानिकर भी होता है। हमें अपने आधुनिक आचार-व्यवहारका निश्चय नीतिके सिद्धान्तोंके अनुसार स्वतन्त्र रूपसे करना चाहिए।

शास्त्रीजीके[1] बारेमें मणिलाल अपने ढंगसे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करता है, यह मुझे अच्छा तो लगता है किन्तु मुझे उसमें एक भूल नजर आती है। प्रत्येक व्यक्तिको मापनेका एक अलग पैमाना होता है। यदि हम हाथीके पैमानेसे घोड़ेको मापेंगे तो

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री।

दोनोंके प्रति अन्याय होगा। अपने-अपने क्षेत्रमें दोनों ही अच्छे या बुरे हो सकते हैं। घोड़ेको घोड़ेके पैमानेसे और हाथीको हाथीके पैमानेसे मापनेपर जो अनुत्तीर्ण होगा उसे अनुत्तीर्ण माना जायेगा। इसी प्रकार यदि हम शास्त्रीजी को सत्याग्रहके पैमानेसे मापेंगे तो यह उनके साथ अन्याय करना होगा। वे सरकारकी सेवा करते हुए भी जनताकी कितनी सेवा करते हैं यदि हम इसका हिसाब लगाने बैठें तो हमें पता चल जायेगा कि इस क्षेत्रमें वे अद्वितीय हैं। और फिर कही वे सत्याग्रहके मैदानमें कूद पड़ें तो इसमें भी वे अद्वितीय सिद्ध होंगे। मैं मानता हूँ कि शास्त्रीजी-जितना सन्तोष ईमानदारीके साथ अन्य कोई नही दे सकता। मेरी रायमें तो वे जो-कुछ करते हैं वह शुद्ध अन्तःकरणसे करते है।

शास्त्रीजी द्वारा मुझे पता चला है कि अब सुशीला अच्छी अंग्रेजी बोलने लगी है। तुमसे सम्बन्धित इस प्रकारकी खबरें मैं तुम्हीसे पानेकी आशा रखता हूँ।

बारडोलीके बारेमें समझौता हो चुका है, अतः मैं अब आश्रम वापस लौट रहा हूँ। बा और महादेव मेरे साथ है। सुब्बैया बादमें आ गया था। प्यारेलाल, रामदास और रसिक तो यहाँ पहलेसे ही थे। उन्हें क्या करना है, इसका निश्चय अब होगा। देवदास जामिया मिलिया, दिल्लीमें है। प्रभुदास अलमोड़ामें है। आश्रममें एक सम्मिलित भोजनालय चलानेका हालमें ही निर्णय किया गया है। इसलिए अब अलग खाना बनानेवाले बहुत कम लोग रह गये है। नया वर्ष आरम्भ होनेके पहले-पहले वे भी अलग खाना बनाना बन्द कर देंगे। फिलहाल संयुक्त भोजनालयमें १४० व्यक्ति भोजन करते है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७४२) की फोटो-नकलसे।

२०१. भाषण : बारडोलीमें – १[1]

[१२ अगस्त, १९२८][2]

सभाके कार्यका आरम्भ हमने ईश्वर-भजनसे किया है। हमें यह चेतावनी मिल चुकी है कि विजयका गर्व नहीं करना चाहिए। किन्तु केवल इतना ही काफी नहीं है। यह कहना भी काफी नही है कि बारडोलीके भाई-बहनोंने अपने पराक्रमसे यश प्राप्त किया है। वल्लभभाई-जैसे नेताके अथक प्रयत्नोंसे हमें यह विजय मिली है, यह बात सही है, पर यह भी काफी नहीं है। उन्हें वफादार, परिश्रमी और सच्चे साथी न मिले होते तो यह विजय हमें नहीं मिल सकती थी। लेकिन इतना कहना भी काफी नही है।

सत्याग्रहका नियम है कि हम किसीको अपना शत्रु न मानें। लेकिन ऐसे भी मनुष्य होते हैं जिन्हें हम स्वयं शत्रु न मानें किन्तु जो हमें शत्रु ही मानते हैं और

१. यह और अगला भाषण, दोनों 'अमृतवाणी' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुए थे। यह भाषण आम सभामें दिया गया था।

२. **यंग इंडिया**, १३-९-१९२८ के अनुसार।

अपनेको हमारा शत्रु ही बताते हैं। हम ऐसे लोगोंका नाश नहीं चाहते, हृदय-परिवर्तन चाहते हैं।

सरदारने तुम्हें और सरकारको कई बार यह कहा होगा कि जबतक सरकारी अधिकारियोंका हृदय-परिवर्तन नहीं होता तबतक समझौता होना सम्भव नही है। अब समझौता हो गया है तो हृदय-परिवर्तन भी कही-न-कहीं हुआ ही होगा। सत्याग्रहीको सपनेमें भी यह गर्व नहीं करना चाहिए कि उसने कोई सफलता अपने बलपर पाई है। सत्याग्रही तो अपनेको शून्य मानता है। सत्याग्रहीको तो केवल ईश्वरका बल होता है। वह तो सदा 'निर्बलके बल राम' की रट लगाता है। सत्याग्रही अपने बलका अभिमान छोड़ दे तभी ईश्वर उसकी मदद करता है। यदि कहीं हृदय-परिवर्तन घटित हुआ है तो उसके लिए हमें ईश्वरका आभार मानना चाहिए। लेकिन यह भी काफी नहीं है।

हमें मानना चाहिए कि यह हृदय-परिवर्तन गवर्नर साहबका हुआ है। यदि उनका हृदय-परिवर्तन न हुआ होता तो क्या होता? जो भी होता उसका हमें तो कोई दुःख न होता। हमने तो प्रतिज्ञा ली थी कि सरकार भले गोलियाँ चलाये हम डरेंगे नहीं। अगर आज हम विजयका उत्सव मना रहे हैं और खुश हो रहे हैं तो हमारा ऐसा करना क्षम्य है। परन्तु इसके साथ ही मैं तुम्हें यह समझाना चाहता हूँ कि इसका श्रेय गवर्नर साहबको है। विधान सभाके अपने भाषणमें उन्होंने जो अकड़ दिखाई थी यदि वे उसीपर कायम रहते, यदि वे झुकते नही, यदि उन्होंने बारडोलीके किसानोंको गोलीसे उड़ा देनेकी ठान ली होती तो वे वैसा कर सकते थे। तुम्हारी तो प्रतिज्ञा थी कि वे मारने आयेंगे तो भी तुम उनके खिलाफ हाथ नहीं उठाओगे। न तो अपना हाथ उठाओगे और न पीठ ही दिखाओगे, ऐसी तुम्हारी प्रतिज्ञा थी। इसलिए यदि गवर्नर साहबने चाहा होता तो वे बारडोली को धूलमें मिला सकते थे। ऐसा होता तो भी बारडोलीकी ही जीत होती। किन्तु वह जीत अन्य प्रकारकी होती। उस जीतको मनानेके लिए हम तो नही होते किन्तु सारा भारत और सारा जगत् उस जीतका जय-जयकार करता। किन्तु किसीका हृदय इतना कठोर हो, यह कामना हम नहीं कर सकते, सरकारी अधिकारियोंके लिए भी हम ऐसी कामना नहीं कर सकते। बारडोली ताल्लुकेकी इस विशाल सभामें, जहाँ सन् १९२१ की महान् प्रतिज्ञा[१] लेनेवाले आप लोग इकट्ठे हुए हैं, हम इस बातको न भूलें। मैंने यह सारी भूमिका इसलिए बाँधी है कि हममें कही अभिमान छिपा हो तो उसे हम अपने हृदयसे निकाल दें।

मैं तो दूर बैठा हुआ तुम्हारी विजयकी कामना कर रहा था; यहाँ आकर तुम्हारे बीच मैंने कोई काम नहीं किया। वैसे, मैं वल्लभभाईके आधीन था और वे मुझे जिस समय चाहते बुला सकते थे। किन्तु तुम्हारी इस विजयका यश मैं नहीं ले सकता। यह विजय तो तुम्हारी और तुम्हारे सरदारकी ही है। और उसमें गवर्नरका भी हिस्सा है और यदि उसमें उनका हिस्सा हम मानते हैं तो सरकारी

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ १०७।

अधिकारियोंका, विधान-सभाके सदस्यों आदिका भी है ही। जिन्होंने भी शुद्ध हृदयमे यह चाहा हो कि लड़ाईमें समझौता हो जाना चाहिए, हमें इस विजयमें उन सबका हिस्सा मानना चाहिए। हम ईश्वरका आभार तो मानते ही हैं। किन्तु ईश्वर तो अलिप्त रहकर अपना कार्य हम मिट्टीके पुतलोंको निमित्त बनाकर करा लेता है। इसलिए हम इस विजयका श्रेय उन सब लोगोंको बाँटें जिन्होंने इसमें अपना योग दिया है। इसके बाद हमारे लिए थोड़ा-सा ही बच रहेगा और वही ठीक है।

यह तो अभी तुम्हारी प्रतिज्ञाके पूर्वार्धका ही पालन हुआ है। उसके उत्तरार्धको पूरा करना अभी बाकी है। सरकारसे हमें जो लेना था वह हम ले चुके हैं। और वह अपना काम कर चुकी है तो अब तुम्हें अपना पुराना बकाया भूमि-कर तुरन्त दे देना चाहिए। वह तुम जल्दी ही चुका देना। इसके सिवा जिन लोगोंने हमारा विरोध किया था उनसे अब तुम मित्रताका सम्बन्ध बना लेना। जो पुराने अधिकारी अभी इस ताल्लुकेमें रह गये हों उनसे भी तुम मित्रता कर लेना। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो कहा जायेगा कि तुमने अपनी प्रतिज्ञाका भंग किया है। अपनी प्रतिज्ञाके पहले भागकी पूर्तिके लिए हमें सरकारके पास जानेकी आवश्यकता थी, किन्तु उसका उत्तरार्ध तो हमें स्वयं ही सिद्ध करना है। हमारे हृदयमें किसीके लिए भी बुरा भाव न हो, क्रोध न हो — अपनी प्रतिज्ञाके इस शेषांशको अभी हमें सिद्ध करना है। अब हम जरा और आगे बढ़ें। यह प्रतिज्ञा तो हमारी एक नई और छोटी-सी प्रतिज्ञा है। यह समुद्रमें बूँद-जैसी है। सन् १९२२ मे इस ताल्लुकेमें हमने जो प्रतिज्ञा ली थी वह एक भीषण प्रतिज्ञा थी। वह भीषण प्रतिज्ञा आज भी बाकी है। अभी हमने जो किया है वह तो गोया उस प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिए ली गई तालीम है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ और तुमसे अनुरोध करता हूँ कि अब तुम उस महा-प्रतिज्ञाका पालन करो।

जिस नेताके नेतृत्वमें तुमने इस प्रतिज्ञाका ऐसा सुन्दर पालन किया है उसी नेताकी आज्ञाका अनुसरण करते हुए तुम अपना यह बाकी काम भी करो। ऐसा स्वार्थत्यागी सरदार तुम्हें दूसरा नही मिलेगा। वे मेरे सगे भाई जैसे है, किन्तु उन्हें यह प्रमाणपत्र देते हुए मुझे संकोच नहीं होता।

अपनी छाती पर गोली झेलनेको मैं बहुत कठिन नहीं मानता। किन्तु रोज काम करना, अपने साथ प्रतिक्षण लड़ना और आत्मशुद्धि करना बहुत कठिन है। दो भिन्न प्रकारके लोग गोली खा सकते हैं। उनके गोली खानेमें भेद है। अपराधी, अपराध करके, गोली खाता है किन्तु क्या उससे स्वराज्य मिलता है? आत्मशुद्धि करके जो गोली खाता है उसका गोली खाना ही स्वराज्यकी प्राप्ति करा सकता है। और यह बहुत मुश्किल काम है। जिसके पास खानेको अन्न नहीं, पीनेको पानी नहीं, पहननेको कपड़ा नही है, उसे खाने-पीनेकी सुविधा जुटा देना, उसे उद्यम देना, उसे कपड़ा देना — इस कार्यमें अपना योग देना, यह एक मुश्किल काम है। उत्कल-वासियोंकी हालत कितनी बुरी है, यह तुममें से अधिकांश भाई-बहन नही जानते। उनके शरीरमें बस हड्डियाँ-ही-हड्डियाँ रह गई हैं, यह बात मैने खासकर बहनोंसे कई बार कही है। यदि वह सब बात मैं तुम लोगोंको सुनाने लगूँ तो तुम्हारी और

मेरी आँखोंसे आँसू झरने लगें। तुम्हें शायद इसमें अतिशयोक्ति मालूम होती होगी किन्तु तुम्हें मैं वहाँ ले जाऊँ तो तुम उनकी यह दीन दशा अपनी आँखों देख सकते हो। उनकी हड्डियोंपर मांस चढ़ाना एक कठिन काम है, किन्तु हमने इस कठिन कामको करनेकी प्रतिज्ञा की है।

तुम जबतक इस प्रतिज्ञाका पालन नही करते तबतक ऐसा समझना कि तुम्हारे सिरका ऋण उतरा नहीं है। ईश्वर तुम्हें और हमें इस ऋणको चुकानेकी सन्मति और शक्ति दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-८-१९२८

२०२. भाषण : बारडोलीमें – २[1]

१२ अगस्त, १९२८

अनपाली प्रतिज्ञा

मै तुम्हें एक बातकी याद दिलाना चाहता हूँ। सन् १९२२ में काफी सोच-विचारके बाद हमने जो प्रतिज्ञा[2] ली थी वह आज भी कायम है। वह प्रतिज्ञा हमने केवल एक ही बार नहीं ली थी, उसे हमने अनेक बार दोहराया और इस प्रकार पक्का किया था। वाइसरायको जो पत्र लिखा था, उसे हमने वापस ले लिया किन्तु उसके साथ अपनी इस प्रतिज्ञाको हमने वापस नही लिया था। लोगोंके साथ सलाह-मशविरा करनेके बाद इस प्रतिज्ञाका पालन करनेकी दृष्टिसे आपके इस ताल्लुकेमें हमने संगठनकी रचना की। बारडोलीमें आज जो रचनात्मक कार्य हो रहा है, उसकी उत्पत्तिकी यह कहानी है। यह काम यहाँ बिना-किसी बाधाके या आसानीसे नही होता रहा है। स्वयंसेवकोंको अनेक विपत्तियोंसे गुजरना पड़ा। भाई नरहरिको[3] एकबार प्रसंगवश उपवास करना पड़ा था। यह तो एक ऐतिहासिक घटना है। किन्तु आज मै उसकी चर्चा नहीं करना चाहता। जबतक उस प्रतिज्ञाका पालन नही होता तबतक कोई भी निश्चिन्त होकर नहीं बैठ सकता।

इसलिए यद्यपि आप लोग यहाँ उत्सव मनानेके लिए इकट्ठा हुए हैं तथापि आप इस उत्सवका उपयोग आत्मनिरीक्षणके लिए कीजिए ताकि आप अपने कर्त्तव्यको भूलें नहीं। स्वयंसेवकोंको तो अपने उत्सवका दिन इसी तरह मनाना चाहिए। जो विजय हमें प्राप्त हुई है, वह समुद्रमें एक बिन्दु-मात्र है। जहाँ ऐसा नेतृत्व हो और जहाँ नियमका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले स्वयंसेवक हों, वहाँ ऐसी विजय प्राप्त कर लेना कोई कठिन चीज नही है। इस संघर्षमें हम सरकारसे उसकी सत्ता नहीं हथियाना चाहते थे। हमने तो केवल चन्द अन्यायोंके सम्बन्धमें न्यायकी माँग की

१. स्वयंसेवकोंके समक्ष।

२. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३०२-९।

३. नरहरि परीख; जिस गाँवमें वे काम करते थे उस गाँवके निवासियोंका व्यवहार दुबला लोगोंके प्रति क्रूरतापूर्ण था इसलिए उन्होंने उपवास किया था।

थी। मेरा विश्वास है कि ऐसा न्याय सत्याग्रहके द्वारा जितनी आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है उतनी आसानीसे किसी अन्य रीतिसे नही प्राप्त किया जा सकता।

सत्याग्रहका प्रताप

हमारी इस लड़ाईकी सफलतासे देशको कुछ आश्चर्य हुआ है। किन्तु आश्चर्य होनेका कोई कारण नहीं है। देशको आश्चर्य इसलिए हुआ कि सत्याग्रहसे उसका विश्वास डिग गया था। भारतके पास सत्याग्रहकी शक्तिका इतना बड़ा कोई दूसरा उदाहरण नही था। बोरसद और नागपुरके उदाहरण थे तो सही और यद्यपि मैंने किसी जगह यह बात कही नहीं है तथापि हमारी नागपुरकी विजय भी सम्पूर्ण विजय थी। हमारे सौभाग्य या दुर्भाग्यसे उस समय हमारे पास 'टाइम्स ऑफ इंडिया'के प्रतिनिधि-जैसा हमारा विज्ञापन करनेवाला कोई नहीं था। उसने हमारी जो निन्दा की उसके कारण, भारतमें ही नहीं सारी दुनियामें, बारडोलीकी प्रसिद्धि हो गई। अन्यथा हमने ऐसा कोई बहुत बड़ा काम नहीं किया था। बड़ा काम तो तब कहा जायेगा जब हम १९२१ की अपनी अधूरी रह गई प्रतिज्ञाका पालन करेंगे। जबतक हम वैसा नही कर पाते तबतक बारडोलीपर उसको पूरा करनेका उत्तरदायित्व रहेगा। मै अभी ऐसा कहना चाहता था कि इस प्रतिज्ञाका पालन करनेके बाद ही बारडोलीपर लगा हुआ कलंक दूर होगा। किन्तु उस शब्दका प्रयोग मैंने नही किया। हम इसे कलंक नही कह सकते, क्योंकि बारडोलीमें हम जो नहीं कर सके है उसे हम बारडोलीके बाहर भी कही नहीं कर सके है। अस्तु, इसे हम उत्तरदायित्व उठाना कहें या कलंक धोना, उसका समय अभी आना शेष है। अपने उस कर्त्तव्यको पूरा करनेमें हमारी यह लड़ाई सहायक सिद्ध होगी। इसीलिए मैं इसका स्वागत करता हूँ।

पूर्ण विजय

यह हमारा सौभाग्य है कि ऐसी लड़ाई लड़नेका अवसर हमें बारडोलीमें प्राप्त हुआ और हमें उसमें पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई। हमने जो माँगा था वह हमें पूरा सोलह आने मिल गया। अपनी माँगमें हमने जो शर्तें रखी थीं, उनसे ज्यादा शर्तें भी हम रख सकते थे। जांचकी शर्तोमें हम कह सकते थे कि करकी वसूलीमें जो-जो अन्याय किये गये हैं उनकी जाँच होनी चाहिए। किन्तु हमने यह माँग नही की। यह वल्लभभाईकी उदारता है। सत्याग्रहीको मूल वस्तु मिल जाये तो उसे सन्तोष हो जाता है। फिर वह और लोभ या आग्रह नहीं रखता।

अब क्या करना चाहिए?

तो अब हमें क्या करना है? हम इस उत्सवको आत्मनिरीक्षणका अवसर बनायें। जो स्वयंसेवक केवल इस लड़ाईके लिए आये थे और लड़ाई समाप्त होते ही जाना चाहते थे, वे जरूर चले जायें। किन्तु जिन्हें जानेकी जरूरत न हो, जिनपर वल्लभभाईकी आँख लगी हो वे यहीं रह जाएँ और ऐसा समझें कि यही काम करने योग्य है। इस काममें उनकी योग्यताकी परीक्षा हो जायेगी।

लड़नेवाले हमेशा लड़ते नहीं रहते

जो लोग ऐसा समझते हैं कि हिन्दुस्तानका स्वराज्य लड़कर ही लिया जा सकेगा, उनसे मैं कहना चाहता हूँ कि वे भ्रममें हैं। हिंसक लड़ाईमें भी लड़नेवाले हमेशा युद्धका ही विचार नहीं करते रहते। यदि कोई समझता हो कि वे युद्धका ही विचार करते रहते हैं तो यह उसकी भूल है। गैरीबाल्डी इटलीका एक महान् सेनापति हो गया है। युद्धमें उसने बहुत बहादुरी दिखाई थी। किन्तु जिस समय युद्ध नहीं हो रहा होता था उस समय वह हल चलाता था और खेती करता था। दक्षिण आफ्रिकाका जनरल बोथा कौन था? वह बारडोलीके किसानों-जैसा एक किसान था। उसके पास चालीस हजार भेड़ें थी। भेड़ोंकी उसको इतनी अच्छी पहचान थी कि जितनी किसी गड़रियेको भी नहीं हो सकती। इस विद्यामें उसने पेरिसकी परीक्षा पास की थी। योद्धाकी तरह उसने बहुत नाम कमाया। किन्तु युद्धके प्रसंग तो उसके जीवनमें बहुत कम थे। जीवनका अधिक भाग तो उसने रचनात्मक कामोंमें ही बिताया था। इतना बड़ा धन्धा चलानेवाले में कितना अधिक रचना-कौशल रहा होगा। अब जनरल स्मट्सका उदाहरण लें। वह सिर्फ अच्छा सेनापति ही नहीं है। धन्धेसे वह वकील है। किसी समय वह अटर्नी जनरल था और साथ ही कुशल किसान भी था। प्रिटोरियाके पास ही उनकी विशाल जमीदारी है। और वहाँ वे जितनी सुन्दर खेती-बाड़ी करते हैं उतनी उस प्रदेशमें दूसरा शायद ही कोई करता हो। ये ऐसे व्यक्तियोंके उदाहरण हैं जो जगत्-प्रसिद्ध सेनापति थे और फिर भी जो रचनात्मक कार्यके लाभको अच्छी तरह समझते थे।

यह समृद्धि दक्षिण आफ्रिकामें आरम्भसे नहीं थी। वहाँ तो हबशी लोग रहते थे। बादमें नये लोगोंने आकर उस देशको समृद्ध किया। लेकिन क्या उन लोगोंने उसे लड़ाई लड़कर समृद्ध किया? लड़ाईके द्वारा देश जीता जा सकता है, किन्तु उसे समृद्ध तो रचनात्मक कार्यके द्वारा ही किया जा सकता है। तुम लोगोंने लड़ाईमें वल्लभभाईका नेतृत्व स्वीकार किया। क्या अब आप रचनात्मक कार्यमें उनका नेतृत्व स्वीकार कर सकेंगे? यदि आप यह नही कर सके तो याद रखें कि आपकी सारी कमाई धूलमें मिलनेवाली है। फिर बारडोलीके किसानोंका एक लाख रुपया बच भी गया तो क्या और न भी बचा तो क्या?

सफाई और दुरुस्ती

बारडोली गाँवके रास्तोंको जरा देखो। यहाँ रहनेवाले स्वयंसेवकोंके लिए उनको साफ करना एक-दो दिनका काम है। उसके बाद तो लोगोंको रोज आधा घंटा देकर सिखलाया जाय तो भी काफी होगा। तुम पूछोगे कि स्वराज्यके साथ इसका क्या सम्बन्ध है? मैं कहता हूँ कि बहुत निकटका सम्बन्ध है। अंग्रेजोंके साथ सिर्फ लड़ने से ही स्वराज्य नही आनेवाला है। जहाँ वे हमारी स्वतन्त्रतामें बाधक हों, वहाँ हम उनसे लड़ें किन्तु हमें क्या जंगलियोंका स्वराज्य लेना है कि अंग्रेजोंकी पीठ फिरते ही हम जहाँ चाहें रहें, जहाँ चाहें गन्दगी किया करें? कल ही हम वालोडसे[1] बारडोली

१. १३-९-१९२८ के **यंग इंडिया**में यहाँ 'वाँकानेर' है।

तक मोटरमें आये। ऐसे रास्तेमें मेरे समान निर्बल आदमी तो थक ही जायेगा न? मगर इसमें कसूर किसका है? इसमें केवल सरकारका ही दोष नहीं निकालना चाहिए। उसमें हमारा भी दोष है ही। गुजरातके समान ही चम्पारनकी भी स्थिति थी और वहाँ स्वयंसेवकोंने रास्ता दुरुस्त किया था। मैं यह नहीं कहना चाहता कि चूँकि कल मुझे उस रास्ते जाना पड़ा था, इसलिए मैं यह शिकायत करता हूँ। किन्तु रास्तेको हमें ही सदा साफ रखना चाहिए। यह करनेका फर्ज भले ही सरकारका हो, किन्तु यदि हम यह सेवा करना चाहेंगे तो सरकार इसमें हमारे आड़े नहीं आयेगी।

यहाँ शिविरोंमें जो सत्याग्रही रह रहे हैं उन्होंने आरोग्यके नियमोंका कितना प्रचार किया है? इसमें छूत-अछूतका प्रश्न नहीं है। यहाँ तो प्रश्न यह है कि जिनके साथ हम रहते हैं, उनके साथ हमारी कितनी सहानुभूति है? अगर हम सिर्फ अपने आसपासकी ही जमीन साफ रखकर सन्तोष मान ले, तो स्वराज्य नहीं ले सकेंगे। जब लोगोंकी ओरसे इतना सहकार और अनुकूलता है, तो इस भूमिको सुवर्णभूमि बनाया जा सकता है। यहाँकी काली मिट्टी सोनेके जैसी तो है ही। अगर इसके रास्ते हम साफ रखें तो साँप, बिच्छू आदिकी जो शिकायत सुननेमें आती है, वह सदाके लिए मिट जायेगी। मैं तुम्हें समझाना चाहता हूँ कि यह काम स्वराज्यका ही एक अंग है।

मद्य-निषेध

इसी तरह शराबके प्रश्नको भी हाथमें लेना हमारा धर्म है। इसमें सरकार भला क्या कर सकती है? वह बहुत हुआ तो इतना ही कर सकती है कि भट्टी-वालेको शराबका ठेका न दे। किन्तु लोगोंको पीनेकी जो आदत पड़ी हुई है, उसे सरकार कैसे सुधार सकती है? जिस दिन सरकार २५ करोड़की आमदनी छोड़नेकी हिम्मत दिखलानेको तैयार होगी, उस दिन भी लोगोंके पास उनसे शराब छुड़वानेके लिए फूलचन्दभाईकी भजन-मण्डलीको ही जाना होगा। इस तरह लोगोंकी चोट अपने माथे सहनेको हम तैयार होंगे? जहाँ हिन्दू और मुसलमान परस्पर गला काटनेको तैयार हों, क्या वहाँ तुम छातीपर गोलियोंकी बाढ़ सहोगे? इसके विरुद्ध भी ऐसा ही शुद्ध सत्याग्रह कर सकोगे? १९२१ में हमने शराबकी दुकानों पर पहरे बैठाये थे। मगर हमारे ही लोगोंने, जो खुद शराब पीनेवाले थे, दूसरों पर जुल्म किया, जिससे वह बन्द करना पड़ा था।[1]

हिन्दू-मुस्लिम एकता[2]

और क्या आप हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेके लिए अपने प्राणोंकी बलि चढ़ा देनेको तैयार हैं? जब साम्प्रदायिकताकी आग भड़क उठेगी और लोग अपना आपा खो बैठेंगे तब क्या आप अपना मन शान्त रखकर शुद्ध सत्याग्रह कर सकेंगे?

१. १७ नवम्बरको बम्बईमें, प्रिंस ऑफ वेल्सके दौरेके समय।
२. यह १३-९-१९२८ के **यंग इंडिया**से लिया गया है।

चरखा-शास्त्री बनो

इसके बाद हम चरखे पर आयें। क्या चरखेपर तुम्हें इतनी श्रद्धा है कि तुम्हें इस बातका विश्वास हो कि अगर चरखा न होता तो यह लड़ाई शक्य ही नहीं होती? अगर तुमने यह वस्तु समझी हो कि रानीपरजमें हमारे स्वयंसेवकोंने चरखेके द्वारा उनपर अच्छी छाप डाली थी और उनकी प्रीति प्राप्त की थी, तो क्या तुम चरखा-शास्त्री बननेको तैयार होगे? राम या अल्लाहका नाम लेते हुए क्या शान्ति से चुपचाप चरखेका काम करोगे? आज सारे देशमें तकुवा सुधारनेवाले छः या सात आदमी ही होंगे। तकुआ बिलकुल सीधा होना चाहिए, यह शोध चरखा-युगके आरम्भमें ही हो चुकी थी। मैसूर राज्यकी ओरसे खादीका काम हो रहा है। उन्होंने भी सीधे तकुए बनानेका प्रयत्न कर देखा है। वहाँसे भी नमूने आये, पर सभी लौटा देने पड़े। लक्ष्मीदास सीधे तकुएके लिए जर्मनीसे पत्र-व्यवहार कर रहे हैं। अगर हर आदमी इसमें दिलचस्पी लेने लगे तो सभी इसे अपने-आप ही कर ले सकते हैं। अगर हर आदमीको तकुआ सीधा करना आ जाये तो हमारा काम कितना सरल हो जाये? चरखेके काममें ऐसी जो दो-चार उलझनें है, वे सुलझाई जा सकें तो आज चरखेके जरिये बहुत अधिक काम किया जा सकता है। क्या इस काममें सरदार तुम्हारी दिलचस्पी पैदा कर सकेंगे? अथवा तुम कहोगे कि वल्लभभाई ऐसा कोई काम करनेको नहीं कहते, यह तो साबरमतीवाला ही अपना राग अलापता रहता है? मगर उसे दूसरा कुछ न आये तो वह और करे भी क्या?

दलित-वर्गका प्रश्न

इसके बाद भयंकर प्रश्न दलित-वर्गका है। उसीमें 'दुबलों' का प्रश्न भी आ जाता है। ऊँची जातिके कहे जानेवाले लोग क्या रानीपरज लोगोंके साथ घुलमिल सकेंगे? क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि यह किये बिना भी तुम स्वराज्य ले सकोगे? या तुम्हें लगता है कि एक बार स्वराज्य मिल जानेपर जो लोग अपनी जिदपर अड़े रहेंगे उन्हें तुम मार-मार कर सीधा कर लोगे?

जीतका सच्चा उपयोग

तुम अगर सारे हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र करनेमें इस जीतका उपयोग करना चाहते हो तो इस, और ऐसे ही दूसरे मसलोंका हल तुम्हें निकालना ही पड़ेगा? अगर तुम यह नहीं, कोई दूसरा ही रचनात्मक काम करना जानते हो तो उसे करो। लड़ाई थोड़ी देर चलकर पीछे तो मन्द पड़नी ही चाहिए, किन्तु लड़नेकी शक्ति बड़वानलकी तरह सुषुप्त दशामें कायम ही रहती है। उसका उपयोग हमें दूसरे रचनात्मक कामोंमें करना चाहिए। हमें कई काम करने हैं, क्योंकि हमारे कलंक भी तो कम नहीं हैं। मिस मेयोको गाली देना सहज है। यह सही है कि उन्होंने जो लिखा सो शत्रुताके भावसे लिखा है, मगर मैं यह नहीं स्वीकार करूँगा कि उनके लेखोंमें कोई सार ही नहीं है। उन्होंने जो प्रमाण दिये हैं उनमें से कुछ तो सच्चे ही हैं। यद्यपि उनसे उन्होंने जो अनुमान निकाले हैं वे प्रायः गलत हैं। हममें बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदिकी जो कुप्रथाएँ हैं, विधवाओंसे जो अमानुषी बरताव होता है, उसका भला हम क्या करें?

यह तो बहुत अच्छा हुआ कि बारडोलीकी लड़ाईके दौरान हिन्दू, मुसलमान, पारसी सब एक रह सके। किन्तु इससे क्या हम यह मान सकते है कि सभी सदाके लिए एक-दिल हो गये है? एकता होनेमें सरदारकी योग्यता और चतुरताके अलावा अब्बास साहब और इमाम साहबका यहाँ रहना भी एक कारण है। किन्तु अभी यहाँ यह स्थिति नही मानी जा सकती कि हिन्दुस्तानमे अन्यत्र चाहे जितना झगड़ा हो, परन्तु यहाँ तो उसके छींटे भी नही पड़ सकते।

इन सभी सवालोंको हल किये बिना स्वराज्य नही आनेवाला है। विलायतसे स्वराज्यका कानून बनकर आ जाये तो उससे हमें स्वराज्य नही मिलनेवाला है। किसानों पर भला उसका क्या प्रभाव पड़ेगा? प्रजाको क्या लाभ पहुँचेगा? सच्चा स्वराज्य तो तभी आया कहा जायेगा जब हम अपना सारा कामकाज स्वयं चला सकें और इन मुश्किलोंको स्वयं सुलझा सकें।

स्वयंसेवककी नीति

यहाँ जो स्वयंसेवक रहे है, उन्होने प्रजासे मिला हुआ धन कृपणतासे खर्च किया है या खुले हाथों? अपने प्रति उदार होना बहुत बड़ा दोष है। उदार दूसरेके प्रति बनना चाहिए। जब स्वयंसेवक अपने प्रति कृपण और दूसरेके प्रति उदार होंगे, तभी उनके और प्रजाके सम्बन्ध ठीक रहेंगे। मै मानता हूँ कि हमने जो खर्च किया है, उसमें कोई फिजूलखर्ची नही थी। किन्तु यदि हम यह सिद्ध कर सकें कि इस विषयमें हमने पूरा संयम बरता है तो मैं बहुत खुश होऊँगा। मैं खुश तब होऊँगा जब देखूँगा कि देशके दूसरे भागोंमें स्वयंसेवक ऐसे अवसरों पर जो करते हैं उसकी तुलनामें तुम्हारा व्यवहार बढ़-चढ़कर है।

हमारा जीवन कैसा हो?

हमारा देश दुनियामें सबसे गरीब है और फिर हमारी सरकार, अमेरिकाको छोड़कर, और सब देशोंसे अधिक उड़ाऊ। यहाँके अस्पतालोंमें इंग्लैंडके हिसाबसे खर्च होता है। स्काटलैंडके अस्पतालोंमें भी इतना खर्च नही होता। कर्नल मैडॉकने ही मुझसे कहा था कि जिस तरह यहाँपर एक बार पट्टीमें बाँधा गया कपड़ा फेंक देते हैं, उस तरह स्काटलैडमें नहीं चल सकता। वहाँ तो उसे धोकर फिरसे काममें लाते हैं। इग्लैडको यह सब सोहता है। वहाँवाले घर छोड़कर बाहर निकल पड़े हैं। फिर ऊपरसे उन्हें हिन्दुस्तानके जैसा खुला क्षेत्र लूटनेके लिए मिल गया। किन्तु हमारे खर्चका सही स्तर क्या होना चाहिये, इसका निश्चय तो यह देखकर ही किया जा सकता है कि हमारे आदमियोंको पहनने, ओढ़नेको क्या मिलता है। उस हिसाबसे हमें और कितनेकी जरूरत है — इसका विचार करके तुम अपना खर्च चलाओ। अगर हम ऐसा न करेंगे तो अन्तमें हार जायेंगे।

प्रजा-प्रेमकी कसौटी

जिनमें धीरज और श्रद्धा होगी वे तो ये सब काम चलाते ही रहेंगे। मेरे समान जो लोग मृत्युके कगारपर बैठे हुए है, जो एक सालके भीतर ही स्वराज देखनेकी आशा करते हैं उनकी यह आशा शायद सफल न हो, मगर तुम्हें तो अपनी जिन्दगीमें

स्वराज्य देखनेकी इच्छा करनी ही चाहिए। और इसलिए तुम्हें अपने अंतरमें उतरकर देखना चाहिए कि जिस समुदायको तुम सुधारना चाहते हो, उसके लिए तुम्हारे मनमें सच्चा प्रेम, सच्ची सहानुभूति है या नही? उनमें किसीका माथा दुखे तो तुम्हें अपना सिर दुखनेके समान कष्ट होता है या नहीं? उनके पाखाने मैले हों तो उन्हें साफ करनेको हम तैयार हैं या नही?

स्वराज्य लेना सहज है

इन सभी रचनात्मक कामोंके लिए इतने स्वयंसेवक काफी नही है। हमारी ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि सरदारने कहा नही कि अमुक काम होना चाहिए, और वह तुरन्त हो जाये। वह काम भले बरतन माँजनेका हो या पाखाना साफ करनेका हो या मोटरमें बैठनेका हो — सभी काम समान प्रेमसे ही होने चाहिए। अगर हममें यह योग्यता हो तो मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि जितनी आसानीसे हम यह कर-वृद्धिकी लड़ाई जीत सके हैं, उसी आसानीसे स्वराज्य भी ले सकेंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १९-८-१९२८

२०३. भाषण: सूरतमें[1]

[१२ अगस्त, १९२८][2]

किसी सत्याग्रहीके लिए इस प्रसंग पर यह कहनेसे अधिक उपयुक्त और कुछ नहीं हो सकता कि बारडोली सत्याग्रहकी विजयके लिए केवल ईश्वरका ही धन्यवाद और स्तुति करनी है। वास्तवमें हमें इससे अधिक कुछ कहनेकी जरूरत ही नही है। लेकिन मैं जानता हूँ कि इससे हमें सन्तोष नहीं होनेवाला है, क्योंकि अभीतक हमारे हृदयमें यह विश्वास नहीं उतर पाया है कि हम सब उसके हाथमें साधन-मात्र हैं और वह जैसा चाहता है, हमारा वैसा उपयोग करता है। हमने अभीतक अपने-आपको ईश्वरको समर्पित कर देनेका गुण नहीं सीखा है। मनुष्य आज भी अंशतः मनुष्य है और अंशतः पशु। सच तो यह है कि वह पशु अधिक है, और फलतः केवल ईश्वरकी ही प्रशंसा करनेसे उसके अहंकी तुष्टि नही होती। वास्तविकता यह है कि ऐसे अवसरोंपर उसे याद करके हम कुछ ऐसा महसूस करते है, मानो उस पर अहसान कर रहे हों। इसलिए अपने प्रकृत स्वभावके अनुसार हम अपने सरदारको, उनके साथियों और स्वयंसेवकोंको तथा बारडोलीके स्त्री-पुरुषोंको बधाई दे सकते हैं। अपने सहयोगी कार्यकर्त्ताओंके विश्वासपूर्ण सहयोगके बिना अकेले वल्लभभाई इस लड़ाईको नही जीत सकते थे। लेकिन इसी प्रकार हमें परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय,

१. यह "१९२१ को याद कीजिए" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था और इसके प्रारम्भमें सम्पादकीय टिप्पणी इन शब्दोंमें दी गई थी: "नीचे बारडोली-विजय-समारोहके अवसरपर सूरतमें दिये गये गांधीजी के भाषणका सार दिया जा रहा है।"

२. १४-८-१९२८ के **बॉम्बे क्रॉनिकल**से।

अधिकारियों और विधान परिषद्के सदस्योंको भी, उन्होंने सुखद समझौता करानेमें जो सहायता की, उसके लिए धन्यवाद देना चाहिए। और यदि हम अपने विरोधियों को भी धन्यवाद देनेके कर्त्तव्यमें चूक जाते है तो उसका मतलब यह होगा कि हममें विनयका अभाव है और उस हद तक हम सत्याग्रही नही हैं।

इतनी असुविधा उठाकर गीली जमीन पर बैठे सूरतके नागरिकोंका यह विशाल समुदाय मुझे १९२१ का स्मरण दिलाता है। इसी स्थान पर मैंने १९२१ मे आपसे जो शब्द कहे थे[1], वे मुझे अब भी याद है। शायद आपमें से कुछ लोगोंको स्मरण हो कि मैंने क्या कहा था। और मैं आपको अभी यह याद दिलाना चाहता हूँ कि सात साल पहले हमने जो-कुछ करनेका निश्चय किया था, उसे करनेमे हम किस प्रकार असमर्थ रहे है। यदि बारडोली और सूरत इस विजय-समारोह और भोजके बाद निश्चिन्त होकर बैठ जायें तो बारडोलीसे मिली शिक्षा व्यर्थ सिद्ध होगी। वल्लभभाई बारडोलीकी जनतासे यह कहते रहे हैं कि खुद अपने लोगोंसे लड़नेकी अपेक्षा सरकारसे लड़ना आसान है, क्योंकि हम स्वभावतः सरकारके तिल-जैसे अन्यायको ताड़ बना कर देखते हैं। यदि हममें मनुष्य-सुलभ स्वाभिमान है तो हमें ऐसा करना भी चाहिए। लेकिन जहाँ हमारा मुकाबला खुद अपने दोषों और कमियोंसे पड़ता है कि हम आँखें चुराने लगते है। इसलिए अपनी प्रतिज्ञाके आधे हिस्सेको पूरा कर लेनेवाली बारडोली की जनताको[2] मैंने उसका शेष आधा हिस्सा — अर्थात् पुरानी दरसे लगान अदा कर देना — भी पूरा कर देनेकी याद दिलायी। मै जानता हूँ कि यह काम वे कुछ ही दिनोंमें कर देंगे। लेकिन उसके बाद? सत्याग्रह-संघर्षके दौरान आपने लोगोंमें जो जबरदस्त शक्ति और उत्साह पैदा कर दिया है, उसका सदुपयोग आप कैसे करेंगे? बारडोलीकी स्त्रियोंमें जो अभूतपूर्व जागृति आई है, उसका उपयोग आप कैसे करेंगे? आप उनकी सेवा कैसे करेंगे, उनसे अपना तादात्म्य कैसे स्थापित करेंगे और उनके दुःख दूर करनेमें आप उनकी सहायता किस प्रकार करेंगे? सत्याग्रहमें सविनय अवज्ञा, मदान्ध सत्ताके अत्याचारका सविनय प्रतिरोध शामिल है, लेकिन हममें प्रतिरोधकी क्षमता आये, इसके लिए आत्म-शुद्धि और रचनात्मक कार्य आवश्यक है। यदि मैं आपसे यह बतानेको कहूँ कि १९२१ से आपने आत्म-शुद्धि और रचनात्मक कार्यकी दिशामें क्या किया है तो मैं जानता हूँ कि आपको और मुझे अपनी अकर्मण्यता पर दुःख और पश्चात्तापके आँसू ही बहाने पड़ेंगे।

मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि मैं आज भी वही हूँ जो १९२१ में था। मुझे आपके सामने वही कठोर शर्तें रखनी हैं, वही शर्तें रखनी है जो, हम जिस शान्ति, खुशहाली, स्वराज्य, रामराज्य या ईश्वरीय राज्यके लिए लालायित है, उसे पानेके लिए अनिवार्य हैं। सूरतके आरामतलब हिन्दू और मुसलमान जबतक ईश्वरके नाम पर एक-दूसरेकी जानके गाहक बने हुए हैं और आपसमें इस तरह झगड़नेके बाद न्यायके लिए सरकारी अदालतोंकी ओर दौड़नेकी प्रवृत्ति पाले हुए है तबतक उन्हें

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ २९१-९२।
२. देखिए "भाषण: बारडोलीमें–१", १२-८-१९२८।

स्वराज्यकी बात करनेका क्या अधिकार है? यदि आप सचमुच बहादुर हैं तो एक-दूसरेसे बराबरीकी स्थितिसे लड़िए, लेकिन फिर आपको न्यायालयोंके संरक्षणके लिए नही दौड़ना चाहिए। अंग्रेज और जर्मन लड़ाईके मैदानमें लड़े, लेकिन वे न्यायालय नहीं गये। खुलकर ईमानदारीके साथ लड़नेमें कुछ बहादुरी है, लेकिन न्यायालयोंकी ओर दौड़नेमें तो कोई बहादुरी नहीं है। लड़ना ही है तो हिन्दू और मुसलमान जमकर लड़ें, खरे और साफ ढंगसे लड़ें और इस तरह अपने झगड़ोंका निबटारा कर लें। तब उनके नाम इतिहासमे आदरके साथ लिये जायेंगे। लेकिन इस लड़ाईमें, जिसके बाद अदालतोंका लम्बा चक्कर शुरू होता है, कोई बहादुरी नही है। हमारे आजके तरीके बहादुरीके नही, बुजदिलीके तरीके है। सच्ची बहादुरी तो धर्मकी खातिर अपने प्राणोंकी बलि चढा देनेमें है, और जो आवश्यक नहीं है, जिनका किसी तात्त्विक सिद्धान्तसे कोई सम्बन्ध नही है, ऐसे प्रश्नों पर खुशी-खुशी समर्पण कर देनेमें है। यही बारडोलीका सबक है और यदि हम विजयकी खुशीमें अपने-आपको भुला देते हैं तो वह सबक निष्फल साबित होगा। जबतक हम लोग, जो धर्मतः विभिन्न होते हुए भी एक ही देशमें जनमे है और एक ही मातृभूमिकी सन्तान हैं, एक-दूसरेको सगे भाईकी तरह प्यार करना नही सीखेंगे तबतक बारडोलीकी जैसी जीतका कोई फल नहीं निकलेगा।

जिस दूसरे क्षेत्रमें शुद्धि करनी है, वह है हिन्दू धर्म। क्या आपने इसे इस पर लगे कलंकके गहरे धब्बेसे मुक्त कर दिया है? मैं फिर कहता हूँ कि आत्म-शुद्धिके बिना सच्चा स्वराज्य असम्भव है। कोई दूसरा रास्ता मुझे दिखाई नहीं देता। आप चाहें तो इसे मेरी मजबूरी कह लीजिए, लेकिन तब यह मजबूरी सत्याग्रहकी है। अगर कोई दूसरा रास्ता हो तो वह मुझे मालूम नही है। और फिर, इसके अलावा किसी और रास्तेसे जो चीज मिल सकती है वह स्वराज्य नहीं, कुछ और ही होगी।

हमारे कार्यक्रममें तीसरी और अन्तिम बात यह है कि सभी धर्मो और जातियों के लोगोंको देशके नरकंकालोंके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। इसका एकमात्र उपाय चरखा ही है और यह बात मै शायद इतनी बार दोहराऊँगा कि आप उसे सुनते-सुनते ऊब जायेंगे। मुझे एक विलक्षण दिशासे चरखेका औचित्य सिद्ध होता देखनेमें आया है। कृषि आयोगकी भारी भरकम और बेढंगी रिपोर्टकी समीक्षा करते हुए सर लल्लूभाई शामलदासने यह दिखाया है कि आयोगके सदस्य सहायक उद्योगों-वाले अध्यायमें किस प्रकार चरखा शब्दके प्रयोगसे बचते रहे हैं, मानों वह कोई अस्पृश्य वस्तु हो। तो करोड़ों क्षुधार्त्त लोगोंको रोजगार देनेवाली उस चीजसे वे कतराते क्यों रहे? मैं कहूँगा कि चरखेकी शक्तिका मर्म इसी तथ्यमें छिपा हुआ है, वे कमसे-कम इसकी आलोचना तो कर सकते थे, या इसका उपहास ही करते। लेकिन नहीं, वे इसमें निहित इसकी अनंत सम्भावनाओंका विचार करते डरते हैं। (जोरोंकी वर्षा होने लगी) ठीक है, दरअसल मुझे जो-कुछ कहना था, कह चुका। आगे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-८-१९२८

२०४. पत्र : प्रभावतीको

स्वराज आश्रम, बारडोली
[१३ अगस्त, १९२८ के पूर्व][1]

चि० प्रभावती,

विद्यावती बाफ लेती है क्या? उसको ठंडे पानीमें भीगोइ हुई चद्दरमें लपेट-कर आध घंटे तक सुलाना चाहीए। चद्दरको साफ ठंडे पानीमे भीगोकर खूब नीचोडना, पीछे बीछाने पर बीछाना उसपर विद्यावतीको सुलाना बाकीका चद्दरका हिस्सा बदन पर लपेटना फीर गरम कमली ओढाना। मुं बाहर रखना चद्दर पर नंगे बदन सोना चाहीये। यदि इस तरह सोनेसे शरीर गरम न होवे और ठंडी लगे तो उठ जाना चाहीये। मुझे कुछ ख्याल है की गंगाबहन इस स्नानको जानती है कयोंकी उसको मैंने दीया था। यदि समझमें नहि आया है तो छोड़ो। नीमके पत्ते पानीमें उबालकर उस पानीसे स्नान करनेसे भी फायदा होनेका संभव है। खानेमें विद्यावती परहेजगार नहि है ऐसा मुझे शक है।

मांकी तबीयत अच्छी है। जानकर खुश होता हुं।

'कमलाबहेन गांधीसे काहो उनके खतका उत्तर नहि देता हुं कयोंकी सोमवारके रोज आश्रममें पहोंच।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० ३३२६ की फोटो-नकलसे।

२०५. तार : नानाभाई मशरूवालाको[2]

[१३ अगस्त, १९२८]

नानाभाई मशरूवाला
अकोला

बालूभाईकी मृत्युसे[3] आश्रम शोक-संतप्त।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १४७५७)की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीके सोमवार, १३ अगस्त, १९२८ को आश्रम पहुँचनेके उल्लेखसे; देखिए "पत्र प्रभावतीको", ६-८-१९२८ भी।

२. यह तार नानाभाई और किशोरलालके १३ अगस्तके तारके उत्तरमें दिया गया था, जो इस प्रकार था: "सूचित करते दुःख होता है कि प्रातःकाल बम्बईमें बालूभाईका स्वर्गवास हो गया। नानाभाई, किशोरलाल।" देखिए अगले दो शीर्षक भी।

३. देखिए "एक मूक कार्यकर्त्ताका स्वर्गवास", १९-८-१९२८।

२०६. पत्र : किशोरलाल मशरूवालाको

सोमवार [१३ अगस्त, १९२८][१]

चि० किशोरलाल,[२]

तुम्हें या नानाभाईको मैं क्या आश्वासन दूँ? तुम दोनों तो मृत्युको मित्र समझने वाले हो। हमें जो दुःख होता है वह तो अपने स्वार्थके कारण ही होता है। मरनेके पहले बालूभाईने मुझे एक स्नेहपूर्ण पत्र लिखा था। पत्र बारडोलीके विषयमें था। वे तो यहाँ आना चाहते थे। डॉक्टरने इनकार कर दिया इसलिए उन्होंने पत्र लिखकर ही सन्तोष कर लिया। ऐसे समय आश्रम जो सेवा कर सकता हो उसे लेनेमें चूकोगे तो गलती करोगे। आश्रम बच्चोंकी देखभालकी जिम्मेदारी भी उठा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६५९)से।
सौजन्य : कनुभाई नानालाल मशरूवाला

२०७. पत्र : नीलकण्ठ मशरूवालाको

सोमवार [१३ अगस्त, १९२८][३]

चि० नीलकण्ठ,

तुम्हारी तरफसे तो नहीं किन्तु अकोलासे तार मिला। बालूभाईकी आत्मा तो शान्तिमें ही है। स्वार्थके वशीभूत होकर यदि हम रोना चाहें तो भले रोयें किन्तु तुमने तो परमार्थका पाठ सीखा है। इस अवसर पर उसका उपयोग करना और स्वयं धीरज रखते हुए दूसरोंको भी धीरज बँधाना। यहाँसे जो सेवा हो सकती हो सो लेना।

समय-समयपर मुझे लिखते रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९१७२) की नकलसे।
सौजन्य : नीलकण्ठ मशरूवाला

१. डाककी मुहरसे।

२. बालूभाई इच्छाराम मशरूवालाके सबसे छोटे भाई।

३. नीलकण्ठ मशरूवालाके पिता बालूभाईका देहान्त १२ अगस्तको हुआ था; देखिए पिछले दो शीर्षक।

२०८. पत्र : सुभाषचन्द्र बोसको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और साथमें प्रदर्शनीके बारेमें भेजा गया परिपत्र भी मिला। अब मैं जान गया हूँ आपका उद्देश्य क्या है और अब मै आपके दृष्टिकोणको समझ सकता हूँ। लेकिन, मुझे खेद है कि मै इसका समर्थन नही कर सकता। परिपत्रके अनुसार आपको बहुत-सी विदेशी वस्तुओं तथा मिलके कपड़ेको भी प्रदर्शनीमे स्थान देनेकी छूट होगी। मद्रास और कलकत्तामें केवल यही अन्तर होगा कि कलकत्ता ब्रिटिश मालको स्थान नही देगा, जबकि मद्रास प्रदर्शनीमें ब्रिटिश मशीनोंका प्रदर्शन किया गया था। इन परिस्थितियोंमें अखिल भारतीय चरखा संघको प्रदर्शनीमें शरीक करनेके मामलेसे मैं अपने-आपको व्यक्तिशः अलग ही रखना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस
बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
१, वुडबर्न पार्क, कलकत्ता

अंग्रेजी (जी० एन० १५९५)की फोटो-नकलसे।

२०९. पत्र : डॉ० सुरेशचन्द्र बनर्जीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ अगस्त, १९२८

प्रिय सुरेश बाबू,

बारडोलीमें आपके दो पत्र मिले। मैं अभी वहाँसे लौटा हूँ। 'यंग इंडिया'में आपकी रिपोर्टके बारेमें मै जरूर लिखूँगा[1]।

प्रदर्शनीके सम्बन्धमें मैं श्रीयुत सुभाष बाबूसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। साथमें उनको लिखे सबसे ताजा पत्रकी[2] प्रति भेज रहा हूँ। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि आगामी प्रदर्शनीके विषयमें जैसा-कुछ सोचा जा रहा है, उसे मैं पसन्द नही करता। यदि मेरा बस चले तो मैं ब्रिटिश माल ही क्यों, सिवाय ऐसे विदेशी मालके,

१. देखिए "अभय आश्रम", २७-९-१९२८।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

जो लोगोंके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो मगर इतना अपरिचित कि कांग्रेस-प्रदर्शनीके माध्यमसे उनका विज्ञापन करना जरूरी हो, किसी भी तरहका विदेशी माल प्रदर्शनीमें न आने दूँ। और मिलोंके कपड़ेकी प्रदर्शनी तो कभी न करूँ, क्योंकि मिलोंको न विज्ञापनकी जरूरत है और न वे इस लायक ही हैं।

हृदयसे आपका,

डॉ० सुरेशचन्द्र बनर्जी
कुमिल्ला

अंग्रेजी (एस० एन० १३६५८)की माइक्रोफिल्मसे।

२१०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ अगस्त, १९२८

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला।

श्रीयुत सुभाष बोसके पत्रका जो उत्तर[1] दिया है, उसकी नकल साथमें भेज रहा हूँ। मैं अभी बारडोलीसे लौटा हूँ।

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
सोदपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३६५५)की फोटो-नकलसे।

२११. पत्र : आर० बी० ग्रेगको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ अगस्त, १९२८

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। विज्ञान पर लिखी तुम्हारी पुस्तिकाकी[2] पाण्डुलिपिके मिलते ही मैं उसे पढ़कर सम्मतिके लिए काकाको दे दूँगा।

प्रकाशनके विषयमें, यद्यपि मैं तुम्हारी दलीलोंको[3] समझता हूँ, फिर भी न जाने क्यों, मेरी आत्मा इस विचारको स्वीकार नहीं करती। लेकिन पुस्तिकाको पढ़नेके बाद मैं निर्णय देनेके लिए ज्यादा अच्छी स्थितिमें होऊँगा।

१. देखिए "पत्र : सुभाषचन्द्र बोसको", १४-८-१९२८।
२. **साइंस फॉर किडीज़** नामक पुस्तिका।
३. पाण्डुलिपिको प्रकाशनार्थ मैकमिलन कम्पनीको देनेके पक्षमें दी गई दलीलें।

आशा है, अमेरिका जानेसे पहले ज्यादा काम कर-करके तुम अपनेको बीमार नही बना लोगे। मै चाहूँगा कि वहाँके लिए प्रस्थान करते समय तुम्हारा स्वास्थ्य खूब अच्छा रहे।

अगर सांकेतिका आदिके लिए तुम्हें समय न मिले तो अभी इस सबको पड़ा रहने दिया जा सकता है।

मै नही समझता था कि एन्ड्रयूज इंग्लैंडमें है, यह बात तुम्हें मालूम नहीं है। वे तो जब यहाँ थे, तभी अमेरिका जानेका इरादा रखते थे। बेशक, वहाँ तो उनसे तुम्हारी मुलाकात होगी ही। वे वहाँ सितम्बरमें पहुँच रहे है।

हाँ, बारडोलीसे एक बहुत बड़ा सबक मिलता है। इसने अहिसात्मक तरीकों और जनसाधारणकी शक्तिके प्रति फिरसे विश्वास उत्पन्न कर दिया है।

स्टोक-परिवारसे मेरा स्नेह-वन्दन कहना।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी (एस० एन० १३४८९) की फोटो-नकलसे।

२१२. पत्र : गिरधारीलालको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१५ अगस्त, १९२८

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

हाँ, बारडोलीके बारेमें आपका कहा सब-कुछ सच है। सत्याग्रहियोंको जो प्रशंसा मिल रही है, वे उसके योग्य पात्र हैं और वल्लभभाई तो सबमे योग्य पात्र हैं।

तार भेजनेका लोभ संवरण करके कुछ आने बचानेका आपका खयाल मुझे अच्छा लगा। लेकिन इससे यह भी प्रकट होता है कि आपको फिर घाटा लगा है। कितना अच्छा हो कि आप बड़ी-बड़ी योजनाओंके फेरमें न पड़ें, बल्कि ईश्वर थोड़ा-बहुत जो दे उसीमें सन्तोष मानें।

हृदयसे आपका,

लाला गिरधारीलाल
'दीवान भवन', दिल्ली

अंग्रेजी (एस० एन० १३४९२) की फोटो-नकलसे।

२१३. पत्र : जेठालाल जोशीको

आश्रम, साबरमती
१५ अगस्त, १९२८

भाईश्री जेठालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। ब्रह्मचर्यके बारेमें और अधिक गहराईसे विचार करना और उसके पालनका प्रयत्न करते रहना। सहभोज तथा [अ] परिग्रहके सम्बन्धमें उतावली करनेकी आवश्यकता नही है। निरन्तर सेवा करनेमें ही शान्ति निहित है। सम्पूर्ण नम्रताके बिना सम्पूर्ण सेवा नही हो सकती। निष्काम होना तो आशाके त्यागका मार्ग है और जिसने आशाका त्याग कर दिया उसे निराशा कैसे हो सकती है? इस वृत्तिके विकासके लिए 'भगवद्गीता' और 'रामायण' का पाठ करना आवश्यक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १३४५) की फोटो-नकलसे।

२१४. पत्र : वसुमती पण्डितको

बुधवार [१५ अगस्त, १९२८][१]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। अब ऐसा कहा जा सकता है कि तुम्हारी तबियत सुधर गई है। यदि तुम हकीमकी दवासे ठीक हो जाओ और तुम्हारा कष्ट हमेशाके लिए दूर हो जाये तो बहुत अच्छा हो। मुझे रामदेवजी का पत्र नहीं मिला।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९६) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. डाककी मुहरसे।

२१५. पत्र : बेचर परमारको

आश्रम, साबरमती
१५ अगस्त, १९२८

भाई बेचर,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं यह नहीं जानता कि हज्जामके धन्धेके लिए जिस योग्यताकी आवश्यकता होती है वह तुम गँवा बैठे हो। और अगर गँवा बैठे हो, किन्तु पुनः उस धन्धेमें लौट जानेकी जरूरत आ पड़ी हो तो मै समझता हूँ कि तुम्हें उसे फिर सीख लेना चाहिए। यदि तुम शिक्षक न होते तो मैंने तुमसे शिक्षक बननेको न कहा होता बल्कि तुम्हें उस धन्धेको अपनानेसे विरत करता। आजकल तो तुम शिक्षक हो इसलिए मैं तुम्हें उक्त धन्धा न छोड़नेकी सलाह इस उद्देश्यसे दे रहा हूँ कि तुम उससे होनेवाली आयको गौण मानकर उसके द्वारा होनेवाली सेवा को मुख्य मानो और सेवाके काममें जुट जाओ। शिक्षक होनेके नाते सेवा करनेके तुम्हारे सामने अनेक अवसर है और इन अवसरोंका सदुपयोग करते हुए तुम आसानीसे आत्म-सुधार कर सकते हो। शिक्षकके रूपमें सेवा करते हुए तुम अपनी झूठी शर्मको छोड़ सकोगे, मजदूरीकी महिमाको समझ सकोगे और जिन बालकोंको तुम पढ़ाते हो उन्हें भी यदि ये बातें सिखा सको तो इसमें न केवल तुम्हारा कल्याण है, बल्कि बालकोंका भी लाभ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५५७५) की फोटो-नकलसे।

२१६. पत्र : तुलसी मेहरको

आश्रम, साबरमती
१५ अगस्त, १९२८

चि० तुलसी मे[ह]र,

तुमा[रा] पत्र मीला है। हिमालयके प्रदेशकी मनोहरताका क्या पुछा जाय? आश्रममें बहोतसे परिवर्तन हो रहे हैं। किशोरलालके वडील बंधु बालुभाइका देहान्त हुआ है। खद्दरका नमुना अच्छा है, उसका दाम क्या लगता है?

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० ६५३५ की फोटो-नकलसे।

२१७. दक्षिण आफ्रिकी प्रमार्जन योजना

गत सप्ताह भी मैंने प्रमार्जन योजना (कंडोनेशन स्कीम) के बारेमें लिखा था।[1] उसीके सिलसिलेमें अब मैं उन लोगोंकी जानकारीके लिए, जिन्हें दक्षिण आफ्रिकामें अधिवासके अधिकार प्राप्त है, गत १३ जुलाईके 'इंडियन ओपिनियन' के परिशिष्टांकसे लेकर निम्नलिखित प्रासंगिक पत्र-व्यवहार[2] प्रकाशित कर रहा हूँ:

नीचे प्रमार्जन अनुमति-पत्र[3] (कंडोनेशन परमिट) का वह फार्म दे रहा हूँ जो २९ जून, १९२८के 'यूनियन गवर्नमेंट गजट' में प्रकाशित विनियमोंके अन्तर्गत प्रमार्जन योजनाका लाभ प्राप्त कर सकनेवाले व्यक्तियोंको दिया जायेगा।

पाठकोंको यह चेतावनी देनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए कि मै व्यक्तिगत रूपसे लोगोंका कोई मार्गदर्शन नही कर पाऊँगा। जो-कुछ कर सकता हूँ वह जरूरी कागजोंके प्रकाशनके ही रूपमें कर सकता हूँ। इससे अधिक जानकारी चाहनेवाले लोगोंको मैं प्रसंगानुसार ट्रान्सवाल भारतीय कांग्रेस, नेटाल भारतीय कांग्रेस या केप टाउन ब्रिटिश भारतीय परिषदसे सम्पर्क स्थापित करनेकी सलाह दूँगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-८-१९२८

२१८. समयका संकेत

बारडोली समयका संकेत है। सरकार और जनता दोनों इससे शिक्षा ले सकते हैं। हाँ, सरकार भी ले सकती है, बशर्ते कि जब सत्य जनताके पक्षमें हो और उसे अपने उचित स्थानपर प्रतिष्ठित करानेके लिए जनता अहिंसाके आधारपर अपनेको संगठित कर सकती हो तब सरकार उसकी शक्तिको स्वीकार करनेको तैयार हो। कोई भी समझदार सरकार जनताकी ऐसी शक्तिको इस प्रकार स्वीकार करके अपनी सत्ताको सुदृढ़ बनाती है। तब उसकी सत्ताका आधार जनताकी सद्भावना और सहयोग होता है। उस अवस्थामें वह केवल उसकी शक्तिसे भयभीत होकर कर्मसे ही उसके साथ सहयोग नहीं करती, बल्कि वाणी और मनसे भी सहयोग करती है। यदि अहिंसात्मक शक्तिका ठीकसे संचय किया जाये तो उससे एक ऐसी ताकत पैदा होती है जिसका रास्ता कोई नहीं रोक सकता। जहाँतक मै देख पाया हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सरकारने न चाहते हुए भी एक ऐसे जनमतके दबावके कारण यह समझौता किया है जिसकी शक्ति ज्यामितिक रीतिसे बढ़ती जा रही थी। कहते हैं, परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय प्रारम्भसे ही सत्याग्रहियोंकी माँगोंको स्वीकार करनेको अत्यन्त उत्सुक थे, लेकिन

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ९-८-१९२८ का उपशीर्षक 'दक्षिण आफ्रिकामें दी गई रियायत'।
२ और ३. देखिए परिशिष्ट ३।

उनके सलाहकार उसी दृढ़ताके साथ विरोध कर रहे थे। यदि यह बात सच हो तो जहाँ यह गवर्नर महोदयके लिए श्रेयकी बात है वही सरकारके लिए एक बहुत अशुभ-सूचक चीज है। कारण, ब्रिटिश सरकार किसी व्यक्तिकी सरकार नही, बल्कि यह व्यक्तियोंके निजी आग्रहोंका कोई खयाल न करते हुए अपना काम करते जानेवाला एक शक्तिशाली संगठन है। ग्लैड्स्टोन और डिजरैली चले गये, किचनर और रॉबर्ट्स नहीं रहे, फिर भी इस संगठनका अस्तित्व कायम है। भारत सरकारके पीछे जो संगठन काम कर रहा है वह है गैर-सैनिक प्रशासनिक सेवा (सिविल सर्विस)। बारडोली-संघर्षके सेनानी सरदार वल्लभभाई इसी वर्गके अधिकारियोंका हृदयपरिवर्तन चाहते थे। लोगोंको ऐसा बताया गया है और वे यही देख पाये हैं कि यह वर्ग समझौतेसे सन्तुष्ट नही है। यदि वह सन्तुष्ट होता तो सरदारके खिलाफ जो झूठे प्रचारका मुहिम चल रहा है, वह बन्द हो गया होता। जब मै बारडोलीमें था, उन दिनों ऐसे झूठे प्रचारमें रुचि रखनेवालोसे प्रेरित अखबारोमें मै बराबर यह शिकायत देखा करता था कि वल्लभभाई पटेलने समझौतेके सम्बन्धमें अपना दायित्व पूरा नही किया है, जबकि मैं जानता था कि वे अपना दायित्व यथासम्भव तेजीसे पूरा कर रहे थे और उस दायित्वके जिस हिस्सेके बारेमें शिकायत की गई थी उसे वे पहले ही पूरा कर चुके थे — शिकायत करनेसे भी पहले। इसपर मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि यदि यह सच है कि गैर-सैनिक सेवा-संगठन इस समझौतेका विरोध कर रहा है तो सरकारका विनाश अवश्यम्भावी है, बशर्ते कि हम यह मानकर चलें कि बारडोली का अहिंसात्मक संगठन एक ऐसा संगठन है जो व्यक्ति-विशेषके बिना भी चलता रहेगा।

इसलिए अब हम बारडोलीकी जनताकी बात लें। जो शिक्षा उसे ग्रहण करनी है वह यह कि जबतक वह अहिंसाके आधारपर संगठित रहती है तबतक उसे किसीसे नही डरना है — अनिच्छुक सरकारी अमलेसे भी नही। लेकिन क्या उसने वह शिक्षा ग्रहण की है, क्या उसने अहिंसाकी छिपी शक्तिको पहचान लिया है, क्या उसने यह महसूस कर लिया है कि यदि उसने तनिक भी हिंसा की होती तो उसका संघर्ष विफल रहता? यदि हाँ, तो उसे प्रतिदिन इस बातकी अनुभूति होगी कि जब-तक वह, जिसे सामूहिक आत्म-शुद्धिकी सतत प्रक्रिया कह सकते हैं, उस प्रक्रियासे न गुजरेगी तबतक अहिंसाके आधारपर अपनेको संगठित नहीं रख पायेगी। यह आत्म-शुद्धि वह तभी कर सकती है जब सबका हित-साधन करनेवाले उस सुविचारित रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करनेमें लग जाये, जिसके लिए मिल-जुलकर प्रयत्न करना आवश्यक है। दूसरे शब्दोमें पहले उसे अहिसाकी शिक्षा ग्रहण करनी है — केवल भाषणों और लेखोंके जरिये ही नहीं, यद्यपि ये दोनों भी जरूरी हैं, बल्कि निरन्तर सामूहिक रूपसे ऐसे कार्य करते रहकर जिनमें से प्रत्येक अहिंसाकी भावना जगानेवाला हो। उसे करनेके बाद ही वह यह दावा कर सकती है कि वह अहिसाके आधारपर पूर्णतः संगठित है। श्रीयुत वल्लभभाई पटेल जानते हैं कि उन्हें क्या करना है। उन्होंने अपने सिर इस कठिन रचनात्मक कार्य या कहिए आन्तरिक सुधारके कार्यका भार

ले लिया है। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि उन्हें सरकारके विरुद्ध किये गये संघर्षमें जैसी सफलता मिली वैसी ही सफलता इस काममें भी प्रदान करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-८-१९२८

२१९. नेहरू रिपोर्ट

पण्डित मोतीलाल नेहरू और उनके सहयोगी[1] शतशः बधाईके पात्र हैं। जिस प्रश्नको लेकर सभी दल पिछले कई महीनोंसे परेशान थे, उसपर वे बहुत ही उपयोगी और प्रायः सर्वसम्मत रिपोर्ट तैयार कर पाये है। मोटे अक्षरोमें पुस्तकाकार छपी इस रिपोर्टकी रूप-सज्जा बड़ी अच्छी है। सार्वजनिक जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी व्यक्तिका काम इसके बिना नही चल सकता। इसपर हस्ताक्षर करनेवाले सज्जन है — पण्डित मोतीलाल नेहरू, सर अली इमाम, सर तेजबहादुर सप्रू, श्रीयुत मा० श्री० अणे, सरदार मंगलसिह, मु० शुएब कुरेशी, श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस और श्रीयुत जी० आर० प्रधान। अलबत्ता, मु० शुएब कुरेशीके हस्ताक्षरके विषयमें रिपोर्टके अन्तमें निम्नलिखित टिप्पणी दी गई है:

> **दुर्भाग्यवश श्री शुएब कुरैशी समितिकी आखिरी बैठकमें, जिसमें रिपोर्टके मसविदे पर विचार किया गया, उपस्थित न हो पाये। मगर मसविदा उनके पास भेज दिया गया था और उन्होंने हमें सूचित किया है कि परिच्छेद ३में की गई सिफारिशोंके सम्बन्धमें उनकी राय यह है कि केन्द्रीय विधान मण्डलमें एक तिहाई स्थान मुसलमानोंके लिए सुरक्षित रखे जायें। आगे वे कहते हैं: "७ जुलाईकी अनौपचारिक बैठकमें स्वीकृत प्रस्तावसे मैं सहमत हूँ, लेकिन उसके समर्थनमें दी गई सभी दलीलों और आँकड़ोंको मैं स्वीकार नहीं करता।"**

रिपोर्ट १३३ पृष्ठकी है और परिशिष्ट १९ पृष्ठके। रिपोर्ट दस परिच्छेदोंमें बँटी हुई है, जिनमें से चारमे साम्प्रदायिक प्रश्न, विधान मण्डलके स्थानोंके आरक्षण, प्रान्तोंके पुनर्गठन और देशी राज्यों पर विचार किया गया है। सातवें परिच्छेदमें समितिकी अन्तिम सिफारिशें है। यहाँ मुझे रिपोर्टका सार देनेकी झंझटमें नही पड़ना चाहिए — और किसी कारणसे नहीं तो इसी कारणसे कि यह मुझे 'यंग इंडिया' के लिए कुछ आखिरी लेख भेजते समय मिली है। इसे पूरा पढ़ पानेका भी समय मुझे नही मिल पाया है। बस, एक सरसरी निगाह ही डाल पाया हूँ। लेकिन इसकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि सर्वदलीय सम्मेलनकी समिति एक सर्वसम्मत रिपोर्ट तैयार कर पाई है, जिसपर प्रभावशाली प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर हैं। संविधानके सम्बन्धमें असली बात सर्वथा निर्दोष सिफारिशें करना नहीं, बल्कि वर्तमान परिस्थितियोंमें जो

१. १९ मई, १९२८को बम्बईमें आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा "भारतके लिए एक संविधान बनानेके लिए सिद्धान्त निर्धारित करनेके उद्देश्यसे" नियुक्त एक उप-समिति। (**इंडिया इन १९२८-२९**, पृष्ठ २६)।

सबसे अच्छी मानी जा सकें, ऐसी सिफारिशें सर्वसम्मतिसे करना था। और समिति बहुत ही कठिन परिश्रमके बाद जो व्यावहारिक मतैक्य प्राप्त कर पाई है, उसपर यदि वह सम्मेलन, जो शीघ्र ही लखनऊमें होने जा रहा है,[1] अपनी मुहर लगा देता है तो स्वतः विकसित होनेवाले स्वराज्यसे भिन्न संवैधानिक स्वराज्यकी दिशामें एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया जा चुका होगा। कारण, जो प्रश्न देशके मानसको वर्षोंसे आन्दोलित करते रहे हैं, उनपर यदि कामचलाऊ ढंगका सर्वसम्मत निर्णय हो जाता है तो अगला कदम यह होगा कि हम अपनी माँगोंको स्वीकार करानेके लिए काम करें। और हम देशके इतिहासमें अपने विकासकी ऐसी अवस्थामें पहुँच गये हैं कि यदि हममें किसी भी बुद्धिसंगत प्रस्तावके सम्बन्धमे वास्तविक मतैक्य हो जाये तो उसे स्वीकार करानेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। इसलिए मै आशा करता हूँ कि लखनऊमें नेता लोग इस कामको सम्पन्न कर देनेका संकल्प लेकर मिलेंगे और जो सदस्य वहाँ जायेंगे वे इस रिपोर्टकी धज्जियाँ उड़ा देनेके खयालसे इसकी आलोचनात्मक परीक्षा नही करेंगे, बल्कि एक समुचित समाधान ढूँढ़नेकी दृष्टिसे इसपर विचार करेंगे। और यदि वे रिपोर्टके प्रति यह रवैया रखेंगे तो सिफारिशोंका समर्थन अवश्य करेंगे। हाँ, यदि किसीके पास वैसा न करनेके लिए कोई उचित कारण हो, ऐसा उचित कारण जो किसी भी समझदार आदमीको ठीक मालूम हो, तो बात अलग है। इस प्रकार इस रिपोर्टकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित करते हुए मैं पण्डित मोतीलाल नेहरूको बधाई देता हूँ, जिनके प्रयत्नके बिना न कोई समिति नियुक्त होती, न मतैक्य होता और न रिपोर्ट ही तैयार हो पाती।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-८-१९२८

२२०. टिप्पणियाँ

बारडोली-कोषमें चन्दा देनेवालोंके लिए

बारडोली-सत्याग्रहके लिए कोष एकत्र करनेके लिए की गई अपीलका लोगोंने जितनी उदारताके साथ सोत्साह उत्तर दिया है, वह बारडोली-सत्याग्रहकी अखिल भारतीय लोकप्रियताका निश्चित प्रमाण है। बारडोलीके प्रश्नके निबटारे और फलस्वरूप सत्याग्रह बन्द कर दिये जानेसे कोषको आगे चालू रखना अनावश्यक हो गया है। इसलिए लोगोंसे अनुरोध है कि वे कोषके लिए और चन्दा न भेजें। मगर इसका मतलब यह नहीं कि अब पैसेकी जरूरत होगी ही नहीं। जाँचके सिलसिलेमें अब भी काम करना शेष है और उसपर कुछ खर्च तो बैठेगा ही। और सत्याग्रह-संघर्षके दौरान जो भारी शक्ति पैदा हुई, उसे यदि बरबाद नही करना है तो रचनात्मक कार्य दूने जोरसे करना होगा। इसलिए जो पैसा बच रहा है उसका उपयोग अव्वल तो जाँचके सम्बन्धमें होनेवाले खर्चके सिलसिलेमें किया जायेगा और दूसरे, उसके

१. २८ अगस्त, १९२८ को होनेवाला सम्मेलन; देखिए "लखनऊके बाद", ६-९-१९२८।

साथ-साथ दो ताल्लुकोंमें रचनात्मक कार्यपर किया जायेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संघर्षको संगठित कर पाना इसीलिए सम्भव हुआ कि बारडोलीमें गत सात वर्षोंसे रचनात्मक कार्य चल रहा था। मुझे मालूम है कि कुछ स्थानोंमें कांग्रेस कमेटियों तथा खास-खास लोगोंने बारडोलीके लिए और भी धन इकट्ठा कर रखा है, लेकिन उन्होंने इन रकमोंको किस्तोंमें भेजना पसन्द किया है। उन्हें यह सूचित करनेकी जरूरत नहीं कि उनके पास अब जो पैसा बच रहा हो उसे वे या तो साबरमती आश्रमको भेज दें या बारडोली स्वराज आश्रमको, अथवा नवजीवन कार्यालयको या कांग्रेस कार्यालय, अहमदाबादको। मुझे मालूम हुआ है कि श्रीयुत वल्लभभाई पटेल हिसाब-किताबकी विधिवत् लेखा-परीक्षा करवाकर उसे प्रकाशित करनेकी व्यवस्था कर चुके हैं।

दक्षिण आफ्रिकासे मिला चन्दा

दक्षिण आफ्रिकासे एक भाई लिखते हैं:

> **भारतसे रायटरने तार दिया है कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय बारडोली लगानबन्दी आन्दोलनके लिए प्रति मास पाँच लाख रुपये भेज रहे हैं। यह बात घोर रूपसे अतिरंजित तो है ही, साथ ही दुष्टतापूर्ण भी है। भारतको भेजे पैसेके कारण उत्पन्न पूर्वग्रह अब और उग्र हो उठेगा और उसमें तीखापन आ जायेगा। जहाँतक मैं मालूम कर पाया हूँ, बारडोली-कोषके लिए कुल मिलाकर ५०० पौंड भेजे गये हैं।**

बारडोली-संघर्षके विरुद्ध झूठे प्रचारोंकी जो मुहिम चलाई गई है, उसे मैं बड़े दु:खके साथ लक्षित करता रहा हूँ। जाहिर है कि इस संघर्षको हानि पहुँचानेके लिए हर तरहकी नीचता और बिलकुल साफ तौरपर बेहूदा दीखनेवाली बातोंका सहारा लिया गया, यद्यपि इस संघर्षका उद्देश्य किसीका नुकसान करना नहीं था और न इसका कोई राजनीतिक लक्ष्य ही था। सचाईको जाननेकी कोई परवाह किये बिना और शायद इस संघर्षको हानि पहुँचानेके इरादेसे इस झूठको प्रचारित किया गया कि सत्याग्रहियोंको दक्षिण आफ्रिकासे लाखों रुपये मिल रहे हैं। खैर, सत्याग्रहके उद्देश्यकी तो झूठे प्रचारसे कोई हानि नहीं हुई। लेकिन यदि गोरे उपनिवेशियोंको यह विश्वास दिलाया जा सके कि दक्षिण आफ्रिकासे बारडोलीको मोटी-मोटी रकमें भेजी जा रही हैं और सो भी एक ऐसा आन्दोलन चलानेके लिए जो शायद उन्हें पसन्द न हो तो दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके हितको बड़ी आसानीसे हानि पहुँचाई जा सकती है। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि इस बातकी ओर दक्षिण आफ्रिकामें बहुत ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया होगा। जो भी हो, जो बात पत्र-लेखकने लिखी है, उसकी पुष्टि मैं कर सकता हूँ। बारडोली-कोषमें कहाँसे कितनी रकम आई, इसका हिसाब बारडोलीमें पड़ा है और उसे कोई भी देख सकता है और देखनेवाले पायेंगे कि दक्षिण आफ्रिकाको तार द्वारा दी गई भड़कानेवाली सूचनाकी अपेक्षा इस पत्र-लेखक द्वारा दी गई जानकारी ज्यादा सच्ची है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-८-१९२८

२२१. हमारी जेलें

मैं भारतकी जेलोंमें दो वर्ष रहा। फिर भी देखता हूँ कि मेरी अपेक्षा बहुत कम समय तक इन जेलोंमें रहनेवाले लोग इनके रंग-ढंगके बारेमें मुझसे कहीं ज्यादा जानते है। हालमें रिहा किये गये सत्याग्रही कैदियोंने मुझे ऐसे अनेक कष्टों और कठिनाइयों के बारेमें बताया है जिनसे, यदि कैदियोंको मनुष्य समझकर उनका कुछ खयाल किया जाये तो, बचा जा सकता है। सूरत जेलसे आये एक सत्याग्रही कैदीने बताया कि सभी कैदियोंको एक ऐसे कमरेमें ठूँस दिया जाता था जिसमें न ठीकसे हवा आती है और न प्रकाश। जो खाना दिया जाता है वह पचनेवाला नही होता और कैदियोंको अपने-आपको साफ सुथरा रखनेकी कोई विशेष सुविधा नही दी जाती।

साबरमती केन्द्रीय जेलके कैदियोने मुझे ज्यादा विस्तारसे जानकारी दी है। जो आटा दिया जाता है, वह रेतीला रहता है, दालमें कंकड़ होते है और अक्सर चूहे आदिकी मींगे मिली रहती है। सत्याग्रही लोग इसके लिए जेल-अधिकारियोंको माफ कर देनेको तैयार हैं। उनका कहना है कि यह तो जिन कैदियोंको सफाई-पिसाईका काम दिया जाता है, उनकी गलती थी। मैं ऐसा दृष्टिकोण अपनानेमें असमर्थ हूँ। मेरा खयाल है कि खाद्य पदार्थोंकी सफाईका ध्यान रखना अधिकारियोका कर्त्तव्य है। इसके लिए वे या तो बाहर इनकी सफाई कराये या अगर जेलोंमें सफाई करायें तो इस कामकी खुद ठीकसे निगरानी करें। कैदियोंसे यह अपेक्षा करना व्यर्थ है — विशेषकर उन्हें जिस दशामें रखा जाता है, उसे देखते हुए — कि वे यह काम या कोई भी काम अच्छी तरहसे और विवेकपूर्वक करेंगे। उनसे रसोई पकानेका यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम लेनेके बजाय यह अधिक अच्छा और आर्थिक दृष्टिसे लाभकर रहेगा कि खाना पकानेका और उससे पहले उसकी सफाई-पिसाई आदिका काम भरोसेके लायक दूसरे लोगोंसे कराया जाये और कैदियोंसे ऐसे दूसरे काम लिये जायें जो आर्थिक दृष्टिसे अधिक लाभप्रद और स्वास्थ्यको हानि पहुँचानेवाले न हों।

और शिकायत केवल यही नहीं है कि भोजन अस्वच्छ और जैसे-तैसे पकाया हुआ होता था। उन्हें सब्जीके नामपर ऐसी सूखी-सी गोभी दी गई जिसमें फफूँदी लग गयी थी और जिससे दुर्गन्ध आने लगी थी। लोगोंने इसका जैसा वर्णन किया उससे मैंने तो यही समझा कि पशुओंके लिए संग्रह करके रखी गई हरी घासकी नकलपर इस गोभीको मनुष्यको खिलानेके लिए सुखाकर रखा गया था और बादमें इसमें खूब उबाल देकर इसमें फिरसे रस और हरापन लाया गया था। यदि मुझे दी गई जानकारी सही हो तो मै तो यही कह सकता हूँ कि जेल-अधिकारी कैदियोंकी जानसे, जिनकी हिफाजतकी जिम्मेदारी उन्हें सौंपी गई है, खिलवाड़ कर रहे हैं।

रिहा किये गये कैदियोंमें से तीन बहुत कमजोर थे। इनमें से एक विद्यार्थी था जो पूरी सजा काटकर बहुत ही नाजुक हालतमें जेलसे बाहर आया था। उसकी हालत इतनी बिगड़ गई थी कि महाविद्यालयके आचार्यो और विद्यार्थियों तथा डाक्टरों

द्वारा किये गये तमाम सेवा-उपचारके बावजूद अभीतक वह खतरेसे बाहर नही निकल पाया है। मुझे बताया गया कि उसे बुखार था, तब भी कई दिनों तक उसे ज्वारकी मोटी रूखी-सूखी रोटीपर रखा गया। अजब नहीं कि इस अपाच्य रोटीके कारण ही उसकी अँतड़ीमें सूजन पैदा हो गई हो।

इन आरोपोंके उत्तरमें यदि अधिकारीगण कोई स्पष्टीकरण देना चाहें तो उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूँगा।

मैं जानता हूँ आज जैसी परिस्थितियाँ हैं, उनमें कैदी लोग घरेलू जीवनकी सुविधाओंकी अपेक्षा नहीं रख सकते। मै यह भी जानता हूँ कि सत्याग्रहियोंको अपनी इस अवस्था पर, जिसे एक प्रकारसे उन्होंने अपनी इच्छासे ही स्वीकारा है, शिकायत नही करनी चाहिए। फिर भी, किसी भी सत्याग्रहीके साथ, चाहे वह शिकायत करे या नहीं, मानवोचित व्यवहार तो करना ही चाहिए। और उसे ऐसा भोजन मिलना चाहिए जो उसके शरीरके लिए उपयुक्त हो और प्राथमिक महत्त्वकी बात तो यह है कि स्वच्छ और स्वच्छ ढंगसे तैयार किया हुआ हो।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-८-१९२८

२२२. पत्र: मोतीलाल नेहरूको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१६ अगस्त, १९२८

प्रिय मोतीलालजी,

आपकी रिपोर्ट एक भारी महत्त्वका दस्तावेज है। मुझे उम्मीद है कि लखनऊमें जो सम्मेलन होने जा रहा है वह बिना सोचे-समझे इसकी धज्जियाँ नहीं उड़ाने लग जायेगा, बल्कि इसपर जितनी गम्भीरतासे विचार करना योग्य है उतनी गम्भीरतासे विचार करेगा। रिपोर्ट अपने-आपमें इतनी महत्त्वपूर्ण है कि लखनऊमें सभी सदस्योंका उपस्थित होना निश्चित है।[1]

आपकी चेतावनी मिलनेके पहलेसे ही मै यह सोचने लग गया था कि अगले साल क्या किया जा सकता है। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि अभीतक मुझे कोई मनपसन्द चीज सूझ नहीं पाई है। शायद लखनऊसे कुछ प्रेरणा मिले।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३६६०) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "नेहरू रिपोर्ट", १६-८-१९२८ भी।

२२३. पत्र : नानाभाई मशरूवालाको

आश्रम, साबरमती
१६ अगस्त, १९२८

भाईश्री नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। नीलकंठका भी मिला। और किशोरलालका पत्र भी आया है। ज्यों-ज्यों विचार करता हूँ त्यो-त्यों ऐसा लगता है कि बालूभाई गये ही नही है। उनकी फैलाई हुई सुगन्ध क्या कभी उड़ सकती है? तथापि यह ठीक है कि हमें उनके देहावसानका दुःख होता है। मुझे इस दुःखमें अपना सहभागी मानना। नाथसे कहना कि कल मैंने किशोरलालको अकोलामें रुक जानेका तार दिया है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह सबेरे तीन बजे लिखवाया था। उसके बाद तुम्हारा बम्बईसे भेजा हुआ पत्र मिला।

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६६०) से।
सौजन्य : कनुभाई नानालाल मशरूवाला

२२४. भाषण : अहमदाबादमें[1]

[१६ अगस्त, १९२८][2]

आजके इस उत्सवमें मेरे हाजिर होनेकी कोई जरूरत नही थी और न यहाँ बोलनेकी ही जरूरत है। वल्लभभाईको जहाँ मानपत्र दिया जाये, और जहाँ मैं होऊँ वहाँ यदि मुझसे कुछ बोलनेको कहा जाये तो उसका अर्थ यह हो जाता है कि हम दोनों इकट्ठे होकर आप लोगोंके समक्ष और आपकी सहमतिसे एक-दूसरेकी प्रशंसा करनेवाले लोगोंका एक संघ बना रहे है और उस संघके सदस्य बन रहे हैं। अहमदाबादके बुद्धिमान् नागरिकोंको तो यह चीज बिलकुल भी सहन नहीं करनी चाहिए।

वल्लभभाई अपने नामसे पटेल है और उनकी ख्याति भी उसीके अनुरूप है। बारडोलीमें विजय प्राप्त करके उन्होंने पटेलोंकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की है। कोई सेठ अपनी साख, अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करे तो क्या किसीने ऐसा सुना है कि कोई उसे मानपत्र देता है। मंगलदास सेठ अपने पास आनेवाली सारी हुंडियोंको सकारते

१. १९-८-१९२८ के **नवजीवन**में "अमृतवाणी" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित।
२. बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, पृ० ५३९, अनुच्छेद १३१४ के अनुसार।

हैं, इसके लिए उन्हें कितने मानपत्र दिये गये हैं। हाँ, यह मैं नहीं जानता कि यदि वे इन हुंडियोंको न सकारें तो आप क्या करेंगे।

यदि आप इस जीतकी बधाई लेना या देना चाहते है तो आप उसके रहस्यको समझिए और समझकर उसका अनुकरण कीजिए। या यों कहूँ कि उसमें से जितना आप हजम कर सकें उतना ले और उसे अपने आचरणमें उतारें। सफलता अनुकरणमें नहीं होती और किसी वस्तुका अक्षरशः अनुकरण किया भी नही जा सकता। दो भिन्न अवसरोंमें कुछ समानता भले दीखती हो किन्तु जिस तरह हर मनुष्यकी एक निजी विशेषता होती है उसी प्रकार हर अवसरकी भी एक निजी विशेषता होती है। अतः जो मनुष्य सत्याग्रहके रहस्यको समझकर, उसे पचाकर, अवसरकी विशेषताके अनुसार उसे अपने आचरणमें उतारता है उसीको सफलता मिलती है।

असहयोग, सत्याग्रह, सविनय कानून-भंग आदि शब्दोंका नाम असंख्य बार लिया जाता है। उनके नामपर जिस तरह कुछ अच्छे काम हुए हैं, उसी प्रकार कुछ गलत काम भी हुए है। हम इन शब्दोंका उच्चारण करते है क्योकि प्रत्येक पक्षके कार्यकर्त्ताओंमें स्वराज्यकी आकांक्षा तो है। किन्तु सिर्फ आकांक्षा से तो कुछ नही हो सकता। प्यासा आदमी 'प्यास-प्यास' चिल्लाये तो इससे उसकी प्यास नही बुझ सकती। उसे तालाब या कुआँ खोदना होगा या वहाँसे पानी मँगाना होगा तभी उसकी प्यास बुझेगी। इसी तरह यदि आप सत्याग्रहकी प्रशंसा सुनकर ही सन्तोष कर लेंगे तो आप भूल करेंगे।

इसलिए मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप सत्याग्रहका रहस्य समझिए। बारडोलीमें वल्लभभाईकी नहीं सत्य और अहिंसाकी विजय हुई है। अगर आपको ऐसा लगता हो कि यह बहुत अच्छा हुआ और ठीक हुआ तो आप अपने हर कार्यमें इसका प्रयोग कीजिए। आप प्रयोग करेंगे तो आपको सफलता मिलेगी ही, यह मैं नहीं कह सकता। ईश्वरने हमें त्रिकालदर्शी नही बनाया इसलिए हम यह नहीं जान सकते कि हमें सच्ची सफलता मिली है या नहीं। कोई मनुष्य किसी समय सफल हुआ है या असफल, यह अन्ततक नहीं कहा जा सकता। इसीलिए मणिलाल[१] यह अमर वाक्य कह गये है: "लाखों निराशाओंमें अमर आशा छिपी हुई है।" अतः यदि किसी प्रकारकी आशा किये बिना, निष्काम भावसे आप उस सत्य और अहिंसाकी आराधना करेंगे जिसकी आराधना वल्लभभाईने की है तो आपको जयमाला पहनानेवाले अवश्य मिल जायेंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १९-८-१९२८

१. गुजराती कवि।

२२५. तार : राजेन्द्रप्रसादको[1]

[१६ अगस्त, १९२८ या उसके पश्चात्]

राजेन्द्रप्रसाद
जयावती
लन्दन

सम्मेलन सफल हो।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४३८१) की माइक्रोफिल्मसे।

२२६. पत्र : सी० ए० एलेक्जेंडरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपने उत्तर[2] भेजनेमें जो तत्परता दिखाई, उसके लिए धन्यवाद। मुझे श्री सकलातवाला का पत्र[3] भी मिला है।

मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछनेके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। आपको यह बताते हुए खुशी हो रही है कि मेरा स्वास्थ्य काफी अच्छा है।

अब मैं साबरमती लौट आया हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री सी० ए० एलेक्जैंडर
महाप्रबन्धक, टाटा आयरन ऐंड स्टील कं० लि०
जमशेदपुर, (बरास्ता-टाटानगर)

अंग्रेजी (एस० एन० १२७७८) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह तार डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा लन्दनसे १६ अगस्त, १९२८को भेजे गये तारके उत्तरमें दिया गया था। उस तारमें उन्होंने गांधीजी से एर्दे, हालैंडमें होनेवाले युवक-सम्मेलनके लिए सन्देश भेजनेको कहा था।

२. ११ अगस्तका पत्र; जिसमें सी० ए० एलेक्जेंडरने लिखा था कि "मैं. . .आपको यह बताना चाहता हूँ कि आप जिन वाक्योंकी बात कर रहे हैं उन्हें आपके एक भाषणके आधारपर हमारे बम्बई-स्थित-प्रधान कार्यालयमें तैयार किये गये एक पर्चेमें इस संस्थानके अध्यक्ष श्री [एन० बी०] सकलातवाला और अन्य लोगोंने, जिन्हें आप जानते हैं, डाला था।. . ." (एस० एन० १३२३९)

३. अपने १५ अगस्तके इस पत्र (एस० एन० १४४५७) में सकलातवालाने लिखा था कि "यदि हमने . . . मजदूरोंको अपनी स्थिति समझाने और कामको चालू रखनेका महत्त्व बतानेकी आशासे [श्रमिकोंके] झगड़ेके सिलसिलेमें आपके नामका दुरुपयोग किया हो तो मुझे उसके लिए खेद है।. . ."

२२७. पत्र : उर्मिलादेवीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अगस्त, १९२८

प्रिय बहन,

आपने अखबारोंमें पढ़ा होगा कि मैं आश्रम लौट आया हूँ। अब आप जब चाहें, धीरेनके साथ आ जायें। मैं धीरेनकी निराशाको समझ सकता हूँ, बल्कि उसे ठीक भी मान सकता हूँ। लेकिन जो धीरज रखते हैं, उन्हें सब-कुछ मिल जाता है, और यदि धीरेनमें धैर्य हो और वह अपनेको सभी तरहसे योग्य बना ले तो वह अन्तिम संघर्षमें शामिल होनेकी आशा कर सकता है। और जो लोग इस संघर्षमें भाग लेना चाहते हैं, वे यदि ऐसा करें जिससे इस संघर्षका प्रसंग जल्दी ही आ जाये तो देर-सवेर इसे आना ही है।

आशा है, सुधीर अब पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो चुका होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीमती उर्मिलादेवी
४–ए, नफर कुंडू रोड
कालीघाट
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३४९३) की फोटो-नकलसे।

२२८. धर्मके नामपर अधर्म

मथुरासे एक भाई लिखते हैं :[1]

पत्रकी हिन्दी समझनेमें आसान है इसलिए मैंने उसका अनुवाद नहीं किया। उत्तरमें बसनेवाले शास्त्रज्ञ ब्राह्मण भी गुजरातके श्रद्धालु तथापि गलत राहपर चलनेवाले वैष्णवोंके बारेमें क्या विचार रखते हैं, उसे पत्र-लेखकके शब्दोंमें बतलानेके लिए मैंने ऊपरका पत्र उन्हींकी भाषामें दे दिया है। मिष्टान्न भोजन करानेमें हजारों रुपये खर्च करना और इस क्रियाको धर्म समझना तो इसी युगकी बलिहारी है। वैष्णव धर्ममें 'पराये दुःख' का दर्शन[2] ही केन्द्रबिन्दु है, जबकि भावुक कहे जानेवाले वैष्णवोंने

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें धर्मके नाम पर होनेवाले अपव्ययका वर्णन था। साथमें गायके प्रति किये जानेवाले बुरे व्यवहार तथा दूध-दहीकी कमीका भी उल्लेख था।

२. गांधीजी का इंगित "वैष्णवजन तो तेणे कहीये जे पीर पराई जाणे रे" पदकी ओर है।

उसे विलासका साधन बना डाला है। इस देशमें जैसा दूसरे स्थानोंमें होता है, उसी तरह गोवर्धनमें भी गोवंशका नाश होता जा रहा है। दूध, घी की कमीकी जो बात इस पत्रमें लिखी है, उसका अनुभव सभी यात्रियोंको हुआ है। गुजरातके धनिक वैष्णव इस पत्रपर ध्यान दें, चेतें और धर्मके नामपर किये जानेवाले अधर्मसे बचें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-८-१९२८

२२९. शास्त्रके अनुकूल

अस्पृश्यताकी जड़ कितनी ढीली हो गई है, इसके प्रमाण जगह-जगहसे मिलते रहते हैं। भारत-भूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजी सनातन धर्मके स्तम्भ हैं। उन्होंने वर्धामें श्री लक्ष्मीनारायण देवस्थानके बारेमें श्री जमनालालजी को निम्नलिखित पत्र लिखा है

> **आपने अपने भगवद्भक्त पूर्वजोंके स्थापित किये भगवान् लक्ष्मीनारायणके मन्दिरमें ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-पर्यन्त सब श्रद्धालु भाइयोंको जगत्पिताकी पावन मूर्तिका दर्शन करनेकी स्वतन्त्रता दी और जो कुएँ बनवाये उनपर सब जातिके भाइयोंको स्वच्छ बरतनसे पानी भरनेका अधिकार दिया यह सुनकर मुझको बहुत सन्तोष हुआ। आपके ये दोनों काम शास्त्रके सर्वथा अनुकूल हैं और घट-घटवासी विश्वात्मा इससे प्रसन्न होगा।**

जमनालालजीको श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण शर्मा और श्री आनंदशंकर ध्रुवकी तरफसे भी ऐसी ही सम्मतियाँ मिली हैं। जो सनातन धर्मका पालन करनेका दावा करते है, वे क्या अब भी अस्पृश्यताको धर्म समझकर पकड़े रहेंगे?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-८-१९२८

२३०. एक अज्ञात सेवकका देहान्त

मंचपर खड़े होने और बैठनेवाले नेताओंको तो हम सभी जानते हैं। किन्तु हम सब उस पर इस तरह ठसाठस बैठना चाहें जिससे मंच ही टूट जाये तब भी उसपर बैठनेवाले समुद्रमें बूँदके बराबर जान पड़ते है और होते भी है। किन्तु समुद्रके सामने बूँदका जितना महत्त्व होता हैं उतना ही महत्त्व मंचवालोंका होता है। अतः मंचपर बैठनेकी कभी इच्छा न कर जनसाधारण-रूपी समुद्रम ही रहकर आनन्द माननेवाले और अज्ञात रूपसे सेवा करनेवाले ही सैनिक सच्चे सेवक हैं।

बम्बईके बालूभाई इच्छाराम मशरूवाला एक ऐसे ही सेवक थे। उनके पास धन था और बुद्धि थी। उन्होंने उनका उपयोग सदा अज्ञात रूपसे सेवा करनेमें ही किया था। बालूभाईका समस्त परिवार सुसंस्कृत है। उन्होंने सदा जहाँ-जहाँ उनसे हो सका, वहाँ-वहाँ तन, मन और धनसे सेवा करके ही सन्तोष नही माना; बल्कि

अपने छोटे भाई किशोरलालको सुसंस्कारोंसे सम्पन्न किया, वकील बनाया और फिर देश-सेवाके निमित्त अर्पण कर दिया। इस सुसंस्कृत सेवकका देहान्त गत सप्ताह[१] हुआ है। ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति दे और निरभिमान रहकर सेवा करनेवाले ऐसे असंख्य सेवक तैयार करे। उन्होंने मरते-मरते एक पत्र लिखा था। यह पत्र देश, सत्य और अहिंसाके प्रति उनके प्रेमको व्यक्त करता है। इसलिए मै उसे यहाँ देता हूँ[२]।

उनके सम्बन्धमें भाई किशोरलालने मुझे लिखे अपने पत्रमें एक अत्यन्त करुण संक्षिप्त चित्र दिया है उसे भी मैं यहाँ देता हूँ:[३]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-८-१९२८

२३१. राज्यसत्ता बनाम लोकसत्ता

राज्यसत्ताकी अपेक्षा लोकसत्ता अधिक बड़ी वस्तु है, यह बात बारडोलीके लोगोंने दो और दो चारकी तरह स्पष्ट सिद्ध कर दी है। यह कहा जा सकता है कि वे लोग इस सत्यको केवल अपनी शान्त रहने और शान्तिपूर्वक प्रतिरोध करनेकी शक्तिके आधारपर ही सिद्ध कर सके है।

राज्यसत्ता पूरी तरह राजदण्ड पर निर्भर है। यदि लोग राजदण्डका भय त्यागकर और उसे मिथ्या मानकर एवं उसका प्रतिकार हिंसासे न करते हुए निर्भय होकर विचरें तो उनकी सदा जीत ही होगी। जबतक बारडोलीके लोगोंको राजदण्ड-का भय था तबतक वे न्याय प्राप्त नहीं कर सके थे। किन्तु जब उन्होंने अपना वह भय त्याग दिया तब उन्होंने एक पलमें ही यह देख लिया कि शासक उनपर निर्भर थे न कि वे शासकोंपर।

लोगोंने यह भी देख लिया कि यदि वे स्वयं हिंसाका प्रयोग करें तो जीत राजदण्डकी ही होगी। यदि लोग राजदण्डका ताप सहन कर लें तो वह दण्ड निरर्थक हो जाता है। उन्होंने यह भी देख लिया कि दण्डकी शक्ति लोगोंके शरीर और धनसे आगे नहीं जा सकती। वे यह भी देख चुके हैं कि उनके हृदयको तो राजदण्ड स्पर्शतक नहीं कर सकता। वे अपने हृदय अपने सरदारको सौंपकर राज-दण्डके भयसे मुक्त हो गये।

इससे हम देख सकते हैं कि लोगोंको अपनी मुक्तिके लिए न शरीर-बलकी जरूरत है और न बुद्धिबल की, उसके लिए उन्हें केवल हृदय-बलकी ही जरूरत है। हृदयबल श्रद्धापर निर्भर है। यहाँ उन्हें अपने सरदारपर श्रद्धा रखनी थी।

१. १३ अगस्त, १९२८ को; देखिए "तार: नानाभाई मशरूवालाको", १३-८-१९२८।

२ और ३. यहाँ नहीं दिये जा रहे है।

यह श्रद्धा कृत्रिम उपायसे उत्पन्न नहीं हो सकती। सरदार इस श्रद्धाके पात्र थे। इसलिए उन्होंने लोगोंके हृदय चुम्बककी तरह अपनी ओर खींच लिए।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि सत्याग्रहकी लडाईमे सुसंस्कृत, त्यागी और लोगोंकी भावनाको परखनेवाला सरदार मिल जाये और लोग वफादार रहे तो उनकी जीत अवश्य होती है।

इस लड़ाईमें सत्य और शान्ति प्रधान थे। लोगोकी माँग सच्ची थी और उसे सिद्ध करनेके लिए लोगोंने असत्यका प्रयोग नही किया। लोगोके सम्मुख अशान्ति अथवा हिंसाके कई अवसर आये, किन्तु उन्होंने पूर्ण शान्ति रखी। इसका अर्थ यह नही है कि लोग शान्तिको धर्मके रूपमें समझ गये है अथवा क्रोध उनके मनमें भी नहीं आता था; अवश्य ही वे शान्तिके व्यावहारिक रूपको समझ गये हैं; अपना कर्त्तव्य समझ गये हैं, उन्होंने अपने क्रोधको रोका और स्वयं मार-काट न करके उनपर जो-जो कष्ट आये उनको सहन किया।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १९-८-१९२८

२३२. हिन्दू धर्मकी ब्राह्मसमाज द्वारा की हुई सेवा[1]

२० अगस्त, १९२८

इस सभामें आकर ब्राह्मसमाजके शताब्दी उत्सवके इस शुभ अवसरपर मैं कुछ कहनेकी योग्यता रखता हूँ, ऐसा मै बिलकुल नही मानता। यह विनयकी भाषा नहीं है; मैं तो सच्ची बात कह रहा हूँ। तथापि मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ और यदि ब्राह्मसमाजके विषयमें कुछ कहूँगा तो प्रेम और भक्तिके अनुरोधसे ही कहूँगा। मैं रमणभाईका भक्त हूँ। जबसे मैंने रमणभाईको जाना तभीसे मै यह समझता आया हूँ कि रमणभाई अहमदाबादके भूषण हैं, गुजरातकी शोभा हैं। इसलिए जब विद्याबहनने मुझे लिखा, यदि मै आऊँ और इस अवसरपर दो शब्द कहूँ तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी, तो उनका अनुरोध मैं टाल नही सका। मैंने उन्हें जवाब दिया कि मै इस अवसरके लिए कोई तैयारी कर सकूँ, यह सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा कि तैयारी किये बिना अपने अनुभवके आधारपर जो कहना चाहूँ वही कहूँ। इसलिए मैं यहाँ आ गया।

मैं अपनेको इस कार्यके योग्य क्यों नहीं मानता इसका कारण मैं आपको बताऊँ। राजा राममोहन रायके कार्यके विषयमें मै अगर कुछ जानता हूँ तो उतना ही जानता हूँ जितना मैंने मित्रोंसे सुना है अथवा जब-तब समाचार-पत्रोंमें पढ़ा है। उसके सिवा मैं और कुछ नहीं जानता। इसका यह मतलब नही है कि राममोहन रायके प्रति मेरा आदर कुछ कम है। लेकिन मेरा अध्ययन जबसे समाप्त हुआ

१. ब्राह्मसमाजकी स्थापनाकी शताब्दि-पूर्तिके उपलक्ष्यमें अहमदाबादके प्रार्थना-समाजके भवनमें आयोजित सभामें दिये हुए भाषणका सारांश।

तभीसे मेरा जीवन बहुत व्यस्तताओंसे गुजरा है। इसलिए मुझे पढ़नेका समय बहुत कम मिला। इसलिए मै ब्राह्मसमाजके विषयमें किसी तरहके अध्ययनका दावा नहीं कर सकता। मै नही जानता कि मै अभी यहाँ क्या कहूँगा। मेरी ऐसी दयनीय स्थिति है कि मैंने इस सभामें आना तो स्वीकार कर लिया किन्तु मै इसकी कोई तैयारी नहीं कर सका। मैंने बहुत चाहा कि मेरे पास राममोहन रायकी जो छोटी-सी जीवनी है उसे पढ़ लूँ, ब्राह्मसमाजके सम्बन्धमें ही कोई किताब देख जाऊँ किन्तु इसके लिए एक क्षण भी मुझे नही मिला। इसलिए मैंने तो ईश्वरसे यही प्रार्थना करके सन्तोष कर लिया कि तू मेरे मुँहमें ऐसे कुछ शब्द देना जिनसे मै किसी तरह आजका यह काम निपटा दूँ।

यद्यपि ब्राह्मसमाजका अध्ययन मैंने बिलकुल नहीं किया है, किन्तु इस समाजके साथ मेरा सम्बन्ध बहुत निकटका और बहुत वर्षोंका है। १९१५ में मै हिन्दुस्तानमें आया और तभी ब्राह्मसमाजियोंके साथ मेरा निकटका परिचय हो गया था। इतना ही नही, बल्कि मुझे याद है कि १९०१ में और उससे भी पहले १८९६ में जब मै कलकत्ता गया था, तब भी ब्राह्मसमाजियोंका कुछ परिचय मुझे मिला था। जिस समय एक बेकार बैरिस्टरके रूपमें मै बम्बईमें अपना समय यों ही घूमने-फिरनेमें बिता रहा था, उस समय भी मुझमे एक तरहकी धार्मिक-जागृति थी, एक तरहकी जिज्ञासा थी। उस समय मेरी सहिष्णुताका कोई पार न था। ऐसा प्रमाणपत्र अगर कोई आदमी अपने-आपको ही दे तो यह आत्मश्लाघा कहलायेगी, मगर मेरे बारेमें आप ऐसा कोई आरोप न लगाइएगा। जिस तरह यह कहनेमें कोई आत्मश्लाघा नहीं है कि मै साठ बरसका हूँ, उसी तरह यह दावा भी सही है। किसी दिन किसी धर्मकी निन्दा करनेका मन ही नही हुआ। अपने इस स्वभावके अनुसार कि सभी धर्मोंमें जो अच्छा जान पड़े उसे ले लिया जाये और जो बुरा जान पड़े, उसके बारेमे उदासीन रहा जाये, मैं भटकता-भटकता बम्बईके प्रार्थना-समाजमें जाता था। मैंने देखा कि वहाँ बहुत आदमी नही आते थे और जो आते थे, वे ज्यादातर शिक्षित-वर्गके थे। यह बात सन् १८९२ की है। बादमें १८९६ में और फिर १९०१ में मैं कलकत्ता गया और १९०१ में गोखले तथा आचार्य रायके जरिये बहुतसे ब्राह्मसमाजियोंके साथ मेरा परिचय हुआ। उस समय गोखलेके यहाँ प्रो० काथवटे रहते थे। इसी समयकी बात है — महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरके यहाँ कोई उत्सव था। हमें महर्षिके दर्शन करनेकी इच्छा हुई। हम गोखलेकी अनुमति लेकर निकल पड़े और पैदल गये। महर्षिके दर्शनकी हमें बहुत इच्छा थी किन्तु इस समय महर्षि इतने बीमार थे कि वे हमसे मिल न सके। काथवटे तो संस्कृतके पण्डित थे। उन्हें तो हिन्दुस्तानके धर्मोंका गहरा ज्ञान था ही। मगर मैं तो कोरा जवान था। इसलिए मैं सुनकर जितना समझ पाता उसीसे सन्तोष कर लेता था। ब्राह्मसमाजके मन्दिरोंमें भी जाता था। पण्डित शिवनाथ शास्त्रीसे भी मेरा परिचय उसी समय हुआ। इसी समय मैंने यह भी जाना कि ब्राह्मसमाजके तीन भाग हैं। मै प्रतापचन्द्र मजूमदारके भाषण सुनने भी जाता था। उसके बादसे बंगालमें ब्राह्मसमाजसे मेरा परिचय बढ़ता ही गया।

इन सब अनुभवोंसे मैं देख सका कि ब्राह्मसमाजने हिन्दू-धर्मकी बहुत महत्त्वपूर्ण सेवा की है। तभीसे मेरी यह धारणा बँधी कि ब्राह्मसमाजने हिन्दुस्तान और खासकर बंगालके शिक्षित-वर्गको उबार लिया है। उस समय मैंने इसे शिक्षितवर्गका सम्प्रदाय माना था। आज इतने बरसोंके निकट सम्बन्धके बाद भी मेरा यह मत कायम है। उस समय शिक्षित-समाज संकटमें था। ऐसा भय था कि कहीं वे नास्तिक न हो जायें। भारतवर्षके बारेमें मेरी ऐसी धारणा है—सम्भव है वह मेरा मोह ही हो—कि भारतवर्षमें किसी आदमीका एकाएक नास्तिक हो जाना और बना रहना असम्भव है। भारतवर्षमें धर्मकी भावना बहुत अधिक है। वह बहुत बार अन्धविश्वासका, जड़ताका, पागलपनका रूप ले लेती है। तो भी मै मानता हूँ—मोहके वश होकर कहो या प्रेमके वश होकर—कि भारतवर्षमें बहुत दिनों तक किसीका नास्तिक बने रहना असम्भव है। तथापि इसमें कोई शंका नही है कि शिक्षित-समाजके ऊपर संकटकी तलवार लटक रही थी। इसी समय राममोहन रायका जन्म हुआ। मैंने सुना है कि उनपर ईसाई पादरियोंका असर था। मैंने काकासाहबसे सुना था, उन्होंने मुझे आज भी बताया कि राममोहन रायने फारसी और अरबीका गहरा अध्ययन किया था। राममोहन रायकी विद्वत्ताके बारेमे दो मत नही है। उनकी उदारताके बारेमें भी दो मत नही हो सकते। हिन्दू धर्म और उसमें भी उन्होंने वेद-धर्मका विशेष अध्ययन किया था। उन्होंने इन तीनों धर्मोका असर अपने ऊपर पड़ने दिया। इसके फलस्वरूप उन्हें लगा कि बंगालमें एक नया सम्प्रदाय खड़ा करना ही पड़ेगा। गुजरातमें हमें यह सुनकर आश्चर्य लगेगा। हम व्यापारी है। बंगालमें इससे उलटी परिस्थिति होनेके कारण वहम भी उतने ही बढ़े हुए थे, अंध रूढ़ियाँ इतनी ज्यादा चल रही थीं कि जिस तरह हम गुजरातमें रह सकते हैं, उस तरह राममोहन राय शायद वहाँ नहीं रह सकते थे। ४० बरस पहले काठियावाड़में किसी हिन्दूको जैसा जीवन बिताना हो, जो विचार रखने हों, कोई उसमें अड़ंगा नहीं लगाता था। अपनी बाल्यावस्थामें [धर्मके सम्बन्धमें] मै जो विचार करता था, मेरे माता-पिता या कोई अन्य उसका विरोध नहीं करते थे। बंगालमें इससे उलटी परिस्थिति थी। शिक्षित-वर्गको धर्म-विकासके लिए किसी साधनकी जरूरत थी। धर्मके नामपर हिंसा हो, धर्मके नामपर पशुओंका बलिदान किया जाये, तो यह शिक्षित-वर्ग इसे स्वीकार नही कर सकता था। जहाँ बुद्धिको कोई स्थान न हो, जहाँ अंध श्रद्धाको ही धर्मका रूप दिया जाता हो, वहाँ शिक्षित-वर्ग उसमें कैसे शामिल हो सकता है? उसे वह अपनी स्वीकृति कैसे दे सकता है? राममोहन राय चाहते तो केवल अपने ही मनका समाधान करके चुपचाप बैठे रह सकते थे। किन्तु वे तो सुधारक थे। जो वस्तु उन्होंने पाई थी, उसे ताला-कुंजी लगाकर, या जेबमें छिपाकर वे नहीं रख सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने विचार प्रकट किये, दूसरोंको उनमें शामिल किया और इस तरह इस समाजकी उत्पत्ति हुई।

तथापि यदि इसमें महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर-जैसे व्यक्ति शामिल न हुए होते तो यह समाज टिक नहीं सकता था। यह तो भविष्य ही बतायेगा कि ठाकुर-

परिवारने बंगालके जीवनमें, हिन्दुस्तानके जीवनमें और आगे जाकर कहूँ तो जगतके जीवनमें कितना बड़ा योगदान दिया है। जो हिमालयकी तलहटीमें बसते हैं, वे हिमालयकी पूरी शोभा नहीं देख सकते। उसी तरह इसकी सही कल्पना नही हो सकती कि धर्मके इतिहासमे ठाकुर-कुटुम्बका कितना बड़ा योगदान है। हम उनकी चमकसे चौधिया जाते है। उनमें भी रवीन्द्रनाथने तो हद कर दी है। यह प्रभाव ब्राह्मसमाजका है। ब्राह्मसमाजने बुद्धिका द्वार खोला सही, किन्तु श्रद्धाका स्थान भी कायम रखा। इसमें महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरका बहुत बड़ा भाग है। एक समय ऐसा भी आया जब ब्राह्मसमाजके संकुचित हो जानेका भय था। ईसाई धर्मका असर इतना बढ़ गया था कि वह वेद-धर्मसे अपना सम्बन्ध तोड़ ही डालता। मगर देवेन्द्रनाथकी तपश्चर्या और ज्ञानसे ब्राह्मसमाज इस संकटसे उबर गया और हिन्दू धर्मकी ही एक शाखा बना रहा।

ब्राह्मसमाजके इस योगदानका हिसाब अगर हम सौ वर्ष बाद लगाने बैठें तो वह हमें इस समाजकी संख्यासे नही लगाना चाहिए। इसकी संख्यासे कम है। यह संस्था संख्याकी वृद्धिके लिए कोई प्रयत्न भी नही कर रही है। ब्राह्मसमाजी आप ही अपना काम करते चले जा रहे है। समाजका प्रचार करनेमें कोई नही लगा है, इसलिए वे कम ही रहे हैं। ब्राह्मसमाजकी हिन्दू धर्मकी सेवा हिन्दूधर्मको शुद्ध रखनेमें है, हिन्दूधर्ममें बुद्धिवादको महत्त्वका स्थान दिलानेमें है। हम देख सकते है कि ब्राह्म-समाजमें उदारता है, झगड़ा नही है। वह संकुचित नही है, दूसरे धर्मोंके प्रति उदार है। कुछ संकुचित मनके हिन्दुओंने एक समय माना था कि ब्राह्मसमाज हिन्दू-धर्मसे भिन्न एक अलग ही धर्म है। कितने ब्राह्मसमाजी भी कहते थे कि हम अलग ही है, हिन्दू नही। ये दोनों मान्यताएँ भूलसे भरी हुई हैं। इन पुस्तकोंको जो यहाँ पड़ी हुई हैं, मैंने पहले नही देखा था। इन्हें मैंने थोड़ा उलट-पुलटकर देखा तो मै यह देख सका कि इनपर वैदिक धर्मकी छाया पड़ी है। वेद-धर्म तो ब्राह्मसमाजमें व्यापक वस्तु है। ब्राह्मसमाजकी सेवाका हिसाब जोड़ते समय इतिहास यह नही कहेगा कि इसमें इतने आदमी थे। वह तो यह कहेगा कि उसने हिन्दू धर्ममें प्रवेश करके उसकी उदारता कायम रखी और शुद्ध धर्म-भावना और एक ईश्वरकी भक्तिके तत्त्वका उत्तम विकास किया।

मैं ब्राह्मसमाजकी टीका सुनाने बैठूँ तो बहुत-कुछ सुना सकता हूँ। अपने निकट परिचयसे मैं बहुत-कुछ देख सका हूँ। किन्तु वह सुनानेका अवसर आज नही है। आज ब्राह्मसमाजकी शताब्दी है। इसलिए इसमें मैंने जो भला देखा है वही मुझे आपके आगे रखना चाहिए। अब मैं अपना काम निकाल लेना चाहता हूँ सही। मैंने आपको ब्राह्मसमाजके मधुर संस्मरण सुनाये सो इसलिए कि आपका धर्मभाव कायम रहे; आपमें अगर धर्मके विषयमें उदासीनता हो तो आपकी धर्मभावना जाग्रत हो।

बम्बई प्रदेशमें ब्राह्मसमाजका कमसे-कम प्रभाव पड़ा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि बम्बई प्रदेशमें धर्मभावना कम थी। कारण यह है कि यहाँ पर जो सम्प्रदाय थे, वे जाग्रत रहे हैं। बम्बईके प्रार्थना-समाजका उद्देश्य भी इतना ही था कि जो

लोग धर्मके विषयमें उदासीन अथवा नास्तिक थे, उन्हें कुछ धर्म-भावना मिले। मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि ब्राह्मसमाजको जितनी सफलता बंगालमें मिली, उतनी बम्बईमें न मिलनेका कारण यह है कि यहाँ धर्म-भावना बंगालके समान कम नही हो गई थी।

धर्मका तात्पर्य संकुचित सम्प्रदाय या केवल बाह्याचार नही है। धर्मका व्यापक अर्थ है—ईश्वरत्वके विषयमें हमारी अटल श्रद्धा, पुनर्जन्ममे अविचलित श्रद्धा, सत्य और अहिंसामें हमारी पूर्ण श्रद्धा। आज तो पुस्तकों और निबन्धोंमे धर्मकी चर्चा ही भरी होती है। आज धर्मके नामपर अधर्म चलता है, पशुबलि चलती है। बंगालमें आज भी हजारों निर्दोष बकरों और भेड़ोंकी बलि दी जाती है। मद्रास इलाकेमें और महाराष्ट्रमें कई जगह धर्मके नामपर ऐसी कई वस्तुएँ आज भी चल रही है जिनके बारेमें मेरा खयाल था कि वे तो बन्द हो गई होंगी। मै मानता हूँ कि यह धर्म नहीं किन्तु अधर्म है, एक प्रकारकी मूढ़ता है। इस मूढ़तासे निकल जाना युवक-वर्ग, शिक्षित-वर्गका धर्म है। राजनीतिक विषयोंमें आज हम इतनी दिलचस्पी लेते है कि राजनीतिक सभाओंमें हजारोंकी संख्यामें जाते है। इतनी दिलचस्पी हमें धर्म-मन्दिरोंके सम्बन्धमें नही है। धर्म-मन्दिर, देवालय वगैरहको हमने स्त्रियोंके लिए, अज्ञानियोंके लिए या बावलोंके लिए रख छोड़ा है। जहाँ सचमुचमें ईश्वरकी प्रार्थना होती है, वहाँ बहुत कम आदमी जाते है। हम शिक्षित-वर्गके लोगोंको यह वृत्ति छोड़ देनी चाहिए।

अगर आपको पता न हो तो मै बतलाता हूँ। वल्लभभाई बारडोली जाकर लड़ाई जीत आये, उसके लिए आपने उन्हें सोनेकी मालाएँ पहनाई, अब भी दावतें दे रहे हैं, किन्तु इन्होंने जो एक दूसरी विजय प्राप्त की है, उसका पता आपको नही है। वल्लभभाईको बारडोलीकी लड़ाईमें 'वल्लभ' मिले है। यह वल्लभभाईकी कही हुई बात नहीं है, किन्तु मुझसे एक नहीं बल्कि उनके नीचे काम करनेवाले अनेक स्वयंसेवकोंने यह बात कही है। लोगोंको अपनी शक्तिका भान कराते-कराते वल्लभभाईकी धर्म-जागृति विशेष हुई है। बात यह नही है कि उनमें पहले धर्म-जागृति न थी, बल्कि यह बात उन्होंने बारडोलीमें सीखी कि धर्म कैसी चमत्कारपूर्ण वस्तु है। उन्होंने देखा कि अगर हमें अनपढ़ जनतामें काम करना है, रानीपरज लोगोंकी —जिन्हें हम कलतक कालीपरज कहा करते थे—सेवा करनी है, उन्हें स्वराज्य-वादी यानी रामराज्यवादी बनाना है तो ये काम धर्म-जागृतिके द्वारा ही हो सकेंगे। अगर कोई वल्लभभाईके बारडोलीके भाषणोंका संग्रह करके छपाये तो वह संग्रह धार्मिक भाषणोंका संग्रह हो जायेगा। वे अगर लोगोंको एक कर सके हैं तो रामनामके द्वारा ही। उनके स्वयंसेवक 'रघुपति राघव राजाराम' की धुनमें लोगोंको तल्लीन कर देते हैं। वल्लभभाई लोगोंको समझा सके कि जिस ईश्वरके नामपर हमने प्रतिज्ञा ली थी उसे हम धोखा न दें। मैं तो बारडोलीके लोगोंको भली-भाँति पहचानता हूँ, क्योंकि वहाँके बहुत-से आदमी दक्षिण आफ्रिकामें मेरे मुवक्किल थे। मैं यह भी जानता हूँ कि इन लोगोंकी प्रतिज्ञाकी क्या कीमत है। ऐसे लोगोंको वल्लभभाई कैसे समझा

सके? उनकी यह लड़ाई एक लाख रुपये बचानेके लिए नही थी। बारडोलीके लोगोंमें यह शक्ति है कि वे ऐसे कई लाख चाहें तो फेंक दें। बारडोलीके पटेलोके लिए तो एक लाख रुपये उनके हाथका मैल है। उसे वे जब चाहें उठाकर पानीमें बहा दे सकते है। वल्लभभाईने लोगोको समझाया कि ईश्वरके नामपर प्रतिज्ञा लेनेवालेके प्रतिज्ञा तोड़नेपर ईश्वर उससे रूठेगा, और राजा भी उसकी रक्षा नही कर सकेगा। इसी धर्मके बलपर उन्होंने स्त्रियोंमें भी जागृति पैदा की। मै कहना चाहता हूँ कि अगर शिक्षित-वर्गको लोकसेवा करनी हो तो उनमें धर्मकी आस्था होनी चाहिए। उसके अभावमें वे सेवा नही कर सकेंगे।

मेरे पास युवकोंके ढेरके-ढेर पत्र आते है। वे अपनी अनेक कुटेवोंकी बात लिखते है और अपने जीवनकी शून्यताकी बात करते है। मै इन्हें क्या डाक्टरी सलाह दूं? इस बारेमें ऐसी सलाहका बहुत कम उपयोग है। धर्म पुकार-पुकारकर कहता है कि कुटेवोंसे मुक्ति तो ईश्वरकी कृपाके बिना नही मिल सकती। युवक-वर्ग उसे अगर प्राप्त करना चाहता हो तो आज इस प्रसंगपर हमारा कर्त्तव्य है कि चाहे जिस तरह हो, हम अपने जीवनमे धर्मको उसका योग्य स्थान दें।

अन्तमें युवक वर्गसे मैं कवि अखाके शब्दोंमें कहना चाहता हूँ कि — 'सूतर आवे तेम तुं रहे, जेम तेम करीने हरिने लहे।' तुम्हें जिसमें सुविधा हो, वैसे रहो पर ऐसे कि किसी-न किसी तरह हरिको पा जाओ।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २६-८-१९२८

२३३. पत्र: मोतीलाल नेहरूको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२१ अगस्त, १९२८

प्रिय मोतीलालजी,

आपका पत्र मिला। इस सप्ताहके 'यंग इंडिया'में भी मैंने आगामी सम्मेलन[1] पर लिखा है। लेकिन मैंने रिपोर्टकी विषय-वस्तुके बारेमें न लिखना ही ठीक समझा। इसके बजाय मुझे सैद्धान्तिक टीका-टिप्पणीसे बचनेके महत्त्वपर जोर देना और हिन्दुओं और मुसलमानोंसे छोटे-मोटे स्वार्थोंपर दुराग्रह न रखनेका अनुरोध करना अधिक समीचीन लगा। सिफारिशोंके बारेमें मेरे लिखनेकी क्या जरूरत है? अभी तो मेरा मन, यदि उसे मजबूर ही न कर दूँ तो, संविधानके रूपके बारेमें सोचनेको तैयार नहीं है। क्योंकि मुझे लगता है कि हम चाहे जितना अच्छा संविधान बना लें, यदि उसे कार्य-रूप देनेवाले लोग काफी अच्छे न हों तो उससे हमें कोई लाभ नहीं हो

१. देखिए "सबकी नजर लखनऊपर", २३-८-१९२८। इससे पहलेके लेखके लिए देखिए "नेहरू रिपोर्ट", १६-८-१९२८।

सकेगा। इसलिए यदि सिर्फ मतैक्य हो सके तो मुझे ऐसी कोई भी चीज जो गैर-मुनासिब न हो, स्वीकार कर लेने लायक लगती है, क्योंकि संविधानके सम्बन्धमें मतैक्य मुझे सबसे महत्त्वपूर्ण चीज जान पड़ती है। लेकिन आम तौरपर मैं यह कह सकता हूँ कि सर तेजबहादुर सप्रू और सर अली इमामके सम्बन्धमें तो आपने अद्भुत सफलता पाई है। उदाहरणके लिए, मताधिकार या देशी राज्योंके सम्बन्धमें सुझाये आपके समाधानकी स्वीकृतिकी मुझे आशा नहीं थी। लेकिन देखता हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या अब भी एक कठिन समस्या बनी रहेगी।

और जहाँतक मेरी बात है, अभी तो मेरा मन साबरमतीसे बाहर निकलनेको तनिक भी नही होता। बल्कि मैं तो चाहूँगा कि बाहर आना-जाना बिलकुल बन्द करके साबरमतीमें ही जमकर बैठ जाऊँ और यहीसे 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' तथा पत्राचारके जरिये जो-कुछ कर सकता हूँ, करता रहूँ। आश्रममें ही मेरे लिए बहुत ज्यादा काम है। पता नहीं, आप यह जानते है या नही कि बारडोली-संघर्ष इस आश्रमके कारण ही सम्भव हो सका। बारडोलीके अधिकांश कार्यकर्त्ता या तो सीधे आश्रममें या इसके प्रभावमें तैयार हुए हैं। यदि मैं आश्रमको, जैसा मैं चाहता हूँ, वैसा बना सकूँ तो बहुत बड़े पैमानेपर मोर्चा लेनेको तैयार रहूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३६६७) की फोटो-नकलसे।

२३४. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

आश्रम, साबरमती
२१ अगस्त, १९२८

भाईश्री खम्भाता,

तुम्हारा पत्र मिला; १००) रु० भी। प्राप्ति-स्वीकारमें तुम्हारा नाम जान-बूझकर तो प्रकाशित नहीं किया गया है। तुम्हारे लिए इस बातका ज्ञान होना ही पर्याप्त है कि तुम नामके भूखे नहीं हो। नाम प्रकाशित हो जानेसे तुम्हें नुकसान तो होगा ही नहीं। इस बार हम और अधिक सावधानी बरत रहे है। यदि तुम्हारा दर्द चला जाये तो हम भगवान्का आभार मानेंगे। मुझे इस बारेमें जब-तब लिखते रहना।

तुम दोनोंको आशीर्वाद।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ५०१७) से।
सौजन्य : तहमीना खम्भाता

२३५. 'सच्ची पूँजी और झूठी पूँजी'

सर डैनियल हैमिल्टन बहुत बड़ी सम्पत्तिके स्वामी है, सुन्दरबनमें उनकी बड़ी भू-सम्पत्ति है और वे बैंक-व्यवस्था तथा सहयोग आन्दोलनके जागरूक अध्येता है। गत बारह महीनोमें उन्होंने भारतीय बैंक-व्यवस्थापर कई निबन्ध लिखे है और वे उन्हें समय-समयपर मेरे पास भेजनेका भी सौजन्य दिखाते रहे है। मैंने उनसे 'यंग इंडिया'के पाठकोंके लिए बैंक-व्यवस्था पर ऐसे लेख लिखनेका अनुरोध किया जो आम लोगोंकी समझमें आने लायक हों। वे तुरन्त सहमत हो गये और लेख भेजनेका बिना कोई निश्चित समय बताये उन्होंने जो वादा किया था उसे उन्होंने शीघ्र ही पूरा भी कर दिया। परिणाम-स्वरूप अब मेरे हाथमें उनका लिखा एक निबन्ध है, जिसका शीर्षक है—"मनुष्य या अर्थपिशाच अथवा सच्ची पूँजी और झूठी पूँजी" इस निबन्धको मैंने पाँच हिस्सोंमें बाँट दिया है, जिनमें से पहला इसी अंकमें अन्यत्र दिया जा रहा है।[1] मैं बैंक-व्यवस्थाके विषयमें कुछ जाननेका दावा नही करता। मुझे दु:खके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि मै भारतीय वित्त-व्यवस्थाका अध्ययन करनेका समय कभी नही निकाल पाया, यद्यपि इस विषयको मै बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। इसलिए मैं सर डैनियल हैमिल्टनकी दलीलोंपर कोई राय देनेमें असमर्थ हूँ। लेकिन मेरे लिए तो इतना ही काफी है कि स्पष्ट ही सर डैनियलने बिना किसी पूर्वग्रहके बड़ी ईमानदारीके साथ लिखा है। 'यंग इंडिया'के पाठकोंको मेरी सलाह है कि वे सर डैनियल हैमिल्टनके लेखोंको ध्यान से पढ़ें। भारतके वित्त-व्यवस्था विशेषज्ञ लोगोंको यदि इनपर कोई टीका करनी हो तो उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-८-१९२८

२३६. सभीकी नजर लखनऊपर

नेहरू समितिकी रिपोर्टकी ओर सबका ध्यान गया है और यह सर्वथा उचित भी है। उन सभी प्रमुख भारतीयोंने जिन्होंने उसके सम्बन्धमें अपनी राय व्यक्त की है, इसके लिए शुभकामनाएँ की हैं। आलोचकोंको इसके विषयमें लिखते हुए अपनी कलमें बहुत संयत रखनी पड़ी हैं और उन्हें बिना किसी प्रगट प्रयासके अक्सर इसकी प्रशंसा करनी पड़ी है। इसने सभीको सोचनेको बाध्य कर दिया है।

इसलिए स्वभावत: सभीकी नजर लखनऊपर लगी हुई है, जहाँ डॉ० अन्सारीने सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया है। जिस रिपोर्टने अपनी ओर लोगोंको इतना अधिक

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। शेष चार हिस्से **यंग इंडियाके** अगले चार अंकोंमें प्रकाशित हुए थे।

आकृष्ट किया है, उसपर विचार करनेके लिए निश्चय ही प्रातिनिधिक हैसियत रखनेवाले बहुत-से लोग एकत्र होंगे।

सम्मेलन क्या करेगा? सम्मेलनकी कार्यवाहीको निरर्थक बना देना और नेहरू समितिके परिश्रमपर पानी फेर देना बहुत आसान काम होगा। मुसलमान लोग चाहें तो इतने धैर्य और प्रयत्नसे खड़ी की गई इस इमारतको इस आधारपर नष्ट कर दे सकते हैं कि उन्हें वह सब-कुछ नही मिला है जो वे चाहते थे। हिन्दू लोग चाहें तो रंचमात्र भी न झुकनेका निश्चय करके प्रगतिको असम्भव बना दे सकते हैं। राजनीतिशास्त्रके पण्डितोंको इसमें बहुत-सारे दोष दिखाई दे सकते हैं। लेकिन यदि वे इस रिपोर्टपर अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोणसे विचार करेंगे तो सबके-सब गलती करेंगे। हमे फिर इस रिपोर्ट-जैसी कोई दूसरी चीज, जिसपर प्रातिनिधिक हैसियत रखनेवाले लोगोंके हस्ताक्षर हों, आसानीसे नही मिलनेवाली है।

इसलिए सब इस रिपोर्टपर एक ही दृष्टिकोणसे विचार करें, और वह है राष्ट्रीय दृष्टिकोण। समितिने जैसा संविधान सुझाया है, उसके अन्तर्गत प्रत्येकके लिए अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार पूरी ऊँचाई तक उठनेकी गुंजाइश है। प्रत्येक विहित हितकी सुरक्षाकी पूरी गारंटी है, बशर्ते कि उसमें खुद फूलने-फलनेकी क्षमता हो। मताधिकार तो इससे अधिक व्यापक हो ही नही सकता था।

बेशक धैर्यहीन अतिवादियोंको इससे सन्तोष नही होगा। मगर वे इस बातको याद रखें कि यह रिपोर्ट इस बातका प्रतीक है कि अक्सर परस्पर-विरोधी विचार रखनेवाले पक्षोंके बीच अधिकसे-अधिक कितनी सहमति हो सकती है। सभी पक्षोंकी आकांक्षाओंका प्रतिनिधित्व करनेवाली इस रिपोर्टका ऐसा तीव्र विरोध नही करना चाहिए कि वह धरी-की-धरी रह जाये। वैसा करना राष्ट्रद्रोह होगा।

यह रिपोर्ट परिस्थितियोंको देखते हुए हमारे इष्ट-साधनके अनुकूल है, इस बातको छोड़ भी दें तो भी मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि इससे सभी वर्गोंकी आकांक्षाओंकी पूर्ति होती है और खुद अपने गुणोंकी कसौटीपर भी यह रिपोर्ट बिलकुल खरी उतरती है। इसलिए नेहरू समितिके कामकी सफल परिसमाप्तिके लिए जो-कुछ जरूरी है वह है सिर्फ थोड़ी-सी सहिष्णुता, एक-दूसरेका थोड़ा-सा खयाल रखना, कुछ पारस्परिक विश्वास, थोड़ा-बहुत ले-देकर बातको निबटा देनेकी तत्परता और अपने तुच्छ अहंके प्रति नहीं बल्कि उस महान् राष्ट्रके प्रति भरपूर भक्ति जिसके हम सब बहुत ही अकिंचित्कर सदस्य हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-८-१९२८

२३७. टिप्पणियाँ

हिन्दी-हिन्दुस्तानी

सर टी० विजयराघवाचारी, ट्रिप्लिकेन, मद्रासके हिन्दू हाईस्कूलमें "भारतीय शिक्षामें हिन्दीका स्थान" पर सार्वजनिक भाषण दें, यह समयका संकेत है और पिछले सात वर्षोंसे हिन्दीके प्रचार करते आ रहे मद्रासके हिन्दी-प्रचार कार्यालयकी क्षमताका प्रमाण है। वक्ताको यह सिद्ध करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई कि यह तथ्य कि भारतके ३० करोड़ लोगोंमें से १२ करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं, शेष ८ करोड़ उसे समझते हैं और किसी भाषाको बोलनेवालों की संख्याकी दृष्टिसे हिन्दीका स्थान संसारकी भाषाओंमें तीसरा है, "अपने-आपमें इस बातका एक सबल कारण प्रस्तुत करता है कि हर एकको हिन्दी सीखनी चाहिए।" सुधी-वक्ताका यह कथन सर्वथा सत्य था कि "इस भाषाको ठीकसे सीखनेके लिए छः महीनेका समय काफी होगा।" उनका विचार था कि "भारतीय शिक्षा-योजनामें हिन्दीको एक अनिवार्य स्थान प्राप्त होना चाहिए। यह स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालयकी अनिवार्य भाषा होनी चाहिए।" अन्तमें उन्होंने कहा :

> **हम सभी उस दिनकी प्रतीक्षा बड़ी व्यग्रतासे कर रहे हैं जब हम सब पहले भारतीय होंगे और फिर मद्रासी या बंगाली। यदि उस दिनको जल्दी लाना हो तो मद्रासियोंको, जो इस मामलेमें सबसे अधिक अपराधी हैं, अधिक संख्यामें हिन्दी सीखनी चाहिए।**

दक्षिणके लोगोंको हिन्दी-प्रचार कार्यालयके माध्यमसे हिन्दी सीखनेकी सारी सुविधाएँ सुलभ हैं। यदि हमें अपने-अपने प्रान्तोंकी तरह अपने देशसे भी सच्चा प्रेम है तो हम सब अविलम्ब हिन्दी सीख लेंगे और अपनी जन-सभा अर्थात् अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें अपना सारा कार्य, अगर पूरा-पूरा नहीं तो मुख्यतः, अंग्रेजीमें चलाते समय हमें जो अपमानजनक स्थिति झेलनी पड़ती है, उससे हम अपनेको बचायेंगे। एक बात जो मैं अक्सर कहता आया हूँ, यहाँ एक बार फिर कहूँगा कि मेरे मनमें हिन्दीको प्रान्तीय भाषाओंके स्थानपर प्रतिष्ठित करनेकी बात नहीं है। मैं तो यह चाहता हूँ कि लोग अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंके अतिरिक्त हिन्दी भी सीखें ताकि ये प्रान्त एक-दूसरेसे जीवन्त सम्पर्क स्थापित कर पायें। इसमें यह लाभ होना भी निश्चित है कि एक ओर तो प्रान्तीय भाषाएँ समृद्ध होंगी और दूसरी ओर हिन्दीका भण्डार भी पुष्ट होगा।

बारडोली — शान्तिकी विजय

श्रीमती सरोजिनीदेवीसे प्राप्त एक स्नेह-भरे पत्रका यह काव्यात्मक अंश उद्धृत करने योग्य है :

> **चारों ओर हरियालीका एक सुन्दर, सौम्य वितान फैला हुआ है; अस्तोन्मुख सूर्यने पश्चिमी क्षितिजके मेघोंको अग्नि-शिखाके दीप्तिमान रंगोंमें**

रँग दिया है और पूर्वी क्षितिजके मेघोंको फूलोंके मनमोहक रंगोंकी छटा दे दी है। पहाड़ियोंपर नीले और नीललोहित वर्णमें डूबी हुई स्वप्निल छाया फैली हुई है। उसके नीचे लहरों-सी चढ़ती-उतरती घाटी विश्रामकी तैयारी करती हुई-सी जान पड़ती है — दिन-भर घूमने-चरनेके बाद भेड़ें अपने-अपने झुण्डोंमें आकर मिल रही हैं; कपोत और बाज सभी गहरी निद्रामें डूब जानेकी तैयारीमें हैं; किसानों और मजदूरोंके छोटे-छोटे झुंड पेड़ोंके सायेमें बनी अपनी-अपनी फूसकी कुटियोंमें लौट रहे हैं। . . . प्राकृतिक सौन्दर्यकी गोदमें सबसे अलग-थलग बसी इस बस्तीके निवासी शीघ्र ही अपने-अपने बिस्तरोंपर विश्राम कर रहे होंगे, और तब जल्द ही रात्रिका आगमन होगा और वह पहाड़ी घाटी, जंगल-झाड़ सबपर एक मखमली अन्धकारकी चादर फैला देगी। . . . लेकिन अफसोस! अन्धकार बराबर दुःखी जनोंके लिए सुख-सान्त्वनाका सन्देश लेकर ही नहीं आता। उन्हें नींद कहाँसे आये? . . . कैसी व्यथा भरी जागृतिमें उनकी रातें कटती हैं, उसे दुनिया क्या जाने? . . . और बारडोलीके लोगोंने न जाने ऐसी व्यथा-भरी कितनी रातें आँखोंमें ही काट दी हैं। . . . लेकिन यह सोचकर मेरा मन उल्लाससे भर जाता है कि आजकी रात, निरन्तर कई सप्ताह तक चलनेवाले उस तीव्र संघर्षमें जिन शूर-वीरोंका उत्साह कभी मन्द नहीं पड़ा, उनके लिए मधुर सपनोंका सन्देश लेकर आयेगी। जब सत्याग्रहीका काम पूरा हो जाता है तब उसे जो नींद आती है वह वास्तवमें देवताओंका वरदान होती है। क्या जर्मन दार्शनिकके ये शब्द आपको याद हैं: "अपने कर्मको ही युद्ध मानो और कर्म करनेसे प्राप्त होनेवाली शान्तिको विजय।" और बारडोलीमें यही हुआ। वस्तुतः यह शान्ति शान्ति तथा शान्तिपूर्ण साधनों की विजय है।

मैंने अभी-अभी आपके हृदयस्पर्शी और अत्यन्त सजीव शैलीमें लिखे 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' के अंग्रेजी संस्करणका अन्तिम पृष्ठ समाप्त किया है। तभी डाकिया अखबार लेकर आया और उसमें मुझे बारडोली-समझौते — दोनों पक्षोंके लिए सम्मानजनक समझौतेका सुखद और चिर-प्रतीक्षित समाचार देखनेको मिला। जैसा कि मैंने कोई एक महीना पहले 'सरदार' वल्लभभाईको लिखा था, मुझे बराबर यही लगा है कि सत्याग्रह अपने गहरे और विशुद्ध अर्थमें — मेटरलिंकके शब्दोंमें — "विनयशील लोगोंकी निधि है"; जो झूठे मूल्यों और झूठे मानोंके पीछे नहीं भागते, बल्कि वास्तविकताओंसे सन्तुष्ट हैं। . . . आपका स्वप्न था कि बारडोली सत्याग्रहका एक सर्वांगपूर्ण उदाहरण बने। उससे जो अपेक्षा की जाती थी, उसे उसने अपने ढंगसे पूरा किया है और साथ ही आपके स्वप्नकी एक व्याख्या दी है, पूर्णता प्रदान की है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-८-१९२८

२३८. पत्र : जोसिया ओल्डफील्डको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, बड़ी प्रसन्नता हुई। इस साल तो मैं यूरोप नहीं आ सका, लेकिन अगर सब कुछ ठीक-ठाक रहा तो अगले साल आनेकी उम्मीद करता हूँ और तब आपसे कहीं-न-कहीं मिलूँगा ही। और कही आप जब सोचते हैं, उससे पहले ही अपनी प्रस्तावित यात्रापर यहाँ आ गये तब तो बेशक हम यहाँ मिलेंगे ही।

हृदयसे आपका,

डॉ० जोसिया ओल्डफील्ड
लेडी मार्गरेट अस्पताल
डॉडिंग्टन, केंट

अंग्रेजी (एस० एन० १४३६६) की फोटो-नकलसे।

२३९. पत्र : रेवरेंड बी० द लिग्ट

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका वह पत्र मिल गया है जिसके साथ आपने मेरी सुविधाके लिए मेरे नाम लिखे अपने खुले पत्रका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजनेकी कृपा की है। मैं इतना व्यस्त हूँ कि उस खुले पत्रको पढ़नेका मुझे समय ही नहीं मिल पाया है, लेकिन मैं उसे पूरा पढ़कर, मुझसे जितनी जल्दी हो सकेगा, उसका उत्तर देनेकी आशा रखता हूँ। हो सकता है, मुझे आपको इसका उत्तर 'यंग इंडिया'के पृष्ठोंमें देना पड़े।[२] अगर ऐसा करना पड़ा तो मैं यह मान लेता हूँ कि आप अन्यथा न समझेंगे।

हृदयसे आपका,

श्री बी० द लिग्ट[३]
ओनेक्स (जिनेवा) स्विट्जरलैंड

अंग्रेजी (एस० एन० १४३८६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. डॉ० जोसिया ओल्डफील्डने अपने ३० जुलाई, १९२८ के पत्र (एस० एन० १४३६५) में लिखा था कि उनके पुनः भारत आनेकी सम्भावना है। उनकी प्रस्तावित यात्राका उद्देश्य भारतमें 'मनुष्यका मनुष्येतर प्राणियोंसे सम्बन्ध' विषयपर भाषण देना था।

२. देखिए "युद्धके प्रति मेरा दृष्टिकोण", १३-९-१९२८।

३. कॉन्क्वेस्ट ऑफ वायलेंसके लेखक।

२४०. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

आश्रम, साबरमती
२४ अगस्त, १९२८

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। आगे एक विस्तृत पत्रकी आशा रखता हूँ।

बारडोलीकी विजय सचमुच सत्य और अहिंसाकी विजय थी। राजनीतिक क्षेत्रमें अहिंसामें लोगोंकी निष्ठा समाप्त हो गई थी। इस विजयने उसे पुनः प्रतिष्ठित-सा कर दिया है। वल्लभभाईका व्यक्तित्व तो इस संघर्षमें इतना निखरा जितना पहले कभी नहीं निखरा था।

तुमने लिखा है कि साथमें गोपबन्धु दास पर एक लेख भेज रहा हूँ, मगर मुझे मिला तो कुछ नहीं है। उनकी मृत्युसे भारी क्षति हुई है। आत्मत्याग और आत्म-विलोपनकी भावनासे काम करनेमें उड़ीसामें उनकी बराबरीका कोई आदमी नहीं है।

ग्रेगको मालूम नहीं था कि तुम इंग्लैंड जा चुके हो और अब वहाँसे अमेरिकाके लिए प्रस्थान करनेवाले हो। वे खुद भी नवम्बरमें अमेरिकाके लिए रवाना होंगे।

हम सभी आश्रमवासी मजेमें हैं। देवदास जामिया मिलियामें है। रसिक[1] और नवीन[2] अब वहाँ उसकी सहायताके लिए जा रहे हैं। आशा है तुम वहाँ काफी आराम करते होगे और वहाँसे तुम्हारे-जैसे स्वभावके व्यक्तिके लिए जितना सम्भव है उतने स्वस्थ होकर तो लौटोगे।

तुम नहीं चाहते कि तुम्हारे अमेरिकाके खर्चके लिए मैं और ज्यादा चन्दा करूँ, इस बातको मैंने ध्यानमें रख लिया है। सरोजिनी नायडू सितम्बरमें अमेरिकाके लिए प्रस्थान करनेकी आशा रखती हैं।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज
मार्फत — अमेरिकन एक्सप्रेस कं०
६ हेमार्केट, लन्दन

अंग्रेजी (जी० एन० २६२९) की फोटो-नकलसे।

१. हरिलाल गांधीका पुत्र।

२. आश्रमिक शालाका एक विद्यार्थी; गांधीजीके भतीजे ब्रजलाल गांधीका पुत्र।

२४१. पत्र : सर डैनियल हैमिल्टनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

मैं नहीं सोचता था कि आप अपना लेख इतनी जल्दी भेजेंगे। इसे मैंने पाँच अध्यायोंमें[1] बाँट दिया है, जिनमें से पहला तो प्रकाशित भी हो चुका है। उसकी प्रति मै साथमें भेज रहा हूँ।

मैंने आपके लेख समालोचनार्थ सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको दे दिये थे। उन्होंने मुझे बहुत साफगोईके साथ एक पत्र लिखा है। उनकी अनुमतिसे उसकी एक प्रति मैं आपको भेज रहा हूँ। विषय पर विशेष अधिकार न रखनेवाले किसी सामान्य व्यक्तिके इन विभिन्न दृष्टिकोणोंको समझ पाना कठिन है। यह बात मेरे लिए बराबर एक अनबूझ पहेली बनी रही है कि बुनियादी बातोंके बारेमें भी वित्त-विशेषज्ञोंके बीच उतना ही मतभेद क्यों होता है जितना कि वकीलों और डाक्टरोंमें होता है।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि बारडोली-संघर्ष सन्तोषजनक ढंगसे समाप्त हो गया है।

हृदयसे आपका,

संलग्न पत्र – १
सर डैनियल हैमिल्टन

अंग्रेजी (एस० एन० १३२३८)की फोटो-नकलसे।

२४२. पत्र : विलियम एच० डैनफोर्थको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

श्री बी० एन० बिरलाकी मार्फत भेजे आपके पत्र और अपने यहाँ तैयार की जानेवाली खाद्य-सामग्रीके पार्सलके लिए धन्यवाद। आपने अपने भारतके अनुभवों पर जो पुस्तक लिखी है, उसकी भी एक प्रति उन्होंने मुझे भेजी है।

मेरे खानेकी चीजोंकी सूची बहुत सीमित है और जिन चीजोंके बारेमें मुझे यह नहीं मालूम रहता कि ये किन पदार्थोंसे कैसे बनाई गई हैं, उन्हें मैं नहीं

१. देखिए "सच्ची पूँजी और झूठी पूँजी", २३-८-१९२८।

खाता। इसलिए आपने जो सुस्वादु बानगियाँ भेजनेकी कृपा की है, उनको मैं नहीं चख पाया हूँ। लेकिन आपके बिस्कुट मैंने आश्रमवासियोंके बीच बाँट दिये हैं। अगर यह कोई राजकी बात न हो तो मैं यह जानना चाहूँगा कि कॉर्नफ्लेक्स कैसे तैयार किया जाता है और क्या उसके लिए गेहूँके अलावा भी किसी चीजका उपयोग किया जाता है। क्या यह डॉ० केलॉगके बैटल क्रीक सैनेटोरियममें तैयार किये जानेवाले व्हीट फ्लेक्स-जैसी ही चीज नहीं है?

हृदयसे आपका,

श्री विलियम एच० डैनफोर्थ[1]

अंग्रेजी (एस० एन० १४३८४)की फोटो-नकलसे।

२४३. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम साबरमती,
२५ अगस्त, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। अब तुम अपना स्वास्थ्य पूरी तरहसे सुधार लेना। यदि यह सम्भव हो तो तुम्हें वैसा करना चाहिए। तुमने 'केफ' शब्द लिखा है किन्तु सही शब्द 'कफ' है। 'कफ' अंग्रेजीमें लिया हुआ शब्द है जिसे हम [गुजरातीमें] "गलफो" [श्लेष्मा] कहते हैं।[2] किन्तु 'कफ' शब्द हमारी भाषामें रूढ़ हो गया है इसलिए हम उसका प्रयोग कर सकते हैं। 'केफ'का अर्थ है—नशा, यह शब्द अंग्रेजीसे नहीं लिया गया है।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमतीबहन

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९७)से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. मिसौरीकी खाद्य-पदार्थ तैयार करनेवाली रोल्सटन प्यूरिना कम्पनीके श्री डैनफोर्थ।
२. गुजरातीका 'कफ' मूलतः संस्कृतका शब्द है।

२४४. पत्र : छगनलाल जोशीको

२५ अगस्त, १९२८

भाईश्री छगनलाल,

चि० नवीनको देवदासके काममें हाथ बँटानेके लिए जामिया मिलिया भेजना है। अतः उसे चार महीनेके लिए मुक्त कर देना। यदि उसे अधिक समय तक वहाँ रखनेकी आवश्यकता जान पड़ी तो इस बारेमें अवधि बीत जानेपर फिर विचार करेंगे। फिलहाल चि० रसिक तो खाली ही है। उसे भी दिल्ली जाना है। दोनों पिंजाई आदि भली भाँति सीख जायें इसलिए यह आवश्यक है कि वे थोड़े दिन वहाँ तालीम लें।

बापू

गुजराती (एस० एन० १४७६२)की माइक्रोफिल्मसे।

२४५. सत्याग्रहका उपयोग

वृद्ध-बाल-विवाह रोकनेके लिए अधीर एक मित्र लिखते हैं:

मुझे बहुत दिनोंसे ऐसा लग रहा है कि वृद्ध-बाल-विवाह रोकनेके लिए ज्यादा तीव्र शस्त्रोंका उपयोग करना चाहिए।

पच्चीस जवान चरित्रवान् सत्याग्रहियोंको अपनी एक मण्डली बनानी चाहिए। जहाँ कहीं ऐसे विवाह होनेवाले हों, वहाँ वे आठ-दस दिन पहले ही पहुँच जायें। वहाँ वे दोनों पक्षोंको समझायें; उस बिरादरीके लोगोंसे, पंचायतसे, नगरनिवासियोंसे, अधिकारियों-आदि सबसे प्रार्थना करें। 'वृद्ध-विवाह भयंकर पाप है, 'गरीब गायको कसाईके हाथसे बचाओ, गाँवमें होनेवाला जुल्म रोको,' जवानो, धर्म समझकर जागो और एक लड़कीकी जान बचाओ, आदि वाक्य तख्तियों पर और खादीके पर्दोपर लिखकर जुलूस निकालें। वे सारे शहर और खासकर उस मुहल्लेमें जहाँ कि विवाह होना हो, घूमें, सबको जाग्रत करें, और वृद्ध-विवाहके विरुद्ध इस तरह प्रचंड वातावरण खड़ा करें। वृद्ध-विवाह भारी पाप है – इस भावार्थके गीत भी गायें। और आठ दिनों तक न तो खुद ही चैन लें, और जबतक यह पाप दूर न हो, तबतक गाँवके लोगों को भी चैन न लेने दें। पूरी मेहनतके साथ ऐसी कोशिश करें कि उसके यहाँ कोई खाने न जाये, बराती भाग जायें और पुरोहित या पण्डित भी विवाह कराने न आयें। पूरी शांति बनायें रखें पर पीछे भी न हटें। वर या कन्यापक्ष अगर पुलिसकी सहायता माँगे और सरकार किसीको जेलकी सजा भी दे, तो वे खुशीसे जेल जायें परन्तु इस धार्मिक आन्दोलनसे कदापि पीछे न हटें।

ऐसा हो तो कुछ ही समयमें इस मंडलीका ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि वृद्ध-विवाह करनेवाले अपने-आप ही रुक जायेंगे।

यह सूचना लगनी तो सुन्दर है मगर मुझे भय है कि इसके अमल एकसे अधिक बार नही हो सकता। जहाँ एक ओर व्यभिचारी और दूसरी ओर लोभी आदमीकी जोड़ी मिल जाये, वहाँ कन्या-रूपी गायको कत्ल होनेसे रोकना लगभग असम्भव है। वृद्ध व्यभिचारी और लोभी बाप जब इस दलसे डर जायेंगे, तब वे पहलेसे विवाहकी खबर ही किसीको न लगने देगे। ये चुपचाप विवाह कर लेगे। विवाह करानेवाले तथाकथित ब्राह्मण और थोडे-बहुत बराती भी सहज ही मिल जायेगे। 'नवजीवन'के पाठकोंको याद होगा कि ऐसी एक घटना थोडे ही दिन पहले हो चुकी है। इस घटनामें एक नन्ही-सी छोटी लड़कीके साथ विवाह करनेवाले पुरुषने अपनी सारी विद्वत्ता और चतुराई खर्च कर डाली, सबको धोखा दिया। विवाह बन्द रखनेका ढोंग किया। अपना पाप स्वीकार किया। सुधारकोंसे माफी माँगी। सुधारक खुश हुए। उनके आनन्दका पार न रहा। और इस बीच मौका पाकर इस भाईने गुप्त रीतिसे विवाह कर डाला। जैसा इस मामलेमे हुआ वैसा अन्य मामलोंमें भी हो सकता है। इसलिए वृद्ध-बाल-विवाह जैसी कुरीतियोंको दूर करनेके लिए कुछ दूसरे ही उपाय सोचनेकी जरूरत है। मुझे लगता है कि व्यभिचारीपर असर डालनेकी बजाय, शायद लोभीपर असर डालना अधिक आसान होगा। बाल-विवाहके विरुद्ध अगर वातावरण खड़ा किया जा सके तो फिर सुधार अपने-आप ही हो सकेंगे और ऐसा करनेके लिए उन-उन स्थानोंमें शिक्षा देनेकी जरूरत है। यहाँ शिक्षामें मेरा आशय अक्षरज्ञान नही है। जो माँ-बाप लोभके वश होकर अपनी लड़कीको बेचनेको तैयार होते है, उनको ढूँढ़ना चाहिए, उनसे प्रार्थना करनी चाहिए, उन्हें समझाना चाहिए और उनकी जाति-पंचायतमें कन्या-विक्रयके विरुद्ध प्रस्ताव पास करवाने चाहिए। यह तो स्पष्ट ही है कि यह सारा काम कोई एक टोली विशाल क्षेत्रमें नही कर सकती। चौबीसों घंटे काम करनेवाली, कन्याकुमारीमें रहनेवाली सत्याग्रहियोंकी मंडली काश्मीरमें होनेवाले बाल-विवाहको नहीं रोक सकेगी। समाज-सुधारके प्रेमी सत्याग्रहियोंको धीरज रखना पड़ेगा, छोटे क्षेत्रसे सन्तुष्ट रहना पड़ेगा, अपनी सीमा जान लेनी पड़ेगी। हम सारी दुनियाके काजी नही बन सकते।

प्रेम अथवा अहिंसाकी गति न्यारी है। इसे धाँधली, आडम्बर या ढोल-नगाड़ोंकी जरूरत नही होती। केवल आत्मविश्वासकी जरूरत होती है। और आत्म-विश्वास पैदा करनेके लिए आत्मशुद्धि होनी चाहिए। लोग ऐसे आदमियोके वचनपर श्रद्धा रखेंगे जिन्होंने आत्मशुद्धि की होगी, और आसपासका वातावरण अपने-आप ही शुद्ध होगा। मैंने तो बहुत दिनोंसे माना है कि राजनीतिक हलचलकी अपेक्षा, समाज-सुधारका काम कहीं अधिक मुश्किल है। राजनीतिक आन्दोलनके लिए वातावरण तैयार है। उसमें लोगोंको दिलचस्पी है। मान्यता भी ऐसी है कि वह काम आन्तरिक शुद्धिके बिना भी हो सकता है। समाज-सुधारके काममें रुचि कम है। बाह्य परिणाम न-कुछ-जैसा ही लगता है और उसमें सम्मान-प्रतिष्ठा आदिका भी बहुत कम स्थान

है। इसलिए समाज-सुधारकोंको काफी समय तक अपनी सतत तैयारी और बहुत-थोड़ी सफलतासे ही सन्तुष्ट रहना पड़ेगा।

एक व्यावहारिक सूचना दे दूँ। वृद्ध-बाल-विवाहके विरुद्ध वातावरण तैयार करनेका कड़ा उपाय तो यह है कि हाल ही में हुए किसी विवाहके विरुद्ध लोकमत इकट्ठा किया जाये और वृद्ध पति तथा लोभी बापका अहिंसक बहिष्कार किया जाये। ऐसा एक भी शुद्ध बहिष्कार साधा जा सके तो सहज ही दूसरे माँ-बाप अपनी बेटीको बेचनेमें संकोच करेंगे, और बूढ़े विवाह करनेसे रुकेंगे।

वृद्ध व्यभिचारी अपनी विषय-वासनाको एकाएक छोड़नेवाला नही है। इसलिए अगर ऐसे आदमियोंको विवाह करना ही हो तो उन्हें विधवा-विवाह करनेको कहना चाहिए। यूरोपमें वृद्ध पुरुष सहज ही विधवाओंको ढूँढ़ लेते है।

अन्तमें हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि हम वृद्ध-बाल-विवाहका विरोध करके करना क्या चाहते हैं। हम वृद्धके व्यभिचारको रोक नही सकते। अगर उसके व्यभिचारको ही रोकना हो तो जवानोंके व्यभिचारको भी रोकना चाहिए। किन्तु यह विषय अभी हमारी शक्तिके बाहरकी बात है, इसलिए इसे छोड़ देते है। वृद्धके बाल-विवाहके बारेमें सत्याग्रहका उद्देश्य लड़कीको बिकनेसे बचाना है। इसलिए सुधारकका काम कन्या-विक्रयको रोकना है। इसलिए कन्याके माँ-बापपर असर डालना है। इसलिए अपने निश्चित क्षेत्रमें जितनी कन्याएँ हों, सुधारकगण उनका नाम लिख रखें, उनके माता-पितासे परिचय कर लें, उन्हें अगर अपने कर्त्तव्यका भान न हो तो कन्याके प्रति माँ-बापका धर्म उन्हें समझानेका प्रयत्न करें। जो लोग इन शर्तोंको छोड़कर, इस पत्रमें वर्णित उपायोंको काममें लाना चाहेंगे उन्हें अपने प्रयत्नमें सफलता मिलनेकी बहुत कम सम्भावना है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २६-८-१९२८

२४६. टिप्पणियाँ

मैट्रिकुलेटोंका टिड्डी-दल

एक सज्जन पूछते हैं:[1]

यह एक सही सवाल है। इसका जवाब तो हम यहाँ अनेक बार दे चुके हैं। सरकारी शिक्षाकी छापका मोह हमें गुलाम बनाता है। इसीलिए मैंने सरकारी स्कूल छोड़नेका धर्म लोगोंके सामने रखा है। पर इस मोह-जालसे विद्यार्थियोंको कौन छुड़ाये? सरकारकी मुहरके बिना रिश्वत खाने लायक नौकरी कैसे मिले? जब तक विद्यार्थी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने मैट्रिक पास करनेवालों की बढ़ती हुई संख्याके आँकड़े देकर पूछा था कि इन्हें कहाँ तक नौकरी मिलेगी और मिलनेपर इनके तमाम शौक, प्राप्त होनेवाले थोड़े-से वेतनसे पूरे कैसे होंगे?

मजदूरीका, शारीरिक मेहनतका स्वागत नहीं करेंगे, उसे अक्षर-ज्ञानसे ज्यादा कीमती नहीं मानने लगेंगे, तबतक वे इस मोह-जालसे नहीं बच सकेंगे। चरखेको महत्त्व देनेका यह एक कारण तो है ही। चरखा शरीर-श्रमका व्यापक चिह्न है। 'नवजीवन'के पहले अंकमें एक चित्र दिया गया था, जिसमें हल और चरखेको स्थान दिया गया है। चरखेकी हालत सुधरते ही मजदूरी और चारित्र्ययुक्त गरीबीको उनके लायक जगह अपने-आप मिल जायेगी। इसका मतलब यह नहीं कि सब चरखेके द्वारा रोजी कमायें। फिर भी इसका यह आशय तो जरूर है कि सब किसी-न-किसी उत्पादक मजदूरीसे आजीविका प्राप्त करें। विद्यार्थियोंमें विलायती रहन-सहन और विलायती चीजोंका जो शौक बढ़ा है, उसके लिए स्कूलोंका वातावरण जिम्मेदार है। इस शौकसे शायद ही कोई विद्यार्थी बचता है।

प्राइमस स्टोवसे आग

एक पत्र-लेखकने मुझे प्राइमस स्टोवके सम्बन्धमें यह लिखा है:[1]

यह कहा जा सकता है कि गुजराती स्त्रियोंमें प्राइमसका व्यवहार प्रायः सर्वत्र होता है। इस स्टोवकी जरूरत इतनी नहीं है जितनी मानी जाती है, यह बात मैं मानता हूँ। गुजराती साड़ीसे शोभा बढ़ती है यह निर्विवाद है, किन्तु काम करनेवाली स्त्रीको तो इससे असुविधा ही होती है। गुजराती स्त्रियोंमें स्टोवसे जो दुर्घटनाएँ होती हैं उनका कारण साड़ी है, यह बात ठीक जान पड़ती है। यदि मैं गुजराती बहनोंको समझा सकूँ तो मैं स्टोवके प्रति उनका मोह दूर कर दूँ और उन्हें इस बातके लिए प्रेरित करूँ कि वे बारडोलीकी वीर नारियोंका अनुकरण करके काम करते समय कछोटा लगाकर साड़ी पहनें। मेरे खयालसे यह कछोटा भी कम सुन्दर नहीं होता। उससे काम करनेमें तो पूरी सुविधाका अनुभव होता है। यदि गहराईसे देखें तो यह कछोटा निर्दोष पहनावा है और स्त्रियोंकी अधिक रक्षा करता है। बारडोलीकी बहनें लटकती हुई साड़ी पहनकर अपने खेतोंमें काम नहीं कर सकतीं, इस बातकी सचाई जिसने भी उन्हें काम करते देखा है, वह तुरन्त सिद्ध कर सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-८-१९२८

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२४७. पत्र: टी० प्रकाशम्को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२६ अगस्त, १९२८

प्रिय प्रकाशम्,

आपका पत्र मिला[1]। यदि आप अपने और अखिल भारतीय चरखा संघके विवादमें न्यायमूर्ति वेंकटसुब्बारावको एकमात्र पंच बननेके लिए राजी कर सकें तो यह बहुत अच्छा हो। इसलिए आप कृपया उनकी रजामन्दी पानेकी कोशिश करें और मुझे उसके परिणामसे अवगत करायें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० प्रकाशम
'स्वराज्य', मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३६७२)की माइक्रोफिल्मसे।

२४८. पत्र: च० राजगोपालाचारीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२६ अगस्त, १९२८

केशू इस बातके लिए बहुत उत्सुक है कि वह अपना अंग्रेजीका ज्ञान, जितनी जल्दी हो सके, दुरुस्त कर ले। वैसे उसे काफी अंग्रेजी आती है। मेरा विचार यह है कि यदि उसे बियरम-दम्पतीके साथ रखा जाये तो वह अच्छी प्रगति कर सकेगा। कृपया आप इस पर अपनी राय दें। यदि आप समझते हैं कि मेरा सुझाव अच्छा है तो आप बियरम-दम्पतीसे खुद ही जाकर मिलें। अथवा यदि आप सोचते हों कि इसके साथ-साथ या इसके बजाय कुछ और करना बेहतर रहेगा अथवा बंगलोरके बदले कहीं और जाकर अंग्रेजी सीखना ज्यादा ठीक रहेगा तो वैसा सूचित कीजिएगा।

शंकरलाल और आपका कैसा चल रहा है, इसके बारेमें मुझे आप अवश्य बताइएगा। आप दोनोंको बिलकुल ठीक-ठीक रहना चाहिए।

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
मार्फत – खादी वस्त्रालय
फोर्ट, बंगलोर सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १३४९६)की फोटो-नकलसे।

१. १४ अगस्त, १९२८ का पत्र, जिसमें लिखा था: "मैं इस मामलेमें पंचके रूपमें . . . मद्रास उच्च न्यायालयके न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री वेंकटसुब्बारावका नाम सुझाता हूँ।" (एस० एन० १३६५७)। देखिए "पत्र: टी० प्रकाशम्को", २०-७-१९२८ भी।

२४९. पत्र : जेठालाल जोशीको

द्वितीय श्रावण सुदी ११ [२६ अगस्त, १९२८][1]

भाईश्री जेठालाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

बच्चोंके बारेमें तुमने जो लिखा है वह ठीक है।

मलेरियाके बारेमें तुम्हारे सुझाव विचार करने लायक हैं।

बछड़ेके बारेमें सिर्फ अहिंसाका ही प्रश्न नहीं था। अहिंसाकी मेरी व्याख्याके अनुसार तो यह कहा ही नहीं जा सकता कि उसे मारनेमें हिंसा हुई। किन्तु प्रश्न तो यह था कि उसे मारना हमारा कर्त्तव्य था या नहीं। मुझे यह कर्त्तव्य जान पड़ा।

कुछ दिनोंके लिए तो तुम्हें पूनियाँ मिल सकती हैं किन्तु [पूनी बनाना तुम्हें] जल्दीसे जल्दी सीख लेना चाहिए।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १३४६)की फोटो-नकलसे।

२५०. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

२७ अगस्त, १९२८

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। बालूभाईके बारेमें तो तुम्हें पूरे समाचार मिलेंगे ही इसलिए मैं कुछ नहीं लिख रहा हूँ। यदि हम अपने सज्जन सम्बन्धियोंके गुणोंका स्मरण कर उन्हें अपने जीवनमें उतारें तो देहका अन्त हो जानेपर भी वे जीते रहते हैं और समाजकी निरन्तर उन्नति होती है। सामान्यतः इसका उलटा ही देखनेमें आता है, यह हमारी कमजोरी है। स्वार्थके वशीभूत होकर अपने सम्बन्धियोंकी मृत्युका दुखड़ा रोकर ही हम अपने-आपको कृतार्थ हुआ मान लेते हैं और समझते हैं कि हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। किन्तु यदि हम मृत्युको उसी रूपमें लें जैसा कि मैंने बताया है तो हम उसके लिए कभी शोक नहीं करेंगे बल्कि उसे अपनी आत्मशुद्धिका कारण बनायेंगे।

१. आश्रममें बीमार बछड़ेको मारनेका उल्लेख होनेके आधारपर इसका वर्ष निर्धारित किया गया है।

रामदास कल बारडोली वापस चला गया। अब वह वहीं स्थिर होकर रचनात्मक कार्योमें भाग लेना चाहता है। स्थिर हो जानेपर निमूको[1] बुला लेगा। नवीन और रसिक देवदासके काममें हाथ बँटानेके लिए कुछ ही दिनोंमें दिल्ली चले जायेंगे।

हम सभी कुशलपूर्वक हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ४७४३) की फोटो-नकलसे।

२५१. पत्र : वसुमती पण्डितको

मौनवार [२७ अगस्त, १९२८][2]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। हकीम और डाक्टरके बिल चुका देना। बिल कब कितनेका बनेगा, यह तुम्हें पहलेसे ही जान लेना चाहिए। यदि वहाँ तुम्हारी तबीयत सुधर ही न रही हो तो तुम्हारा यहाँ चला आना ही ठीक होगा। विद्यावतीजीसे कहना कि तुम्हारा वहाँ बोझ बनकर रहनेकी बजाय आश्रम लौट आना ही उचित होगा। तबीयत बिलकुल ठीक हो जानेके बाद यदि जाना आवश्यक हो तो फिर वापिस जा सकती हो। या फिर वहाँसे वे किसी विद्यार्थीको यहाँ भेज सकते हैं और वह काम सीखकर लौट जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२५१) की फोटो-नकलसे।

२५२. पत्र : पेरीन कैप्टेनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय बहन,[3]

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हारे पत्रोंके बारेमें 'यंग इंडिया' के आगामी अंकमें लिखनेका इरादा रखता हूँ।[4]

नारणदासने आश्रमके मालकी सूची तुम्हें अवश्य भेज दी होगी।

१. रामदास गांधीकी पत्नी।
२. डाककी मुहरसे।
३. साधन-सूत्रमें सम्बोधन गुजरातीमें है।
४. देखिए "टिप्पणियाँ", १३-९-१९२८ का उपशीर्षक 'राष्ट्रीय स्त्री-सभा और खादी'।

महादेवको रुपये ४५-१३-६के बारेमें याद दिला दी गयी है। इसके सम्बन्धमें तुम्हें सुब्बैया लिखेगा। मैंने अभी तक मीठूबहनको पत्र नहीं लिखा है। लेकिन मैं उन्हें और रुपये ३७-४-०के बारेमें फूलचन्दको भी शीघ्र ही लिखूँगा। कसीदाके काम आनेवाले धागेके बारेमें काकासाहबसे कहूँगा।

यदि कलकत्तामें कोई खादी-प्रदर्शनी हुई तो तुम्हें यथासमय उसके बारेमें मालूम हो जायेगा।

अब मैंने तुम्हारी सारी बातोंका जवाब दे दिया। अब आना तो सिर्फ दो दिनोंके लिए नहीं आना।

श्रीमती पेरीन कैप्टेन
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३५०१) की माइक्रोफिल्मसे।

२५३. पत्र : एमा हार्करको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप आकर खुद आश्रमको देख सकती हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि आश्रमका जीवन आपको किसी भी रूपमें अनुकूल नहीं बैठेगा। जिन लोगोंका लालन-पालन आपकी तरह हुआ हो, उन लोगोंके लिए यहाँका जीवन बहुत ज्यादा कठोर और सादगी-भरा है। सच तो यह है कि यह उन लोगोंको भी कठिन मालूम हो रहा है जो एक लम्बे अर्सेसे यहाँ रह रहे हैं। फिर आश्रमका जीवन सतत शारीरिक श्रमका जीवन है।

हृदयसे आपका,

एमा हार्कर
२, बेलग्रेड टैरेस
कराची

अंग्रेजी (एस० एन० १३५०२) की माइक्रोफिल्मसे।

२५४. पत्र : एन० सी० बारदोलाईको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

मैंने आपका पत्र[1] अखिल भारतीय चरखा संघके कार्यालयमें भेज दिया था, और यह रहा कार्यालय द्वारा तैयार किया गया विवरण।[2] इसके पक्ष-विपक्षमें मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मैं चाहता हूँ कि आप स्वयं ही देखें कि सही स्थिति क्या है। सार्वजनिक कोषकी व्यवस्थामें कोई ढील नहीं होनी चाहिए। और मैं अनुशासनसे चिढ़नेको हम लोगोंका गम्भीर दोष मानता हूँ। अनुशासनके बिना बारडोली संघर्ष एक बिलकुल ही निष्फल प्रयास होता। वल्लभभाईके नीचे १००से अधिक कार्यकर्त्ता थे और सबने एक मन होकर एक व्यक्तिकी तरह काम किया। उनमें परस्पर कभी किसी बातको लेकर कोई गलतफहमी हुई हो, ऐसा मुझे नहीं मालूम। पिछले वर्ष बाढ़-सहायता कार्यके समय लगभग १००० से अधिक कार्यकर्त्ता कामपर थे। इस अवसरपर भी कार्यकर्त्ताओंने वैसा ही अनुशासित व्यवहार किया जैसा बारडोलीके कार्यकर्त्ताओंने किया।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० सी० बारदोलाई
शान्ति भवन
गोहाटी

अंग्रेजी (एस० एन० १३६७३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. २३ जून, १९२८ का पत्र (एस० एन० १३६२८)।

२. इसमें १९२५ से १९२८ तक भारतमें प्रतिवर्ष खादीके उत्पादनकी मात्राका ब्योरा दिया गया था।

२५५. पत्र : वरदाचारीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय वरदाचारी,

संलग्न पत्र और मेरे उत्तरमें सारी बातें स्पष्ट हैं। पत्रलेखकने जो शिकायत की है, सुब्बैया उसकी पुष्टि करता है और कहता है कि तमिलनाड खादी-भण्डार यज्ञकी भावनासे स्वैच्छिक कताई करनेवालों को प्रोत्साहन नही देता। ऐसा नही होना चाहिए।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १

अंग्रेजी (एस० एन० १३६७४) की माइक्रोफिल्मसे।

२५६. पत्र : आर० दोराइस्वामीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर दिलाना चाहिए कि 'कतैये' की मेरी परिभाषा यज्ञकी भावनासे कातनेवालों पर लागू होती है, पारिश्रमिकके लिए कातनेवालों पर नहीं। मैं अनुभवसे जानता हूँ कि यदि कोई व्यक्ति स्वयं धुनाई करना चाहे तो उसमें ज्यादा समय नहीं लगेगा और जो लोग कताईसे प्रेम होनेके कारण कातते हैं, उन्हें सामान्यत: थोड़ी धुनाई करनेका समय भी निकाल सकना चाहिए। मैंने खुद धुनाई की है, हालाँकि अपने समयका प्रत्येक मिनट बचानेकी खातिर अब मैंने ऐसा करना छोड़ दिया है, क्योंकि मुझे पूनियाँ देनेवाले बहुत-से लोग हैं। और हालाँकि मैं अभी बहुत कमजोर हूँ फिर भी सही परिणाम पानेके विचारसे, मै अपनी जरूरतकी रूईकी धुनाई खुद ही करने और उसके परिणामको 'यंग इंडिया' में प्रकाशित करनेका इरादा रखता हूँ। आपको तमिलनाड शाखासे और सत्याग्रह आश्रम अथवा बारडोलीसे भी तकुए भेजे जाने चाहिए। तथापि अपरिमित संख्यामें बिलकुल निर्दोष तकुए प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन काम है, क्योंकि उनको सीधा करनेका काम करनेवालों की आँखों पर बहुत जोर पड़ता है — यहाँ तक कि एक व्यक्ति, जो प्रतिदिन ६० तकुए सीधा किया करता था, अपनी दृष्टि लगभग खो ही बैठा था। इसलिए निर्दोष तकुए चाहनेवालों को आश्रम और बारडोली अधिक

प्रोत्साहन नहीं देता। सीधा करनेकी कलाको परिश्रमसे सीखा जा सकता है। जो व्यक्ति उसे सीख ले, वह अपना तकुआ बहुत ही कम समयमें सीधा कर सकता है और यह काम यदा-कदा करनेसे आँखोंपर जोर नहीं पड़ता। संघ किसी ऐसे यन्त्रकी तलाशमें है जिससे निर्दोष तकुए बनाये जा सकें। लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी उसे अभी तक ऐसा यन्त्र नहीं मिल सका है। तथापि मैं आपका पत्र तमिलनाड शाखाको भेज रहा हूँ, जिससे प्रेम और यज्ञकी भावनासे कताई करनेवालों की जितनी मदद सम्भव हो, उतनी मदद वह कर सके।

आर० दोराइस्वामी
खादी एजेंट
कुम्बकोणम्

अंग्रेजी (एस० एन० १३६७५) की माइक्रोफिल्मसे।

२५७. पत्र : बी० जी० हॉर्निमनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

मुझसे लेख प्राप्त करना तो सूमसे धन प्राप्त करने-जैसा कठिन है। इसलिए मैं आपको केवल सन्देश ही भेज सकता हूँ और वह यह है:

लखनऊने जो रास्ता दिखाया है, उसपर चलकर संवैधानिक स्वराज्य तो प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन अन्दरसे विकसित होनेवाला जीवन्त स्वराज्य जो राम-राज्यका पर्याय है, बारडोली द्वारा दिखाये रास्तेपर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० जी० हार्निमन
'इंडियन नेशनल हेराल्ड'
पोस्ट बाक्स नं० ८००
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३४९७) की फोटो-नकल से।

२५८. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। पूजा-प्रदर्शनीके बारेमें मुझे तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं है। उसमें आपको जैसा उचित लगे, वैसा कर लीजिएगा।

आपने आहारके सम्बन्धमें सोदपुरमें जो परिवर्तन किया है, मुझे उम्मीद है, वह लोगोंके लिए बहुत कठिन नही होगा। अनावश्यक जल्दबाजी नही होनी चाहिए। जो बात गुजरातमें मुश्किलसे सम्भव है, हो सकता है, वह बंगालमें लगभग असम्भव ही हो।

आप यहाँ पानीकी जो व्यवस्था कर गये थे, वह अच्छी तरह काम दे रही है। लेकिन इसमें पानी जल्दी खत्म हो जाता है। मालूम नहीं कि टंकियाँ खुली रखनी चाहिए अथवा नही। और क्या समय-समयपर उनकी सफाई नही की जानी चाहिए? और यदि की जानी चाहिए तो क्या यह बहुत मेहनतका काम नहीं है? क्या आप इसके बारेमें कुछ निर्देश देना चाहेंगे?

मुझे यह जानकर बड़ी खुशी होती है कि आपकी और श्री बिड़लाकी अच्छी निभ रही है। जहाँतक पैसेका सवाल है, इससे आपके मनपर से एक भारी बोझ हट गया होगा।

हाँ, यदि आप ऐसा चरखा बना सकें जिसपर ज्यादा सूत काता जा सके तो इससे हमें निस्सन्देह बहुत लाभ होगा।

हेमप्रभा देवी कैसी हैं?

अंग्रेजी (एस० एन० १३४९८) की फोटो-नकलसे।

२५९. पत्र : के० एस० कारन्तको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे तो इस प्रश्नका हल अत्यन्त आसान लगता है। उसमें जिस जीवनका उल्लेख है, वह ब्राह्मणोचित जीवन है। वहाँ ब्राह्मण शब्द वर्ण-विशेषका द्योतक नहीं, अपितु वह ब्राह्मणकी मनोभूमिकाका सूचक है। ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मको जानता है और एक शूद्रके लिए भी आत्मज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है। और जब वह उस ज्ञानको प्राप्त कर लेता है तब वास्तविक ब्राह्मणत्वकी अवस्थाको प्राप्त हो जाता है, और ब्राह्मण-वंशमें उत्पन्न व्यक्ति भी यदि ब्रह्म-ज्ञानसे रहित हो तो वह किसी योग्य नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० कारन्त
वसन्त
डाक रवाना – कोडाइबेल
मंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १३४९९) की फोटो-नकलसे।

२६०. पत्र : रोहिणी पूवैयाको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२८ अगस्त, १९२८

प्रिय रोहिणी,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। मुझे खुशी है कि अब तुम्हें एक निश्चित नौकरी मिल गई है। आशा है, तुम्हें वह स्थान छोड़ना नहीं पड़ेगा।

सामूहिक रसोई-घर बहुत मजेमें चल रहा है, हालाँकि हमें अब भी प्रतिदिन बहुत ही कठिन समस्याओंका सामना और समाधान करना पड़ता है। इसमें कुल मिला कर लगभग १६० व्यक्ति खाते हैं। वैतनिक कर्मचारियोंके बिना इतना बड़ा रसोई-घर चलाना कोई छोटी बात नहीं है।

जैसा कि तुमने देखा होगा, मैं लखनऊ नही गया और न ही मै निकट भविष्यमें इलाहाबादसे गुजरनेवाला हूँ।

मुझे जब-तब लिखती रहना।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीमती रोहिणी पूवैया
लेडी प्रिंसिपल, क्रॉस्थवेट गर्ल्स कालेज, इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १३५००)की फोटो-नकलसे।

२६१. यूरोप जानेवालो, सावधान!

अब चूँकि इतने लोग यूरोप जाने लगे है और असहयोगके बादसे हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियोंके बारेमें वहाँ दिलचस्पी बढ़ गई है, इसलिए यूरोपकी सार्वजनिक संस्थाएँ और राजनीतिक दल उन लोगोंका अधिकाधिक समय लेना चाहते है। मगर हममे से किसीको कमसे-कम उसकी तो कोई आशा नही थी जो बाबू राजेन्द्रप्रसादको भुगतना पड़ा। कुछ महीने पहले एक महत्त्वपूर्ण मुकदमेके सिलसिलेमें राजेन्द्रबाबू लन्दन गये थे। अपना मुकदमा खत्म करके यूरोपके देशोंमें उन्होंने थोड़ा भ्रमण शुरू किया और इसी सिलसिलेमें वे विएनाके युद्ध-विरोधी सम्मेलनमे भी शामिल हुए।

एक अनजान आदमीके कहनेसे उन्होंने पासके ही एक स्थानमें आयोजित एक और कार्यक्रममें शामिल होना स्वीकार कर लिया। कुछ दिन पहले 'बॉम्बे क्रॉनिकल'-में एक तार छपा था कि राजेन्द्र बाबू जब सभामे शान्ति पर बोल रहे थे, तभी फासिस्टोने उपद्रव करके सभा भंग करवा दी और राजेन्द्र बाबू पर सख्त मार पड़ी। राजेन्द्र बाबूकी ओरसे ऐसा कोई तार न मिलनेके कारण मैंने मार-पीटकी बातपर विश्वास न किया। जिस दिन अखबारमें मार-पीटकी खबर पढ़ी, उसी दिन राजेन्द्र बाबूका एक तार भी मुझे मिला था, जिसमें उन्होने मुझसे हालैंडमे होनेवाले युवक-सम्मेलनके लिए सन्देश[1] माँगा था। फलतः मारपीटके बारेमें रहा-सहा शक भी जाता रहा। मगर पिछली डाकसे मेरे पास एक आस्ट्रियाई अध्यापक और उनकी पत्नीका पत्र आया है, जिसमें उन्होंने उस मार-पीटका विस्तृत वर्णन दिया है। इससे अखबारोंमें छपी खबरकी पुष्टि हो गई है। नीचे मैं उस पत्रका आवश्यक अंश[2] दे रहा हूँ, जिसमें यूरोपके देशोंमें जानेवाले सभी हिन्दुस्तानियोके लिए एक चेतावनी भी है:

१. देखिए "तार: राजेन्द्रप्रसादको", १६-८-१९२८ को या उसके पश्चात्।

२. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकके विवरणके अनुसार उन्हें गांधीजी का वह पत्र, जिसमें उन्होंने राजेन्द्र बाबूका परिचय दिया था, १ अगस्तको ९ बजे मिला। पत्र पाकर उन्हें बड़ी खुशी हुई, लेकिन जब उन्होंने पत्रकी पीठ पर एक ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसका नाम उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था, यह लिखा देखा कि 'भाई राजेन्द्रप्रसाद 'स्टीनफेल्डर सेल' में भाषण करेंगे और वे चाहते हैं कि आप उनसे वहाँ मिलें', तो उनका मन आशंकासे भर उठा। 'स्टीनफेल्डर सेल' एक

राजेन्द्र बाबूके रिश्तेदारों और अनेक मित्रोंको इन सज्जनोंको अपनी जान पर खेलकर बहादुरीके साथ उनकी जानकी रक्षा करनेके लिए धन्यवाद देना चाहिए। यह घटना मनुष्य-स्वभावकी एकताको दिखलाती है और सिद्ध करती है कि नम्रता, आत्मत्याग और उदारता किसी एक धर्म या जातिकी विरासत नही है।

मगर इस पत्रका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग तो वह है जिसमें यूरोप जानेवालोंको चेतावनी दी गई है। इसमें कोई शक नही कि यूरोपीय देशोंके सभी दलोंकी यह इच्छा रहती है वे वहाँ जानेवाले हिन्दुस्तानियों – खासकर हिन्दुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें अच्छा स्थान रखनेवाले हिन्दुस्तानियों -- से अपना मतलब पूरा करनेके लिए नाजायज फायदा उठायें। इसलिए शेक्सपीयरकी यह सलाह याद रखना अच्छी बात है कि 'सुन सबकी लो, मगर अपनी कहो किसीसे नहीं'। यूरोप जानेवाले हिन्दुस्तानियोंमें यह प्रशंसनीय भाव तो जरूर ही रहता होगा कि वहाँकी सभाओंमें कुछ बोलकर हिन्दुस्तानके पक्षका प्रचार किया जाये। मगर यह याद रखना बहुत अच्छा होगा कि हर बातमें आदर्श आत्मसंयम रखनेसे हिन्दुस्तानके पक्षका जितना प्रचार हो सकेगा, उतना हजारों भाषणोंसे भी नहीं होगा। चरित्रका असर, हमेशा ही, भाषणसे कहीं अधिक पड़ता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-८-१९२८

शराबखानेका नाम था, जहाँ उस दिन 'शान्ति-स्वातन्त्र्यार्थ अन्तर्राष्ट्रीय महिला लीग' की सभा होनेवाली थी। पत्र पानेके बाद शाम तक वे उस संघके किसी सदस्यसे सम्पर्क स्थापित करनेकी कोशिश करते रहे, मगर कर नहीं पाये। निदान वे राजेन्द्र बाबूको लेने स्टेशन चले गये। राजेन्द्र बाबूको इस सभाकी पूर्व परिस्थितियोंकी कोई जानकारी नहीं थी, और न वे उपर्युक्त वाक्य लिखनेवाले व्यक्तिको ही अच्छी तरह जानते थे। फिर भी वे वहाँ जानेको तैयार हो गये। वह इलाका युद्धवादियों और हिंसाके समर्थकोंका केन्द्र था। सभा-स्थलपर पहुँचकर उन लोगोंने देखा कि वहाँका दृश्य तो अजीब था। हॉल सिगरेटके धुएँसे भरा था और मेजोंपर बीअरके गिलास पड़े हुए थे। महिला-समितिकी कोई सदस्या वहाँ नहीं थी और न वह व्यक्ति ही था जिसने पत्रकी पीठपर उपर्युक्त वाक्य लिखा था। ये लोग ज्यों ही महिला-समितिकी मेजके पास पहुँचे कि कुछ लोगोंने इनपर हमला कर दिया। इन लोगोंपर मार पड़ी, लेकिन पत्र-लेखक और एक अन्य साथीने खुद चोट खाकर राजेन्द्र बाबूकी काफी रक्षा की, जिससे उन्हें ज्यादा चोट नहीं आई। बादमें पता चला कि वास्तवमें वे लोग एक अराजकतावादीको पीटना चाहते थे, जो उस दिन उस सभामें बोलनेवाला था। उन्होंने राजेन्द्र बाबूको वही व्यक्ति समझकर उन्हें मारा-पीटा।

आगे पत्र-लेखकने बताया था कि राजेन्द्र बाबू दूसरे दिन मोशिए रोमाँ रोलाँके यहाँ विलेन्यू चले गये और वहाँसे उनका पत्र आया है कि अब वे अच्छे हैं।

इस घटनाका वर्णन करनेके बाद उन्होंने गांधीजी को सलाह दी थी कि वे यूरोप आनेवाले भारतीयोंको आगाह कर दें। उन्हें आँख मूँदकर जिस-किसीका विश्वास नहीं कर लेना चाहिए और अजनबी लोगोंसे होशियार रहना चाहिए।

२६२. टिप्पणियाँ

खादीके लिए एक विज्ञापन-विभागकी आवश्यकता

अखिल भारतीय चरखा-संघके बम्बई-स्थित खादी-भण्डारके श्रीयुत विट्ठलदास जेराजाणीको एक भाई अपने एक पत्रमें लिखते हैं[1]:

पत्र-लेखकके आरोपमें बहुत सचाई है। अखिल भारतीय चरखा-संघने विज्ञापन जैसे बाहरी प्रयत्नोंकी अपेक्षा आन्तरिक संगठनको ही पूर्ण और निर्दोष बनानेकी ओर अधिक ध्यान दिया है। उसका खयाल यह रहा है कि आन्तरिक संगठनका पूर्ण और निर्दोष होना अपने-आपमें खादीका एक विज्ञापन होगा। इसलिए संघने प्रचार-कार्य पर पैसा खर्च करनेमें कृपणतासे काम लिया है। लेकिन यदि खादी-प्रेमी लोग प्रचार-कार्यके खर्चके लिए चन्दा देनेमें पर्याप्त उत्साह दिखायें तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि संघकी परिषद इस कामको खुशी-खुशी अपने हाथमें लेगी। लेकिन ध्यान रहे कि प्रचार-कार्यका संगठन ठीक ढंगसे करनेमें काफी खर्च बैठता है। आम तौर पर विज्ञापनपर होनेवाला खर्च विज्ञापित वस्तुओंके मूल्यमें शामिल कर लिया जाता है। अखिल भारतीय चरखा-संघको इस तरहसे खादीका मूल्य बढ़ाना पसन्द नहीं रहा है। इसलिए यदि प्रचार-कार्यका संगठन करना है तो यह आवश्यक है कि इसका खर्च वे लोग उठायें जो खादीके गुणोंको समझते हैं और जिनके पास खर्च उठानेके साधन हैं। इसलिए यदि ऐसे और भी लोग हों जो इन पत्र-लेखक भाईकी तरह प्रचार-विभागके खर्चका बोझ उठानेको तैयार हों तो वे इस उद्देश्यके लिए चन्दा भेजें। यदि इस कामके लिए काफी पैसा नहीं आया तो दाता लोगोंकी इच्छा होनेपर उनके चन्देकी रकमें उन्हें वापस कर दी जायेंगी।

मैसूर राज्यमें चरखा

अखिल भारतीय चरखा-संघके श्रीयुत पुजारी मैसूर राज्यके अधिकारियोंको वहाँकी जनताके बीच हाथ-कताईका संगठन करनेमें सहायता दे रहे हैं। उन्होंने मुझे एक पत्र भेजा है जिसमें से निम्नलिखित जानकारी मैं यहाँ दे रहा हूँ:

> **यह काम १ नवम्बर, १९२७ को आरम्भ किया गया। आन्दोलनकी जड़ें अब जम गई हैं। गत जुलाई महीनेके अन्तमें ६० गाँवोंमें १,००० चरखे चलाये जाते थे, जिनसे ५२ करघोंके लिए पर्याप्त सूत मिल जाता था। जुलाई महीनेमें २,००० रुपयेका माल तैयार किया गया।**

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने भण्डारसे खरीदी खादीकी प्रशंसा करते हुए लिखा था कि खादीका सन्देश बहुत कम लोगोंतक पहुँच पाता है और विज्ञापनके मामलेमें यह आन्दोलन बहुत पिछड़ा हुआ है। प्रान्तमें खादीकी दुकानें भी बहुत कम हैं। अतएव यदि एक विज्ञापन-विभाग खोला जाये तो अच्छा हो। इस काममें लगाया पैसा बेकार नहीं जायेगा। पत्र-लेखकने यह भी लिखा था कि जब कभी ऐसा विभाग खोलनेका निर्णय हो, मैं चन्देमें १०० रुपये दूँगा।

श्रीयुत पुजारी कहते हैं:

अपने ९ महीनोंके अनुभवके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि

१. इन इलाकोंमें एक सहायक गृह-उद्योग नितान्त आवश्यक है।

२. ये चरखे उस आवश्यकताकी पूर्ति जितनी खूबीसे करते हैं उतनी खूबीसे और कोई चीज नहीं कर सकती।

३. यह काम कर सकना इसीलिए सम्भव हुआ है कि राज्यने यथोचित प्रोत्साहन दिया है और कतैये तथा बुनकर आश्वस्त हैं कि अमुक मात्रामें उनके मालकी खपत होगी ही।

४. भारतके अन्य हिस्सोंमें भी ऐसी परिस्थितियोंमें यही परिणाम आना चाहिए।

५. हाथ-कताईके कारण गाँवका धन रैयतकी झोंपड़ियोंसे राज्य-कोष तक और राज्य-कोषसे रैयतकी झोंपड़ियों तक बराबर गतिमान रहता है।

६. भारतके ६,८५,००० गाँवोंमें बसे कृषकोंकी जो अतिरिक्त शक्ति अभी बरबाद हो रही है उसका सदुपयोग करनेका यह सबसे अच्छा तरीका है।

७. और अन्तमें, सूत कातनेवाले प्रत्येक ग्रामीणको चरखा चलानेमें लगाये एक-एक घंटेके लिए तीन-तीन पाइयोंकी प्राप्ति होती है। जिस जन-समुदायकी दैनिक आय प्रतिदिन सिर्फ १ आना ७ पाई कूती गई है, उसके लिए यह वृद्धि कोई मामूली बात नहीं है।

श्रीयुत पुजारी आगे कहते हैं:

यदि भारतके दूसरे राज्य भी मैसूर राज्यका अनुकरण करें तो यह कितना बड़ा वरदान साबित हो।

मैं उनकी इस शुभेच्छाका समर्थन करता हूँ।

बैलोंके प्रति अत्याचार

एक अंग्रेज महिला लिखती हैं:[1]

यह सच है कि भारतका भ्रमण करनेवाली ये महिला कुछ-एक उदाहरणों से ही एक सामान्य धारणा बनाकर भारतके सभी लोगों पर बैलोंके प्रति अत्याचार

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखिकाने हिन्दुस्तानियों द्वारा 'विशेषकर अपनेको गो-रक्षक कहनेवाले हिन्दुओं द्वारा', बैलोंके साथ किये जानेवाले अत्याचारपर गहरा दुःख प्रकट किया था। उनकी शिकायत थी कि बैलोंपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझ लाद दिया जाता है और उनकी पूँछें उमेठ-उमेठ कर उन्हें जबरदस्ती चलानेके कारण उनकी पूँछें टूट जाती हैं और क्षत-विक्षत हो जाती है। बैलोंके साथ किये जानेवाले इस अमानवीय व्यवहारको उसने "हिन्दू धर्मके लिए लज्जाका विषय" कहा था। उन्होंने यह भी शिकायत की थी कि लोग मुर्गियों आदिको टाँगोंसे पकड़कर दूर-दूर तक ले जाते हैं। गांधीजीसे **यंग इंडिया**में इन बुराइयोंके खिलाफ लिखनेका अनुरोध करते हुए उन्होंने बैलोंके कन्धोंपर जुए डालनेके बजाय घोड़के-जैसे साजका उपयोग करनेका सुझाव दिया था।

करनेका आरोप लगा बैठी हैं, क्योंकि इस देशका हर आदमी, बल्कि दसमेंसे एक आदमी भी, बैलोंके साथ दुर्व्यवहार नहीं करता। फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि कुछ शहरी गाड़ीवान इस पत्रमें उल्लिखित दुर्व्यवहारके दोषी हैं, और इसमें भी कोई शक नहीं कि जो लोग उन्हें बैलोंके साथ ऐसा व्यवहार करते देखते हैं, वे उस ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना मजेसे अपनी राह चले जाते हैं। मुर्गियोंको निर्दयतापूर्ण ढंगसे ले जानेके बारेमें भी पत्र-लेखिकाकी बात सही है। अहिंसाकी दुहाई देनेवाले हम लोगोंके लिए यह कहा जा सकता है कि हम गुड़ तो खाते हैं, मगर गुलगुलोंसे परहेज करते है। यदि किसी पागल कुत्तेको गोली मार दी जाये तब तो हम उत्तेजित हो उठेंगे, लेकिन उद्धृत पत्रमें जिन निर्दयतापूर्ण व्यवहारोंका उल्लेख हुआ है वैसे व्यवहार देखकर हमें खुशी भले ही न हों, लेकिन उस ओर से हम उदासीन तो रहते ही हैं। हम ऐसा मानते जान पड़ते हैं कि जबतक हम वास्तवमें किसीको जानसे नहीं मारते तब तक अहिंसा-धर्मका पालन कर रहे हैं। मेरे विचारसे यह अहिंसा-धर्मका उपहास करना है। किसी भी प्राणीको किसी प्रकारका कष्ट पहुँचाना अहिंसा-धर्मका उल्लंघन है। और जहाँ हम अहिंसात्मक तरीकोंसे उसे उस कष्टसे बचा सकते हैं वहाँ यदि हम उसे बचानेका प्रयत्न नहीं करते और इस तरह एक प्रकारसे उस कष्ट पहुँचानेवाले व्यक्तिकी कार्रवाईका समर्थन करते हैं तो यह भी उस धर्मका उल्लंघन है। जो धार्मिक संगठन अपने विश्वासोंके प्रति ईमानदार रहना चाहते हैं उनके लिए यहाँ काम करनेका यह एक बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है। वे नगरोंमें मानवेतर प्राणियोंके साथ किये जानेवाले निर्दयतापूर्ण व्यवहारके खिलाफ जिहाद बोलें। जुएके बजाय घोड़ेके-जैसे साजका प्रयोग भी, निस्सन्देह, वांछनीय है।

खादीधारियोंवाला उच्च विद्यालय

चटगाँववासी डॉ० बी० पी० दत्तने एक ऐसे उच्च विद्यालयके बारेमें, जिसके सभी विद्यार्थी और शिक्षक गत चार वर्षोंसे खादी पहनते हैं, निम्नलिखित विवरण[1] भेजा है:

बरार -- १८९७ में

मेजर आर० वी० गैरेट, हैदराबाद द्वारा अंग्रेजोंको दे दिये गये इलाकेमें सूती वस्त्रों पर लिखे अपने १८९७के एक निबन्धमें कहते हैं:

> **बरार रुईके लिए प्रसिद्ध है, लेकिन निश्चय ही सूती वस्त्रोंके लिए नहीं। यहाँ मुख्यतः मोटे और घटिया किस्मके ऐसे कपड़े ही तैयार होते हैं जिन्हें गरीब लोग पहनते हैं।**

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें दुर्गापुर उच्च विद्यालय, चटगाँवके सभी विद्यार्थियों और शिक्षकों द्वारा खादीके पूर्णतः अपना लिये जानेका हाल बताते हुए, आसपासके गाँवोंपर पड़नेवाले उसके कल्याणकारी प्रभावकी चर्चा की गई थी। विवरणमें विद्यालयकी कृषि-विषयक प्रवृत्तियों और एक गोशाला और कारखाना खोलनेकी योजनाके सम्बन्धमें भी बताया गया था।

सारे प्रदेशमें सूत काता जाता है और ऐसा नहीं है कि यह काम किसी खास जाति या क्षेत्रके ही लोग करते हों।

एक औरत सप्ताहमें १ पौंडसे ज्यादा देशी सूत नहीं कात सकती। इतने सूतकी कीमत ८ आने होती है और इन पैसोंमें से आधा सप्ताह-भरकी कताईका शुद्ध मेहनताना होता है। फिर भी औरतोंको अपने घरोंमें खाली समयमें कुछ काम मिल सके, इसलिए कताई की जाती है।

जो बात बरार पर १८९७ में लागू होती थी, वह आज और भी ज्यादा लागू होती है। कारण, बरारके लोगोंको अपनी पैदा की हुई रुईको बेचनेका इतना अधिक मोह है कि औरतोंने चरखोंको त्याग ही दिया है और आज बरारमें हाथ-कते सूतका कपड़ा बहुत कम बुना जाता है। यदि सचमुच बरारका औद्योगीकरण किया जा सके तो बरारसे एक पौंड भी रुई बाहर न जाये। तब वह यहाँसे बाहर जायेगी तो केवल ग्रामवासियोंके झोंपड़ोंमें तैयार की गई खादीके ही रूपमें जायेगी और उस खादीको तैयार करनेके लिए उन्हें अपने किसी अन्य धन्धेसे समय बचानेकी जरूरत पड़ेगी, ऐसा भी नहीं हैं।

सहकारी खादी-क्रय

जी० वी० आर० नागपुरसे लिखते हैं:[1]

चन्देकी प्राप्तिकी सूचना

श्री दीवान ए० मेहता 'पिल्स्ना' जहाजके भारतीय यात्रियोंसे मुझे देनेके लिए (२७० रुपये) चन्दा करके लाये थे। उसके साथ यह शर्त थी कि यदि बारडोली-संघर्ष समाप्त हो गया हो तो वह रकम मैं अपनी पसन्दके समाज-सेवाके किसी कार्यमें लगा दूँ। मैंने उसे अस्पृश्यता-निवारणके कामके लिए अलग रख दिया है। बारडोली-कोषके लिए किये चन्देकी सूचीमें, जो 'यंग इंडिया' के परिशिष्टमें हर हफ्ते छपती है, उसे ठीकसे दिखाया नहीं जा सका। इसलिए अब मैं यहाँ उसकी प्राप्तिकी सूचना साभार प्रकाशित कर रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-८-१९२८

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने रेलवे कर्मचारियों द्वारा सहकारी खादी-क्रय क्लबोंके गठन और उसके लाभोंके बारेमें लिखा था।

२६३. तार : मोतीलाल नेहरूको[1]

[३१ अगस्त, १९२८]

तार मिला। भगवान्‌का लाख-लाख शुक्र है। भगवान् करे आप अद्‌भुत बुद्धिमत्तासे प्राप्त अपनी इस सफलताको हमारे उद्देश्यके अन्तिम सोपान तक ले जा सकें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३६७८)की फोटो-नकलसे।

२६४. पत्र : हरदयाल नागको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
३१ अगस्त, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्र मिले। बहुत ज्यादा काम होनेकी वजहसे ही मैं आपको इससे पहले नहीं लिख सका।

मैं आपके सुझावके महत्त्वको समझता हूँ। लेकिन मेरा निश्चित विश्वास है कि यदि वल्लभभाई कांग्रेस-अध्यक्ष चुने जाते तो उनका इस पदसे मेल नहीं बैठता। और घटनाओंसे यह सिद्ध हो रहा है कि पण्डित मोतीलाल नेहरूको ही चुननेमें सबसे अधिक समझदारी थी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत हरदयाल नाग
चाँदपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५०३)की फोटो-नकलसे।

१. मोतीलालजी द्वारा भेजे गये ३१ अगस्तके तारके उत्तरमें। मोतीलालजी का तार इस प्रकार था: "हार्दिक बधाई। पूर्ण सफलता। सारी सिफारिशें स्वीकार कर ली गई हैं। प्रतिनिधित्व के सम्बन्धमें हिन्दू-मुस्लिम मतभेद समाप्त। पंजाब-समस्याका समाधान हो गया। सिन्धके बारेमें हिन्दू और मुसलमान सहमत। दलोंका रुख अत्युत्तम। कल इलाहाबाद लौट रहा हूँ। ३ तारीखको शिमला रवाना हो रहा हूँ।"

२६५. पत्र: वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
३१ अगस्त, १९२८

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। हकीम और डाक्टरकी फीसके विषयमें मैं लिख चुका हूँ।[1] वहाँ रहना अनुकूल न आता हो तो यहाँ चले आनेके लिए भी लिख चुका हूँ। किन्तु यदि मसूरी जानेकी सुविधा हो और वहाँ तुम्हें इतना अच्छा लगा हो तो वहाँ जाकर अपनी तबीयत बिलकुल अच्छी क्यों न कर लो? और उसके बाद यदि देहरादूनमें रहना मुश्किल हो गया हो तो यहाँ आ जाओ। यह तो मेरी सलाह मात्र है। किन्तु यदि तुम्हारा मन अब वहाँ बिलकुल न लगता हो और स्थिति ऐसी जान पड़ती हो कि काम किया ही नहीं जा सकता तो अविलम्ब यहाँ चली आना। इसमें दुबारा मेरी अनुमति माँगनेकी जरूरत मत समझना। विद्यावतीको तो इस सम्बन्धमें कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं है न? जो भी हो घबराना बिलकुल नहीं और न झूठी शर्मके कारण अपनी शक्तिसे बाहर जाकर कोई काम करना। अपनी शक्तिके अनुसार नम्रतापूर्वक काम करना ही शोभता है और ऐसा ही काम फलता भी है। 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुण:'[2] का यही अर्थ है।

पत्रका इतना हिस्सा लिखानेके बाद तुम्हारा पत्र आया। और अब तुमने वहाँ न रहनेका निश्चय कर ही लिया है तो इसमें कोई परिवर्तन करनेकी जरूरत नहीं है। किन्तु यदि मसूरी जाना सम्भव हो और वहाँ जानेकी तुम्हारी इच्छा भी हो तो जानेमें कोई हानि नहीं है। चूँकि तुम एक दिनके लिए दिल्लीमें रुकना चाहती हो इसलिए यदि देवदाससे मिलनेकी इच्छा हो तो मिल लेना। देवदास जामिया मिलियामें है। यह संस्था करोलबागमें है। यह मुसलमान भाइयोंका विद्यापीठ है। देवदासको उसके काममें मदद पहुँचानेके लिए नवीन और रसिक यहाँसे रविवारको निकलकर वहाँ सोमवारको पहुँचेंगे।

दुबारा नहीं पढ़ा है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९९)से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१. देखिए "पत्र: वसुमती पण्डितको", २७-८-१९२८।
२. **भगवद्गीता,** १८-४७।

२६६. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

[३१ अगस्त, १९२८ के पश्चात्][1]

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र नियमित रूपसे मिलते रहते हैं। मै हर पन्द्रहवे दिन पत्र लिखनेकी कोशिश तो करता ही हूँ किन्तु एकाध सप्ताहकी चूक भी हो जाती है।

शास्त्रीजी की गैर हाजिरीमें तुम्हें उनकी और ज्यादा याद आती होगी। उनके जैसा सरल एजेंट दूसरा मिल ही नहीं सकता। मैं नामके बारेमे सोचता ही रहता हूँ किन्तु एक भी मेरी नजर पर नही चढ़ता। यदि हम दोष देखने लगें तो ऐसा कौन है जिसमें दोष न हों। हिन्दू धर्ममें तो शिवजी-जैसोंमें भी दोषोंकी कल्पना की गई है किन्तु तुलसीदास कहते है :

जड़ चेतन गुन दोषमय बिम्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुन गहहि पय परिहरि बारि बिकार।।

तुम्हारा 'गीताजी' का पठन-पाठन तो चल ही रहा होगा। देवदास दिल्लीमें है और अब रसिक तथा नवीन उसका हाथ बॅटाने गये हैं। दोनोंका काम ठीक चल रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७३०)की फोटो-नकलसे।

२६७. पत्र : जुगलकिशोरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१ सितम्बर, १९२८

प्रिय जुगलकिशोर[2],

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी इच्छा पूरी कर पाना बहुत कठिन है। तुम जिस तरहका शिक्षक चाहते हो, उस तरहका शिक्षक हम अभी तक तैयार नहीं कर सके हैं। जो लोग किताबी शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं, वे कातना और बुनना सीखनेको उत्सुक नहीं है। और जिन चन्द लोगोंने इन कार्योका प्रशिक्षण प्राप्त किया है, वे ऐसे कामोंमें लगे हुए हैं कि उन्हें वहाँसे अलग नहीं किया जा सकता। अगर तुम्हारी

१. यह तारीख अन्तिम अनुच्छेद्में नवीन और रसिकके दिल्ली जानेके आधारपर तय की गई है। देखिए पिछला शीर्षक।

२. प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावनके प्राचार्य।

दृष्टिमें कोई व्यक्ति हो तो मुझे बताना। फिर भी, तुमने जो कहा है, उसे मैं ध्यानमें रखूँगा और तुम जिस तरहका शिक्षक चाहते हो, यदि वैसा कोई मुझे मिला तो मैं तुम्हें सूचित करूँगा।

मैं समझता हूँ कि वहाँ तुम्हारा काम खूब अच्छी तरह चल रहा होगा। अगली बार आश्रम आने पर तुम उसे कुछ-कुछ बदला हुआ पाओगे। अब हमारे पास करीब-करीब एक ही बहुत बड़ा रसोई-घर है, जिसमें १५० स्त्री-पुरुष और बच्चे भोजन करते हैं।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

पूछताछ करनेके बाद मुझे मालूम हुआ कि जमनालालजी द्वारा एक नाम तुम्हें पहले ही भेजा जा चुका है।

अंग्रेजी (एस० एन० १३६७९)की माइक्रोफिल्मसे।

२६८. पत्र : बी० डब्ल्यू० टकरको[1]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१ सितम्बर, १९२८

प्रिय बॉयड,

आपका पत्र कुछ दिनोंसे मेरी फाइलमें पड़ा हुआ था।

मेरा खयाल है कि आपने मेरी स्थितिको काफी हद तक सही रूपमें व्यक्त किया है। इसमें एक ही दोष है और वह यह कि आपने जिस ढंगसे उसे प्रस्तुत किया है, उससे गलतफहमी हो सकती है। मैंने यह नही कहा था कि मैं नही चाहूँगा कि लोग मेरे दृष्टिकोणको स्वीकार करें। मैंने यह अवश्य कहा था कि मैं नही चाहूँगा कि लोग मेरे धर्मको स्वीकार करें। स्पष्ट है कि आपने दृष्टिकोण शब्दका प्रयोग धर्म शब्दके पर्यायके रूपमें किया है। मैं ऐसा नहीं करता। जहाँ मैं दूसरों पर अपना धर्म नहीं थोपना चाहूँगा, वहाँ अपना दृष्टिकोण स्वीकार करनेके

१. यह रेवरेंड टकरके १५ अगस्तके पत्र एस० एन०१३४९१ के उत्तरमें लिखा गया था। उस पत्रमें रेवरेंड टकरने लिखा था कि "गत जनवरी महीनेमें साबरमतीमें हुई अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री परिषद्में उठाये गये एक प्रश्नके बारेमें अगर आप कुछ और खुलासा कर सकें तो आभार मानूँगा। इसका सम्बन्ध आपके इस कथनसे है कि किसी विशेष धार्मिक समुदायके अथवा कुछ विशेष धार्मिक विचार रखनेवाले लोगोंको ऐसा बिलकुल नहीं सोचना चाहिए कि दूसरे लोग भी उनके दृष्टिकोणको स्वीकार करें। हो सकता है, मैं आपकी बात यहाँ बिलकुल ठीक-ठीक न रख पाया होऊँ, लेकिन जहाँ तक मुझे याद है, आपने यह बात और भी जोरसे कही हो तो कोई अचरज नहीं।"... परिषद्में गांधीजी की बातचीतके लिए देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ ४७२-८२।

लिए अवश्य आग्रह करूँगा, जैसा कि हममें से हरएक करेगा। धर्म तो भावना अथवा हृदयकी वस्तु है और इसलिए यह तर्कका विषय नहीं है और मुझे हर व्यक्तिकी भावना अपनी ही भावनाके समान प्रिय होगी, क्योंकि मैं दूसरे लोगोंमें भी यही अपेक्षा करता हूँ कि वह मेरी भावनाका उतना ही खयाल रखे जितना खुद अपनी भावनाका रखता है। दृष्टिकोण तर्कका, मस्तिष्कका, बुद्धिका विषय है। यह हृदयको छुए बिना समय-समय पर बदलता रह सकता है। धर्म-परिवर्तनका मतलब अपनी सम्पूर्ण स्थितिका परिवर्तन है। दृष्टिकोणमें परिवर्तन होना तो एक संयोग-मात्र है जो बहुधा बाहरी कारणोंसे होता है। ईश्वरके अस्तित्वके बारेमें मेरी जो भावना है, वह आसानीसे नहीं बदल सकती। ईश्वर शब्दके अर्थके सम्बन्धमें मेरा दृष्टिकोण समय-समयपर बदलता रह सकता है और मेरी तर्कबुद्धिके विकासके साथ-साथ उसमें भी विकास हो सकता है। धर्म व्याख्यासे परे है और कोई व्यक्ति किसीके धार्मिक मामलेमें दखल दे, यह बात मुझे उद्धततापूर्ण जान पड़ती है। दृष्टिकोणकी हमेशा व्याख्या की जा सकनी चाहिए। मैंने यह भेद इसलिए किया है कि इस तरह मैं धर्मके बारेमें अपनी स्थिति सबसे ज्यादा अच्छी तरहसे स्पष्ट कर सकता हूँ। मैं नहीं चाहता कि आप हिन्दू बन जायें। लेकिन मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि आप हिन्दू धर्ममें जो भी अच्छाइयाँ हैं और जो आपके ईसाई धर्ममें उस सीमा तक अथवा बिलकुल भी नहीं हैं, उन्हें ग्रहण कर एक बेहतर ईसाई बनें। मैं अपने-आपको हिन्दू कहने और हिन्दू बने रहनेमें हर्षका अनुभव क्यों करता हूँ यह मैं नहीं बता सकता; लेकिन मेरा हिन्दू बना रहना इस्लाममें अथवा संसारके अन्य धर्मोंमें जो भी अच्छा और सौम्य-सुन्दर है, उसे ग्रहण करनेमें बाधक नहीं है।

पता नहीं, मैं आपको अपनी स्थिति अच्छी तरहसे समझा पाया हूँ या नहीं। यदि नहीं तो कृपया लिखें।

आपने बारडोलीके बारेमें जो-कुछ कहा है, वह सब सच है।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड बी० डब्ल्यू० टकर
प्रिंसिपल, कॉलिन्स हाईस्कूल
१४०, धर्मतल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १२५०५)की फोटो-नकलसे।

२६९. शिक्षामें अहिंसा

मैं कई हफ्तोंसे गुजरात विद्यापीठमें हर शनिवारको विद्यार्थियोंको एक घंटा दे रहा हूँ और इस प्रकार बहुत वर्षोंके चढ़े ऋणका कुछ ब्याज अदा कर रहा हूँ। इसमें पहले मैंने अध्यापकों और विद्यार्थियोंसे कुछ प्रश्न पूछनेको कहा था। उन प्रश्नोंका पूरा उत्तर देनेका समय निकाल सकने तक मुझसे कोई पुस्तक पढ़ानेको कहा गया और पिछले कई हफ्तोंसे 'हिन्द स्वराज' पढ़ाना जारी है। पूछे गये कई प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं और इसलिए मैंने उन्हें लिख रखा है। उनके उत्तर 'नवजीवन' में देते रहनेका इरादा है। ये प्रश्न विद्यार्थियोंके अलावा दूसरोंके लिए भी उपयोगी हैं। उनमें से एक प्रश्न इस प्रकार है:

> **अहिंसाकी चर्चा शुरू हुई नहीं कि कितने लोग बाघ, भेड़िया, साँप, बिच्छू, मच्छर, खटमल, जूँ, कुते आदिको मारने-न-मारने, अथवा आलू, बैंगन आदि खाने-न-खानेकी ही बात छेड़ देते हैं।**
>
> **नहीं तो फिर फौज रखी जा सकती है कि नहीं, सरकारके विरुद्ध सशस्त्र बलवा किया जा सकता है या नहीं आदिके शास्त्रार्थमें उतर पड़ते हैं। यह तो कोई सोचता या पूछता ही नहीं कि अहिंसाके कारण शिक्षामें कैसी दृष्टि पैदा की जानी चाहिए। इस सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक कुछ कहिए।**

यह प्रश्न नया नही है। मैंने इसकी चर्चा 'नवजीवन' में इस रूपमें नही तो दूसरे ही रूपमें अनेक बार की है। किन्तु मैं देखता हूँ कि अब तक यह सवाल हल नही हुआ है। इसे हल करना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है। फिर भी यदि मैं उसके हलमें यत्किंचित् योगदान कर सकूँ तो उतनेसे ही मैं अपनेको कृतार्थ मानूँगा।

समस्याका पहला भाग हमारी संकुचित दृष्टिका सूचक है। जान पड़ता है कि इस फेरमें पड़कर कि मनुष्येतर प्राणियोको मारना चाहिए या नही, हम अपने सामने पड़े हुए रोजके धर्मको भूल-से जाते हैं। सर्पादिको मारनेके प्रसंग सबके सामने नही आते उन्हें न मारने योग्य दया या हिम्मत हमने नहीं पैदा की है। अपनेमें रहनेवाले क्रोधादि सर्पोको हमने दयासे, प्रेमसे नही जीता है, मगर तो भी हम सर्पादिकी हिंसा की बात छेड़कर उभयभ्रष्ट होते है। हम क्रोधादिको तो जीतते नही और सर्पादिको न मारनेकी शक्ति न होनेके कारण इस प्रकार आत्मवंचना करते हैं। अहिसा-धर्मका पालन करनेकी इच्छा रखनेवालों को साँप आदिकी बात भूल जाना चाहिए। उन्हें मारना तत्काल न छूट सके तो इसका दुःख न मानते हुए, सार्वभौम प्रेम पैदा करनेकी पहली सीढ़ीके रूपमें मनुष्योंके क्रोध-द्वेषादिको सहन करके उन्हें जीतनेका प्रयत्न करें।

आलू और बैंगन जिसे न खाने हों, वह न खाये। मगर यह बात कहते हुए भी हम लज्जित हों कि उन्हें न खाना कोई महापुण्य है या अहिंसाका पालन करना है। अहिंसा खाद्याखाद्यके विषयसे परे है। संयमकी आवश्यकता तो सदा है। खाद्य

पदार्थोंमें जितना त्याग किया जा सके उतना सभी लोग करें। यह त्याग अच्छा है, आवश्यक है, मगर उसमें अहिंसा तो नाम-मात्रको ही है। परपीड़ा देखकर दयासे विगलित होनेवाला, राग-द्वेषादिसे दूर, नित्य कन्द-मूलादि[1] खानेवाला आदमी भी अहिंसाका मूर्तरूप है और वन्दनीय है। तथा परपीड़ाके सम्बन्धमें उदासीन, स्वार्थके वश होकर आचरण करनेवाला, दूसरेको पीड़ा देनेवाला, राग-द्वेषादिसे भरा हुआ, कन्द-मूलादिको कदापि न खानेवाला मनुष्य तुच्छ प्राणी है; अहिंसा देवी उससे भागती ही फिरती है।

राष्ट्रमें फौजका स्थान हो सकता है या नहीं, सरकारके विरुद्ध शरीरिक बलका प्रयोग किया जा सकता है या नहीं—ये अवश्य जबरदस्त प्रश्न हैं और किसी दिन हमें इनको हल करना ही होगा। कहा जा सकता है कि कांग्रेसने अपने कामके लिए इसके एक अंगको हल किया है। तो भी यह प्रश्न जनसाधारणके लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए शिक्षा-प्रेमी और विद्यार्थीके लिए अहिंसाकी जो दृष्टि है, वह मेरी रायमें ऊपरके दोनों प्रश्नोंसे भिन्न अथवा परे है। शिक्षामें जो दृष्टि पैदा करनी है, वह परस्परके नित्य सम्बन्धकी है। जहाँ वातावरण अहिंसारूपी प्राणवायुके जरिसे स्वच्छ और सुगंधित हो चुका है, वहाँ पर छात्र और छात्राएँ सगे भाई-बहनके समान विचरेंगे, वहाँ विद्यार्थियों और अध्यापकोंके बीच पिता-पुत्रका सम्बन्ध होगा, एक दूसरेके प्रति आदर होगा। ऐसी स्वच्छ वायु ही अहिंसाका नित्य, सतत पदार्थपाठ है। ऐसे अहिंसामय वातावरणमें पले हुए विद्यार्थी निरन्तर सबके प्रति उदार होंगे, वे सहज ही समाज-सेवाके योग्य बनेंगे। उनके लिए सामाजिक बुराइयों, दोषों आदिका प्रश्न अलग नहीं होगा। अहिंसारूपी अग्निमें वह भस्म हो गया होगा। अहिंसाके वातावरणमें पला हुआ विद्यार्थी क्या बाल-विवाह करेगा? अथवा कन्याके माँ-बापको दण्ड देगा? अथवा विवाह करनेके बाद अपनी पत्नीको दासी गिनेगा? अथवा उसे अपने विषयका भाजन मानेगा? और क्या अपनेको अहिंसक मनवाता फिरेगा? अथवा ऐसे वातावरणमें शिक्षित युवक सहधर्मी या परधर्मीके साथ लड़ाई करेगा?

अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरुसे दूर ही रहती है। वह वीर पुरुषकी शोभा है। उसका सर्वस्व है। यह कोई शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह एक चेतन शक्ति है। यह आत्माका विशेष गुण है। इसीलिए इसका वर्णन परमधर्मके रूपमें किया गया है। इसलिए शिक्षामें अहिंसाकी दृष्टिका मतलब, है, शिक्षाके प्रत्येक अंगमें नित्य नये जान पड़नेवाले, उछलते, उभरते शुद्धतम प्रेमका समावेश। इस प्रेमके सामने वैरभाव टिक ही नहीं सकता। अहिंसारूपी प्रेम सूर्य है, वैरभाव घोर अन्धकार है। यदि सूर्यके टोकरेके नीचे छिपाया जा सकता हो तो शिक्षामें निहित हुई अहिंसा-दृष्टि भी छिपाई जा सकती है। ऐसी अहिंसा अगर विद्यापीठमें प्रगट हुई तो फिर वहाँ किसीको अहिंसाकी परिभाषा पूछनेकी आवश्यकता ही नहीं होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-९-१९२८

१. जैन-धर्ममें कहा गया है कि कन्द और मूल खानेमें हिंसा होती है। आलू-प्याज़ कन्द होनेके कारण वहाँ वर्ज्य माने जाते हैं।

२७०. टिप्पणियाँ

वरकी कीमत

एक प्रश्नकर्त्ता योग्य वरकी कीमतके बारेमें लिखते हैं:[1]

बापका पैसा लेकर कन्याको देना तो एक दुष्ट प्रथा है ही, किन्तु जब वर कन्याके बापसे विवाह करनेकी मेहरबानी दिखानेकी कीमत वसूल करता है, तब तो नीचताकी हद हो जाती है। बापको ऐसी कीमत न देनेकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए और कन्याको प्रगति करने देना चाहिए और समझदार कन्याको चाहिए कि वह किसी भी ऐसे लालची व्यक्तिकी ओर देखनेसे भी इनकार कर दे। विवाह ही जिन्दगीका परम कर्तव्य नहीं है। पैसेके लालचसे किया गया विवाह, विवाह नही है, एक नीच सौदा है। नवयुवकोंको ऐसी सौदेबाजीसे मुक्त हो जाना चाहिए। नवयुवक समझ लें कि ससुरको दण्ड देकर सुख भोगना अथवा पढ़ना बल्कि पाप है।

साधुसे कष्ट

उनका दूसरा एक सवाल यह है:[2]

लोगोको यों दण्ड देनेवाले आदमी साधु कहलाने लायक नही हैं। भगवा वस्त्र पहनने या सिर्फ लँगोटीसे निर्वाह करनेवाले लोगोके वेशके भुलावेमें पड़कर इस देशके लोग उन्हें साधु मानकर पूजते है। वेशसे कोई साधु नहीं बन सकता। साधु-वेशमे इस देशमें हजारों असाधु घूमते हैं। साधुके रूपमें दिखलाई पड़नेवाले या जिनका असली रूप प्रगट हो चुका है, ऐसे असाधुओसे गाँवोंके निवासियोंको डर नही जाना चाहिए। गाँवके लोगोंमें साधुको पहचाननेकी शक्ति आनी चाहिए और उन्हें दुष्ट लोगोंका डर छोड़ देना चाहिए। उनका विरोध कर सकनेकी शक्ति पैदा करनी चाहिए। अन्धविश्वास और भय दोनों शत्रुओंको गाँवोसे निकाल बाहर करनेके लिए शिक्षित-वर्गके गाँवोंमें प्रवेश करनेकी आवश्यकता है। सरदार वल्लभभाईने गाँवोमे प्रवेश करनेका रास्ता सारे हिन्दुस्तानको दिखलाया है। अब बारडोलीमें रचनात्मक कार्यक्रमके अन्तर्गत ऊपर जैसे बहुत-से काम होंगे और उनसे प्रजा नये पदार्थपाठ सीखेगी।

क्या यह धर्म है?

इन सज्जनका अन्तिम प्रश्न यह है:[3]

जैनियों द्वारा कन्द-मूलके विरोधसे मैं बचपनसे ही परिचित हूँ। किन्तु उसपर धार्मिक प्रतिबन्धकी बात कभी समझमें नही आई। यह तो समझा जा सकता है कि कन्द-

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। प्रश्नकर्ताने वर पानेके लिए बीस-बीस हजार रुपये तक चुकानेके उदाहरण देकर अपने परिवारके सामने उपस्थित संकटका उपाय पूछा था।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें साधुओं द्वारा जनतासे पैसे वसूल करनेका वर्णन था।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें जैन साधुओं द्वारा आलू, प्याज आदि कन्द-मूलको अखाद्य कहनेके औचित्यके विषयमें पूछा गया था।

मूलों[की जड़]में अधिक जीव चिपके रहते होंगे। किन्तु इस तरहके सूक्ष्म भेदमें मैं अहिंसा नहीं देखता। अगर ऐसा श्रावक जिसने आलू वगैरा कभी नहीं खाये रोज चोरी करता है तो रोज आलू खानेवाले सत्यशील व्यापारीकी बनिस्वत वह अधिक बड़ी हिंसा करता है। आलू खानेवाले की हिंसा बुद्धिजनित है और वह उसके हृदयको विकृत नहीं करती। किन्तु चोरी करनेवाला तो अपनी आत्माका हनन करता है। संयम-मात्र अच्छा है। हिंसामें डूबा हुआ मनुष्य-समाज अपने भोजनके सम्बन्धमें भी जितनी कम हिंसा करे वह स्तुत्य ही है। यह वांछनीय है कि हम वनस्पति-जीवनके सम्बन्धमें भी ज्ञानपूर्वक दयाभाव पैदा करें। इन्द्रियदमनके लिए अनेक स्वादोंका त्याग भी आवश्यक है। किन्तु यह मानते हुए और अनेक पदार्थोंके त्यागके अभ्यासके बावजूद तथा श्रावकोंका मीठा और गहरा परिचय होते हुए भी मेरा मन आलू इत्यादिके त्यागमें कोई बड़ा-सा धर्म देखनेसे साफ इनकार करता है। इस त्यागका चरित्रके साथ कोई सम्बन्ध दिखलाई नहीं पड़ता। मुझे तो लगता है कि जब धर्म-भावना मन्द हुई होगी, तब हमारे पूर्वज खाद्याखाद्यके ऐसे सूक्ष्म झगडोंमें पड़े होंगे। लोकाचारको मानकर जिन्हें आलू वगैरा छोड़ने हों, वे छोड़ें, मगर उसे धर्मका आधार तो कभी न बनायें और पति-पत्नीके बीच इसे मनोमालिन्यका विषय तो कभी नहीं बनने देना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-९-१९२८

२७१. ग्राम-शिक्षाकी योजना

श्री नगीनदासने एक लाख रुपया दान किया है। इस दानका समाचार छपनेके बादसे उनके पास इसके सम्बन्ध में अनेक पत्र आये है, जिनमें कुछ सुझाव भी दिये गये है। उन्होंने ये पत्र मेरे पास भेजे है और मैंने उनको काका कालेलकरके पास भेज दिया है। इस दानका उपयोग किस प्रकारसे किया जायेगा इस सम्बन्धमें गुजराती अज्ञानमें न रहें, इस उद्देश्यसे काकासाहबने भी नगीनदासको पत्र लिखकर जो योजना भेजी है उस योजना और उसे समझानेके लिए लिखे गये भागको मैं इस अंकमें दे रहा हूँ। पाठक उसे अन्यत्र पढ़ेंगे। इससे यह योजना पूरी तरह समझमें आ जायेगी। इसे पढ़कर पाठकोंको मालूम होगा कि योजनाके तीन भाग है:

१. विद्यार्थियोंमें से ऐसे शिक्षक या सेवक तैयार करना जो लोकसेवा कर सकें या लोगोंको शिक्षा दे सकें। यह तो स्पष्ट है कि इस सेवाको लोकसेवा बनाना है तो उसे ग्राम-सेवाके रूपमें ही किया जाना चाहिए।

२. इन शिक्षकोंकी मार्फत गाँवोंमें पहले गश्ती फिर स्थायी शालाएँ खोलना।

३. इनके लिए आवश्यक साहित्य तैयार करना और कराना।

पाठक देखेंगे कि यह योजना महत्त्वाकांक्षापूर्ण और विशाल है। यदि इसे कार्यान्वित किया जा सके तो श्री नगीनदासका दान सफल हो जायेगा।

इस प्रकारके कार्यमें उतावली नहीं की जा सकती। इस योजनाका क्षेत्र नया है। वर्तमान शिक्षा यदि पोषक हो सकती है तो वह शहरी जीवनकी ही पोषक हो सकती है। 'यदि हो सकती है तो' मैंने यह शंका विचारपूर्वक ही की है। मुझे यह आशंका है अथवा मेरा मत यह है कि वर्तमान शिक्षाके राष्ट्रीय शिक्षा न होनेके कारण शहरी जीवनके भी पोषक होनेका अनुभव नहीं हुआ है। इसके विपरीत वह तो परतन्त्रताका पोषण करनेके लिए बनाई गई थी, यह बात अनुभवसे सिद्ध हो चुकी है। चूंकि यह शिक्षा ऐसी है, इसलिए उससे प्रायः लिपिक और मुंशी-वर्गके नौकरी-पेशा लोग ही तैयार हुए हैं। इस योजनाको इस तरहके अस्थिर वातावरणमें से गुजरना है; इसलिए उसको कार्यरूप देनेमें समय लगेगा ही।

काकासाहबने इसके लिए १० वर्षका समय कूता है और वह अधिक नहीं जान पड़ता। यह सम्भव है कि इस बीच लोगोंमें ऐसा व्यापक और स्थायी उत्साह उत्पन्न हो जाये जैसा सन् १९२१ में उत्पन्न हुआ था और तब ठीक तरहके विद्यार्थी और शिक्षक आवश्यक संख्यामें आसानीसे मिल जायें। उस अवस्थामें यह कार्य कम समयमें पूरा हो सकता है। इस तरहकी आशा रखनेमें कोई हानि नहीं है। कार्यक्रम वर्तमान परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर तैयार किया जाना चाहिए। काकासाहबने निश्चय किया है कि कोई भी काम उतावलीमें और पूरा विचार किये बिना न किया जाये। वे चाहते हैं कि काम मन्दगतिसे भले हो, किन्तु उसकी नींव मजबूत रहे। और यही शिक्षाशास्त्रीको शोभा भी देता है।

श्री नगीनदासका दान धनकी राशिको देखते हुए बड़ा दान है, इतना ही नहीं उनके पत्रसे यह जान पड़ता है कि वे जितनी भी रकम बचा सके हैं, वह पूरी-की-पूरी रकम उन्होंने शिक्षाके कामके लिए दे दी है। इससे इस दानका मूल्य बहुत बढ़ जाता है। इस बातको देखते हुए काकासाहबकी और मेरी जिम्मेदारी बढ़ गई है। हम दोनों जागरूक तो थे ही। हम विद्यापीठसे राष्ट्रके लिए बहुत-कुछ प्राप्त करनेकी आशा रखते हैं। किन्तु श्री नगीनदासके दानकी पृष्ठभूमि जाननेके बाद हम उसका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करनेके सम्बन्धमें चिन्ताशील हो गये हैं। हम इस कार्यमें ईश्वरकी सहायता तो माँगते ही हैं, गुजरातियोंसे भी सहायताकी आशा रखते हैं। यदि इस विद्यापीठका कार्य योजनाके अनुसार पूरा हो तो अन्य विद्यापीठों और समस्त राष्ट्र पर इसका प्रभाव पड़ेगा। ऐसा कहनेका आशय यह बिलकुल नहीं है कि अन्य राष्ट्रीय विद्यापीठ कम काम करना चाहते हैं। किन्तु कहनेका आशय इतना अवश्य है कि जो सुविधाएँ गुजरात विद्यापीठको प्राप्त हैं वे अन्य विद्यापीठोंको प्राप्त नहीं हैं। इसलिए अन्य विद्यापीठोंकी अपेक्षा लोगोंको गुजरात विद्यापीठसे अधिक कामकी आशा रखनेका अधिकार है।

जिनकी राष्ट्रीय शिक्षामें रुचि है और जिन्हें इस योजनाका उद्देश्य प्रिय है, वे यदि गुजरात विद्यापीठके महामात्रको अहमदाबादके पते पर अपने सुझाव भेजेंगे तो वे विश्वास रखें कि उनके सुझावों पर पूरा ध्यान दिया जायेगा। मैं सबको सलाह देता

हूँ कि वे श्री नगीनदासको कष्ट न दें। पाठक देखेंगे कि उन्होंने अपने दानके उपयोग पर कोई नियंत्रण नहीं रखा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-९-१९२८

२७२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२ सितम्बर, १९२८

पंचगनीमें प्लेगका होना हमारे लिए शर्मकी बात है। एक सुन्दर स्वास्थ्यप्रद स्थानको हमने अपने रहन-सहनकी [बुरी] आदतोंसे गन्दा बना दिया है। और अब उस स्थानको इस महामारीसे मुक्त कर देनेकी शक्ति या साहस हममें नहीं है।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

२७३. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

२ सितम्बर, १९२८

चि० ब्रजकिसन,

तुमारे खत तो मीले परंतु उत्तर लीखनेका वखत ही कम रहता है यद्यपि आजकल तीन बजे उठता हुं।

कहीं भी खानेके लीये जांय परंतु हमारे नियमको न छोड़ें और मित्रको कष्ट भी न दें इसलीये मित्रके वहां जाकर जो हमारे लीये खाद्य वस्तु उसीको खा लेवें। कमसे-कम भात या रोटी तो रहेते ही है। बस इसीको नमकके साथ खा लें और मित्रका अनुग्रह मानें। बारडोलीके पैसेके बारेमें मैं लाला शंकरलालको लिखुंगा। तुमारा स्वास्थ कैसा है।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३५८ की फोटो-नकलसे।

२७४. उत्कलकी सहायता करें

अखिल भारतीय चरखा संघके उत्कल स्थित प्रतिनिधि श्रीयुत निरंजन पटनायकने मुझे एक पत्र लिखा है, जिसमें से मैं निम्नलिखित अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ:

> पिछले कुछ महीनोंसे अखिल भारतीय चरखा संघकी उत्कल शाखाका बिक्रीका काम सन्तोषजनक नहीं रहा है। उत्पादनका कार्य अच्छी तरहसे चल रहा है; उत्पादनकी वर्तमान दर ४,००० रुपये प्रति मास है। आपके सुझाव-पर, जो इलाके ज्यादा कष्टमें थे, वहाँ हमने दो नये केन्द्र खोले हैं—एक कटक जिलेके औल नामक स्थानमें तथा दूसरा बालासोर जिलेके तिहिडी नामक स्थानमें। इन दो केन्द्रोंमें अब लगभग ३०० कतैये हैं और उन्होंने अब तक लगभग ९ मन (१ मन = ८० पौंड) सूत काता है, जिसमें से अधिकांश १२ से १५ नम्बर तक का और कुछ २० नम्बरका भी है। तथापि बिक्री कम है। पिछले साल हमने प्रतिमास औसतन २,७४१ रुपयेकी बिक्री की। इसके मुकाबले चालू वर्षमें यद्यपि आपके यहाँ आनेके कुछ हफ्ते पहले और आपके उत्कल आनेपर हमने २०,००० रुपयेकी खादी बेची, लेकिन आपके यहाँसे जानेके बाद ब्रिकी घट गई। मतलब यह कि यद्यपि चालू वर्षमें प्रतिमास औसतन लगभग ३,५०० रुपयेकी बिक्री बैठेगी, फिर भी पिछले कुछ महीनोंसे बिक्री प्रतिमास २,००० रुपयेसे भी कमकी दरसे हुई। परिणामतः हमारे यहाँ अभी लगभग ४०,००० रुपयेकी खादी पड़ी हुई है। पिछले वर्ष हमें कुल मिलाकर १०.३ प्रतिशत लाभ हुआ और इस वर्षकी हमारी कीमतें भी उसी लाभके आधारपर निर्धारित की गई हैं। अब मैं नीचे हमारे यहाँ तैयार किये जानेवाले एक सामान्य ढंगके कपड़ेका उदाहरण देकर उत्पादनपर हुए खर्च और बिक्री-मूल्यका सम्बन्ध बताता हूँ:
>
> कुरतेका कपड़ा १० गज × ४५ इंच : इसका वजन ४ पौंड २८ तोला है और इसमें प्रतिइंच ८ और ९ अंकके लगभग २६ धागे हैं।

	रु० आ० पा०
१. ५ पौंड रुईकी कीमत	२– ८– ०
२. कातनेकी मजदूरी (प्रति पौंड $2\frac{1}{2}$ तोलेकी कमीकी गुंजाइश रखते हुए)	१– ४– ०
३. बुनाईकी मजदूरी ३ आना प्रतिगजके हिसाबसे	२– ०– ६
४. धुलाई	०– ३– ०

५. कताई-केन्द्रसे बिक्रीके डिपो तकका ढुलाई-भाड़ा (पिछले वर्षके आधारपर)	०– ४– ८
उत्पादनकी मूल लागत	६– ४– २
बिक्री मूल्य ०–१०–९ प्रतिगजकी दरसे	६–११– ६
दोनोंका अन्तर	०– ७– ४

इसमें तो हमारे उत्पादन केन्द्र, बिक्री-व्यवस्था, देखरेखके प्रबन्ध आदि पर होनेवाले खर्चके लिए मुश्किलसे रुपयेमे एक आना बचता है। आप जब पिछली बार उत्कल आये थे, तब आपने हमसे कहा था कि बिक्रीके सवालको लेकर कोई चिन्ता न करें, बल्कि अपनी समस्त शक्ति मुख्यतः उत्पादन-कार्यमें लगायें। मैंने अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीसे हमारे यहाँ पड़ी खादीको बेचनेमें मदद देनेका अनुरोध किया है। यदि आप यह समझे कि 'यंग इंडिया'के पृष्ठोंमें इसकी चर्चा उठानेसे हमें कोई लाभ हो सकता है तो आप कृपया वैसा करें।

खादीमें और जनतामें विश्वास रखनेके कारण मैंने पिछले वर्ष अपनी उत्कल-यात्राके दौरान निरंजन बाबूसे यह अवश्य कहा था कि वे अपना सारा ध्यान उत्पादनकी ओर लगायें। मेरे लिए उन नर-कंकालोंकी भावशून्य आँखोंको देखना और चुपचाप खड़े रहना सम्भव नहीं था, जबकि हमारे पास उनके लिए काम था। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उत्कलकी खादी सम्भवतः गुजरातको छोड़कर किसी अन्य प्रान्तकी खादीसे सस्ती नहीं है। उसका कारण यह है कि किसी अन्य प्रान्तकी बनिस्बत यहाँके लोग ज्यादा असहाय हैं और इसीलिए हर नई चीजको शुरू करने पर यहाँ सामान्य परिस्थितियोंवाले क्षेत्रोंकी अपेक्षा ज्यादा खर्च बैठता है। लेकिन कोशिश यही है कि कार्यकुशलता और उत्पादनमें वृद्धि होनेके साथ-साथ कीमतोंमें कमी लाई जाये। इस बीच हमें लोगोंसे उनकी परोपकार और देश-भक्तिकी भावनाके नामपर यह अपील करनी चाहिए कि वे इस खादीको खरीदकर उड़ीसाके कंगालोंकी मदद करें। पत्रमें लागत व्ययका जो विश्लेषण किया गया है, उससे पता चलता है कि अधिकांश पैसा सीधे गरीबोंकी जेबोंमें जाता है। रु० ६-११-६ में से केवल ७ आने ४ पाई ही ऊपरी खर्चमें जाते हैं, और यह पैसा भी तो आखिरकार खादी-सेवासे सम्बद्ध उन मध्यमवर्गीय कार्यकर्त्ताओंके ही हाथोंमें जाता है। इस तरह खादीके उत्पादनमें जहाँ जितना खर्च किया जाना चाहिए उससे कुछ भी अधिक खर्च नहीं किया जाता है। दूसरी ओर खादी-उत्पादनका मतलब है देशकी सम्पत्तिमें थोड़ी ही सही, किन्तु सच्ची अभिवृद्धि करना और देशके उन ईमानदार मध्यमवर्गीय युवकोंको जो अंग्रेजी स्कूलोंमें पढ़े बिना, ज्यादा बड़ी उपाधि नहीं तो कमसे-कम मैट्रिकुलेशनका प्रमाणपत्र प्राप्त किये बिना, अन्यत्र कोई रोजगार नहीं पा सकते, एक सम्मानजनक रोजगार सुलभ कराना है। जो खादी पड़ी हुई है, उसे खपानेमें

मदद देनेके दो तरीके हैं – या तो यह कि हम निजी इस्तेमालके लिए उसे खरीद लें या फिर खादी-संस्थाको दान देकर उसका वहींके गरीब लोगोंके हाथों सस्ते दामोंमें बेचा जाना सम्भव बनायें। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग उड़ीसाकी स्थितिको समझते हैं तथा राष्ट्रकी अर्थव्यवस्थामें खादीके महत्त्वको स्वीकार करते हैं, वे मेरे द्वारा सुझाये दो रास्तोंमें से किसी एकको अवश्य अपनायेंगे। अखिल भारतीय चरखा संघकी उत्कल शाखाके मुख्य कार्यालयका पता है : स्वराज्य आश्रम, बरहमपुर, बी० एन० रेलवे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ६-९-१९२८

२७५. लखनऊके बाद

बारडोलीके तुरन्त बाद लखनऊमें[1] मिलनेवाली शानदार विजय, घटनाओंका एक सुन्दर संयोग प्रस्तुत करती है। आज पण्डित मोतीलालजी को जो गौरव अनुभव हो रहा होगा उसकी समानता दूसरा कौन कर सकता है? और वे उसके अधिकारी भी हैं। लेकिन यदि प्रत्येक व्यक्तिने एक मनसे सम्मेलनकी कार्यवाहीको सफल बनानेका निश्चय न कर लिया होता तो पण्डित मोतीलालजी भी कुछ नहीं कर सकते थे। हिन्दुओं अथवा मुसलमानोंके लिए राहमें रुकावट बनकर खड़े हो जाना बहुत आसान था। सिख लोग भी चाहते तो वैसा कर सकते थे। लेकिन नेहरू समिति द्वारा धैर्य-पूर्वक किये गये प्रयत्नोंके परिणाम पर पानी फेरनेकी हिम्मत किसीमें नहीं थी। फिर आश्चर्य नहीं, यदि अदम्य आशावादी पण्डित मालवीयजी ने यह कहा कि १९३० तक स्वराज्य मिल जायेगा।

किन्तु इस सुखद परिणामका श्रेय पण्डित नेहरूके साथ-साथ डॉ० अन्सारीको भी है। उन्होंने लखनऊमें सम्मेलनकी कार्यवाहीके कुशल संचालन और दिशा-निर्देशनके रूपमें जो प्रत्यक्ष सहायता दी, उससे कहीं बड़ी उनके द्वारा दी गई अप्रत्यक्ष सहायता थी। वे नेहरू समितिके इशारे पर सदा उसकी सेवा-सहायताके लिए तैयार रहे। उन्होंने मुसलमानोंपर अपने अप्रतिम प्रभावका प्रयोग करके उनकी ओरसे विरोधकी सम्भावना समाप्त कर दी। हिन्दुओंका उनकी स्पष्ट ईमानदारी और देशभक्तिसे प्रभावित होना अनिवार्य था। सर तेजबहादुर सप्रूके नेतृत्वमें उदार दलके लोगोंने सम्मेलनको वह बल प्रदान किया जो उसे अन्यथा प्राप्त न हो पाता। डॉ० बेसेंटके साथ मैं भी यह आशा प्रकट करता हूँ कि वे लोग फिरसे राष्ट्रीय संगठन कांग्रेसमें शामिल हो जायेंगे। इसके लिए उनको अपने पृथक् अस्तित्वको मिटा देनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी – ठीक

१. जहाँ २८, २९ और ३० तारीखको सर्वदलीय सम्मेलन हुआ था, जिसमें भारतमें औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करनेके पक्षमें नेहरू समिति द्वारा तैयार की गई रिपोर्टका सर्वसम्मतिसे अनुमोदन किया गया था।

उसी तरह जिस तरह हिन्दू और मुसलमान संगठनोंको अपना-अपना पृथक् अस्तित्व मिटा नहीं देना पड़ा है।

उदार दलके जिक्रसे हमें अपने आगामी कार्यका स्मरण हो आता है। अब भी बहुत-सारा राजनयिक कार्य करना बाकी है, लेकिन इससे भी बड़ा काम है उस शक्तिका संचय करना, जिससे हम अपनी बातको और लोगोंसे स्वीकार करा सकें। पण्डित जवाहरलाल नेहरूने ठीक ही कहा कि चाहे औपनिवेशिक स्वराज्यका प्रश्न हो अथवा पूर्ण स्वतन्त्रताका यदि हम राष्ट्रकी माँगको मनवाना चाहते हैं तो हमें उसके लिए समुचित शक्तिका संचय करना होगा। यदि इस शक्तिको अहिंसात्मक होना हो तो उसका रास्ता हमें बारडोलीने दिखा दिया है। अहिंसा कांग्रेसके सिद्धान्तका अभिन्न अंग है। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि बारडोलीसे पहले अहिंसा पृष्ठभूमिमें चली गई थी। लेकिन जिस तरह नेहरू रिपोर्टने एकमत होकर अपनी माँग पेश कर सकना सम्भव बना दिया, उसी तरह बारडोलीने अहिंसाके प्रति हमारे लुप्त होते जा रहे विश्वासको वापस ला दिया है।

इसलिए यदि हमें उक्त शक्तिका निर्माण कर सकनेका भरोसा हो, तो स्वराज्यको चाहे औपनिवेशिक स्वतन्त्रता कहा जाये या पूर्ण स्वतन्त्रता, हमें उसके लिए चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं। औपनिवेशिक स्वतन्त्रताका पूर्ण स्वतन्त्रतासे भी बड़ी चीज बन जाना मुश्किल नहीं है, बशर्ते कि हमारे पास उसको प्रभावकारी बनानेके लिए पर्याप्त शक्ति हो और यदि हममें वह शक्ति नहीं है तो स्वाधीनता भी बड़ी आसानीसे एक तमाशा-भर बनकर रह सकती है। यदि हमें असली चीज मिल जाये तो नाममें क्या धरा है? गुलाबको आप गुलाबके नामसे जानें अथवा किसी अन्य नामसे, उसकी सुगन्ध तो उतनी ही मधुर रहेगी। इसलिए अब हमें यह तय कर लेना है कि हमें हिंसात्मक शक्ति प्राप्त करनी है अथवा अहिंसात्मक; और यह तय हो जानेके बाद हम सामान्य कार्यकर्त्ताओंको उस शक्तिको प्राप्त करनेमें उसी प्रकार पूरी लगनके साथ जुट जाना है जिस प्रकार हमारे राजनेताओंको संविधान बनानेमें लग जाना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-९-१९२८

२७६. हमारी गरीबी

हालमें इस पत्रमें भारतकी गरीबीके सम्बन्धमें प्रोफेसर सी० एन० वकीलके कुछ लेख प्रकाशित हुए थे। लेख बड़े मनोयोगपूर्वक और सुन्दर ढंगसे लिखे गये थे और मुझे आशा है, पाठकोंने उन्हें अवश्य पढ़ा होगा। बात यह हुई कि प्रोफेसर सैम हिगिनबॉटमने मुझे एक परिपत्र भेजा था, जिसमें निम्नलिखित चार सवाल पूछे गये थे :

१. गरीबीकी कसौटियाँ क्या हैं?

२. अबसे २५ वर्ष पूर्व या उससे भी पहलेकी तुलनामें आज भारत गरीब है या सम्पन्न?

३. भारतमें गरीबी सार्वत्रिक है या किन्हीं खास समुदायों तक सीमित है?

४. गरीबीके कारण क्या हैं और उसे दूर करनेके कौन-से उपाय हैं?

मुझे तो इस विषयका सामान्य ज्ञान ही है। इसलिए मैं जो भी उत्तर देता वे ऐसे नहीं होते कि आलोचकोंको जँच सकें। निदान, मैंने ये महत्त्वपूर्ण और उपयुक्त सवाल अर्थशास्त्री मित्रोंके पास भेज दिये और उनसे अनुरोध किया कि अगर वे इस कामके लिए थोड़ा समय निकाल सकें तो किंचित् विस्तारसे इनके उत्तर देनेकी कृपा करें। उत्तरमें प्रोफेसर वकीलने बहुत ही जल्दी वे लेख भेज दिये जिनकी ओर मैंने अभी पाठकोंका ध्यान दिलाया है। यह लेख-माला अभी वास्तवमें समाप्त नहीं हुई है। जब मैंने आखिरी परिच्छेद, जिसमें गरीबीको दूर करनेके उपायों पर विचार किया गया है, पढ़ा तो पाया कि विषयके सही और सम्यक् निरूपणके लिए इस परिच्छेदको दोबारा लिखनेकी जरूरत है। अब मैं प्रोफेसर वकीलसे यह आग्रह कर रहा हूँ कि अगर वे समय निकाल सकें और लिखनेका मन हो तो इस परिच्छेदको फिरसे लिखनेकी कृपा करें। अगर वे मुझे कुछ भेजते हैं तो पाठक एक और किस्त[1] की आशा रख सकते हैं। वैसे फिलहाल वे इस लेखमालाको पूर्ण हो गया ही समझें।

इन लेखोंमें स्पष्ट रूपसे और मैं तो कहूँगा कि निर्विवाद रूपसे यह दिखा दिया गया है कि अबसे २५ वर्ष या उससे भी पहलेके मुकाबले आज भारत कहीं ज्यादा गरीब है और यह गरीबी किन्हीं खास समुदायों तक सीमित नहीं है, बल्कि सार्वत्रिक है। प्रोफेसर वकीलने अपनी बातको सिद्ध करनेके लिए दो कसौटियोंका प्रयोग किया है। उन्होंने दिखाया है कि यद्यपि गत चालीस वर्षोंमें हमारी औसत आय १ से बढ़कर २.७४ (उन्होंने हर मामलेमें अधिकतम अंकको स्वीकार करके यह अनुमान लगाया है) हो गई है, किन्तु निर्वाह-व्यय १ से बढ़कर ३.७८ हो गया है। मतलब

१. "गरीबीका इलाज" शीर्षकसे सी० एन० वकीलकी लेखमाला **यंग इंडियाके** २७ सितम्बर, ४, ११ और १८-१०-१९२८ के अंकोंमें प्रकाशित हुई थी।

यह कि अबसे ४० वर्ष पहलेके मुकाबले हम ३ अधिक गरीब हो गये हैं। इसके बाद उन्होंने जनसंख्या पर विचार किया है और यहाँ भी वे उसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, क्योंकि उन्होंने दिखाया है कि जहाँ जनसंख्यामें वृद्धि हुई है, वहीं इस वृद्धिसे उत्पन्न आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेकी क्षमतामें वृद्धि होना तो दूर, शायद कमी ही आती गई है।

प्रोफेसर वकीलने इस बढ़ती हुई गरीबीके निम्नलिखित छ: कारण बताये हैं:

१. विशाल कृषक जनसमुदायके पास, जब खेतीका काम बन्द रहता है उस अवधिमें, पर्याप्त कामका न होना।

२. यहाँकी सामाजिक व्यवस्था, जो एक ही व्यक्तिपर बहुत बड़े परिवारके भरण-पोषणका बोझ लाद देती है।

३. 'साधु' कहे जानेवाले शरीरसे हृष्ट-पुष्ट भिखमंगोंकी विशाल संख्या।

४. आलस्य पैदा करनेवाली जलवायु।

५. लोगोंका भाग्यपर भरोसा करना और फलतः गरीबीका मुकाबला करनेके संकल्पका अभाव।

६. त्रुटिपूर्ण शिक्षा-पद्धति।

ये तमाम बातें देशको गरीब बनानेमें न्यूनाधिक सहायक हैं सही, किन्तु मुझे लगता है इनमें से केवल पहला कारण ही ऐसा है जो समस्याकी जड़को छूता है। इसमें सन्देह नहीं कि इन लेखोंमें ऐसे पर्याप्त तथ्य दिये गये हैं जिनसे प्रकट होता है कि गरीबीका एक कारण विदेशी शोषण भी है। लेकिन जाहिर है कि कारण बताते समय प्रोफेसर साहबने इस स्पष्टतः बुनियादी कारणका उल्लेख करनेमें संकोचसे काम लिया है। यह शोषण सहस्रमुखी दानवके समान है जो प्रसंगानुकूल भिन्न-भिन्न रूपों और आकारोंमें प्रकट होता है। इस विदेशी सरकारके जहाजी बेड़े, सेना, मुद्रा, रेलवे और राजस्व-नीति, सबका उपयोग जान-बूझकर ऐसे भयंकर ढंगके शोषणको प्रश्रय देना है जैसा शोषण दुनियामें पहले कभी नहीं देखा गया। जबतक यह शोषण निर्बाध रूपसे चल रहा है तबतक भारतकी गरीबी कभी दूर नहीं हो सकती। यदि यह बुराई, जिसे दादाभाई नौरोजीने हमारे देशके 'धनका भयावह बहिर्गमन' कहा है, बन्द नहीं होती तो चरखा या करोड़ों किसानोंको सुलभ कराया जानेवाला कोई भी अन्य धन्धा इस गरीबीका आंशिक उपचार ही कर पायेगा। इसलिए जो कोई भी गरीबीको दूर करनेके उपाय ढूँढ़ना चाहता हो उसे सबसे पहले हमारे देशके धनके बहकर लगातार विदेशमें जाते रहनेकी समस्याका कोई समाधान ढूँढ़ना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-९-१९२८

२७७. पत्र : जॉन हेन्स होम्सको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

श्री एन्ड्रयूज एक अंग्रेजी फर्मके लिए 'माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ'को संक्षिप्त कर रहे हैं। मैंने उनके काममें कोई हस्तक्षेप नहीं किया है, क्योंकि मुझे लगा कि इससे मैकमिलन कम्पनीपर कोई असर नहीं पड़ता। लेकिन अपने और मैकमिलन कम्पनीके बीच हुए करारको दोबारा पढ़नेके बाद मैंने पाया कि ऐसा हो तो सकता है कि कम्पनी किसी भी संक्षिप्त संस्करणके प्रकाशनको करारके खिलाफ माने। यदि ऐसी बात हो तो कृपया मुझे सूचित करें। खुद मैं तो यह महसूस करता हूँ, कि इसके अध्याय अभी लिखे ही जा रहे हैं और यह सिलसिला अभी कई महीने जारी रहेगा इसलिए कम्पनीके लिए इस करारका कोई महत्त्व नहीं है। यदि कम्पनी चाहे तो मैं करारको रद करनेके लिए तैयार हूं। इन अध्यायोंको पुस्तक रूपमें प्रकाशित कराकर पैसा कमानेमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। लेकिन इन अध्यायोंके अन्तिम रूपसे पुस्तकाकार छपनेसे पूर्व इनके संक्षिप्त रूपके प्रकाशनमें मैं बाधा नहीं डालना चाहूँगा। अगर मैकमिलन कम्पनी इन अध्यायोंको तत्काल कई जिल्दोंमें प्रकाशित करने जा रही हो तो वह संक्षिप्त संस्करणों अथवा कुछ चुने हुए अध्यायोंके प्रकाशनमें हस्तक्षेप कर सकती है; लेकिन यदि वह इन्हें जिल्दोंमें प्रकाशित नहीं करने जा रही हो और न ही करारको रद करने जा रही हो तो जब तक सारे अध्याय कम्पनीको सौंप दिये जानेके लिए तैयार नहीं हो जाते तबतक उसे इंग्लैंडमें अथवा भारतमें बाहर कहीं भी किसी संक्षिप्त संस्करणके प्रकाशन पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड जॉन हेन्स होम्स
१२ पार्क एवेन्यू
न्यूयार्क सिटी
(यू० एस० ए०)

अंग्रेजी (एस० एन० १४७६९)की फोटो-नकलसे।

२७८. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ सितम्बर, १९२८

मुब्बैयाने अभी-अभी मुझसे कहा है कि तुम मेरी आत्मकथाके अध्यायोंका जो संक्षेप कर रहे हो वह न्यूयार्ककी मैकमिलन कम्पनीके साथ हुए मेरे करारकी शर्तोंके खिलाफ हो सकता है। मेरा खयाल है कि जबतक मैं अन्तिम अध्याय तैयार करके सारी सामग्रीकी एक प्रति मैकमिलन कम्पनीको नहीं सौंप देता तबतक ऐसा कोई संक्षेप करारकी शर्तोंके खिलाफ नहीं होना चाहिए। तथापि तुम्हारे मार्गदर्शनके लिए मैं एहतियातन उस पत्रकी एक प्रति[1] साथमें भेज रहा हूँ जो मैंने रेवरेंड होम्सको लिखा है।

मैं तुम्हारी इस रायसे सहमत हूँ कि साइमन कमीशनसे किसी चीजकी आशा नहीं करनी चाहिए।

सरोजिनी शीघ्र ही अमेरिका रवाना होनेवाली हैं। वे आज रात यहाँ आ रही हैं। ग्रेगकी तीव्र इच्छा है कि तुम जब अमेरिका जाओ तो उनके घरके लोगोंसे मिलो। यदि मैं उनका पता मालूम कर सका तो वह तुम्हें मैं इस पत्रके साथ भेज दूँगा।

आत्मकथा [खण्ड १]के अध्यायोंका प्रकाशन पूरा होनेके बादसे मैं 'यंग इंडिया' के अंकोंकी[2] दो-दो प्रतियाँ तुम्हें भिजवा रहा हूँ।

मुश्किल यह है कि तुम जरूरतसे ज्यादा काम करनेका आग्रह रखते हो और फिर बीमार पड़ जाते हो। मैंने १९१४ में केपटाउनमें तुमसे कहा था कि तुम्हें एक अभिभावककी जरूरत है; आज भी मेरा वही विचार है।

महादेव वल्लभभाईके साथ शिमला गया है। वल्लभभाईको इस तरहके परिवर्तनकी जरूरत थी और फिर विट्ठलभाई भी कुछ दिन उन्हें अपने साथ रखना चाहते थे।

श्रीयुत सी० एफ० एन्ड्रयूज
११२, गोवर स्ट्रीट
लन्दन, डब्ल्यू० – १

अंग्रेजी (एस० एन० १२७८०)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. तात्पर्य १२ मई, १९२७के बादके अंकोंसे है। इस तारीखके अंकमें **आत्मकथा**के प्रथम खण्डका तीसरा भाग पूरा हो गया था और तीनों भाग उसी वर्ष पुस्तक-रूपमें प्रकाशित हो गये थे।

२७९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ सितम्बर, १९२८

प्रिय सतीश बाबू,

अखबारोंमें पढ़ा कि कलकत्तामें फिर बेरीबेरीका प्रकोप हुआ है। इस खबरसे घबराकर आज सुबह मैंने आपको तार दिया कि आप और हेमप्रभा देवी कुछ दिनोंके लिए कलकत्तासे बाहर चले आयें। बेशक, आप यहाँ तो जब चाहें आ सकते हैं और यहाँ आपका समय भी नष्ट नहीं होगा। सच तो यह है कि कर्तव्यका समय कहीं भी नष्ट नहीं होता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मेरे सुझावपर गम्भीरतासे विचार करें।

प्रदर्शनीके सम्बन्धमें मैं समस्त खादी-संगठनोंसे यही कहने जा रहा हूँ कि अब तक के निर्णयके अनुसार कांग्रेस-प्रदर्शनीमें खादीका प्रदर्शन नहीं किया जायेगा।

आपने पानीका जो हाथ पम्प यहाँ लगाया था, वह कष्ट दे रहा है। मुझे ऐसा लगता है कि जबतक पासमें कोई अच्छा कारीगर न हो तबतक इन मशीनोंको लगवाना ठीक नही है। अभी उस दिन अचानक ही पम्प खराब हो गया, जिससे हमें पानी नहीं मिला और हमने इस आकस्मिक परिस्थितिके लिए पहलेसे कोई व्यवस्था भी नहीं कर रखी थी। आज पानी भरनेका डोल टूट गया और फिर पानीका अभाव हो गया और एक बार जब लोगोंने ऐसा मान लिया कि अब पानी भरनेकी झंझटसे छुटकारा मिल गया तो स्वभावत: फिरसे यह काम करनेको उनका मन नहीं होता। मैं जानता हूँ कि जहाँ मशीनोंसे काम लेनेका वातावरण होता है वहाँ ऐसी दिक्कतें पेश नहीं आतीं। मै आपको यह सब इसलिए बता रहा हूँ कि आप इस सम्बन्धमें मुझे जो सुझाव देना चाहें, दे सकें। इस पम्पको प्राप्त करनेके बाद इसे सहज ही छोड़नेका मन नहीं हो रहा है।

आपने जो बड़ी योजना[1] बनाई है उसे तो अब तभी आजमाऊँगा जब हाथ-पम्पका प्रयोग मुझे पूरा निरापद लगने लगेगा।

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
सोदपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१०)की फोटो-नकलसे।

१. नल-कूप द्वारा साबरमती आश्रमके लिए पानीकी व्यवस्था करनेकी योजना।

२८०. पत्र : क० सदाशिवरावको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ सितम्बर, १९२८

प्रिय सदाशिवराव,

आपका पत्र मिला। यदि हम अपनी चिन्ता किये बिना देशकी सेवा करना चाहते हैं तो हम तब भी प्रसन्न होंगे जब दुनिया हम पर पत्थर फेंकेगी या हमारे साथ बुरा व्यवहार करेगी। और मुझे विश्वास है कि यदि आप इस आघातको शान्त मनसे झेल लेंगे और सचमुच यह मानेंगे कि आपके सिरसे एक बोझ उतर गया है तो आप अपने-आपको और भी मजबूत तथा बेहतर पायेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सदाशिवराव करनाड
कोडाईब्रेल, मंगलोर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५११)की माइक्रोफिल्मसे।

२८१. पत्र : धनगोपाल मुखर्जीको[1]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैंने अपने लेखोंमें टॉल्स्टॉय अथवा किसी भी लेखककी चीजको आभार स्वीकार किये बिना कभी उद्धृत नहीं किया है। और मैं नहीं समझता कि अपने लेखोंमें मैंने उद्धरणोंका ज्यादा उपयोग किया है। उपयोग न करनेका कारण यह नहीं है कि मैं उद्धरण देना नहीं चाहता, बल्कि यह है कि मैंने बहुत कम पढ़ा है और जो-कुछ पढ़ा है, उसे स्मरणसे उद्धृत करनेकी योग्यता तो मुझमें और भी कम है।

मैंने ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा निस्सन्देह टॉल्स्टॉयकी शिक्षासे काफी अवगत हो जानेके बाद ही ली। और जहाँ मोटे तौर पर यह बात बिलकुल सही है कि मेरा जीवन

१. धनगोपाल मुखर्जीने अपने १४ अगस्तके पत्रमें अन्य बातोंके अलावा गांधीजी से टॉल्स्टॉयके साथ उनके सम्बन्धोंके विषयमें **यंग इंडिया**में लिखनेका अनुरोध किया था। इस विषयकी चर्चा गांधीजी ने अपने एक भाषणमें की, जो १०-९-१९२८ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुआ था; देखिए "भाषण : टॉल्स्टॉयकी जन्म-शताब्दीपर", १०-९-१९२८।

'गीता' की शिक्षा पर आधारित है, वहाँ मैं दावेके साथ यह नहीं कह सकता कि ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें मेरे निर्णयको टॉल्स्टॉयके लेखों और शिक्षाने प्रभावित नहीं किया है।

यह सब तो हुआ आपके सन्तोषके लिए। आपने जो महत्त्वपूर्ण प्रश्न रखा है, उस पर मैं 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें फिर कभी विचार करनेकी आशा रखता हूँ।

हृदयसे आपका,

धनगोपाल मुखर्जी

अंग्रेजी (एस० एन० १४३७८)की फोटो-नकलसे।

२८२. पत्र: हे० सॉ० लि० पोलकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ सितम्बर, १९२८

तुम्हारा पत्र मिला और मिलीका[1] भी। एक लम्बे अर्सेके बाद मिलीके हाथका लिखा पत्र पाकर मुझे बहुत खुशी हुई और तुम कैलेनबैकसे मिल सके, यह जानकर तो बहुत ही खुशी हुई। मिलीको अलगसे पत्र लिखनेकी तो मैं कोशिश भी नहीं कर सकता। मेरा जीवन दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक कर्मसंकुल और कठिन होता जा रहा है। लेकिन इस सबके बावजूद मेरी सेहत बहुत अच्छी चल रही जान पड़ती है।

देवदास दिल्लीमें राष्ट्रीय मुस्लिम विद्यापीठ [जामिया मिलिया] के विद्यार्थियोंको कताई, धुनाई और हिन्दी सिखाता है। रामदास बारडोलीमें है और जब सत्याग्रह चल रहा था तब भी वह वहीं था। अब वह रचनात्मक कार्यो, मद्यनिषेध, कताई, समाजसुधार आदिमें लगा हुआ है।

वेल्श मॉडलका चरखा[2] पिछले हफ्ते नहीं आया। शायद कल आये।

पता नहीं, लिऑन मुझे कभी याद भी करता है या नहीं।

हृदससे तुम्हारा,

हेनरी सॉ० लि० पोलक
२६५ स्ट्रांड
लन्दन, डब्ल्यू० सी० २

अंग्रेजी (एस० एन० १४३८०)की फोटो-नकलसे।

१. श्रीमती पोलक।
२. ऊन कातनेके लिए।

२८३. भाषण: गूँगों और बहरोंकी शालामें

अहमदाबाद
७ सितम्बर, १९२८

इस शालाके साथ मेरा सम्बन्ध सन् १९१५से है। सेठ मंगलदास और श्री प्राणशंकरजी के अनुरोधसे अनेक कामोके होते हुए भी मै यहाँ आया हूँ। यह तो गूँगों और बहरोंकी एक छोटी-सी शाला है, किन्तु मैंने हजारों गूँगों और बहरोकी शाला चलानेका तथा अज्ञानके कारण उन्हें जो अभाव सहने पड़ते हैं, उन्हें दूर करनेका काम अपने हाथमें लिया है। सेठ मंगलदास-जैसे श्रीमान् व्यक्ति इस शालाको छोटी-सी धनराशि दानमें देकर अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ नही मान सकते। ऐसी शाला तो अहमदाबादका कोई एक सेठ भी आसानीसे चला सकता है। अहमदाबादमें ऐसी एक नही, अनेक शालाएँ चलानेकी शक्ति है। ईश्वरने हमें वाणी और आँखें दी हैं; उसकी इस कृपाका उपकार हम गूँगों और बहरोंकी ऐसी सेवा करके चुका सकते है। श्री प्राणशंकरने शालाकी रिपोर्ट पेश की किन्तु यह नही बताया कि इस शालाका जन्म कैसे हुआ। उनका अपना एक पुत्र बहरा और गूँगा था। उन्हें लगा कि उसे शिक्षा तो देनी चाहिए। तदनुसार उन्होंने उसे शिक्षा देनेकी व्यवस्था की। और उसमें स्वार्थके साथ परमार्थको भी जोड़ दिया। इस तरह यह शाला अस्तित्वमें आई। स्वार्थके साथ लोकसेवाका ऐसा योग एक साधारण बात होनी चाहिए। किन्तु अहमदाबादमें जहाँ सभी लोग पैसा जोड़नेके धन्धेमें लग गये हैं, स्वार्थके साथ परमार्थका साधन करनेकी यह साधारण बात समझाना भी कठिन होता है। श्री प्राणशंकरने आंकड़े पेश करते हुए बताया है कि ७० हजार गूँगों और बहरोंके लिए इस प्रदेशमें केवल तीन शालाएँ हैं। तथा भारतमें जो दो लाख गूँगे और बहरे है, उनमें से केवल पाँच सौके लिए ही ऐसी शालाओंकी व्यवस्था है। इससे स्पष्ट है कि उनकी शिक्षाके लिए जितना प्रयत्न हमें करना चाहिए, उतना प्रयत्न हम नही कर रहे हैं। हम दान देकर उनका पेट भरनेकी व्यवस्था तो कर देते हैं, किन्तु हम उनकी शिक्षाके लिए कोई प्रयत्न नहीं करते। एक कहावत है कि एक आलसी आदमीका भार दो आदमियोंको ढोना पड़ता है। हमें इन बहरों और गूँगोंको ऐसा आलसी नहीं बनाना चाहिए। उन्हें ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे कि वे अपनी जीविका कमा सकें। अहमदाबादको ऐसी शालाके लिए बाहर जाकर मदद लेनेकी जरूरत नही होनी चाहिए। उलटे, अहमदाबादको ही बाहरसे आनेवाले सुपात्र अभ्यागतोंको दान दे सकना चाहिए। अहमदाबादके विषयमें एक अन्य बात पर भी मै आप सबका ध्यान खींचना चाहता हूँ। गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटीके लिए डॉ० हरिप्रसाद द्वारा लिखित एक पुस्तक अभी मेरे पढ़नेमें आई है। इस पुस्तकमें वे कहते हैं कि हिन्दुस्तानमें अहमदाबादकी मृत्यु-संख्या सबसे अधिक है। और जबकि इस सम्बन्धमें हिन्दुस्तानको पहला स्थान प्राप्त है तो यह कहनेकी तो कोई

आवश्यकता ही नहीं कि इस सम्बन्धमें सारी दुनियामें उसका स्थान पहला ही होगा। मेरे पास अमेरिका, इंग्लैंड और दुनियाके विभिन्न हिस्सोंसे अनेक यात्री आते हैं। वे जब हमारे इस शहरकी गन्दी गलियों और रास्तोंकी बात करने लगते हैं तो मेरा सिर शर्मसे झुक जाता है। इस स्थितिको हमें सुधारना चाहिए। यदि हम अपनी बुद्धि और शरीरिक शक्तिका उपयोग करें तो हम अहमदाबादको एक रमणीय शहर बना सकते हैं। अन्तमें, आपने मुझे इस शालाका शिलान्यास करनेका अवसर दिया, उसके लिए मैं आप सब लोगोंका आभार मानता हूँ और कामना करता हूँ कि इस शालाकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो। शिक्षित लोग धनोपार्जन अवश्य करें किन्तु वे उसका संग्रह न करें, अपने धनका लाभ उदारतापूर्वक दूसरोंको दें, ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, ९-९-१९२८

२८४. पत्र : एम० जफरुलमुल्कको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
८ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आशा है आपके प्रचारके फलस्वरूप आपकी योजना लोकप्रिय हो सकेगी। यहाँ आनेपर आप बेशक मुझसे इस विषय पर जी-भरकर चर्चाकर लीजिएगा।

संविधानके सम्बन्धमें मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यह बिलकुल पाश्चात्य ढंगका है। लेकिन मैंने इस बातकी कोई फिक्र नहीं की है कि यह पाश्चात्य ढंगका है अथवा प्राच्य ढंगका। यदि हममें सच्ची जागरूकता होगी तो हम इसे जैसा चाहेंगे वैसा बना सकेंगे और स्वयं इसके शब्दोंका गुलाम बन जानेके बजाय इसे ऐसा रूप दे सकेंगे जिससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो। यह संविधान, हमारे यहाँ आज जो शासन-संस्थाएँ हैं उनका स्वाभाविक परिणाम है। विधान सभासे सम्बद्ध कोई व्यक्ति किसी अन्य प्रकारका संविधान दे भी नहीं सकता था, और यदि हम भारतकी वर्तमान शासन-प्रणालीका स्वाभाविक परिणाम — यह संविधान — प्राप्त कर लेते हैं और तब देखते हैं कि यह यहाँके लोगोंकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं पड़ रहा है तो विश्वास रखिए कि जिन्होंने यह संविधान बनाया है, वे इसे नष्ट करके कोई उपयुक्त संविधान अवश्य गढ़ लेंगे। जरूरी यह है कि जो चीज हमपर भार बनकर हमें दबा रही है, उसे दूर किया जाये। और यह देखते हुए कि एक कामचलाऊ संविधानपर हममें किसी हद तक सहमति हो गई है, मेरे विचारसे इस संविधानको अस्वीकार

करना भूल होगी। यही कारण है कि मैंने देशसे पूरे दिलसे इसे स्वीकार करनेकी सिफारिश की है।

हृदयसे आपका,

एम० जफरुलमुल्क
लखनऊ

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१२)की फोटो-नकलसे।

२८५. पत्र : श्रद्धा चैतन्य ब्रह्मचारीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
८ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

मुझे खेद है कि मैं आपको 'यग इंडिया' अथवा 'यंग इंडिया'से सम्बन्धित साहित्य मुफ्त नहीं भेज सकता। प्रबन्धक लोग इस तरहके अनुरोधोंको प्रोत्साहन नहीं देते, फिर चाहे इसका कारण केवल यही हो कि ऐसे बहुतसे अनुरोध प्रतिदिन मिलते रहते हैं। निस्सन्देह, आप यह जानते ही हैं कि 'यंग इंडिया' व्यावसायिक दृष्टिसे चलाया जानेवाला पत्र नहीं है। यह संस्था भी रामकृष्ण मिशनकी भाँति ही लोकोपकारी संस्था है। इसलिए बहुत कम लोगोंको 'यंग इंडिया' मुफ्त दिया जाता है।

हृदयसे आपका,

श्री श्रद्धा चैतन्य ब्रह्मचारी
श्री रामकृष्ण मठ
गैरिसन रोड
दिल्ली

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१३)की माइक्रोफिल्मसे।

२८६. पत्र : आर० डी० प्रभुको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
८ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यदि स्नान करनेसे इनामदारको सन्तोष होता है तो आप स्नान करें, इसमें विश्वास रखनेके कारण नहीं बल्कि इनामदारकी खातिर और इसलिए अपने उन अस्पृश्य भाइयोंकी खातिर जिनकी आप सेवा करना चाहते हैं।

यदि मराठा लड़के इसलिए स्कूल छोड़ देते हैं कि उसमें महार लड़के भी पढते हैं तो आप उनके स्कूल छोड़नेकी परवाह न करें, बल्कि हर कीमतपर महार लड़कोंको पढ़ाना जारी रखें।

हृदससे आपका,

श्रीयुत आर० डी० प्रभु
विनजाने
डाकघर-हलकर्णी
महल चाँदगढ़, जिला बेलगाँव

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१४)की माइक्रोफिल्मसे।

२८७. पत्र : पी० ए० वाडियाको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
८ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

महादेवको लिखा आपका पत्र देखा। महादेव तो अभी वल्लभभाईके साथ शिमला गया हुआ है। यदि सम्भव हो तो 'रिट्रीट' में[1] शामिल होकर मुझे बड़ी खुशी होगी। लेकिन अभी जहाँ तक देख सकता हूँ, मेरे आ सकनेकी सम्भावना नजर नहीं आती। फिर भी, इतना पहले आपसे 'न' कहनेकी जरूरत नहीं है। यह अवश्य कहूँगा कि मेरे आनेकी आशा रखकर आप कुछ न करें। अगर आ भी सका तो मुझे बस एक अतिथि समझ लीजिएगा। इसलिए मैं चाहूँगा कि समय निकट आने पर आप मुझे याद दिला दें।

१. इसका आयोजन बम्बईका अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री संघ करनेवाला था।

भारतको भाषावार प्रान्तोंमें बाँटनेकी तजवीजके बारेमें कही आपकी बातोंको मैंने ध्यानसे पढ़ा है। मेरा खयाल यह है कि बाहरसे लादी हुई किसी चीजके द्वारा हम लोगोंमें राष्ट्रीयताकी भावनाकी वृद्धि नहीं कर सकते। इसलिए मैं समझता हूँ कि स्वाभाविक भाषावार खण्डोंको मान्यता देनेसे हमारा कोई नुकसान नहीं होगा, बशर्ते कि विशिष्ट वर्गों और सर्वसाधारण, दोनोके लिए विभिन्न भाषाओंके स्थान पर किसी एक ही भाषाको प्रतिष्ठित करनेका इरादा न हो।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१५)की फोटो-नकलसे।

२८८. सन्देश : 'खादी-विजय'को[1]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
८ सितम्बर, १९२८

'खादी-विजय'का अर्थ है, खादीकी जय। यह एक अच्छी बात है कि खादीके लिए एक मासिक पत्र निकाला जाये, लेकिन इससे भी ज्यादा अच्छी बात तो यह होगी कि लोग, विशेषकर व्यापारी-वर्गके लोग, अपने-आपको खादीमें लगायें। यदि वे ऐसा करेंगे तो खादीकी विजय निश्चित है।

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१६)की माइक्रोफिल्मसे।

२८९. पत्र : गंगाधररावको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
८ सितम्बर, १९२८

प्रिय गंगाधरराव,

काकाने मुझे बताया है कि आप श्रीयुत नंजप्पाके लिए एक सन्देश चाहते हैं, सो साथमें वह सन्देश[2] भेज रहा हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि अब आप अवसाद और रोगसे छुटकारा पा चुके होंगे और पूनामें हुई अपनी विजयोंके कारण अब आप अपनी आयुसे २० वर्ष कम दिखाई दे रहे होंगे। उम्मीद है कि खादीके प्रति यह नया उत्साह सदैव बना रहेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१७)की फोटो-नकलसे।

१. यह सन्देश गंगाधररावको लिखित ८ सितम्बर, १९२८ के पत्रके साथ भेजा गया था।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

२९०. पत्र : चिन्तामणि ब० खाडिलकरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
८ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपका मामला तत्त्वत: सत्याग्रहका मामला है। आप एक ऐसे क्लबके सदस्य हैं, जिसके अन्य सदस्योंने अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ा है। इसलिए यदि आपमें साहस है तो आप उनसे तनिक भी नाराज हुए बिना उनके विरुद्ध सत्याग्रह करें। लेकिन ऐसा करनेसे पहले आप उन्हें अच्छी तरह समझायें-बुझायें और इस तरह उनसे प्रतिज्ञाका पालन करवानेका हर सम्भव प्रयत्न करें। यदि वे आपकी बात नहीं मानते तो सावधानीके साथ इस पर विचार करें कि आप सत्याग्रहके किस रूपको अपना सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चिन्तामणि बलवन्त खाडिलकर
फर्ग्युसन कॉलेज
होस्टेल कमरा नं० ३३२
डेकन जिमखाना, पूना सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१८)की फोटो-नकलसे।

२९१. बालक क्या समझें?

गुजरात विद्यापीठका एक विद्यार्थी लिखता है:[१]

इस पत्रमें जिन लेखोंसे उद्धरण दिये गये हैं, मैं उन लेखोंको नहीं पढ़ पाया हूँ। किसी लेखमें से कोई एकाध अंश छाँटकर, आगे-पीछेके सन्दर्भ पर विचार किये बिना, सामंजस्यपूर्ण अर्थ निकालना हमेशा सम्भव नहीं। फिर भी इस उद्धरणमें निहित भाव मेरे अनुभवसे निकला हुआ है; इसलिए मूल लेख पढ़े बिना उत्तर देनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं है। पाठक यहाँ बालक शब्दका अर्थ दो सालका बच्चा न समझें बल्कि इसका अर्थ, जिस उम्रमें बालकको आम तौर पर स्कूल भेजना शुरू किया जाता है, उस उम्रका बालक किया जाना चाहिए।

१. पत्र यहां नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि गांधीजी के लेखोंसे यह जाहिर होता है कि वे बच्चोंसे जो अपेक्षाएँ रखते हैं वे बहुत अधिक हैं।

मेरे 'गीता' पढ़ते समय बच्चे सो जायें, तो उससे उनमें समझनेकी शक्तिका अभाव सिद्ध नहीं होता। हम इससे यह अवश्य कह सकते है कि मैं उनमें 'गीता' पढ़नेके प्रति दिलचस्पी पैदा नहीं कर सका; या ऐसा भी हो सकता है कि बालक उस समय थके हुए हों। अंकगणित सीखते समय, मजेदार बातें सुनते-सुनते और नाटक देखते हुए भी मैंने कई बार बालकोंको सो जाते देखा है। और 'गीताजी' आदिके पाठके समय बड़ी उम्रवालो को भी ऊँघते देखा है। इसलिए ऊपरके प्रश्नपर विचार करते समय नींद और आलसकी बात हमें छोड़ देनी चाहिए।

बच्चेके शारीरिक जन्मसे पहले आत्माका अस्तित्व था; आत्मा अनादि है और उसका बचपन, जवानी और बुढ़ापा आदि स्थितियोंसे कोई वास्ता नही है। यह बात जिसके लिए दीपककी तरह स्पष्ट है उसके मनमें ऊपरके प्रश्न उठने ही नही चाहिए। देहाध्यास, जमानेके रुख और गहराईसे विचार करनेके प्रति आलस्यके कारण हम मान लेते हैं कि बच्चा सिर्फ खेलना ही जानता है या बहुत हुआ तो अक्षर रटना जानता है। और इससे थोड़ा आगे बढ़ें तो यूरोप-अमेरिकाकी नदियों वगैराके अटपटे नाम याद करना जानता है और जिनके नामोंका उच्चारण तक कठिन है, वहाँके ऐसे राजाओं, डाकुओं और खूनियोंका इतिहास समझ सकता है।

मेरा अपना अनुभव इससे उलटा है। बच्चोंकी समझमें आने लायक भाषामें आत्मा, सत्य और प्रेम क्या है, यह उन्हें निस्सन्देह बताया जा सकता है। जिन्हें दुनियाका कोई ज्ञान नही हो पाया हो, ऐसे एक नही अनेक बच्चोंको मृत शरीर देखकर मैंने यह पूछते सुना है, 'इस आदमीका जीव कहाँ गया?' जो बालक ऐसा सवाल अपने-आप कर सकता है, उसे आत्माका ज्ञान जरूर कराया जा सकता है। भारतके करोडों अनपढ़ बच्चे समझदार होते ही सत्य और असत्य, प्रेम और घृणाका भेद जानने लगते हैं। कौन-सा बच्चा अपने माता-पिताकी आँखसे झरनेवाले प्रेमके अमृत या क्रोधकी अग्निको नहीं पहचान सकता? प्रश्न पूछनेवाला विद्यार्थी अपने बचपनको ही भूल गया है। उसे मैं याद दिलाना चाहता हूँ कि पढ़ना-लिखना आनेसे पहले वह माता-पिताके प्रेमका अनुभव कर चुका था। यदि प्रेम, सत्य और आत्माकी अभिव्यक्तिके लिए भाषाकी जरूरत होती तो ये कभीके मिट गये होते।

ऊपरके उद्धरणोंमें बच्चोंके सामने तत्त्वज्ञानकी शुष्क और निर्जीव चर्चा करनेकी बात नहीं, बल्कि सत्य आदि शाश्वत गुणोंका उनके सामने प्रदर्शन करके यह साबित करनेकी बात है कि ये गुण उनमें भी हैं। सार यह है कि अक्षरज्ञान चरित्रकी पृष्ठभूमिमें ही शोभा पाता है। चरित्रके पहले अक्षर-ज्ञानको रखा जाये, तो वह उतना ही शोभा पायेगा और सफल होगा, जितनी गाड़ीके पीछे घोड़ेको रखकर उसकी नाकसे गाड़ीको ढकेलवानेकी क्रिया शोभा देगी और सफल होगी। ऐसे अनुभवसे ही डारविनका सम-कालीन विज्ञान-शास्त्री वॉलेस नब्बे वर्षकी उम्रमें कह गया है कि मैंने पढ़ी-लिखी और सुधरी हुई मानी जानेवाली जातियोंकी मूल नीतिमें जंगली कहलानेवाले हब्शियोंकी नीतिसे बढ़कर कुछ भी नहीं देखा। यदि हम आजकलके हर तरहके बाहरी प्रलो-भनोंमें न फँस चुके हों, तो हम वॉलेसकी कही हुई बातका अनुभव करेंगे और अपने विद्याभ्यासकी कल्पना और रचना अलग तरहसे करेंगे।

दस सिरवाले रावणके बारेमें जो प्रश्न है, उसके उत्तरमें मैं एक प्रश्न पूछता हूँ : बालकको क्या समझाना आसान है? जैसा दस सिरवाला प्राणी किसी समय सम्भव ही नही है, ऐसा एक रावण हो गया है — यह चीज बच्चोंके गले उतारना आसान है, या सबके दिलमें चोरकी तरह छिपे बैठे दस सिरवाले रावणका साक्षात्कार करा देना आसान है? बच्चोंको कल्पना और बुद्धिकी शक्तिसे हीन मानकर हम उनके साथ घोर अन्याय करते हैं और अपनी अवगणना करते हैं। 'बच्चे समझते ही है' इसका यह मतलब लगानेकी जरूरत नही कि वे समझाये बिना ही समझते है। दस सिरवाला शरीरधारी कोई मनुष्य हो सकता है, यह बात तो बहुत समझानेपर भी बच्चोंकी समझमें नहीं आयेगी और दिलमें बैठे हुए दस सिरवाले रावणकी बात वे कहते ही समझ जायेंगे।

मुझे आशा है कि अब उक्त विद्यार्थीको यह प्रश्न पूछनेकी इच्छा नहीं होगी कि तुलसीदासकी 'रामायण' और व्यासकी 'गीता' बच्चोंके आगे पढ़नेमें मुझे शर्म क्यों नहीं आती। मुझे 'कर्म', 'त्याग' और 'स्थितप्रज्ञता'का तत्त्वज्ञान बालकोंको नहीं सिखाना है। मैं नहीं मानता कि मुझे भी यह ज्ञान मिल गया है; बल्कि मैं जानता हूँ कि मुझे यह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। शायद कर्म वगैराके बारेमें तत्वज्ञानसे भरी हुई पुस्तकें पढ़ने पर मैं उन्हें समझूँ भी नहीं; और कठिनाईसे समझ भी जाऊँ तो ऊब अवश्य जाऊँ। जब मनुष्य ऊब जाता है, तो उसे मीठी-मीठी नींद आने लगती है। किन्तु जब करोड़ों लोगोंकी खातिर कातने या यज्ञ-कर्म करनेका विचार होता है और उसके लिए भोगोंको छोड़नेका विचार आता है, तब मीठी-मीठी नींद मुझे जहर-सी लगती है और मैं सावधान हो जाता हूँ। अपने अनुभवके आधारपर मेरा यह अटल विश्वास है कि 'गीताजी' इत्यादिकी सरल भावसे बचपनमें कराई हुई पढ़ाईके अंकुर बच्चोंमें आगे चलकर जरूर फूट निकलते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-९-१९२८

२९२. लखनऊ

यदि इतिहासमें बारडोलीकी विजयका उल्लेख होगा तो लखनऊकी विजयका भी उल्लेख होगा। यदि बारडोलीने जीवन्त स्वराज्यका, रामराज्यका मार्ग बताया है तो लखनऊने कानूनी स्वराज्यका द्वार खोला है। आवश्यकता इन दोनोंकी ही थी। लखनऊके स्वराज्यके लिए विद्वान्, राजनीति-कुशल नेताओंकी आवश्यकता थी तो बारडोलीके स्वराज्यके लिए साधारण, अपढ़ जनसमाजकी आवश्यकता थी। एकमें बुद्धि प्रधान थी तो दूसरेमें श्रद्धा प्रधान थी। बारडोलीकी विजयके तुरन्त पश्चात् लखनऊका अधिवेशन हुआ। ऐसा विचारपूर्वक नहीं किया गया था, इसलिए श्रद्धालु लोग इसमें ईश्वरका संकेत मानते हैं। लखनऊमें लोगोंको जो विजय मिली उसके लिए पण्डित मोतीलाल नेहरू बधाईके पात्र हैं। उनकी निष्ठा, कार्यकुशलता, उद्यम और श्रद्धाका लाभ न मिलता तो अधिवेशनको इतनी सफलता कभी न मिलती। इस सफलताका कारण सर्वोत्तम

योजना बनानेमें नहीं, बल्कि ऐसी योजना बनानेमें निहित था जिससे आत्मसम्मानकी तथा, सबके अधिकारोंकी रक्षा हो सके और जिस योजनापर सबका ऐकमत्य प्राप्त किया जा सके। भिन्न-भिन्न दलोंकी सभाएँ तो कई महीनेसे की जा रही थी; किन्तु उसका प्रत्यक्ष परिणाम तो लखनऊमें ही देखनेमें आया। यह विजय पण्डित मोतीलाल की विजय है।

इस विजयके सन्दर्भमें डॉ० अन्सारीका नाम भी लिया ही जाना चाहिए। यह बात तो सभीने देखी कि डॉ० अन्सारीने अपने चातुर्य और धैर्यसे भिन्न-भिन्न दलोंके अनुयायियोंको एक सूत्रमें बाँधकर रखा। किन्तु वे कुछ महीनेसे अप्रत्यक्ष रूपसे जो काम कर रहे थे उसे तो जाननेवाले ही जानते हैं। यदि डॉ० अन्सारी नेहरू समितिको जब-जब जरूरत हुई तब-तब मदद न पहुँचाते तो यह सफलता मिलनी असम्भव थी। उन्होंने मुसलमानोंपर अपने प्रभावका पूरा उपयोग किया। ऐसा कोई हिन्दू नही है, जो उज्ज्वल देशप्रेमकी दृष्टिसे उनकी समता कर सके। इसी कारण उन्होंने सबका विश्वास प्राप्त कर लिया था।

अधिवेशनमें उदार दलके सदस्य, सर अली इमाम और डॉ० श्रीमती बेसेंट उपस्थित थे। इससे अधिवेशनकी प्रतिष्ठा और महत्ता बढ़ गई थी।

किन्तु जैसे बारडोलीकी विजयके पश्चात् सरदार पटेल सो नहीं सकते वैसे ही लखनऊकी विजयके पश्चात् पण्डितजी और दूसरे सदस्य निश्चिन्त होकर बैठ नहीं सकते। जबतक शेष कार्य तेजीसे पूरा नहीं किया जाता तबतक भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयने १९३०में स्वराज्यकी स्थापना-सम्बन्धी जो शुभ भविष्यवाणी की है वह सच्ची सिद्ध नहीं हो सकती। ईश्वर सोते रहनेवालों की नहीं, बल्कि जागते रहनेवालोंकी सहायता करता है। नेहरू योजनाके पक्षमें लोकमत बनानेका कार्य तो करना ही है। किन्तु इससे भी अधिक महत्वका कार्य लोगोंमें इस योजनाको अमल में लानेका बल उत्पन्न करना है। पं० जवाहरलाल नेहरूने लखनऊके अधिवेशनमें इस बातकी याद दिलाई थी। उन्होंने कहा था, हम अपना लक्ष्य चाहे 'औपनिवेशिक स्वराज्य' रखें चाहे 'पूर्ण स्वतन्त्रता', दोनोंके लिए शक्ति तो उत्पन्न करनी ही होगी! इस शक्तिको उत्पन्न किये बिना दोनोंमें से कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं की जा सकती। स्वराज्य आकाशसे उतरकर नहीं आयेगा। वह ब्रिटिश सरकारसे दानके रूपमें भी नहीं मिलेगा। वह तो पुरुषार्थका ही प्रसाद हो सकता है। स्वराज्यका अर्थ ही लोगोंका पुरुषार्थ है। बकरीको स्वराज्यकी अनुभूति कैसे हो सकती है? यदि उसे सिंह आदि हिंसक पशु भयमुक्त कर भी दें तो भी उसे स्वतन्त्रताका स्वाद थोड़े ही मिलेगा? सिंह नहीं तो सिंहके चचेरे भाई उसे खा जानेके लिए तैयार रहेंगे। ऐसी ही स्थिति हमारी भी है। जब हममें स्वराज्य प्राप्त करनेकी शक्ति आ जायेगी तब हमें उससे कोई रोक नहीं सकता। लोगोंकी मुक्ति उनके अपने हाथमें ही है।

हमारे सम्मुख दो मार्ग हैं: एक हिंसाका; दूसरा अहिंसाका; एक शरीर-बलका, दूसरा आत्मबलका; एक वैरभावका, दूसरा प्रेमभावका; एक अशान्तिका, दूसरा शान्तिका और एक आसुरी, दूसरा दैवी। हमें बारडोलीने शान्तिका पदार्थपाठ सिखाया है।

कांग्रेसकी प्रतिज्ञामें इस शान्ति-मार्गका ही उल्लेख है। किन्तु बारडोलीकी विजयसे पहले ऐसा दिखाई दिया था कि लोगोंकी शान्तिमें श्रद्धा नही रही है। बारडोलीकी विजयके पश्चात् यह दिखाई दिया कि उनका शान्ति-मार्गमें विश्वास फिर जम गया है। यदि हमें स्वराज्य लेना है तो हमें इनमें से किसी एक मार्गपर अविराम चलना होगा। ये दोनों मार्ग परस्पर-विरोधी है, इसलिए इनसे जो स्वराज्य-रूपी फल मिलेगा वह भी एक दूसरेसे भिन्न होगा। नाम एक होने पर भी उसके गुणोंमें भिन्नता होगी। हम जैसा बीज बोयेंगे, हमें वैसा ही फल मिलेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-९-१९२८

२९३. सूरत जिलेमें मद्य-निषेध

श्रीमती मीठूबहन पेटिटके प्रयाससे सूरत जिलेमें एक मद्य-निषेध संस्थाकी स्थापना की गई है। उन्होंने इसका विवरण मुझे भेजा है। यह इस प्रकार है:[1]

सरदार वल्लभभाईको मीठूबहनसे बहुत बड़ी सहायता मिली है, उन्होंने यह बहुत बार कहा है। यह पारसी बहन, जिसने पहले कभी कोई कष्ट नहीं सहा था, किसानोंके घरोंमें किसानोंकी तरह रही है, उसने उनके सादा खान-पानमें सन्तोष माना है और अपना शरीर कोमल होने तथा अनेक सुखोंकी अभ्यस्त होने पर भी शरीरकी अपनी शक्ति कायम रखकर दिन-रात परिश्रम किया है। उसने अपनी वीरतासे बारडोलीके भाइयों और बहनोंको वीरताका पाठ पढ़ाया है। उसने अपने अनवरत श्रमसे युवकोंको भी मात कर दिया है। उसने खादीके पीछे पागल होकर घर-घर जाकर खादीकी फेरी की है और लोगोंमें उसके प्रति रुचि उत्पन्न की है। वह एक क्षण भी खाली नहीं बैठ सकती। इसलिए वल्लभभाईने उसका नाम चंचलबहन रख दिया है। इस बहनने देखा, सूरत जिलेमें शराब बहुत पी जाती है। उसने यह भी देखा कि शराबके ठेके ज्यादातर पारसी भाइयोंके हाथोंमें है। इस कारण उसने पूरे सूरत जिलेमें मद्य-निषेधका कार्य करनेका निश्चय किया और अब उसके उद्योगसे ऊपर बताई गई संस्था स्थापित हुई है। उसके जो अधिकारी चुने गये हैं उनके नामोंको देखते हुए मै यह कह सकता हूँ कि मीठूबहनने उनसे पूरा-पूरा काम लेनेका निश्चय किया है। मुझे आशा है कि अधिकारी पूरी शक्तिसे काम करेंगे। मीठूबहन काम लिये बिना छोड़ेंगी नहीं। यदि इस संस्थाका काम सफल हो जाये तो वह बारडोलीके रचनात्मक कार्यका एक सुन्दर परिणाम माना जायेगा और उससे सूरत जिलेका लाखों रुपया बच जायेगा। इतना ही नही, बल्कि उसका प्रभाव देशव्यापी होगा। मद्यपानसे प्रतिवर्ष २० करोड़ रुपये नष्ट होते हैं, इतना ही नहीं, बल्कि लाखों लोग आचार-भ्रष्ट होते हैं और सहस्रों परिवारोंका सर्वनाश होता

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें संस्थाकी स्थापनाकी सूचना और उसके सदस्योंकी सूची थी।

है। जिसे सचमुच खादीका चस्का लग गया है वह इस बातको सहज ही देख सकता है। मीठूबहनने भी यह बात देख ली है और उसे अपनी साहसिक वृत्तिसे इस भारी कामको हाथमें लेनेकी प्रेरणा मिली है। ईश्वर उसे स्वस्थ रखे और साहस दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-९-१९२८

२९४. राष्ट्रीय छात्रालयोंमें पंक्ति-भेद ?

काकासाहब कालेलकरकी बढ़ती हुई डाकमें कई तरहके सवाल आते हैं। उसमें एक सवाल पंक्ति-भेदके बारेमें था। उन्होंने उसका जो जवाब दिया, उसकी नकल मेरे पास भेज दी है। राष्ट्रीय छात्रालयोंके मार्ग-दर्शनके विचारसे मैं उसे ज्यों-का-त्यों नीचे दे रहा हूँ :[1]

काकासाहब फूंक-फूँककर कदम रखना चाहते हैं, क्योंकि जहाँ तक हो सके वे माँ-बाप या विद्यार्थियोंका जी नहीं दुखाना चाहते। इसलिए कहते हैं : "छात्रालयमें रसोई ब्राह्मण रसोइयेके हाथसे ही होती है। शौचाचारके अनुसार एक खास तरीकेसे रसोई तैयार करनेका आग्रह इस तरह निभाया जाता है।" मेरी रायमें तो बहुत समय तक ब्राह्मण रसोइयेका आग्रह रखना नामुमकिन है। जिस अर्थमें यहाँ ब्राह्मण शब्द काममें लिया गया है वैसे ब्राह्मणोंसे ही शौचाचारका पालन हो सकता हो, ऐसी कोई बात नहीं है। यह भी नहीं है कि ऐसे ब्राह्मण शौचाचारका पालन करते ही हैं। मैंने तो गन्दगीसे भरपूर, तन्दुरुस्तीके नियमोंको तोड़नेवाले कितने ही ब्राह्मण रसोइये देखे हैं; दो आँखोंवाले किस इन्साननने नहीं देखे होंगे ? शौचाचारमें निपुण, तन्दुरुस्तीके कायदे जानने और पालनेवाले अब्राह्मण रसोइये भी मैंने बहुत देखे हैं। इसलिए अगर ब्राह्मण शब्दके असली मतलबको ध्यानमें रखें तो जो शौचाचारका पालन करे वही ब्राह्मण माना जाये। ऐसा मानने पर सब राष्ट्रीय छात्रालय आसानीसे काकासाहबका नियम पाल सकेंगे। जो जन्मसे ब्राह्मण है यदि उसीको ब्राह्मण माना जाये, तब तो शौचाचारको पालनेवाले ब्राह्मण रसोइये बहुत नहीं मिलेंगे; और यदि मिलेंगे भी तो वे इतना अधिक वेतन माँगेंगे और इतने सिर चढ़ेंगे कि उन्हें रखना और निभाना लगभग असम्भव हो जायेगा। विद्यापीठ सत्य और अहिंसाकी आराधना करता है। इसलिए हमारे छात्रालयोंकी जैसी हालत हो उसे वैसा ही जाहिर करना चाहिए; उसके लिए परस्पर या दूसरोंसे दोषोंको छिपाना अनुचित है। इसलिए काकासाहबने साफ कर दिया है कि विद्यापीठके छात्रालयमें पंक्ति-भेदके लिए जगह नहीं है। पंक्ति-भेदके गर्भमें ऊँच-नीचका भेद निहित है। वर्णभेदके साथ ऊँच-नीचका कोई सम्बन्ध नहीं है। उच्चताका दावा करनेवाला ब्राह्मण नीचे गिर

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। काकासाहबने अपने पत्रमें लिखा था कि विद्यापीठ पंक्ति-भेदको अनुचित मानता है और इसलिए वहाँ भोजनालयमें पंक्ति-भेद नहीं किया जाता।

जाता है और नीच बन जाता है। जो अपनेको पतित मानता है और नम्रतासे रहता है, दुनिया उसे ऊँची जगह देती है। जहाँ मोक्ष आदर्श है, जहाँ अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, जहाँ आत्मा-आत्मामें कोई भेद नही है, वहाँ उच्चता और नीचताकी गुंजाइश ही कहाँ रह जाती है? इसलिए राष्ट्रीय छात्रालयोंके बारेमें मेरी रायमें तो इतना ही कहा जा सकता है कि वहाँ स्वच्छताके नियम पूरी तरह पालनेकी पूरी कोशिश होगी, यानी ब्राह्मणका सच्चा धर्म उनका आदर्श रहेगा; आडम्बरसे भरा और नामका ब्राह्मण-धर्म पालना उनका आदर्श नही हो सकता; वह तो दोष है, इसलिए त्याज्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-९-१९२८

२९५. टिप्पणी

जीवन्त चक्कीकी उपेक्षा

बारडोलीमें काम करनेवाले एक स्वयंसेवक लिखते हैं:[1]

जो शिकायत इस स्वयंसेवकने की है वह किसी हदतक दूसरे बहुत-से लोगोंके सम्बन्धमें भी की जा सकती है। दाँत प्रकृतिकी दी हुई बहुत बड़ी देन हैं। ये जीवन्त चक्की हैं; जो इनका अनादर करते हैं उनकी आयु कम हो जाती है। सूर्यके तापसे पके हुए अन्नको फिर पकानेकी आवश्यकता नहीं होती। किन्तु जबसे जीभका उपयोग स्वादके लिए होने लगा तबसे मनुष्यने पके हुए अन्नको फिर पकाना आरम्भ कर दिया और इससे उसकी आयु दीर्घ होनेकी अपेक्षा अल्प होने लगी है। हम परम्परासे चली आती हुई कुटेवोंको एकाएक भले ही न छोड़ सकें और चूल्हेका सर्वथा त्याग न कर सकें, फिर भी यदि हम उसका कमसे-कम उपयोग करने लगें तो हमारा बहुत-सा समय और धन बच सकता है। राँधा हुआ अन्न जितने परिमाणमें खाया जा सकता है, बिना राँधा हुआ उतने परिमाणमें कभी नही खाया जा सकता और जितना भीगा हुआ और पीसा हुआ खाया जा सकता है उतना सूखा अन्न नहीं खाया जा सकता। प्रकृतिने सूखे अन्नको भिगोनेके लिए हमारे तालुमें अमृत दिया है और उसे पीसनेके लिए दाँत दिये हैं। हम स्वादके दास बनकर प्रकृतिकी इन दोनों देनोंका तिरस्कार करते हैं और इस कारण परेशानियोंमें फँस गये हैं, इतना ही नहीं, बल्कि अपने जठर पर व्यर्थका भार डालकर अपना जीवन कम कर रहे है और उस कम होते जीवनको भी अनेक रोगोंका घर बना रहे हैं। इसलिए यदि हम सूर्यके तापसे पके अन्नसे सन्तोष करनेके लिए तैयार नहीं हो सकते तो हमें राँधे हुए अन्नको दाँतोंसे चबा-चबाकर खानेका अभ्यास तो रखना ही चाहिए। चावल भी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने शिकायत की थी कि पाटीदारोंमें रोटीको दूधमें भिगोकर खानेका चलन है। इससे दाँतोंका उचित उपयोग नहीं हो पाता।

चबाया जा सकता है। शाक-सब्जी भी अवश्य ही कच्ची खाई जा सकती है; डॉक्टर सब्जियोंको कच्ची खानेकी सलाह भी देते हैं। हमें कच्ची सब्जियोंसे शरीरके लिए आवश्यक जीवन-तत्त्व, जिन्हें अंग्रेजीमें 'विटामिन' कहते है, मिलते हैं। उन्हें पकानेसे ये उपयोगी जीवन-तत्त्व नष्ट हो जाते हैं और उनके नष्ट होनेसे स्वास्थ्य बिगड़ता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-९-१९२८

२९६. धार्मिक शिक्षा

विद्यापीठमें पूछे गये प्रश्नोंमें से जो प्रश्न रह गये थे, उनमें से एककी चर्चा मैं पिछले हफ्ते कर चुका हूँ।[1] दूसरा प्रश्न यह है:

विद्यापीठमें धार्मिक शिक्षाका स्थूल रूप क्या हो?

मेरे खयालसे धर्मका अर्थ सत्य और अहिंसा या सिर्फ सत्य ही करें तो भी काफी है। अहिंसा सत्यमें ही गर्भित है। अहिंसाके बिना सत्यकी झाँकी तक नही मिल सकती। जिस ढंगकी शिक्षासे ऐसे सत्य और अहिंसाका पालन हो, उसी ढंगकी शिक्षा धार्मिक शिक्षा हुई। और ऐसी शिक्षा देनेका सबसे बढ़िया तरीका यह है कि सभी शिक्षक सत्य और अहिंसाका पोषण करनेवाले हों। विद्यार्थियोंके लिए उनका सत्संग ही धार्मिक शिक्षा है, फिर भले ही वे गुजराती, संस्कृत, गणित या अंग्रेजी, किसी भी विषयकी कक्षामें बैठे हों।

किन्तु लोग शायद इसे धार्मिक शिक्षाका सूक्ष्म रूप मानें। शिक्षाक्रममें धार्मिक शिक्षाको इसी नामसे एक विशेष स्थान दिया जा सकता है। इसके लिए हर विद्यार्थीको उसके अपने सम्प्रदायका ऐसा ज्ञान प्राप्त करनेकी दिशामें प्रोत्साहित करना चाहिए, जो दूसरे सम्प्रदायोंका विरोधी न हो। और साथ ही हर वर्गमें एक समय ऐसा भी रखा जाना चाहिए, जब आदर-भावके साथ सभी सम्प्रदायोंका उदार और निष्पक्ष, साधारण ज्ञान दिया जाये। विद्यापीठमें सब विद्यार्थी और अध्यापक मिलकर पहले ईश्वरका ध्यान करते हैं और फिर अपने-अपने वर्गमें जाते है। शायद आज इससे ज्यादा कुछ सम्भव नहीं है। इस तरह ईश्वरका ध्यान कर चुकनेके बाद थोड़ी देर हर धर्मके बारेमें कुछ जानकारी कराई जाये, तो मै उसे धार्मिक शिक्षाका स्थूल रूप मानूँगा। जो दुनियाके माने हुए धर्मोंके प्रति आदर पैदा करना चाहते हों, उन्हें उन धर्मोंकी साधारण जानकारी प्राप्त कर लेना जरूरी है। यदि ऐसे धर्म-ग्रन्थ आदरके साथ पढ़े जायें तो उनसे पढ़नेवालों को सदाचारका ज्ञान और आध्यात्मिक आश्वासन मिल जाता है। इस तरह अलग-अलग धर्मग्रन्थोंको पढ़ते-पढ़ाते समय एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए। वह यह कि उन धर्मोके प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी लिखी हुई पुस्तकें ही पढ़नी चाहिए और उन्हींपर विचार किया जाना चाहिए। मुझे 'भागवत' पढ़ना हो तो मैं उसका किसी ईसाई पादरी द्वारा आलोचनात्मक दृष्टिसे किया हुआ

१. देखिए "शिक्षामें अहिंसा", २-९-१९२८।

अनुवाद नही पढ़ूँगा; बल्कि 'भागवत' के किसी भक्तका किया हुआ अनुवाद पढ़ूँगा। मुझे 'अनुवाद' इसलिए लिखना पड़ता है कि हम बहुत-से ग्रन्थ अनुवादके रूपमें ही पढ़ते हैं। इसी तरह 'बाइबल' पढ़नी हो, तो मैं किसी हिन्दूकी लिखी हुई टीका नहीं पढ़ूँगा, बल्कि यह देखूँगा कि किसी संस्कारवान ईसाईने उसके बारेमें क्या लिखा है। इस तरह पढ़नेसे हमें सब धर्मोका निचोड़ मिल जाता है और उससे सम्प्रदायोंसे परली पार जो शुद्ध धर्म है, उसकी झाँकी मिल जाती है।

कोई यह आशंका न करे कि इस तरहकी पढ़ाईसे अपने धर्मके प्रति उदासीनता आ जायेगी। हमारी विचार-पद्धतिमें यह कल्पना की गई है कि सभी धर्म सच्चे हैं और सभीके लिए आदर होना चाहिए। जहाँ यह विचार है वहाँ अपने धर्मके प्रति प्रेम तो [स्वाभाविक रूपसे] होगा ही। दूसरे धर्मके प्रति प्रेम पैदा करनेके लिए प्रयत्न जरूरी होता है। जहाँ उदार वृत्ति है वहाँ दूसरे धर्मोंमें जो विशेषता पाई जाये, उसे अपने धर्ममें लानेकी पूरी आजादी रहती है।

धर्मकी समूची सभ्यताके साथ तुलना की जा सकती है। जैसे हम अपनी सभ्यताकी रक्षा करते हुए भी दूसरी सभ्यतामें जो अच्छाई होती है उसे आदरके साथ ले लेते ह, वैसे ही पराये धर्मके बारेमें भी होना चाहिए। आज जो डर फैला हुआ है, उसका कारण हमारे आसपासका वातावरण है, एक-दूसरेके लिए द्वेष या वैरभाव है, एक-दूसरे पर भरोसा नहीं है; सदा यह डर लगा रहता है कि कहीं दूसरे धर्मवाले हमें और हमारे समाजके व्यक्तियोंको भ्रष्ट कर दें तो? इसीसे दूसरे धर्मके ग्रन्थोंको हम दोषोंसे भरे हुए समझकर उनसे दूर भागते हैं। जब सभी धर्मों और उनके अनुयायियोंके प्रति आदरका भाव आ जायेगा, तब यह अस्वाभाविक भय दूर हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-९-१९२८

२९७. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
९ सितम्बर, १९२८

प्रिय जयरामदास,

आपका पत्र मिला। आपने जिस भाषणकी प्रति भेजी है, उसे मैंने सरसरी तौर पर देख लिया है। खुद मैं तो देवनागरी और उर्दूके वैकल्पिक उपयोगको बुरा नहीं मानता। कारण, आखिरकार टिकेगी वही लिपि जिसका उपयोग करनेवालोंमें अधिक जीवन-शक्ति होगी। लेकिन तथ्य यह है कि इन बातोंको लेकर मैं अपने मनको परेशान नहीं करता। मेरा सिद्धान्त तो यह है कि नेतागण जो भी हल निकालें उसे स्वीकार कर लूँ, बशर्ते कि उसके कारण मुझे अपने बुनियादी विश्वासकी अवज्ञा न करनी पड़ती हो।

सिन्धके सवालपर आपने अपना आग्रह छोड़ दिया, यह बात बेशक मुझे बहुत अच्छी लगी। मगर मै यह जाननेको उत्सुक था कि आपने किस कारणसे ऐसा किया, क्योंकि मुझे मालूम था कि इस सम्बन्धमें आपके विचार बहुत दृढ़ हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३५१९)की फोटो-नकलसे।

२९८. पत्र : जी० रामचन्द्रन्‌को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
९ सितम्बर, १९२८

प्रिय रामचन्द्रन्,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा निर्णय यह है: तुम अपने मनसे ही ऐसा मत मान बैठो कि तुम्हारा प्रशिक्षण पूरा हो गया। इस विषयमें राजाजीको निर्णय करने दो। अगर वे कहते है कि तुम केरलमें काम शुरू कर सकते हो तो बखूबी वैसा करो; लेकिन यदि नहीं कहते तो जबतक वे तुम्हारी योग्यताके कायल नही हो जाते तब-तक प्रतीक्षा करो। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे कामके हकमें यह सबसे अच्छा रहेगा। यदि तुम्हारा अपना निष्कर्ष सही है तो फिर तुममें इतना आत्मविश्वास तो होना ही चाहिए कि तुम राजाजीको कायल कर सको। यदि ठीक ढंगके लोग केरलमें खादी-कार्यमें अपनी शक्ति लगायेंगे तो वहाँ इस चीजके सफल होनेमें मुझे तो कोई सन्देह नहीं है। बेशक, तुम्हारे गांधी सेवा-संघका सदस्य बन जानेका विचार मुझे पसन्द है।

महादेव शिमलामें है। बारडोली-सत्याग्रहका इतिहास लिखनेके लिए वल्लभभाई उसे वहाँ ले गये हैं। रसिक और नवीन गांधी जामियाके काममें देवदासकी मदद करने दिल्ली गये हैं।

अंग्रेजी (एस० एन० १३५२०)की माइक्रोफिल्मसे।

२९९. पत्र : हूगो बुशरको[1]

९ सितम्बर, १९२८

पत्र-पत्रिकाओंके अनुरोधपर उनकी माँगके अनुसार लेख लिखनेकी क्षमता मुझमें नहीं है, और न उस दिशामें मेरी कोई रुचि ही है।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४३८२)की माइक्रोफिल्मसे।

१. जिनेवासे आये एक पत्रके उत्तरमें। पत्र-लेखकने लिखा था कि हमारा पत्र यूरोपका एक महत्त्वपूर्ण और प्रमुख पत्र है और आप इसमें प्रकाशनार्थ समय-समयपर अपने लेख भेजते रहें, जिनके लिए आपको बहुत अच्छा पारिश्रमिक दिया जायेगा।

३००. पत्र : कृष्णदासको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१० सितम्बर, १९२८

प्रिय कृष्णदास,

रामविनोदके बारेमें तुम्हारा पत्र[१] पढ़कर मेरे मनको बड़ी राहत मिली। उसकी प्रतिलिपियाँ मैं जमनालालजी तथा अन्य लोगोंको भेज रहा हूँ। रामविनोद द्वारा कुछ खरीदारी करनेकी खबर मुझे मिली थी। उसके बारेमें तो तुमने कुछ लिखा ही नहीं। क्या उन आरोपोंमें कोई सचाई है?

'सेवन मन्थ्स'का[२] बंगला संस्करण मिला। क्या इसकी बिक्री अच्छी हो रही है? अंग्रेजी संस्करणमें सांकेतिकाकी कमी बहुत खटकती है। छपाईकी भूलें भी हैं।

तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है और गुरुजी कैसे हैं?

आश्रममें बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। शायद गिरिराज उनके बारेमें तुम्हें लिखता रहता हो।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १३६५४)की माइक्रोफिल्मसे।

३०१. पत्र : बालकृष्ण भावेको

आश्रम, साबरमती
१० सितम्बर, १९२८

चि० बालकृष्ण,

तुम्हारा पत्र मिला। देखनेमें ही सिपाही जैसा नहीं बल्कि जो वास्तवमें सिपाही है उसे ज्ञानी भी होना चाहिए, इस बातको मैंने कभी नहीं माना। किन्तु मैं यह अवश्य मानता हूँ कि जो सिपाही नहीं है अथवा जो सिपाही नहीं हो सकता वह ज्ञानी तो कभी हो ही नहीं सकता। और यही बात ब्रह्मचारीके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। हमारा यह भी अनुभव नहीं है कि किसी एक इन्द्रियका दमन करनेवाला ज्ञानी होता ही है। किन्तु यह तो हम सभी मानते हैं कि ज्ञानीके लिए व्यभिचार करना सम्भव ही नहीं है। जिन लड़कियोंके कन्धेपर हाथ रखकर मैं चलता हूँ, उनके प्रति निर्विकार रहूँ इसमें तो मुझे ज्ञानकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। कोई पिता अपनी अनेक सयानी लड़कियोंके प्रति निर्विकार होते हुए भी किसी और

१. ३० अगस्त, १९२८ को लिखे इस पत्रमें कृष्णदासने रामविनोदको बरारमें खादी-कार्यके निमित्त निश्चित कोषके दुरुपयोगके आरोपसे बरी बताया था।

२. कृष्णदास-कृत **सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी**।

तरहसे उनके प्रति जड़ भी हो सकता है। यहाँ तक कि अन्य स्त्रियोंके प्रति उसके मनमें विकार भी भरा हो सकता है। यह सर्वथा स्वाभाविक बात है कि आश्रमकी लड़कियोंके प्रति मेरे मनमें पितृभाव हो। कई वर्षके प्रयाससे इस गुणको मै अपनेमें विकसित कर सका हूँ। और इस प्रकार अधिकतर स्त्रियोंके प्रति निर्विकार होते हुए भी मैं यह दावा नही कर सकता कि स्त्री-मात्रके प्रति मै सदा ही निर्विकार रहता हूँ। यह ठीक है कि फिलहाल मेरी स्थिति ऐसी है किन्तु जबतक मैं सभी प्रकारके विकारोंसे छुटकारा नहीं पा लेता तबतक मैं भविष्यके बारेमें निश्चित नही हो सकता। मैंने स्वयंको न तो कभी ज्ञानी माना और न ऐसा अनुभव ही किया है। किन्तु मुझे अपने अज्ञानका प्रतिदिन अनुभव होता है। लड़कियोंके कन्धेपर हाथ रखनेमें मुझे कभी कोई दोष दिखाई नही दिया क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे मेरे लिए बेटियोंके समान ही है। अतः यह कहना भी ठीक नही कि मेरे इस तरहके व्यवहारसे उन्हें कोई हानि पहुँची है। बल्कि मुझे तो लगता है कि इस घनिष्ठताके कारण मै उनके हृदयकी गहराई तक पहुँच सका हूँ और वे पुरुषके प्रति और भी निर्विकार भावसे व्यवहार करना सीख सकी है। सामाजिक दृष्टिसे भी मैंने इसपर विचार किया था। यह ठीक है कि हिन्दू समाजमें ऐसी मान्यता है कि पिता पुत्रीका स्पर्श करते हुए भी डरे किन्तु मुझे तो यह विचार गलत जान पड़ता है; यह विचार ब्रह्मचर्यका शत्रु है। जिस ब्रह्मचर्यमें ऐसा भय बना रहे वह तो ब्रह्मचर्य ही नही है। ऋष्यश्रृंगका ब्रह्मचर्य हमारा आदर्श नहीं है। फिर भी पिछले तीन हफ्तेसे सयानी मानी जानेवाली लड़कियोंके कंधेपर हाथ रखना मैंने लगभग बन्द कर दिया है। क्योंकि जो बात तुम्हारे मनमें उठी, वही बात अन्य आश्रमवासियोंके मनमें भी उठी थी। ऐसे मामलोंमें मेरा कोई आग्रह नहीं है। कन्धेपर हाथ रखना कोई सिद्धान्तकी बात तो हो ही नही सकती। इसलिए जैसे ही यह बात उठी, मैंने तुरन्त सबसे सलाह-मशविरा किया और कन्धेपर हाथ रखना छोड़ दिया। इससे लड़कियोंके मनपर कुछ आघात पहुँचा है; किन्तु उन्हें बहुत-कुछ समाधान हो गया है और समय बीतने पर उनका रहा-सहा दुःख भी जाता रहेगा। मेरी तरह लड़कियोंके कन्धेपर हाथ रखकर चलनेका अनुकरण किसीको कदापि नहीं करना चाहिए। जिसमें पितृत्वकी भावना होगी, वह अवसर आनेपर पिताके अनुरूप लड़कियोंको स्पर्श किये बिना रह ही नहीं सकता और उस हालतमें दुनिया उसकी निन्दा भी नहीं करेगी।

. . . के[1] बारेमें तुमने जो-कुछ लिखा है और उसकी वजहसे तुम जो दुःखी हुए हो सो मेरी समझमें नही आया। तुमने यह स्वीकार किया है कि उसे मेरी सलाहके अनुसार चलने और मुझे उसका पथ-प्रदर्शन करनेकी बात लिखकर तुमने गलती की है। तो फिर मेरे लिए तुमसे सलाह-मशविरा करनेकी जरूरत कहाँ रही? इसके अतिरिक्त . . . की[2] स्त्री उसके प्रति कैसा व्यवहार करती थी, इस बारेमें जो-कुछ कहता है उसपर तुम कुछ विशेष प्रकाश डाल सकोगे, इस पर मैं कैसे विश्वास कर सकता हूँ? अब तुमने जो-कुछ लिखा है उसके बावजूद मैं यह मानता हूँ कि . . . को[3] मैंने जो सलाह दी है, वही ठीक है।

१, २ और ३. नाम छोड़ दिया गया है।

. . . ने[1] अपनी स्त्रीके प्रति यदि सचमुच ब्रह्मचर्य-व्रत लिया होगा तो वह अब भी उसका पालन करे, यह समझाकर और इस आशासे ही मैंने उसे वहाँ भेजा है। . . .[2] अपनी स्त्रीके प्रति भ्रातृत्व और सच्ची मित्रताको सिद्ध करने गया है। इस मामलेमें मेरा तो यही दृष्टिकोण है बशर्ते कि वह उसे पूरी तरह समझा हो। भाईकी भाँति व्यवहार करनेकी बजाय यदि वह पतिका-सा आचरण करे तो यह समझ लेना कि उसका अपनी पत्नीके प्रति लिया गया ब्रह्मचर्य मिथ्या था, और वह उसे भंग करनेका अवसर ही खोज रहा था। शायद यह बात भी तुम्हारे ध्यानसे उतर नहीं गई होगी कि अन्य स्त्रियोंके प्रति भी उसका मन विकारहीन नहीं था। यदि अब भी . . .[3] अपने बारेमें तुम्हें लिखता रहता हो तो मेरी राय है कि तुम एक बार इस बारेमें मुझसे आकर सलाह-मशविरा कर लो। मैंने तो तुम्हें पहले भी तुम्हारा यही कर्त्तव्य सुझाया था। मुझे यही उचित जान पड़ता है कि तुम स्वतन्त्र रूपसे . . . का[4] पथ-प्रदर्शन करना छोड़ दो। मैंने जो-कुछ लिखा है यदि वह तुम्हारी समझमें न आये तो मुझे पुनः लिखना। मैंने . . . को[5] जो सलाह दी है, उसकी अच्छाई-बुराईके बारेमें तुम्हें तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिए। मुझे तो कोई शंका है नहीं। किन्तु यदि तुम्हें तनिक भी शंका हो या तुम्हारे मनमें कोई शंका हो तो मुझसे बार-बार पूछनेमें संकोच मत करना।

सम्मिलित भोजनालयके बारेमें मुझे तुम्हारी चेतावनी बहुत जँची है। आश्रमके बारेमें हमारी कल्पना तो यह है कि जो लोग मुलाकातके लिए आयें, वे जबतक आश्रममें रहें तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करें। आश्रमकी नई नियमावलीमें इस नियमको और अधिक स्थायी रूप दिया गया है और इस कारण स्वाभाविक रूपसे भोजनालयमें और अधिक लोग सम्मिलित हुए हैं। यह हम कैसे कह सकते हैं कि जो ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेते हैं, वे भी स्वेच्छासे ब्रह्मचारी नहीं हैं? किन्तु तुम्हारे इस कथनको मैं मान लेता हूँ कि बहुतसे लोग मेरे प्रति श्रद्धाके कारण सम्मिलित भोजनालयमें आये हैं। पिछले कुछ दिनोंसे सम्मिलित भोजनालयके कारण कुछ नये विचार हमारे मनमें उठने लगे हैं। अब सम्मिलित भोजनालयको बन्द करनेकी बात नहीं उठती बल्कि आजकल तो यह चर्चा चल रही है कि जो उसमें पूरे मनसे भाग नहीं ले पाते और सम्मिलित भोजनालयका जो उद्देश्य है, उसमें निहित अन्य बातोंको सहन नहीं कर पाते, उन्हें आश्रममें रहना चाहिए या नहीं।

अलसीके तेलका उपयोग और उसके परिणामके बारेमें मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा। अलसीका ताजा तेल तुम्हें कैसे मिलता है? रोजका-रोज़ या महीने-भरका इकट्ठा मिल जाता है? यह तेल देसी घानीका होता है या विलायती मिलका? यदि देसी घानीका होता है तो पेरनेके पहले अलसीका और क्या संस्कार किया जाता है? यदि तुम यह जानते हो और न जाननेपर जानकर लिख सको तो लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८०१)की नकलसे।
सौजन्य: बालकृष्ण भावे

१, २, ३, ४ और ५. नाम छोड़ दिया गया है।

३०२. भाषण : टॉल्स्टॉय शताब्दी-समारोहके उपलक्ष्यमें[1]

१० सितम्बर, १९२८

मेरी वर्तमान मानसिक दशा कोई पर्व-पुण्यतिथि या उत्सव मनाने योग्य नही है। कुछ दिनों पहले 'नवजीवन' या 'यंग इंडिया' के किसी पाठकने मुझसे पूछा था : "आप श्राद्धके विषयमें लिखते हुए कह चुके है[2] कि पुरखोंका सच्चा श्राद्ध उनकी पुण्यतिथिको उनके गुणोंका स्मरण करने और उन्हें अपने जीवनमें उतारनेसे ही सकता है। इसीसे मै पूछता हूँ कि आप खुद अपने पुरखोंकी श्राद्धतिथि कैसे मनाते है?" जब मैं युवा था तब पुरखोंकी श्राद्धतिथि मनाया करता था। परन्तु आपको यह बतानेमें मुझे संकोच नही है कि अब मुझे अपने पुरखोंकी श्राद्धतिथि याद तक नही है। मुझे याद नहीं आता कि बरसोंसे मैंने किसीकी पुण्यतिथि मनाई हो। मेरी स्थिति इतनी कठिन या कहिए कि सुन्दर है, अथवा जैसा कि कई-एक मित्र मानते हैं, इतने प्रगाढ़ मोहकी है। मैं मानता हूँ कि जिस कार्यको हाथमें लिया हो उसीकी माला जपने चौबीसों घंटे उसका मनन करने और जहाँतक बन पड़े उसे सुव्यवस्थित रूपसे करनेमें ही सब-कुछ आ जाता है। उसीमें पुरखोंकी श्राद्धतिथि मनाना भी आ जाता है, टॉल्स्टॉय-जैसोंके उत्सव भी आ जाते है। यदि डॉक्टर हरिप्रसादने मुझे जालमें न फँसाया होता तो यह सर्वथा सम्भव था कि १० तारीखका यह उत्सव मैंने किसी भी तरह आश्रममें न मनाया होता। सम्भव है कि मै यह भूल ही गया होता। तीन महीने पहले एल्मर मॉड एवं टॉल्स्टॉयका साहित्य एकत्रित करनेवाले अन्य सज्जनोंके पत्र आये थे कि इस शताब्दीके अवसर पर मैं भी कुछ लिख भेजूँ, और इस दिनकी याद हिन्दुस्तानको दिलाऊँ। एल्मर मॉडके पत्रका सारांश या पूरा पत्र आपने 'यंग इंडिया' में[3] देखा होगा। उसके बाद मैं यह बात बिलकुल भूल गया। यह प्रसंग मेरे लिए एक शुभ अवसर है। फिर भी यदि मै भूल गया होता तो पश्चात्ताप न करता। परन्तु युवक संघके सदस्योंने यह पुण्यतिथि यहाँ मनानेका जो अवसर दिया वह मेरे लिए प्रसन्नताकी बात है।

अगर मैं अपने बारेमें यह कह सकता कि दत्तात्रेयकी तरह मैंने जगत्‌में बहुत-से गुरु किये हैं, तो मुझे अच्छा लगता, किन्तु मेरी ऐसी स्थिति नही है। मैंने तो इससे उलटा ही कहा है कि मैं धर्मगुरु खोजनेका अभीतक प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं यह मानता हूँ कि धर्मगुरु प्राप्त करनेके लिए स्वयं व्यक्तिमें बहुत बड़ी योग्यता होनी चाहिए और मेरी यह मान्यता दिनों-दिन दृढ़ होती जाती है। जो यह योग्यता

१. यह भाषण अहमदाबाद युवक संघके तत्त्वावधानमें आश्रममें आयोजित सभामें दिया गया था।

२. देखिए खण्ड ३४, पृष्ठ ४६७।

३. देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ७९।

प्राप्त कर लेता है, गुरु स्वयं उसके समीप चलकर आ जाते हैं। मुझमें यह योग्यता नहीं है। गोखलेको मैंने अपना राजनीतिक गुरु कहा है। उन्होंने मुझे उस क्षेत्रमें पूरा सन्तोष दिया था। उनके कथन या उनकी आज्ञाके विषयमें मेरे मनमें कभी तर्क-वितर्क नहीं उठते थे। किन्तु किसी धर्मगुरुके विषयमें मेरी स्थिति ऐसी नही है।

फिर भी मैं इतना कह सकता हूँ कि तीन पुरुषोंने मेरे जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है। उनमें पहला स्थान मैं राजचन्द्र कविको देता हूँ, दूसरा टॉल्स्टॉयको और तीसरा रस्किनको। किन्तु यदि टॉल्स्टॉय और रस्किनके बीच चुनावकी बात हो और दोनोंके जीवनके विषयमें मैं अधिक बातें जान लूँ, तो नहीं जानता कि उस हालतमें प्रथम स्थान किसे दूँगा। परन्तु फिलहाल तो मैं दूसरा स्थान टॉल्स्टॉयको देता हूँ। टॉल्स्टॉयके जीवनके विषयमें बहुतोंने जितना पढ़ा होगा उतना मैंने नहीं पढ़ा। ऐसा भी कहा जा सकता है कि उनके लिखे हुए बहुत कम ग्रन्थ मैंने पढ़े हैं। उनकी जिस किताबका मुझपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा उसका नाम है 'किंगडम ऑफ हैवन इज़ विदिन यू"। इसका अर्थ है कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे हृदयमें है, यदि हम उसे बाहर खोजने जायेंगे तो वह कहीं नहीं मिलेगा। इसे मैंने चालीस वर्ष पहले पढ़ा था। उस समय मेरे मनमें कई-एक बातोंको लेकर शंका उठती रहती थी; कई मर्तबा मुझे नास्तिकतापूर्ण विचार भी सूझते रहते थे। विलायत जानेके समय तो मैं हिंसक था, हिंसा पर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसा पर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढ़नेके बाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैंने उनके अन्य ग्रन्थ पढ़े। उनमें से प्रत्येकका क्या प्रभाव पड़ा सो तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु उनके समग्र जीवनका क्या प्रभाव पड़ा, यह अवश्य कह सकता हूँ।

उनके जीवनमें मेरे लेखे दो बातें महत्त्वपूर्ण थीं। वे जैसा कहते थे वैसा ही करते थे। उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो उनमें थी ही। वे अमीर वर्गके व्यक्ति थे, इस जगत्के सभी भोग उन्होंने भोगे थे। धन-दौलतके विषयमें मनुष्य जितनेकी इच्छा रख सकता है, वह सब उन्हें मिला था। फिर भी उन्होंने भरी जवानीमें अपना ध्येय बदल डाला। दुनियाके विविध रंग देखने और उनके स्वाद चखने पर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ नहीं है तो उनसे उन्होंने मुँह मोड़ लिया, और अन्त तक अपने विचारों पर डटे रहे। इसीसे मैंने एक जगह लिखा है कि टॉल्स्टॉय इस युगकी सत्यकी मूर्ति थे। उन्होंने सत्यको जैसा माना तद्नुसार चलनेका उत्कट प्रयत्न किया; सत्यको छिपाने या कमजोर करनेका प्रयत्न नहीं किया। लोगोंको दुःख होगा या अच्छा लगगा, शक्तिशाली सम्राट्को पसन्द आयेगा या नही, इसका विचार किये बिना ही उन्हें जो वस्तु जैसी दिखाई दी उन्होंने कहा वैसा ही। टॉल्स्टॉय अपने युगके अहिंसाके बड़े भारी समर्थक थे। जहाँतक मैं जानता हूँ, अहिंसाके विषयमें पश्चिमके लिए टॉल्स्टॉयने जितना लिखा है उतना मार्मिक साहित्य दूसरे किसीने नही लिखा। उससे भी आगे जाकर कहता हूँ कि अहिंसाका जितना सूक्ष्म दर्शन और उसका पालन करनेका जितना प्रयत्न टॉल्स्टॉयने किया था उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिन्दुस्तानमें कोई नहीं है और न मै ऐसे किसी आदमीको जानता हूँ।

यह स्थिति मेरे लिए दुःखदायक है; यह मुझे नहीं भाती। हिन्दुस्तान कर्मभूमि है। हिन्दुस्तानमें ऋषि-मुनियोंने अहिंसाके क्षेत्रमें बड़ीसे-बड़ी खोजें की हैं। परन्तु पूर्वजोंकी उपार्जित पूँजी पर हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। उसमें यदि वृद्धि न की जाये तो वह समाप्त हो जाती है। इस विषयमें न्यायमूर्ति रानडेने हमें सावधान कर दिया है। वेदादि साहित्य या जैन साहित्यमें से हम चाहे जितनी बड़ी-बड़ी बातें करते रहें अथवा सिद्धान्तोंके विषयमें चाहे जितने प्रमाण देकर दुनियाको आश्चर्य-चकित करते रहें, फिर भी दुनिया हमें सच्चा नहीं मान सकती। इसीलिए रानडेने हमारा धर्म यह बताया है कि हम अपनी इस पूंजीमें वृद्धि करते जायें, अन्य धर्मोके विचारकोंने जो लिखा हो, उससे उसकी तुलना करें और ऐसा करते हुए यदि कोई नई चीज मिल जाये या उसपर नया प्रकाश पड़ता हो तो हम उसकी उपेक्षा न करें। किन्तु हमने ऐसा नही किया। हमारे धर्माध्यक्षोंने एक पक्षका ही विचार किया है। उनके अध्ययनमें, कहने और करनेमें समानता भी नहीं है। जन-साधारणको यह अच्छा लगेगा या नही, जिस समाजमें वे स्वयं काम करते थे उस समाजको भला लगेगा या नही, इस बातका विचार न करते हुए टॉल्स्टॉयकी तरह खरी-खरी सुना देनेवाले हमारे यहाँ नहीं मिलते। हमारे इस अहिंसा-प्रधान देशकी ऐसी दयनीय दशा है। हमारी अहिंसा निंदाके ही योग्य है। खटमल, मच्छर, पिस्सू, पक्षी और पशुओंकी किसी-न-किसी तरह रक्षा करनेमें ही मानो हमारी अहिंसाकी इति हो जाती है। यदि वे प्राणी कष्टमें तड़पते हों, तो हम उनकी परवाह नही करते; उन्हें दुःखी करनेमें यदि हमारा हाथ हो तो भी हमें उसकी चिन्ता नहीं होती। परन्तु दुःखी प्राणीको यदि कोई प्राणमुक्त करना चाहे अथवा हमें उसमें शरीक होना पड़े तो हम उसे घोर पाप मानते हैं। मै लिख चुका हूँ कि यह अहिंसा नही है। टॉल्स्टॉयका स्मरण कराते हुए मैं फिर कहता हूँ कि अहिंसाका यह अर्थ नहीं है। अहिंसाके मानी हैं प्रेमका समुद्र; अहिंसाके मानी हैं वैर-भावका सर्वथा त्याग। अहिंसामें दीनता, भीरुता नहीं होती, डर-डरकर भागना भी नहीं होता। अहिंसामें तो दृढ़ता, वीरता, अडिगता होनी चाहिए।

यह अहिंसा हिन्दुस्तानमें शिक्षित समाजमें दिखाई नही देती। उनके लिए टॉल्स्टॉयका जीवन प्रेरक है। उन्होंने जिस चीजपर विश्वास किया उसका पालन करनेका जबरदस्त प्रयत्न किया, और उससे कभी पीछे नही हटे। मैं यह नहीं मानता कि उन्हें वह हरी छड़ी[1] न मिली हो। नहीं, मिली यह तो उन्होने स्वयं कहा है। ऐसा कहना उनको शोभा देता था। परन्तु यह मैं नहीं मानता कि उन्हें वह छड़ी मिली ही न हो, जैसा कि उनके टीकाकार लिखते हैं। यदि कोई यह कहे कि उन्होंने सब तरहसे उस अहिंसाका पालन नहीं किया जिसका उन्हें दर्शन हुआ था तो मैं यह मान सकता हूँ। किन्तु इस जगत्में ऐसा पुरुष कौन है कि जो जीते जी अपने सिद्धान्तों

१. गांधीजी से पूर्व युवक संघके प्रमुख डॉ० हरिप्रसादने अपने प्रास्ताविक भाषण कहा था कि "टॉल्स्टॉयके भाईने अनेक सद्गुणोंवाली जो हरी छड़ी खोजनेको कहा था उसे वे आजीवन खोजते ही रहे।"

पर पूरी तरह अमल कर सका हो? मेरी मान्यता है कि देहधारीके लिए सम्पूर्ण अहिंसाका पालन असम्भव है। जबतक शरीर है तबतक कुछ-न-कुछ अहंभाव तो रहता ही है। जबतक अहंभाव है तबतक शरीरको भी धारण करना ही है। इसलिए शरीरके साथ हिंसा भी रहती ही है। टॉल्स्टॉयने स्वयं कहा है कि जो अपनेको आदर्शतक पहुँचा हुआ समझता है उसे नष्टप्राय ही समझना चाहिए। बस यहीसे उसकी अधोगति शुरू हो जाती है। ज्यों-ज्यों हम आदर्शके समीप पहुँचते है, आदर्श दूर भागता जाता है। जैसे-जैसे हम उसकी खोजमें अग्रसर होते हैं यह मालूम होता है कि अभी तो एक मंजिल और बाकी है। कोई भी एक छलांग में कई मंजिलें तय नहीं कर सकता। ऐसा माननेमें न हीनता है, न निराशा; नम्रता अवश्य है। इसीसे हमारे ऋषियोंने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहनेवालेको शून्यता प्राप्त करनी है। यह ईश्वर की कृपाके बिना नही मिल सकती। यह शून्यता जबतक शरीर है तबतक आदर्शके रूपमें ही रहती है। जिस क्षण इस बातको टॉल्स्टॉयने साफ देख लिया, उसे अपने दिमाग में बैठा लिया और उसकी ओर दो डग आगे बढ़े उसी वक्त उन्हें वह हरी छड़ी मिल गई। उस छड़ीका वे वर्णन नही कर सके थे, सिर्फ इतना ही कह सकते थे कि वह उन्हें मिली। फिर भी अगर उन्होंने सचमुच यह कहा होता कि मिल गई तो उनका जीवन समाप्त हो जाता।

टॉल्स्टॉयके जीवनमें जो अन्तर्विरोध दीखता है वह टॉल्स्टॉयका कलंक या कमजोरी नही, किन्तु देखनेवालों की त्रुटि है। एमर्सनने कहा है कि अविरोधका भूत तो छोटे आदमियोंको दबोचता है। अगर यह दिखलाना चाहें कि हमारे जीवनमें कभी विरोध आनेवाला ही नही तो यों समझिए कि हम मरे हुए ही हैं। अविरोध साधनेमें अगर कलके कार्यको याद रखकर उसके साथ आजके कार्यका मेल बैठाना पड़े तो उस कृत्रिम मेलमें असत्याचरणकी सम्भावना हो शकती है। सीधा मार्ग यही है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसपर आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर उन्नति हो रही हो और हमारे कार्योंमें दूसरोंको अन्तर्विरोध दीखे तो इससे हमे क्या? सच तो यह है कि यह अन्तर्विरोध नही, उन्नति है। इसी तरह टॉल्स्टॉयके जीवनमें जो अन्तर्विरोध दीखता है वह अन्तर्विरोध नहीं; हमारे मनका भ्रम है। मनुष्य अपने हृदयमें कितने प्रयत्न करता होगा, राम-रावणके युद्धमें वह कितनी विजयें प्राप्त करता होगा! किन्तु उनका ज्ञान उसे स्वयं नहीं होता, देखनेवालों को तो हो ही नही सकता। वह जरा फिसला नहीं कि दुनियाको लगता है जैसे वह कहीं था ही नहीं; और ऐसा लगना अच्छा ही है। इस कारण दुनिया निन्दाकी पात्र नहीं है। इसीसे तो सन्तोंने कहा है कि जगत् जब हमारी निंदा करे तब हमें आनन्द मानना चाहिए और स्तुति करे तब काँप उठना चाहिए। इसके सिवा दुनिया और कुछ नही कर सकती; उसे तो जहाँ दोष दीखा नहीं कि उसने उसकी निंदा की। परन्तु महापुरुषके जीवनको देखने बैठें तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदयमें कितने युद्ध किये होंगे और कितनी जीतें प्राप्त की होंगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है। उसकी उस असफलता और सफलताका यही चिह्न है।

ऐसा कहनेमें मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि आप अपने दोषोंको छिपाएँ या पहाड़-से दोषोंको छोटा-सा मानें। ऐसा तो हमें दूसरोंके विषयमें करना चाहिए। हमें दूसरोंके हिमालय-से दोषोंको राईके समान छोटा और अपने राई-से दोषोंको हिमालयके समान बड़ा समझना चाहिए। अपने भीतर यदि तनिक-से भी दोषका अनुभव हो अथवा हमसे जाने-अनजाने असत्याचरणका दोष हो गया हो तो डूब मरनेकी इच्छा होनी चाहिए। दिलमें पश्चात्तापकी आग सुलग उठनी चाहिए। सर्प या बिच्छूका डंक तो कुछ नहीं है; उनका जहर उतारनेवाले तो बहुत मिल सकते हैं, परन्तु असत्य और हिंसाके दंशसे बचानेवाला कौन है? ईश्वर ही हमें उससे मुक्ति दे सकता है, और हममें अगर पुरुषार्थ हो तभी वह परिस्थिति आ सकती है। इसलिए अपने दोषोंके बारेमें हम सचेत रहें। उन्हें जितना बढ़ा-चढ़ाकर देख सकें हम उन्हें उतना बढ़ा-चढ़ाकर देखें। और अगर जगत् हमें दोषी ठहराये तो हम ऐसा न मानें कि जगत् कितना अनुदार है कि एक छोटे-से दोषको बड़ा बतलाता है। टॉल्स्टॉयको यदि कोई उनका दोष बतलाता था तो वे उसे बड़े भयंकर रूपमें देखते थे। यों उनका दोष बतानेका अवसर दूसरेको शायद ही कभी मिला हो; क्योंकि वे स्वयं बारीकीसे आत्मनिरीक्षण किया करते थे। दूसरेके बतानेके पहले ही वे अपने दोष देख लेते थे, और उसके लिए अपनी कल्पना द्वारा सुझाया हुआ प्रायश्चित्त भी वे कर डालते थे। यह साधुताकी निशानी है; इसीसे मैं मानता हूँ कि उन्हें वह छड़ी मिली थी।

एक दूसरी अद्भुत वस्तुपर लिखकर और उसे अपने जीवनमें उतारकर टॉल्स्टॉयने उसकी ओर हमारा ध्यान दिलाया है। वह है 'ब्रेड लेबर'। यह उनकी अपनी खोज नही थी। किसी दूसरे लेखकने यह वस्तु रूसके सर्वसंग्रह (रशियन मिसलेनी) में लिखी थी। इस लेखकको टॉल्स्टॉयने जगत्के सामने ला रखा और उसकी बातको भी प्रकाशमें लाये। जगत्में जो असमानता दिखाई पड़ती है, एक तरफ दौलत और दूसरी तरफ कंगाली नजर आती है, उसका कारण यह है कि हम अपने जीवनका कानून भूल गये है। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। 'गीता'के तीसरे अध्यायके आधारपर मैं उसे यज्ञ कहता हूँ। 'गीता'ने कहा है कि जो बिना यज्ञ किये खाता है वह चोर है, पापी है। वही चीज टॉल्स्टॉयने बतलाई है। ब्रेड लेबरका उलटा-सीधा भावार्थ करके हमें उसे उड़ा नही देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शारीरिक श्रम नहीं करता उसे खानेका अधिकार नहीं है। यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने भोजनके लिए आवश्यक मेहनत कर डाले तो जो गरीबी जगत्में दीखती है वह दूर हो जाये। एक आलसी दोको भूखों मारता है, क्योंकि उसका काम दूसरेको करना पड़ता है। टॉल्स्टॉयने कहा कि लोग परोपकार करने निकलते हैं, उसके लिए पैसे खर्च करते हैं और बदलेमें खिताब आदि लेते हैं; यदि वे यह सब न करके केवल इतना ही करें कि दूसरोंके कन्धोंसे नीचे उतर जायें तो यही काफी है। यह सच बात है। यह नम्रतापूर्ण वचन है। करने जायें परोपकार और अपना ऐशो-आराम लेश भी न छोड़ें तो यह वैसा ही हुआ जैसा कि अखा भक्तने कहा है: 'निहाईकी चोरी, सुईका दान'। क्या ऐसेमें स्वर्गसे विमान आ सकता है?

ऐसा नहीं कि टॉल्स्टॉयने जो कहा वह दूसरोंने न कहा हो; परन्तु उनकी भाषामें चमत्कार था और इसका कारण यह है कि उन्होंने जो कहा उसका पालन किया। गद्दी-तकियों पर बैठनेवाले टॉल्स्टॉय मजदूरीमें जुट गये, आठ घंटे खेतीका या मजदूरीका दूसरा काम उन्होंने किया। इससे यह न समझें कि उन्होंने साहित्यका कुछ काम ही नहीं किया था। शरीर-श्रमको अपनानेके बादसे उनका साहित्य और भी अधिक शोभित हुआ। उन्होंने अपनी पुस्तकोंमें जिसे सर्वोत्तम कहा है वह है 'कला क्या है?' यह उन्होंने इस यज्ञ-कालकी मजदूरीमें से बचे समयमें लिखी थी। मजदूरीसे उनका शरीर क्षीण नहीं हुआ; और उन्होंने स्वयं यह माना था कि इससे उनकी बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई तथा उनके ग्रन्थोंको पढ़नेवाले भी कह सकते हैं कि यह बात सच है।

यदि हम टॉल्स्टॉयके जीवनसे लाभान्वित होना चाहते हों तो उनके जीवनमें उल्लिखित तीन बातें सीख लेनी चाहिए। युवक-संघके सदस्योंके सामने बोलते हुए मैं याद दिलाना चाहता हूँ कि आपके सामने दो मार्ग हैं: एक स्वेच्छाचारका और दूसरा संयमका। यदि आपको यह प्रतीत होता हो कि टॉल्स्टॉयने जीना और मरना जाना था तो आप देख सकते हैं कि दुनियामें सबके और विशेषतः युवकोंके लिए संयमका मार्ग ही सच्चा मार्ग है; हिन्दुस्तानमें तो खास तौरपर है ही। स्वराज्य कोई सरकारसे लेनेकी वस्तु नहीं है। अपनी अवनतिके कारणोंकी जाँच करनेपर आप स्वयं देख सकेंगे कि उसमें सरकारकी अपेक्षा हमारा हाथ ज्यादा है। आप देखेंगे कि स्वराज्यकी कुंजी हमारे ही हाथमें है; वह न तो इंग्लैंडमें है, न शिमलेमें और न दिल्लीमें। वह कुंजी तो आपकी और मेरी जेबमें है। अपने समाजकी अधोगति और जड़ताको दूर न कर पानेका कारण हमारी ढिलाई है। यदि हम इसे निकाल दें तो जगत्में ऐसी कोई भी सत्ता नहीं है जो हमें अपनी उन्नति करने, स्वराज्य प्राप्त करनेसे रोक सके। अपने मार्गमें हम स्वयं बाधक हैं और आगे बढ़नेसे इनकार करते हैं। युवक-संघके सदस्योंसे मैं कहता हूँ कि आपके लिए यह सुन्दर समय है; दूसरे रूपमें कहूँ तो यह विषमकाल है, तीसरी रीतिसे यदि कहूँ तो यह परीक्षाकाल है। आप विश्वविद्यालयकी परीक्षा देकर कोई उपाधि पा लें तो वही काफी नहीं है। जब आप जगत्की परीक्षा और ठोकरोंमें से उत्तीर्ण होंगे तभी आपको सच्ची उपाधि मिली मानी जा सकती है। आपके लिए यह सन्धिकाल है; सुवर्णकाल है। उसमें आपके सामने दो मार्ग हैं। यदि एक उत्तरको जाता है तो दूसरा दक्षिणको; एक पूर्व जाता है तो दूसरा पश्चिम जाता है। इनमें से आपको एकका चुनाव करना है। उनमें से आप कौन-सा रास्ता पसन्द करें, इसका विचार आपको करना होगा। देशमें पश्चिमसे तरह-तरहकी हवाएँ — मेरी दृष्टिमें विषाक्त हवाएँ — आती हैं। यह सच है कि टॉल्स्टॉय-जैसोंके जीवनकी सुन्दर हवा भी आती है। परन्तु वह प्रत्येक स्टीमरमें थोड़े ही आती है? प्रत्येक स्टीमरमें कहो या प्रतिदिन कहो। कारण यह है कि प्रतिदिन कोई-न-कोई स्टीमर बम्बई या कलकत्ता बन्दरगाहमें आता ही है। दूसरे विदेशी सामानकी तरह उसमें विदेशी साहित्य भी आता है। उसमें प्रति-

पादित विचार मनुष्यको मटियामेट कर देनेवाले होते हैं, वे स्वेच्छाचारकी तरफ ले जानेवाले होते हैं। आप इस बातको बिलकुल सही मानें। आप यह अभिमान कदापि न करें कि आपने जो सोचा है, या जो किताबें अपनी अधकचरी अवस्थामें पढ़ी हैं और उनसे जो समझा वही सच्चा है और जो प्राचीन है वह बर्बरतासे भरा है तथा जो नई-नई खोजें हुई हैं वे सब सच्ची हैं। यदि आपको इसका अहंकार हो तो मैं यह कल्पना ही नहीं कर सकता कि आप इस संघकी शोभा बढ़ा सकेंगे। सरला देवीसे आपने नम्रता, सभ्यता, मर्यादा, पवित्रता सीखी होगी। अगर मेरी यह आशा आपने अभीतक सच्ची न कर दिखलाई हो तो भविष्यमें कर दिखलायें। आपने कुछ-एक अच्छे काम किये हैं। उनकी प्रशंसा हो तो आप उससे फूल न उठें। प्रशंसासे दूर भागते रहें। ऐसा न मानें कि 'हमने बहुत-कुछ कर डाला है।' बारडोलीके लिए यदि आपने पैसे इकट्ठे किये, पसीना बहाया, दो-चार व्यक्ति जेल गये तो, मैं एक अनुभवीकी हैसियतसे पूछता हूँ, उसमें आपने ऐसा कौन-सा बड़ा काम कर दिखाया? दूसरे भले ही कहें कि आपने कुछ किया है; किन्तु आप इतनेमें सन्तोष न मानें। आपको अपना आंतरिक जीवन सुधारना है; अन्तरात्मासे सच्चा प्रमाणपत्र प्राप्त करना है। वास्तवमें हमारी आत्मा भी सोई हुई होती है। तिलक महाराज कह गये हैं कि हमारे यहाँ 'कान्शन्स' का पर्यायवाची शब्द नहीं है। हम यह नहीं मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्तिमें 'कान्शन्स' होता है किन्तु पश्चिममें ऐसा मानते हैं। व्यभिचारी और लम्पटकी 'कान्शन्स' क्या हो सकती है? इसीलिए तिलक महाराजने 'कान्शन्स' को जड़से ही उड़ा दिया। हमारे ऋषि-मुनियोंने कहा है कि अन्तर्नाद सुननेके लिए अन्त:कर्ण भी चाहिए, अन्तश्चक्षु चाहिए और उन्हें प्राप्त करनेके लिए संयमकी आवश्यकता है। इसीलिए 'पातंजल योगदर्शन' में योगाभ्यास करनेवालोंके लिए, आत्मदर्शनकी इच्छा रखनेवालोंके लिए पहला पाठ यम-नियमोंका पालन करना बताया है। सिवा संयमके मेरे, आपके या अन्य किसीके पास दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। टॉल्स्टॉयने अपने लम्बे जीवनमें संयमका पालन करके यही बताया। मैं चाहता हूँ, प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि यह चीज हम आँखोंके आगे रखें, उसे दीयेकी तरह स्पष्ट देख सकें और आज हम यहाँ एकत्र हुए हैं तो यह निश्चय करके उठें कि टॉल्स्टॉयके जीवनसे हमें संयमकी साधना करनेका पाठ सीखना है।

हम निश्चय करें कि हम सत्यकी आराधना नहीं छोड़ेंगे। इस दुनियामें सत्यके पालनका एकमात्र मार्ग सच्ची अहिंसा ही है। अहिंसा प्रेमका सागर है। उसकी थाह जगत्में कोई ले ही नहीं सका। यदि इस प्रेमसागरमें हम सराबोर हो जायें तो सारी दुनियाको अपने प्रेममें आत्मसात् कर लेनेकी उदारता हममें आ सकती है। यह बात कठिन अवश्य है किन्तु साध्य है। इसीसे हमने प्रारम्भिक प्रार्थनामें सुना कि शंकर हो या विष्णु, ब्रह्मा हो या इन्द्र, बुद्ध हो या सिद्ध, मेरा सिर तो उसीके आगे झुकेगा जो रागद्वेष-रहित हो, जिसने कामको जीता हो, जो अहिंसा — प्रेम — की प्रतिमा हो। लूले-लँगड़े प्राणियोंको न मारनेमें ही अहिंसा नहीं है। उसमें धर्म तो हो सकता है, परन्तु प्रेम तो उससे भी अनन्त गुना आगे जाता है। जिसको उसके दर्शन नहीं हुए

वह लूले-लँगड़े प्राणियोंको बचा भी ले तो उससे क्या होता है? ईश्वरके दरबारमें उसकी कीमत बहुत कम कूती जायेगी। तीसरी बात है 'ब्रेड लेबर'—यज्ञ। शरीरको कष्ट देकर मेहनत करके ही खानेका हमें अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टिसे किया हुआ काम ही यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवाके हेतु ही जीना है। लम्पट बनने या इस दुनियाके भोगोंका उपभोग करनेका नाम जीवित रहना नहीं है। कोई कसरतबाज नौजवान आठ घंटे कसरत करे तो यह 'ब्रेड लेबर' नहीं है। आप कसरत करें, शरीरको मजबूत बनायें तो मैं इसकी उपेक्षा नहीं करूँगा। परन्तु जो यज्ञ टॉल्स्टॉयने बताया है, यह वह यज्ञ नहीं है जो 'गीता'के तीसरे अध्यायमें बताया गया है। जो ऐसा समझेगा कि हमारा जीवन यज्ञके लिए है, सेवाके लिए है, वह भोगोंको कम करता जायेगा। इस आदर्शके साधनमें ही पुरुषार्थ है। भले ही इस वस्तुको किसीने सर्वांशमें प्राप्त न किया हो और वह उससे दूर ही क्यों न रह गया हो, किन्तु फरहादने जिस तरह शीरींके लिए पत्थर फोड़े उसी तरह हम भी पत्थर तोड़ें। हमारी यह शीरीं अहिंसा है। उसमें न सिर्फ हमारा छोटा-सा स्वराज्य निहित है, बल्कि उसमें तो सभी कुछ समाया हुआ है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-९-१९२८

३०३. पत्र : छगनलाल जोशीको[1]

[१० सितम्बर, १९२८के पश्चात्]

श्रद्धानन्दजीवाली रकम 'हिन्दुस्तान टाइम्स', दिल्लीकी मार्फत स्मारकके मंत्रीको भेजना ठीक रहेगा। चैक क्रॉस कर देना।

भाई पुरुषोत्तमका पत्र मुझे नहीं मिला।

बापू

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो—७ : श्री छगनलाल जोशीने

१. छगनलाल जोशीके १० सितम्बरके पत्रके उत्तरमें।

३०४. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

१२ सितम्बर, १९२८

चि० ब्रजकिशोर[1],

तुमारा खत मीला। जो भतीजा ऐसा उदंड बन गया है उसका बहिष्कार करनेसे ही उसकी सेवा हो सकती है। यदि आवश्यक माना जाय तो उसको मावार कुछ रूपैये दीये जाय।

शरीर अच्छा बनाइये, उसके लीये मन तो चंगा होना ही चाहीये।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३५९ की फोटो-नकलसे।

३०५. युद्धके प्रति मेरा दृष्टिकोण

रेवरेंड बी० द लिग्टने 'इवॉल्यूशन' नामक एक फ्रेंच पत्रिकामें मेरे नाम एक खुला पत्र लिखा है। उसका एक अनुवाद उन्होने मुझे भेज दिया है। इस पत्रमें बोअर युद्ध[2] और फिर १९१४के विश्व-युद्धमें[3] मेरे भाग लेनेकी कड़ी आलोचना की गई है और मुझसे अहिंसाके सन्दर्भमें इस आचरणका स्पष्टीकरण करनेको कहा गया है। कुछ अन्य मित्रोंने भी यही सवाल किया है। मैंने इन स्तम्भोंमें अपने उस आचरणका स्पष्टीकरण देनेका कई बार प्रयत्न किया है।

यदि केवल अहिंसाकी तुला पर ही तोलें तो मेरे उस आचरणका कोई औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। युद्धमें हथियार चलानेवालों और सेवा-शुश्रूषाका काम करनेवालों में मैं कोई अन्तर नही मानता। युद्धमें तो दोनों ही हाथ बॅटाते है और उसे प्रश्रय देते है। दोनों युद्ध करनेके अपराधके दोषी है। किन्तु इतने वर्षोतक आत्मनिरीक्षण करनेके बाद भी मैं यही महसूस करता हूँ कि तब मैं जिन परिस्थितियो में पड़ गया था, उनमें जो रास्ता मैंने बोअर युद्ध और विश्वयुद्धमें — बल्कि १९०६ में नेटालके तथाकथित जूलू विद्रोहके[4] समय भी — अपनाया उसके अलावा और कोई रास्ता ही नही था।

१. स्पष्ट ही यहाँ "ब्रजकिशन" के स्थानपर भूलसे यह नाम लिखा गया है।

२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १३८-३९, १४७-५२, १५७-५८ और २३५-४१।

३. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ५१९, ५२५-२६ और ५३९-४० तथा खण्ड १४, पृष्ठ ३६०-६२ और ४२२-२६ भी।

४. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३०१, ३७२-७३, ३७६ और ३८०-८३।

जीवनकी गति अनेकानेक शक्तियोंसे निर्धारित होती है। यदि मनुष्य अपना आचरण केवल किसी ऐसे सामान्य सिद्धान्तके अनुसार निर्धारित कर सके जिसे किसी विशेष क्षणमें कैसे लागू किया जाये, यह इतना स्पष्ट हो कि उसे क्षण-भरको भी सोचनेकी जरूरत न हो तब तो उसके मार्गमें कोई कठिनाई ही न रह जाये। लेकिन मुझे तो ऐसा कोई आचरण याद नहीं आ रहा है जिसे इतनी आसानीसे निर्धारित किया जा सका हो।

एक प्रबल युद्ध-विरोधी व्यक्तिके नाते मौका मिलने पर भी मैंने कभी हथियार चलानेकी शिक्षा नहीं ली। शायद इसीलिए मै मानव-जीवनके विनाशमें प्रत्यक्षतः शामिल होनेसे बच सका। लेकिन जबतक मैं शरीर-बलपर आधारित एक शासन प्रणालीके अधीन जी रहा था और अपनी इच्छासे उसके द्वारा सुलभ की गई अनेक सुविधाओं और अधिकारोंका लाभ उठा रहा था तबतक उस सरकारके युद्धरत हो जानेपर अपनी शक्ति-भर उसकी सहायता करनेको बाध्य था। हाँ, यदि मै उस सरकारसे असहयोग कर रहा होता और उसके द्वारा सुलभ की गई सुविधाओंका अपनी क्षमता-भर अधिकसे-अधिक त्याग कर रहा होता तो बात दूसरी होती।

अब मैं एक उदाहरण देकर अपनी बात समझाता हूँ। मैं एक संस्थाका सदस्य हूँ और उस संस्थाके पास कुछ एकड़ जमीन है। उसकी फसलोंको बन्दरोंसे बराबर खतरा बना रहता है। मैं प्राणि-मात्रके जीवनको पवित्र मानता हूँ और इसलिए बन्दरोंको कोई नुकसान पहुँचाना मेरी दृष्टिमें अहिंसा-धर्मका उल्लंघन है। लेकिन फसलोंको बन्दरोंसे बचानेके लिए मैं लोगोंको उन्हें मार-पीटकर भगानेको प्रेरित करने और किस तरह यह काम किया जाये, यह बतानेमें कोई संकोच नहीं करता।[1] मैं इस बुराईसे बचना चाहूँगा, लेकिन बच तभी सकता हूँ जब या तो इस संस्थाको छोड़ दूँ या तोड़ दूँ। मैं वैसा नही करता, क्योकि मैं यह आशा नहीं रखता कि मुझे कहीं कोई ऐसा समाज मिल सकेगा जहाँ खेती नही होती हो और इसलिए कुछ-न-कुछ जीवहत्या भी नही होती हो। सो मै डरते-काँपते, विनम्र और पश्चात्तापपूर्ण मनसे बन्दरोंको मारने-पीटनेके काममें शरीक होता हूँ — मनमें यह आशा लिये हुए कि शायद किसी दिन इसका कोई हल निकल आये।

इसी प्रकार मैंने उक्त तीनों लड़ाइयोंमें भी भाग लिया। मैं जिस समाजका सदस्य हूँ उससे मैं अपना सम्बन्ध नही तोड़ सकता था — तोड़ना पागलपन होता। और उन तीनों अवसरों पर मेरे मनमें ब्रिटिश सरकारसे असहयोग करनेका कोई खयाल नहीं आया था। आज उस सरकारके सम्बन्धमें मेरा दृष्टिकोण बिलकुल दूसरा है और इसलिए इसकी किसी लड़ाईमें मैं स्वेच्छासे शरीक नही हो सकता और यदि आज मुझे उसकी ओरसे शस्त्र उठाने या उसके सैनिक अभियानोंमें किसी अन्य प्रकारसे शामिल होनेको मजबूर किया जाये तो मैं जेल जाने, बल्कि फाँसीके तख्ते पर चढ़ जानेका खतरा उठानेको भी तैयार हूँ।

१. देखिए "पावककी ज्वाला", ३०-९-१९२८ का उपशीर्षक 'हिंसक प्राणहरण'।

लेकिन इस गुत्थीका पूरा समाधान अब भी नहीं हो पाया है। यदि इस सरकारके बजाय कोई राष्ट्रीय सरकार हो तो मैं किसी युद्धमें प्रत्यक्ष रूपसे तो भाग नहीं लूँगा, किन्तु ऐसे प्रसंगोंकी कल्पना कर सकता हूँ जब सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको सैनिक प्रशिक्षण देनेके पक्षमें मत देना मेरा कर्तव्य होगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस राष्ट्रके सभी सदस्य अहिंसामें उस सीमातक विश्वास नहीं रखते जिस सीमातक मैं रखता हूँ। किसी व्यक्ति या समाजको जबरदस्ती अहिंसक नहीं बनाया जा सकता।

अहिंसा बड़े रहस्यमय ढंगसे काम करती है। मनुष्यके अहिंसात्मक दिखनेवाले कार्योंका विश्लेषण करनेपर वास्तवमें उन्हें अहिंसात्मक सिद्ध कर पाना अक्सर कठिन पाया जाता है, इसी प्रकार अक्सर ऐसा होता है कि जब उसका आचरण अहिंसाके विशुद्धतम अर्थोंमें सर्वथा अहिंसात्मक होता है और बादमें ऐसा ही सिद्ध भी होता है तब ऊपरसे देखनेमें उसके कार्य हिंसात्मक प्रतीत होते हैं। इसलिए मैं जो-कुछ कह सकता हूँ वह यही कि उपर्युक्त प्रसंगोंमें मेरे आचरणके पीछे अहिंसाकी ही प्रेरणा थी। क्षुद्र राष्ट्रीय अथवा अन्य हितोंको साधनेका कोई प्रश्न ही नहीं था। किन्हीं दूसरे हितोंकी बलि देकर राष्ट्रीय या किसी अन्य हितको साधनेमें मैं विश्वास नहीं रखता।

अपनी दलीलको मैं और नहीं बढ़ाऊँगा। भाषाके माध्यमसे कोई किसी भी हालतमें अपने विचारोंकी पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकता। मेरे लिए अहिंसा एक दार्शनिक सिद्धान्त-मात्र नहीं है। वह मेरे जीवनकी नियामक शक्ति, उसकी साँस है। मुझे मालूम है कि अक्सर मुझसे चूक होती है — कभी-कभी जानते-बूझते, लेकिन प्रायः अनजाने ही। यह बुद्धिकी नहीं, हृदयकी चीज है। सच्चा मार्गदर्शन ईश्वरसे निरन्तर प्रार्थना करते रहनेसे, अतीव विनम्रता तथा आत्मत्यागसे तथा सदैव आत्मोत्सर्गके लिए तत्पर रहनेसे प्राप्त होता है। इसके आचरणके लिए प्रबल साहस और निर्भीकताकी आवश्यकता होती है।

लेकिन मेरे अन्तरमें जो दीप जल रहा है वह स्थिर है, स्पष्ट है। हमारे लिए सत्य और अहिंसाके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है, मैं जानता हूँ कि युद्ध गलत है, एक घोर बुराई है। मैं यह भी जानता हूँ कि इसे समाप्त होना चाहिए। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि खूँरेजी और फरेबसे जीती हुई आजादी, आजादी नहीं है। मेरे किसी कार्यके कारण लोग ऐसा मानें कि अहिंसा धर्मकी यह सीमा है और इस तरह अहिंसा-धर्मको बट्टा लगे अथवा वे मेरे बारेमें ऐसी धारणा बनायें कि मैं अमुक रूपमें हिंसा या असत्यके पक्षमें हूँ, इसके बजाय यह ज्यादा अच्छा होगा कि जो कार्य करनेका आरोप मुझ पर लगाया गया है, उनमें से किसीका भी औचित्य सिद्ध न किया जा सके। हमारे जीवनका धर्म हिंसा नहीं है, असत्य नहीं है; उसका धर्म है अहिंसा और सत्य।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-९-१९२८

३०६. दक्षिण आफ्रिकामें रियायत

दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसने मुझे निम्नलिखित तार भेजा है:

> **रियायतका लाभ उठानेकी इच्छा रखनेवाले जो लोग आखिरी जहाजसे भारतसे प्रस्थान नहीं कर पाये वे कमासिया (एशियाइयोंके मामलोंके कमिश्नरका तारका पता), प्रिटोरियाको रियायतके लिए अर्जी देनेका अपना इरादा तीस सितम्बरसे पहले तार द्वारा सूचित करें और साथ ही तारमें अपने अधिवास पंजीयनपत्र या शिनाख्त प्रमाणपत्रका क्रमांक भी बतायें। इस सूचनाको कृपया भारत-भरके अखबारोंमें खूब प्रचारित करें।**

यह तार मिलते ही इसे अखबारोंको भेज दिया गया था। इन स्तम्भोंमें प्रकाशित योजनाके[1] अन्तर्गत जो लोग आते हों, केवल वही उपर्युक्त विवरण भेजें। शेष लोगोंसे मेरा यह आग्रहपूर्ण निवेदन है कि वे अपनी पसीनेकी कमाईको तार भेजनेमें व्यर्थ बरबाद न करें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १३-९-१९२८

३०७. टिप्पणियाँ

विदेशोंमे प्रचार और सरोजिनीदेवी

विदेशोंमें प्रचारका अर्थ आम तौर पर वहाँ कोई एजेंसी स्थापित करना या यहाँ-वहाँ दौरा करनेवाले शिष्टमण्डलोंको बाहर भेजना लगाया जाता है। इस सामान्य अर्थमें मैं विदेशोंमें प्रचार-कार्यमें विश्वास नही रखता। लेकिन पश्चिमी संसारके अपने दौरेमें सरोजिनीदेवी विदेशोंमें जो प्रचार करेंगी वह किसी स्थापित एजेंसी द्वारा किये जानेवाले प्रचारसे कही अधिक प्रभावकारी होगा, क्योंकि उदासीन लोगोंको तो ऐसी किसी एजेंसीके अस्तित्वका भान भी नही होगा और फिर जिन लोगोंके मतका हमारे लिए कोई महत्त्व है वे उसकी उपेक्षा कर देंगे। भारत-कोकिलाके साथ ऐसी बात नही हो सकती। पश्चिमी दुनिया उन्हें जानती है। वे जहाँ-कही जायेंगी, लोग उनकी बात अवश्य सुनेंगे। उनमें महान् वाग्मिता-शक्ति है और उससे भी महान् कवित्व-शक्ति है, और इन दोनों गुणोंके कारण सोनेमें सुहागेका काम करती है उनकी सूक्ष्म और संवेदनशील नयज्ञता। वे जानती है कि कौन-सी बात कहनी चाहिए और कब कहनी चाहिए और वे सत्यको किसीकी भावनाको चोट पहुँचाये बिना कहनेकी कलामें

१. देखिए परिशिष्ट २।

निपुण हैं। पश्चिममें वे जो-कुछ करनेका उद्देश्य लेकर जा रही हैं, उससे हम हर तरहसे काफी-कुछकी अपेक्षा रख सकते हैं। वे स्वभावसे ही संस्कारवान् हैं, सो वे अपने मनमें यह निश्चय करके वहाँ गई हैं कि कुमारी मेयो द्वारा लगाये गये उद्धतापूर्ण आरोपोंका[1] वे प्रत्यक्ष खण्डन नहीं करेंगी। उनका वहाँ उनके बीचमें होना, भारत क्या है तथा वह उनके लिए क्या अर्थ रखता है, इसकी विवृति ही उस तमाम असत्यका पर्याप्त प्रतिकार होगा जो केवल भारत और भारतीयताको नीचा दिखानेके उद्देश्यसे प्रेरित एजेंसियोंने ऐसे असत्यको सुननेको सदा तत्पर रहनेवाली अमेरिकी जनताके कानोंमें उँड़ेला है।[2]

राष्ट्रीय स्त्री-सभा और खादी[3]

यह सभा कई वर्षोंसे खादीके कलात्मक नमूने पेश करके बम्बई तथा अन्य स्थानोंके फैशनपसन्द नागरिकोंके बीच खादी-प्रचारका महत्त्वपूर्ण काम करती आ रही है। सभा इस कामके द्वारा बम्बई नगरकी २५०से अधिक जरूरतमन्द लड़कियोंकी जीविकाका साधन सुलभ कर रही है। इसके पाँच केन्द्र हैं, जिनके माध्यमसे इन बहनोंको काम दिया जाता है। स्वभावतः इन लड़कियोंको प्रति-मास नियमित रूपसे वेतन देना पड़ता है। अखिल भारतीय चरखा संघका नकद भुगतानपर बड़ा आग्रह है, इसलिए सभा जो खादी खरीदती है उसकी कीमत उसे तत्काल नकद चुकानी पड़ती है। सभाने अनुभवसे यह देखा है कि यदि उसे अपने यहाँ काम करनेवालोका पारिश्रमिक और खरीदी गई खादीकी कीमत नकद चुकानी है तो अपने मालकी भी नकद बिक्रीपर आग्रह रखना चाहिए। इसके अलावा इस कामकी व्यवस्था करनेवाली सभी बहनें त्यागकी भावनासे काम करनेवाली स्वयंसेविकाएँ हैं। इसलिए उनका यह अपेक्षा करना सर्वथा उचित है कि उनके श्रमसे तैयार की गई चीजोंको खरीदनेवाले लोग जो-कुछ भी खरीदना चाहें, नकद दाम देकर खरीदें। श्रीमती पेरिनबाई कैप्टनने सभाकी ओरसे एक परिपत्र जारी किया है, जिसमें उन्होंने सभाका माल खरीदनेवाले लोगोंसे नकद व्यवहार करनेका अनुरोध किया है। सभा उपकारकी भावनासे जो उपयोगी सेवा कर रही है, उसके लिए वह निस्सन्देह प्रोत्साहनकी पात्र है। और सभाको जिन प्रोत्साहनोंकी अपेक्षा करनेका अधिकार है उनमें नकद खरीदकी अपेक्षा करना तो सबसे छोटी अपेक्षा करना ही है। सभा द्वारा तैयार किया गया माल खरीदनेवाले न केवल निर्धनतम ग्रामीण लोगोंकी सहायता करते हैं, बल्कि नगरोंमें रहनेवाली जरूरतमन्द बहनोंकी जरूरतें भी पूरी करते हैं।

['अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-९-१९२८

१. तात्पर्य **मदर इंडिया**से है; देखिए खण्ड ३४, पृष्ठ ५८४-९४।

२. इसके बाद "बारडोलीका प्रथम आनुषंगिक परिणाम" शीर्षकसे एक टिप्पणी आती है। किन्तु उसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है, क्योंकि वह ९-९-१९२८ के गुजराती **नवजीवन**में पहले ही छप चुका था। देखिए पृष्ठ २६४-६५।

३. इसी विषयपर १६-९-१९२८ के **नवजीवन**में गुजरातीमें भी एक लेख छपा था।

३०८. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ सितम्बर, १९२८

प्रिय राजगोपालाचारी,

आपका पत्र मिला। केशूके खाने-पीने और पढ़ाई पर ६० रुपये खर्च करना तो मेरे लिए उचित नहीं होगा। मगर साथ ही मै यह स्वीकार करता हूँ कि श्री कॉक्सकी शर्ते बिलकुल वाजिब हैं। श्री बेजरम और श्री कॉक्स दोनोंसे मेरा धन्यवाद कहिए। अब मैं कोई और प्रबन्ध कर रहा हूँ। मैं तय नहीं कर पाया हूँ कि क्या करना है और अभी तो केशू भी यहाँ नही है। राजकोटसे लौटेगा तो तय कर सकूँगा कि क्या करना है।

मैसूर राज्यमें हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेकी यह क्या बात चल रही है? 'टाइम्स'में[1] तो बराबर सनसनीखेज सुर्खियाँ आती रहती हैं और उतनी ही सनसनीखेज रिपोर्टें भी। उनसे तो उस राज्यका नाम बड़ा बदनाम होता है। क्या यह सब सच है, या यह राज्यके खिलाफ कोई साजिश है? 'टाइम्स'में जो-कुछ छप रहा है, उसके बारेमें क्या आपको कोई जानकारी है?

महादेव २०के आसपास लौटेगा। आशा है, आप दोनों धीरे-धीरे प्रगति कर रहे हैं।

अंग्रेजी (एस० एन० १३५२२)की फोटो-नकलसे।

३०९. पत्र : निरंजन पटनायकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ सितम्बर, १९२८

प्रिय निरंजन बाबू,

यह रहा मेरा सन्देश :

"मुझे आशा है कि सर प्र० च० राय और सतीश बाबूके उड़ीसाके दौरेका सुफल अवश्य निकलेगा। हम बहुत सारा जमा पड़ा माल बेच सकेंगे। यद्यपि उड़ीसाके ग्रामीण बड़े गरीब है, लेकिन शहरोंमें रहनेवाले लोग उतने गरीब नही हैं कि आपके पास जो खादी है उसे वे खरीद न सकें। इसलिए उनमें देशके गरीबीके मारे लोगोंके लिए कुछ करनेकी आकांक्षा और उनके प्रति प्रेम-भर होना जरूरी है।"

हृदयसे आपका,

श्रीयुत निरंजन पटनायक
स्वराज्य आश्रम, बरहमपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३६८३)की फोटो-नकलसे।

१. टाइम्स ऑफ इंडिया।

३१०. पत्र : डॉ० सु० च० बनर्जीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ सितम्बर, १९२८

प्रिय सुरेश बाबू,

आपका पत्र मिला। मैंने आपके ७ अगस्तके जिस पत्रका उत्तर तारसे भेजा था, उसमें आपने यह लिखा था :

> **साथमें मैं अपने आश्रमकी १९२७ की रिपोर्ट भेज रहा हूँ। यदि आप 'यंग इंडिया' के किसी अंकमें उपयुक्त टिप्पणीके साथ इसे विज्ञापित कर सकें तो बड़ी कृपा होगी।**

मैंने [अपने तारमें] यही रिपोर्ट माँगी थी ताकि आपकी इच्छानुसार 'यंग इंडिया' में उसपर कुछ लिख सकूँ।[1] अभीतक रिपोर्ट नहीं मिल पाई है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३६८४) की फोटो-नकलसे।

३११. पत्र : के० एस० सुब्रह्मण्यम्‌को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ सितम्बर, १९२८

प्रिय सुब्रह्मण्यम्,

परिपत्र[2] पढ़ लिया है। उसमें मैंने जो-कुछ जोड़ा है, उसे आप संलग्न पत्रमें देख सकते हैं।

कतैयोंसे सम्बन्धित आँकड़ोंके बारेमें मेरा खयाल यह है कि साल-दर-साल जहाँतक हो सके, उनकी संख्या बिलकुल ठीक-ठीक मालूम करना आवश्यक है।

हृदयसे आपका,

संलग्न पत्र : १

श्रीयुत के० एस० सुब्रह्मण्यम्
अ० भा० च० सं०, अहमदाबाद

१. देखिए "अभय आश्रम", २७-९-१९२८।

२. अखिल भारतीय चरखा संघका।

[संलग्न]

२२-६-१९२८ के परिपत्रमें जोड़े गये शब्द

सं० २८ में 'की गई प्रगति' के बाद, 'कताई चरखे पर या तकली पर की जाती है और काते गये सूतका क्या किया जाता है, इसकी जानकारी भी'।

एक ३२ वी मद भी रखिए, जो इस प्रकार हो :

कतैयों, बुनकरों और धुनियोंकी सामान्य दशा बतायें जिसमें यह दिखायें कि वे प्रतिवर्ष कितने दिन और प्रतिदिन कितने घंटेके हिसाबसे ये काम करते है; उनका दूसरा धन्धा, यदि ऐसा कोई धन्धा उनके पास हो तो, क्या है और जब वे कात-बुन या धुन नहीं रहे होते उस धन्धेसे औसतन उन्हें कितनी आय होती है।

अंग्रेजी (एस० एन० १३६८६) की माइक्रोफिल्मसे।

३१२. पत्र : किर्बी पेजको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

रेवरेंड बी० द लिग्टके खुले पत्रके अनुवादके साथ आपका पत्र मिला। रेवरेंड लिग्टने खुद उस पत्रकी एक प्रति आपके पत्रसे दो सप्ताह पहले भेज दी थी। वे भी चाहते थे कि मै उसका उत्तर उनकी पत्रिकाके लिए भेजूँ। लेकिन मुझे लगा कि यदि मैं 'यंग इंडिया' में उसका एक छोटा-सा उत्तर देनेकी कोशिश करूँ तो उसे ज्यादा पाठक — मेरा मतलब मेरे लेखोंको पढ़नेके आदी पाठकोंसे है — पढ़ पायेंगे। सो मैंने 'यंग इंडिया' मे उसका उत्तर छाप दिया है। मेरे पास जितना समय था उसमें मै इससे ज्यादा कुछ कर भी नही सकता था। बेशक, आप अपने अखबारके लिए उसे उद्धृत कर सकते हैं। 'यग इंडिया' के जिस अंकमें उत्तर[1] छपा है, उसकी एक प्रति मैं आपको निशान लगाकर भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री किर्बी पेज
'वर्ल्ड टुमॉरो'
५२ वेंडरबिल्ट एवेन्यू
न्यूयॉर्क सिटी

अंग्रेजी (एस० एन० १४३६८) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "युद्धके प्रति मेरा दृष्टिकोण", १३-९-१९२८।

३१३. पत्र : बी० द लिग्टको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१४ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

मैंने 'यंग इंडिया' में आपके पत्रका एक छोटा-सा उत्तर देनेकी कोशिश की है। इस अखबारकी एक प्रति मैं निशान लगाकर भेज रहा हूँ। बेशक, आप चाहें तो 'इवॉल्यूशन' में इसका अनुवाद छाप दें। यदि इस उत्तरमें आपके उठाये किसी मुद्दे पर विचार न किया गया हो तो वैसा बतानेमें संकोच न कीजिएगा।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड बी० द लिग्ट
ऑनेक्स, जिनेवा

अंग्रेजी (एस० एन० १४३९५) की फोटो-नकलसे।

३१४. पत्र : मु० अ० अन्सारीको

१५ सितम्बर, १९२८

प्रिय डॉ० अन्सारी,

पत्रवाहक श्री मुहम्मद खाँ दक्षिण आफ्रिकामें मेरे साथ थे। इन दिनों ये रेलवे में काम करते हैं। ये कई वर्षोंसे बीमार रहते हैं। एक बार इन्होंने मुझसे हकीम साहबके नाम एक परिचय-पत्र माँगा था, जो मैंने इन्हें दे भी दिया था। ये बताते हैं कि हकीम साहबके इलाजसे कुछ दिनोंतक ये ठीक रहे। अब फिर इनकी बीमारी उभर आई है। और अब ये आपके नाम परिचय-पत्र देनेको कह रहे हैं। सो मैं यह पत्र इनके लिए खुशी-खुशी लिख रहा हूँ। मुझे मालूम है कि आप इन्हें जो भी सलाह देना सम्भव होगा जरूर देंगे।

हृदयसे आपका,

डॉ० मु० अ० अन्सारी
१ दरियागंज, दिल्ली

अंग्रेजी (एस० एन० १३५२४) की फोटो-नकलसे।

३१५. गूँगे-बहरे और अहमदाबाद

अहमदाबादके पास रहनेपर भी मैं उसके सम्बन्धमें शायद ही कभी कुछ लिखता हूँ। इसका कारण मेरी अनिच्छा नहीं, अशक्ति है। उसके जीवनमें भाग लेनेका उत्साह कई बार उत्पन्न हुआ और ठंडा पड़ गया। मित्रोंने "कचरापट्टी" (घूरे अर्थात् नगर-पालिका) में प्रवेश करके काम करनेका सुझाव दिया। मुझे उसमें काम करना रुचता भी है; किन्तु फिर उसमें प्रवेशकी मेरी हिम्मत ही नही हुई। अहमदाबादका कोई नागरिक यह न कहे कि अब मौतके किनारे पहुँचकर मैं ऐसी हिम्मत दिखाना चाह रहा हूँ। मैंने इसका उल्लेख यह बात स्वीकार करनेके उद्देश्यसे ही किया है कि मेरे सिरपर अहमदाबादका ऋण है।

अहमदाबादमें श्री प्राणशंकर देसाई गूँगों-बहरोंका विद्यालय चला रहे हैं। इस विद्यालयसे मेरा परिचय जब मैं सन् १९१५ में अहमदाबाद आया, तभीसे है। मैं तभीसे मानता आया हूँ कि ऐसी संस्थाएँ शहरके बाहर होनी चाहिए। अब यह विद्यालय शहरके बाहर चला जायेगा। इसकी आधारशिला सेठ मंगलदासकी इच्छासे गत सप्ताह मैंने ही रखी।[1] मेरे खयालसे यह कार्य बीस वर्ष विलम्बसे हुआ। विद्यालय बीस वर्ष पहले खोला गया था। किन्तु जगह पसन्द करना भाई प्राणशंकरके हाथकी बात न थी; वह तो अहमदाबादके देवताके हाथकी बात थी। आजकलकी भाषामें कहें तो यह कार्य अहमदाबादके वातावरणपर निर्भर था। धार्मिक वृत्तिका मनुष्य जैसे यह मानता है कि शरीरमें कोई आत्मा रहती है, वैसे ही वह यह भी मानता है कि नगररूपी शरीरकी एक आत्मा होती है और उसे वह नगर-देवताके रूपमें जानता है। अहमदाबादका देवता कंजूस है, इसीलिए उसने अपने शरीररूपी नगरमें रहनेवाले जीवोंको बहुत संकुचित स्थान और गन्दगीमें रख छोड़ा है और उसकी हवा खराब कर रखी है। इस प्रकार इन प्राणियोंको दुःखी करके स्वयं उसका कितना दम घुटता होगा, इसे तो स्वयं उसके अतिरिक्त दूसरा कौन जान सकता है? डॉ० हरिप्रसादने अपने आरोग्य-शास्त्र नामके निबन्धमें लिखा है कि भारतके नगरोंमें मृत्यु-संख्या अर्थात् गन्दगीमें प्रथम स्थान अहमदाबादका है।

यदि धनी और विद्वान् लोग चाहें तो अहमदाबादका रूप बदला जा सकता है। सबसे बड़ी जैन पेढ़ी अहमदाबादमें ही है। कहा जाता है कि संसारमें धार्मिक संस्थाके रूपमें प्रसिद्ध किसी भी अन्य पेढ़ीके पास उतना धन नहीं है जितना आनन्दजी कल्याणजीकी पेढ़ीके पास है। यदि अहमदाबाद गुजरातकी राजधानी है तो वह जैनोंका भी मुख्य नगर है। जैन तो जीव-दयाके इजारेदार हैं। किन्तु, सच्ची जीव-दयाको अभी उन्हें पहचानना है। बड़े-बड़े पशुओंको तंग बस्तियोंमें जैसे-तैसे पालना संकीर्ण और तुच्छतम जीव-दया है। जीव-दयाका विस्तार तो सागरके समान होता है और जैसे सागरमें से सतत् प्राणप्रद वायुकी सुगन्ध फैलती रहती है वैसे ही जीव-दयाकी

१. देखिए "भाषण : गूँगों और बहरोंकी शालामें," ७-९-१९२८।

प्राणवायुकी सुगन्ध भी सतत् फैलती रहती है, तथा मनुष्यों और सभी प्राणियोंको सुख-शान्ति और आरोग्य देती है। किन्तु आरोग्य-दानकी बात केवल जैनदर्शन तक ही सीमित नही है। वैष्णव भी उसका कुछ कम दावा नहीं करते, इस्लाममें भी उसका महत्त्व कम नही है। अहमदाबादमें इन सभी धर्मोके लोग रहते हैं और ये तीनों अहमदाबादके इस लांछनके समान भागीदार माने जायेंगे।

अहमदाबादके पास इतना धन है कि वह रमणीक कही जानेवाली गुजरातकी इस राजधानीको भारतके नगरोंमें सबसे अधिक रमणीक और तन-मनसे सर्वाधिक स्वस्थ बना सकता है।

प्रकृतिने अहमदाबादको ऐसी जलवायु दी है कि वह आरोग्यस्थल बन सकता है। किन्तु मनुष्य उन दोनोंको दूषित कर रहे हैं। अहमदाबादके अस्पताल, मन्दिर, विद्यालय और अनाथालय शहरके बाहर बनाये जाने चाहिए। उसके मुहल्लोंमें आबादीकी सघनता कम होनी चाहिए। नगरके बीचमें छोटे-छोटे मैदान होने चाहिए। आज तो जहाँ देखें वहीं दुर्गन्ध उठती दिखाई देती है। इसके बजाय चारों ओर सुगन्ध फैली हुई होनी चाहिए।

यह कार्य शहरके लोगोंकी शक्तिके बाहर नही है। इसमें करोड़ों रुपये खर्च करनेकी भी जरूरत नही है। फिर दुनिया-भरमें सभी शहरोंका यह निरपवाद अनुभव है कि इस कामपर जो धन खर्च होता है उसका प्रति-फल दूना मिलता है। अवश्य ही यह धन ज्ञानपूर्वक, उदारभाव और शुद्ध वृत्तिसे खर्च किया जाना चाहिए। जो बात मनुष्यके सम्बन्धमें लागू होती है वही नगरोंके सम्बन्धमें भी ठीक है। अपनी मुक्ति अपने ही हाथमें है। केवल नगरके लोगोंकी वृत्ति या लोकमत बदलनेकी जरूरत है। उसको बदलनेके लिए नेताओंको त्याग करना ही होगा। एक चेम्बरलेनने बर्मिघमका रूप बदल दिया। अहमदाबादको भी चेम्बरलेन-जैसे व्यक्तिकी जरूरत है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जैसे फ्रांसकी क्रान्तिमें नायकके बिना लोग लड़े थे, वैसे ही कोई चेम्बरलेन न निकले तो युवकसंघ-जैसी कोई संस्था त्याग करे और अहमदाबादको दुर्गन्धयुक्त वातावरणसे निकालकर सुगन्धमय बना दे?

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १६-९-१९२८

३१६. खादी प्रचार कोष

श्री गोपाललाल मथुरावाले ने खादी प्रचार-कोषमें एक सौ रुपये भेजे हैं और साथ ही यह लिखा है:

> **आप इस रकमको खादी-प्रचारके कार्य अथवा किसी अन्य कार्यमें लगा सकते हैं। इसे किसी भी अवस्थामें वापस भेजनेकी आवश्यकता नहीं है।**

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १६-९-१९२८

३१७. टिप्पणियाँ

सरोजिनीदेवी

सरोजिनीदेवी गत बुधवारको भारतके तटसे अमेरिकाके लिए रवाना हो गईं। बहुत-से लोग आशा करते हैं कि यूरोप, अमेरिका इत्यादि मुल्कोंमें अपनी स्थायी सभाएँ कायम करके या समय-समय पर अपने प्रतिनिधि भेजकर हमारे बारेमें जो झूठी मान्यताएँ प्रचलित हो गई हैं, उन्हें दूर करके वहाँके लोगोंको भारतकी सही स्थिति बतलाई जा सकती है। मुझे यह आशा हमेशा ही निकम्मी जान पड़ी है। ऐसा करके हम सार्वजनिक धनका और जिन लोगोंके समयका हिन्दुस्तानमें और अच्छा उपयोग हो सकता है, उनके समयका दुरुपयोग करेंगे। किन्तु पश्चिममें अगर किसीका जाना फलदायी हो सकता है तो वह सरोजिनीदेवी या कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका जाना ही हो सकता है। अपनी कविताओंके कारण सरोजिनीदेवीका नाम पश्चिममें प्रसिद्ध है; और उनमें कवित्व-शक्तिके साथ वक्तृत्व-शक्ति भी है। वे व्यवहार-पटु भी हैं। उन्हें यह भलीभाँति मालूम है कि कहाँ, क्या और कितना कहना चाहिए। किसीको दुःख पहुँचाये बिना खरी-खरी सुना देनेकी कला भी उन्हें सधी है। जहाँ-कहीं वे जाती हैं, उनकी बात लोगोंको सुननी ही पड़ती है। दक्षिण आफ्रिकामें अपनी शक्तिका पूरी तरह उपयोग करके उन्होंने वहाँके अंग्रेजोंका मन हर लिया था और भलीभाँति सफलता प्राप्त करके सर मुहम्मद हबीबुल्ला[1] प्रतिनिधि-मण्डलका रास्ता साफ कर दिया था। वहाँका काम कठिन था। किन्तु उन्होंने अपनी सीमाको पहचानकर, कानूनके दाँव-पेचमें न पड़ते हुए, खास मुद्देपर डटे रहकर अपना काम सम्पन्न किया था और हिन्दुस्तानका नाम चमकाया था। वे ऐसा ही काम अमेरिका आदि देशोंमें भी करेंगी। अमेरिकामें उनका पहुँचना ही मिस मेयोके असत्यका उत्तर सिद्ध होगा। उनमें अपने अन्य गुणोंके अनुरूप ही साहस भी है। परदेश जाते हुए उन्हें न तो किसी मददगारकी जरूरत है और न किसी सचिवकी। वे कहीं भी अकेले निर्भयतासे विचर सकती हैं। उनकी यह निर्भयता स्त्रियोंके लिए तो अनुकरणीय है ही, किन्तु यह पुरुषोंको भी लजानेवाली है। हम अवश्य यह आशा रख सकते हैं कि उनकी पश्चिमकी यात्रासे अच्छा फल निकलेगा।

काकाकी बेचैनी

काकासाहबके हस्ताक्षरसे "यमुनारानी" शीर्षक जो गद्य-काव्य इस अंकमें प्रकाशित किया जा रहा है उसे भेजते हुए काकासाहब लिखते हैं।[2]

काकासाहब गुजरातको सच्ची शिक्षा देनेके लिए बेचैन हो उठे हैं। यदि ऐसा न होता तो गंगामैयाकी स्तुति करनेके बाद दो वर्षतक यमुनारानीकी खुशामद

१. देखिए खण्ड २४।

२. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

मुलतवी करके एकाएक इसी अंकमें इस लेखको छापनेका आग्रह क्यों करते? फिर, मेरे लिए तो उन्होंने 'न' कहनेका अवकाश भी नहीं रखा। क्योंकि संस्कृत श्लोकोंका गुजराती भाषान्तर सीधे प्रेसको भेजनेका निश्चय सूचित करके उन्होंने मुझे विवश कर दिया है। इसका अर्थ यह हुआ कि काकासाहबने मान लिया है कि गुजरातकी शिक्षाके विषयमें मैं भी उन्हींके समान व्याकुल हूँ। उन्हें ऐसा करनेका पूरा अधिकार था। इस दिशामें श्री नगीनदास और श्री पूंजाभाईके बलिदानने हम दोनोंको विकल कर दिया है। मेरे लिए विद्यापीठ साबरमतीके पश्चिमी किनारे पर खड़ी इमारत या उसमें अक्षर-ज्ञान और उद्योग-ज्ञान पानेवाले मुट्ठी-भर छात्र और छात्राएँ ही नही है। विद्यापीठका काम गाँवोंके वृद्ध स्त्री-पुरुषों, बालक-बालिकाओं में भी सच्ची शिक्षाका प्रचार करना है। सच्ची शिक्षाका अर्थ है स्वत्वका ज्ञान प्राप्त करना और तदनुरूप आचरण करना। काकासाहबकी यही अभिलाषा है कि जिन्हें अक्षर-ज्ञान नहीं है उन्हें भी ऐसी शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाये। इसीलिए यह लेख 'नवजीवन' के इस अंकमें प्रकाशित किया जा रहा है, यद्यपि यह बहुत पहले ही लिखा जा चुका था। भाषाप्रेमी, देशप्रेमी इसे पढ़ें और समझें, दूसरोंको पढ़वायें और समझायें। इसे प्रकाशित करनेका यही उद्देश्य है। सभी पाठकोंके लिए इस लेखको समझ पाना कठिन है। लेखका शीर्षक भी चौका देनेवाला है। गुजरातमें अधिकतर लोग यमुना नदीको कालिन्दीके नामसे जानते हैं; जमनाको यमुनाके नामसे जाननेवाले लोग भी गाँवोंमें कम ही मिलेंगे। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा और लोगोंमें देशप्रेम बढ़ता जायेगा, वे गंगा-यमुनाका दर्शन करनेके लिए उत्सुक होंगे। सब तो ऐसा कर नही सकते। उन्हें ऐसे लेखोंसे ही सन्तोष होगा। उनके लिए तो घर बैठे-बैठे गंगा-यमुना आ जायेगी, और उन्हें वहाँ जानेके बराबर आनन्द मिलेगा। काकासाहबकी गहरी भावनाको समझकर यदि पाठक पवित्रताका स्पर्श कर पायें तो वे गंगा-स्नानके पुण्यके भागी होंगे, जब कि गंगा-तट पर रहनेवाला व्यक्ति यदि पाखण्डी हो तो वह रोज उसके पवित्र जलको दूषित करनेका प्रयत्न करता हुआ पुण्यके बजाय पापकी गठरी ही सिरपर लादेगा।

उपर्युक्त दृष्टिसे मेरी सलाह है कि पाठक एक नक्शा पासमें रखकर इस लेखको पढ़ें। इस तरहके लेख पढ़ना आसान हो जाये, इसके लिए विद्यापीठ एक ऐसा कोष[1] तैयार कर रहा है जैसा गुजराती भाषामें पहले कभी नही था। जबतक यह कोष पाठकों तक नहीं पहुँचता तबतक वे जैसे-तैसे शब्दोंका अर्थ सोचकर अपना ही शब्द-कोष बना लें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १६-९-१९२८

१. **सार्थ जोडणी कोश**।

३१८. अन्धश्रद्धा

श्री हरजीवन कोटक कश्मीरकी राजधानी श्रीनगरमें चरखा संघकी ओरसे खादीका कार्य कर रहे हैं, किन्तु खादी-सेवकका हृदय जहाँ भी किसीको दुःखी देखता है, अवश्य ही पसीज उठता है। इसलिए जब अमरनाथके यात्री अति वर्षाके कारण संकट-ग्रस्त हुए तब उन्होंने मुझे तारसे खबर भेजी। तार पाकर मैंने उनसे पूरा विवरण माँगा था। उसका मुझे यह उत्तर मिला है:[1]

कहाँ अमरनाथ और कहाँ मोटर लारी? एक समय ऐसा था जब असंख्य लोग कन्याकुमारीसे कश्मीरतक पैदल यात्रा करते थे और अनेक कष्ट सहकर अमर-नाथ पर चढ़ते थे। प्राणोंका भय उस समय भी था। उस समय पुण्यकी खोजमें कितनोंने अपने प्यारे प्राण गँवाये होंगे, इसके आँकड़े आज हमारे पास नहीं ह और न तब किसीके पास थे। वही सच्ची तीर्थ-यात्रा थी।

आज तो ठेठ अमरनाथकी तलहटीतक, लारियाँ जैसे माल लेकर जाती हैं वैसे ही मोटरें यात्रियोंको लेकर जाती हैं और इस प्रकार यात्री सुखपूर्वक यात्रा करनेमें पुण्य समझते हैं। इसके बादका जो मार्ग पैदल अथवा घोड़ेसे तय करना रह जाता है, उसे यात्री किसी तरह पूरा कर लेते हैं। यदि कोई उन्हें अन्ततक लारियोंमें ले जाये अथवा हवाई जहाजसे अमरनाथके शिखरपर उतार दे तो वे इसी तरह जाना चाहेंगे।

इस प्रकार मनुष्य सुखकी खोज करता हुआ धर्म-भावनाके कारण कष्ट-सहन करता है और मृत्यु आये तो उसका भी आलिंगन करता है। यह अन्धश्रद्धा है। अन्धश्रद्धा सुखकी खोज करती हुई दुःख सहन करनेके लिए तैयार रहती है। सात्विक श्रद्धा दुःख सहन करनेमें सुख मानती है और जानती है कि हवाई जहाजपर बैठकर अमर-नाथ जानेसे कुतूहल तो शान्त होगा, किन्तु वह सच्ची तीर्थ-यात्रा नही है। सात्विक श्रद्धा तो नंगे पैर, ठिठुरते हुए ही यात्रा कराती है, काँटोंकी, जाड़े-गरमीकी और बाघ-भेड़ियोंकी तकलीफको बरदाश्त करती है और इसके बाद यदि यात्री अमरनाथ न पहुँचे तो भी उसे वहाँ पहुँचनेका फल देती है। ऐसे यात्रीके सामने विमान, मोटर, रेल और पैदल इन चारोंमें से यदि एकको चुननेकी बात हो तो वह पैदल चलना ही पसन्द करके सुखपूर्वक यात्रा करता है। जब लोगोंमें ऐसी दृढ़ता आ जायेगी तब उनके धर्मका स्वरूप ही भिन्न होगा, तब वे अमरनाथकी यात्रामें और स्वराज्यकी यात्रामें कोई भेद ही न मानेंगे। वे अमरनाथकी यात्रा करते हुए कष्ट सहने और स्वराज्यके लिए फाँसीपर चढ़नेमें पुण्य मानेंगे। जो अपना कदम पीछे हटायेगा, कहना चाहिए कि वह धर्मको नहीं जानता।

१. अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें बताया गया था कि लगभग ५,००० स्त्री-पुरुष और बच्चे अमरनाथकी यात्राके दौरान रास्तेमें मूसलाधार वर्षामें घिर गये। एक सप्ताहतक निरन्तर वर्षा होते रहनेके कारण सभी संचार-साधन पूरी तरह ठप्प हो गये थे।

लोक-सेवकके सम्मुख काम करनेके लिए लोक-श्रद्धाका असीम क्षेत्र मौजूद है। वल्लभभाई इस बातको समझ गये हैं। उन्होंने लोगोंसे कहा कि सरकारसे अहिंसात्मक युद्ध करना धर्म है। लोग इसे धर्म जानकर उनके पीछे चले और उन्होंने सत्याग्रहमें सचमुच धर्मके दर्शन किये। वे इससे तीर्थ-यात्राका शुद्ध अर्थ समझ गये। सच्ची यात्रा हृदयके भावपर निर्भर है। सच्ची यात्रा लोक-कल्याणकी भावनासे कष्टोंका स्वागत करने और उन्हें सहन करनेमें है।

पाठक देखेंगे कि मैंने अमरनाथके यात्रियोके कष्ट-निवारणके निमित्त कोई सहायता नहीं माँगी। मैंने उनके लिए दुःख भी प्रकट नहीं किया। वे यात्री सहायता ले ही नही सकते। उन्हें जो थोड़ी-सी सहायता चाहिए वह उनको वही मिल जायेगी। जो मर गये सो मर गये। जो बचे वे नीचे पहुँचकर कष्ट-मुक्त हो गये। ऊँचे-ऊँचे पर्वतशिखरों पर चढ़नेवाले अनेक लोगोंकी दृष्टिसे अमरनाथका यह अनुभव स्पष्ट ही एक सामान्य घटना है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १६-९-१९२८

३१९. त्योहार कैसे मनाने चाहिए?

बम्बईसे पर्युषणके[1] निमित्त दो भाइयोंने ७५ रु० की हुंडी हम जिस काममें चाहें उसमें उपयोग करनेके लिए भेजी है। इसका उपयोग अन्त्यज भाई-बहनोके लिए होगा। सामान्य तौरपर हम त्योहार मनाते समय पैसा अपने ऊपर मौज-शौक, खाने-पीने और खिलाने-पिलानेमें बरबाद करते है। उसके बदले इन भाइयोंने जो नीति ग्रहण की है और दूसरे जिन भाइयोंके दृष्टान्त 'नवजीवन' में दिये जाते हैं, उनकी नीति ग्रहण करने योग्य है। मरण, विवाह, जन्म इत्यादिके प्रसंगमें जो धूमधाम होती है और दावतें दी जाती हैं, अगर उनमें लगनेवाला पूरा-पूरा या अधिकांश द्रव्य बचाया जाये और बचे हुएका आधा सार्वजनिक कामोंमें दिया जाये तो धर्म और अर्थ, स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही सधें। बहुतोंको तो इसमें केवल लोकलाज ही बाधक पड़ती है। जो ऐसी लोकलाजके भूतसे नही डरते और जिन्होंने यह वस्तु समझ ली है, वे ऊपरके दृष्टान्तका अनुकरण करें, यह बात वांछनीय है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १६-९-१९२८

१. एक जैन पर्व।

३२०. तार : वल्लभभाई पटेलको

आश्रम, साबरमती
१७ सितम्बर, १९२८

वल्लभभाई पटेल
होटल सेसिल, शिमला

लायलपुरके लोगोंका कहना है कि यदि मैं सहमति दे दूँ तो तुम अध्यक्षता करनेके[1] लिए तैयार हो। अगर तुम्हारे पास समय हो और तुम्हारी इच्छा हो तो मुझे कोई खास आपत्ति नहीं है।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १४८६३)की फोटो-नकलसे।

३२१. तार : पंजाब राजनीतिक सम्मेलनके मन्त्रीको

आश्रम, साबरमती
१८ सितम्बर, १९२८

मन्त्री
पंजाब राजनीतिक सम्मेलन
लायलपुर

आपका तार मिला। वल्लभभाईको तार[2] किया था। उनका कहना है कि न तो उनकी अध्यक्षता करनेकी इच्छा है और न उनके पास उसके लिए समय है। इन परिस्थितियोंमें लाचार हूँ।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४८६४) की फोटो-नकलसे।

१. पंजाब राजनीतिक सम्मेलनकी अध्यक्षता करनेके लिए।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

३२२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१८ सितम्बर, १९२८

प्रिय सतीश बाबू,

आपके पत्र मिले। इससे अधिक अभी कुछ नहीं कह रहा हूँ, क्योंकि २५ तारीखको आपसे मिलनेकी आशा रखता हूँ।

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० १५९६) की फोटो-नकलसे।

३२३. जेलोंमें व्यवहार

१६ अगस्तके 'यंग इंडिया' में मैंने साबरमती सदर जेलमें कैदियोंको दिये जानेवाले भोजनके विषयमें एक लेख[1] लिखा था। अब सूचना निदेशकने अपनी १२ सितम्बर, १९२८ की विज्ञप्तिमें उसका उत्तर देनेकी कोशिश की है। वे बड़े विश्वास-पूर्वक कहते हैं कि ये बातें गलत हैं। विज्ञप्तिसे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने वस्तु-स्थितिकी खुद जाँच नहीं की, बल्कि उनका यह मत स्वयं उन्ही लोगों द्वारा दी गई सूचनाओं और जानकारीपर आधारित है जिनपर उपेक्षाका आरोप लगाया गया है। विज्ञप्तिमें कहा गया है कि स्वास्थ्य-सम्बन्धी आँकड़ोंको देखनेसे पता चलता है कि भारतमें जेलोंकी स्थिति बाहरी आबादीकी स्थितिसे बेहतर है। इस कथनका खण्डन करना अनावश्यक है। यह तो एक निर्विवाद तथ्य है, मगर इसका सीधा-सादा कारण यह है कि जेलोंमें सफाई-विषयक नियमोंका पालन बाहरकी बनिस्बत ज्यादा कारगर ढंगसे कराया जाता है। लेकिन सफाईकी बेहतर स्थितिसे यह साबित नहीं होता कि कैदियोंके साथ अधिक मानवीयतापूर्ण व्यवहार भी किया जाता है या उनका ज्यादा खयाल रखा जाता है। मेरा कहना तो यह है कि समूची जेल-व्यवस्थामें मानवीय भावनाका अभाव है। और यहाँ इस बातका उल्लेख किया जाना तो मुझे बिलकुल अप्रासंगिक लगता है कि जेलोंमें रहनेवाले लोगोंका स्वास्थ्य बाहरकी अपेक्षा सामान्यतः ज्यादा अच्छा है। इसके अतिरिक्त यदि हम उस वर्गके कैदियोंको लें जिस वर्गके सत्याग्रही लोग हैं तो यह कथन भी सही सिद्ध नहीं किया जा सकता। हाँ, इसपर निदेशक महोदय अगर चाहते तो यह कह सकते थे कि सत्याग्रही लोग यह तो जानते ही हैं कि जेलकी चारदीवारीमें उन्हें मानवीयता नहीं मिलेगी। उक्त लेखमें मैंने जो-कुछ कहा, उसका एक औचित्य था, क्योंकि अक्सर यह

१. देखिए "हमारी जेलें", १६-८-१९२८।

दावा किया जाता है कि भारतकी जेलोंमें कैदियोंके साथ मानवीयतापूर्ण व्यवहार किया जाता है और इन जेलोंमें कैदियोंका यथासम्भव अधिकसे-अधिक खयाल रखा जाता है।

निदेशककी विज्ञप्तिमें जो तथ्य-सम्बन्धी बातें कही गई हैं, उनके उत्तरमें तो जेलसे छूटे कैदियोंके बयानोंके अंश ही प्रस्तुत करना चाहूँगा। इनमें से प्रत्येकको मैं समस्त जेल-अधिकारियोंकी अपेक्षा अधिक विश्वसनीय मानता हूँ। इन सत्याग्रहियोंने जेलसे छुटकारा पानेके बाद अपना-अपना बयान मेरे अनुरोधपर ही दिया था। श्रीयुत चिनायके बारेमें मैं जानता था कि जेल जानेसे पहले उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, मगर जेलसे लौटनेपर मैंने अपनी आँखों देखा कि उनका स्वास्थ्य तो बहुत गिर गया है। फिर मैंने विद्यापीठके दिनकर नामक एक छात्रको देखा जिसका ज्वर टूटनेका नाम ही नहीं लेता था और जेलसे निकलनेके बाद उसे जो अच्छी सेवा-शुश्रूषा और ठीक ढंगकी चिकित्साका सौभाग्य प्राप्त हुआ वह यदि प्राप्त न हुआ होता तो उसका ज्वर उसके लिए घातक साबित हो सकता था। यह सब देखकर मैंने उन सबसे जेलमें किये जानेवाले व्यवहारके विषयमें बतानेका अनुरोध किया। उत्तरमें उन्होंने ये बयान दिये।

सबसे पहले मैं वालोदके एक जाने-माने व्यक्ति श्रीयुत सन्मुखलालके बयानका अंश दे रहा हूँ। खराब भोजनके कारण उन्हें दो बार पेचिश हो गई। उन्होंने जो-कुछ बताया, उसका एक अंश इस प्रकार है:

> सब्जियाँ तो इतनी खराब दी जाती हैं कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। . . . नोनियासे इतनी दुर्गन्ध आती थी कि आखिरकार मुझे उसको छोड़ ही देना पड़ा। जब वह खत्म हो गई तो उसके बदले मूली और सूखी बन्दगोभी आदि दी जाने लगीं। नतीजा यह हुआ कि कुछ ही दिनोंमें बहुत-से कैदियोंके पेट खराब हो गये। लेकिन कोई भी इसके सम्बन्धमें जेल-अधीक्षकसे शिकायत करनेका साहस नहीं जुटा पाया। कुछ कैदियोंसे मैंने यह भी सुना कि एक कैदीको ऐसी शिकायत करनेपर कई महीने तक डंडा-बेड़ीमें रखा गया था। . . .
>
> कुछ दिन बाद स्थितिमें किंचित् सुधार आया। . . . अब लौकी और प्याज, और बादमें तुरई और ग्वार भी दिये जाने लगे। ग्वार और तुरई ज्यादा पके होनेके कारण बहुत कड़े और रेशेदार होते थे, लेकिन फिर भी कैदी लोग उन्हें बड़े चावसे स्वादिष्ट व्यंजनोंकी तरह खाते थे।
>
> रोटी ज्वारकी होती थी — अध-पकी और कंकड़ियोंसे इतनी भरी हुई कि उसे चबाना मुश्किल था, सो सीधे ही निगल जाना पड़ता था। कंकड़ियाँ खासकर तब होती थीं जब ताजा खुटी हुई चक्कीमें आटा पीसा जाता था। इस भोजनका नतीजा यह हुआ कि मुझे और हममें से लगभग आधे लोगोंको पेशिच हो गई।

श्रीयुत सी० एल० चिनायने भी अपने बयानमें यही किस्सा दुहराया है:

जेलका खाना मुझे अनुकूल नहीं पड़ता था और मेरे पेटमें दर्द रहने लगा। अन्तमें मैं संग्रहणीका शिकार हो गया। कभी-कभी तो दिनमें ३०-३५ दस्त आ जाते थे। जब कभी मैं सब्जियाँ खाता था, बराबर संग्रहणी हो जाती थी। फलतः मेरा वजन बहुत तेजीसे घटने लगा। जब मैंने डॉक्टरको अपना हाल बताया तो उसने कहा कि मुझे सब्जियाँ छोड़ देनी चाहिए, तभी मैं अच्छा रह सकूँगा। मैंने वैसा ही किया और तबसे लेकर अन्ततक ·सिर्फ रोटी और पानी पर रहा। मैंने अधीक्षकसे इसकी शिकायत इसलिए नहीं की कि वह भोजनके सम्बन्धमें कैदियोंकी शिकायतों पर कोई ध्यान ही नहीं देता था। बल्कि मैंने तो यहाँतक सुना कि कई बार ऐसी शिकायतें करनेवाले कैदियोंको सजा भी दी गई है। इसलिए कोई भी इस मामलेको अधिकारियोंके सामने रखनेका साहस नहीं करता था।

यहाँतक कि फौलादी शरीरवाले श्रीयुत रविशंकर व्यासको भी अपने बयानमें यह कहना पड़ा:

सब्जी सूखी, कड़ी और चीमड़ पत्तियोंको लौकीमें मिलाकर तैयार की जाती थी। उसे खानेका मतलब पेट-दर्दको बुलावा देना था।

श्रीयुत चिनायको शारीरिक श्रमके तौरपर ऐसा कड़ा काम दिया गया जो उनकी शक्तिसे बाहर था। इससे उन्हें अक्सर चककर आ जाता था, लेकिन बीस दिनोंतक उन्हें जरूरी दवा भी नहीं दी गई। कारावासके दौरान उनका वजन २० पौंड घट गया। इसी तरह गोविन्द गोसाई, जिनका स्वास्थ्य सजा पानेसे पहलेसे ही खराब था, जेलसे निकलने तक इतने कमजोर हो गये थे कि वे अपने पैरोंपर ठीकसे खड़े भी नहीं रह पाते थे।

मेरे पास जो बयान हैं, उनके बहुत संक्षिप्त अंश ही मैंने यहाँ दिये हैं। यदि अधिकारीगण इस विषयमें सचमुच कुछ करना चाहते हों तो मैं उन्हें सारे बयान तथा अन्य जिन सबूतोंकी जरूरत हो वह सब भेजनेको तैयार हूँ। मेरा निश्चित विश्वास है कि सूचना-निदेशकने जिस तरहसे आरोपोंका खण्डन किया है उस तरहके खण्डनका जनतापर कोई असर नही पड़ता, और यह तो है ही कि उससे न कैदियोंकी अवस्थामें कोई सुधार होनेवाला है, और न जेलोंमें मानवीयताकी जो कमी है वही पूरी होनेवाली है। मानवीयताकी पहली शर्त यह है कि मनुष्यमें कुछ विनय हो, अपने आचरणके सही होनेके बारेमें मनमें कही थोड़ा संकोच-शंका हो और दूसरोंकी बात सुनने-समझनेकी किंचित् तत्परता हो। मगर निदेशक महोदयने आरोपोंका जो खण्डन किया है, उसमें इन तीनोंका अभाव दीखता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-९-१९२

३२४. मैंने विस्मृत चरखेको कैसे खोजा

एक भाई अखिल भारतीय चरखा संघकी संस्थाओंका अध्ययन कर रहे हैं। कराइकुडि (तमिलनाड) स्थित एक केन्द्रका अध्ययन करनेके बाद वे लिखते हैं:

> **यह (उत्तुकुलि) हाथ-कताई और बुनाईका बहुत बड़ा केन्द्र है। यहाँका काम मैंने आधा-सा सीख लिया है। लगभग एक हजार कतैये हैं। मैं गाँवोंमें खुद उनके झोंपड़ोंमें जा-जाकर मिला हूँ। जैसे-जैसे दिन बीतते हैं, मैं अधिकाधिक विस्मयके साथ सोचता हूँ कि आपने चरखेको कैसे खोजा। मेरा मन आपसे एक अनुरोध करनेको होता है। क्या आप 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें यह बतानेकी कृपा नहीं करेंगे कि ठीक-ठीक कब और कैसे आपने विस्मृत चरखेको फिरसे खोजा? देखनेमें इतना छोटा होते हुए भी वास्तवमें यह कितना विशाल है! यह मुझे वर्षाकी बूँदोंकी याद दिलाता है -- हर बूँद अपने-आपमें कितनी छोटी होती है, मगर एक साथ मिलकर यही बूँदें विशाल सागर बन जाती हैं। इससे ज्यादा गलत भला क्या हो सकता है कि कोई कहे, आपने भारतसे चरखा चलानेको कहा, भारतने आपकी प्रेरणापर चरखा चलाना शुरू किया। सचाई यह है कि करोड़ों ग्रामवासियोंने आपको इसकी ओर झुकने, अपने काते सूतको बेचनेवाला एजेंट बननेको बाध्य किया है। मैं बड़ी-बूढ़ी औरतों और लड़कियोंके हजूमको रोज अपना-अपना सूत लेकर आते देखता हूँ। वे अपने बहुमूल्य सूतको कलेजेसे लगाये, मुस्कराती हुई आती हैं। खादी हमारे राष्ट्रीय जीवनके ठीक उन्हीं मर्मस्थलोंका स्पर्श करके उनमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठा कर रही है जिन मर्मस्थलोंको इस अत्यन्त निष्ठुरतापूर्ण शोषणके स्पर्शने प्रायः निष्प्राण कर दिया है। आपने कभी कहा था कि दुनिया एक-न-एक दिन यह स्वीकार करेगी कि खादी-कार्य मेरा सबसे बड़ा, सबसे महान् कार्य था। इस कथनमें छिपे सत्यकी जितनी प्रतीति मुझे आज हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी।**

इन भाईका यह कथन बिलकुल सही है कि वास्तवमें देशके करोड़ों मेहनतकश और क्षुधापीड़ित जनोंने ही मुझे खादीकी ओर झुकनेको बाध्य किया। इस विस्मृत चरखेका खयाल पहली बार मेरे मनमें १९०९में[1] लन्दनमें आया। मैं दक्षिण आफ्रिकासे एक शिष्टमण्डल लेकर वहाँ गया हुआ था। तभी वहाँ मैं बहुत ही लगनवाले कई भारतीय विद्यार्थियों और अन्य भारतीय भाइयोंके सम्पर्कमें आया। हमारे बीच भारतकी दशाके बारेमें कई बार लम्बी चर्चाएँ हुई। और इसी दौरान मेरे मनमें यह बात

१. साधन-सूत्रमें "१९०८" है।

एकाएक कौंध-सी गई कि हम चरखेके बिना स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते। तत्क्षण मैंने यह समझ लिया कि सभीको कातना है। लेकिन तब मुझे चरखे और करघेका भेद मालूम नहीं था। 'हिन्द स्वराज्य' में[1] मैंने 'चरखा' के अर्थमें 'करघा' शब्दका प्रयोग किया है। उस पुस्तिकाके अन्तिम परिच्छेदमें मैंने इस प्रकार कहा है:

> माँगनेसे कुछ नहीं मिलता। लेनेसे ही कुछ लिया जा सकेगा। लेनेके लिए शक्ति चाहिए। वह बल तो उसीमें होगा:
>
> २. जो यदि वकील हो तो अपनी वकालत छोड़ दे और अपने घरमें चरखा चलाकर कपड़ा बुने।
>
> ८. जो डॉक्टर होनेपर भी खुद चरखा चलाये . . .।
>
> १०. जो धनवान होकर अपना पैसा चरखे स्थापित करनेमें खर्च करे और स्वयं केवल स्वदेशी माल पहनकर और बरतकर दूसरोंको प्रोत्साहित करे।

ये शब्द आज भी उतने ही सार्थक हैं जितने कि १९०९ में जब यह पुस्तिका लिखी गई उस समय थे। आज वकील, डॉक्टर और दूसरे लोग यज्ञके भावसे न केवल खुद चरखा चला रहे है, बल्कि इस आन्दोलनका संगठन भी कर रहे हैं। मगर अफसोस! करोड़ों लोगोंको असहायावस्था-जनित आलस्यसे जगानेके लिए आज भी उनकी संख्या बहुत कम है। अधिकांश लोग तो अब भी किनारे खड़े होकर तमाशा देख रहे हैं। ऐसा लगता है मानो उनकी आँखोंके सामने आज जो अनर्थ हो रहा है वे उससे किसी बड़े अनर्थकी प्रतीक्षा कर रहे हों। ऐसा लगता है मानो वे उस दिनकी राह देख रहे हों जब करोड़ों लोगोंका सामूहिक विनाश उन्हें एक धक्का देकर क्रियाशील होनेको प्रेरित करेगा। खैर, जो भी हो, इतना तो निश्चित है कि सच्चा और जीवन्त स्वराज्य प्राप्त हुआ तभी माना जायेगा जब उसकी दीप्ति का अनुभव करोड़ों क्षुधा-पीड़ित मानव करेंगे। और जबतक उनके और अपनी सुख-सुविधाके लिए वस्तुतः उनका खून चूसनेवाले और दुनियाके सामने अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओंको प्रस्तुत कर सकनेकी क्षमता रखनेवाले हम लोगोंके बीच एक जीवन्त सम्बन्ध कायम नही हो पायेगा तबतक वे स्वराज्यकी दीप्तिका अनुभव नहीं कर सकेंगे।

मगर अब फिर चरखेकी बात लें। यद्यपि मनकी आँखोंसे इसे मैंने १९०९में ही ढूँढ़ लिया था, किन्तु इसका काम तीन वर्षोंके कठिन और धैर्यपूर्ण प्रयत्नोंके बाद १९१८में शुरू हो पाया। प्रथम खादी-व्रत (जिसे बम्बईकी फैशनपरस्त बहनोंकी सुविधाके लिए काफी नरम बना दिया गया था) १९१९ में[2] लिया गया। चरखेको कांग्रेसके कार्यक्रममें १९२१ में[3] स्थान मिला। उसके बादसे तो इस आन्दोलनका इतिहास एक खुली पुस्तक है, जो आज भी दो हजारसे कुछ अधिक खादी-कार्यकर्त्ताओं

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६-६५।
२. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ ३१४-१६।
३. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ४०२।

और लगभग उन सत्तर हजार कतैयोंके जीवनमें लिखा जा रहा है, जिनकी जिन्दगीमें चरखेने आशाकी ज्योति जगा दी है। यदि हम शहरी सभ्यताके विनाशकारी मोह-पाशमें न फँसे हुए होते तो हमारा हृदय यह अनुभव करता कि मिल-जुलकर जागरूकता और सच्ची लगनसे ठोस कार्यके रूपमें किये गये थोड़ेसे प्रयत्नसे ही चरखेको भारतके घर-घरमें पहुँचाया जा सकता है। एक चरखेसे जितनी कमाई होती है उसे, मिसालके तौरपर, दस करोड़से गुणा कर दीजिए तो जो परिणाम आयेगा वह चरखेके कट्टरसे-कट्टर विरोधीको भी उसकी उपयोगिताका कायल कर देगा। मगर हो सकता है, वह किसी तरह कायल होनेको तैयार ही न हो और कहे, "आपका कहना गणितके सवालकी दृष्टिसे तो ठीक है, लेकिन व्यावहारिकताकी दृष्टिसे बिलकुल गलत।" खैर, समझाया तो उसीको जा सकता है जो समझनेको तैयार हो। मगर सच्चे कतैयेमें असीम धैर्य होना चाहिए। वह कभी हिम्मत नहीं हारता। इसलिए इन पत्रलेखक भाई द्वारा पूछे सवालका जवाब शायद यह होना चाहिए: "चरखेकी खोज आज भी जारी है।" मैं जानता हूँ कि एक-न-एक दिन इसकी खोज पूरी होगी, क्योंकि देशमें कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इस खोजको सम्पन्न करानेके लिए अपने प्राणतक देनेको तैयार हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २०-९-१९२८

३२५. सच्ची और झूठी गो-रक्षा

जो लोग भारतमें गो-पूजाके मर्मको जानना चाहते हैं, उन सबको मैं पुरअसर ढंगसे लिखे इस लेखको[1] पढ़नेकी सलाह देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २०-९-१९२८

३२६. टिप्पणियाँ

बृहस्पतिवार [१७ सितम्बर, १९२८]

गोधरामें हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा

बुधवारको गोधरासे मुझे एक पोस्टकार्ड मिला, जिसमें यह बताया गया है कि पर्युषण त्योहारके अवसरपर हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच झगड़ा हो गया और उसमें श्री वामनराव मुकादम, श्री पुरुषोत्तमदास शाह तथा कुछ अन्य हिन्दुओंको गम्भीर चोटें आईं। आज (गुरुवारको) यह लिखते समय तार मिला है कि श्री पुरुषोत्तमदासका स्वर्गवास हो गया। मैं अपनी इस असमर्थतासे परिचित हूँ कि मृतात्माके कुटुम्बियोंके प्रति समवेदना प्रकट करनेके अलावा मैं कुछ नहीं कर सकता

१. प्यारेलाल नैयर द्वारा लिखित इस लेखके अंशोंके लिए देखिए परिशिष्ट ४।

और अपनी इस असमर्थताके भानसे मुझे दुःख होता है। इसीलिए मैं अपने इस खास विषयके सम्बन्धमें कहीं कुछ लिखता नही। इस सम्बन्धमें मुझे कुछ कहनेका अधिकार है, यह भी मैं नही मानता। मैंने देख लिया है कि मेरे पास जो औषध है वह दोनों पक्षोंके लिए बेकार है। मेरे पास अहिंसा या प्रेमके अलावा और कोई औषध नहीं है। इस समय इस औषधकी उपयोगिता किसीको समझा सकूँ, ऐसा सम्भव नहीं है। इसलिए मै यह मानता और जानता हूँ कि मेरे लिए मौन ही उचित है। मेरा मौन ही एकताकी वृद्धि करनेमें मेरा योग-दान है। लेकिन इस मौनका मतलब उदासीनता नही है। मै प्रार्थनामें विश्वास करनेवाला आदमी हूँ और इसलिए ईश्वरसे निरन्तर यह याचना करता रहता हूँ कि वह दोनों जातियोंको सुबुद्धि दे और दोनोंमें हार्दिक एकता फैलाये। अगर यह प्रार्थना सच्ची होगी तो इस वैरको मिटानेका कोई उपाय मुझे देर-सवेर मिल ही जायेगा।

खादीकी कीमतोंमें रियायत

अहमदाबादके रीची रोड स्थित शुद्ध खादी भण्डारके व्यवस्थापकने लिखा है कि १० अक्टूबरसे २० अक्टूबरतक नीचे लिखे अनुसार घटी हुई दरोंपर खादी बेची जायेगी :[१]

इनके अलावा कुछ और किस्मोंकी खादी — जैसे शाल, छींट, तौलिया, रुमाल, धोती, टोपी, महीन और मोटी कम-ज्यादा चौड़ाईकी खादी तथा उसकी अनेक किस्में तथा ऊनी माल आदि — भी सवा छः से साढ़े बारह प्रतिशत तककी रियायती दरोंपर बेची जायेगी।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २३-९-१९२८

३२७. तार : अमृतलाल ठक्करको

[२० सितम्बर, १९२८][२]

अमृतलाल ठक्कर
गोधरा

शाह के देहान्त से गहरा दुःख। उनके परिवार को मेरी समवेदना पहुँचा दें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४७७६) की फोटो-नकलसे।

१. दर-तालिका यहाँ नहीं दी जा रही है।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

३२८. तार : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

[२० सितम्बर, १९२८][1]

परम माननीय शास्त्री
प्रिटोरिया

कृपया अबूबकर की प्रिटोरियावाली जायदाद के मामले में कुछ दिलचस्पी लें। उनके भाई उमर झवेरी आपसे मिलेंगे। यह जायदाद १९०८ के पब्लिक सेट्लमेंट का विषय थी। इसे अबूबकर के उत्तराधिकारियों के लिए बचाना चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० ११९६१) की माइक्रोफिल्मसे।

३२९. तार : उमर झवेरीको

[२० सितम्बर, १९२८][2]

उमर झवेरी
डर्बन

शास्त्रीजी को तार दे रहा हूँ। उनसे मिलिए।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० ११९६१) की माइक्रोफिल्मसे।

३३०. पत्र : सी० एफ० एन्ड्र्यूजको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२१ सितम्बर, १९२८

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। इस संवैधानिक कमिशनमें मैं कोई दिलचस्पी नहीं ले रहा हूँ। कमिशनकी कही किसी भी बातमें मुझे कोई सचाई नहीं दिखाई देती। सर जॉन साइमनके पत्रोंसे झूठ ही ध्वनित होता है। और यदि वे जान-बूझकर ये झूठी बातें न कह रहे हों तो फिर यही मानना पड़ेगा कि उन्हें वस्तु-स्थितिकी जानकारी बिलकुल ही नहीं दी जा रही है।

१ और २. एक टाइप की हुई प्रति (एस० एन० ११९८७) से।

महादेव आज शिमलासे लौटेगा। मुझे इस बातकी खुशी है कि शिमला जानेसे उसे थोड़ा आराम मिल गया और बँधी-बँधाई दिनचर्यासे थोड़ी फुरसत मिल गई। वैसे, उसने वहाँ बारडोली सत्याग्रहके सम्बन्धमें प्रकाशित होनेवाली अपनी आगामी पुस्तकके परिच्छेद जरूर लिख डाले। वल्लभभाई भी आज शिमलासे लौट रहे हैं, और स्वामी भी। मगर वे सब शिमलाके वातावरणसे ऊब गये हैं।

देवदास दिल्लीमें है। कृष्णदास बिहारमें रामविनोदके साथ है। प्यारेलाल और सुब्बैया यहाँ हैं। मीराबहन अगले सप्ताह कुछ दिनोंके लिए दौरेपर जा रही है। वह खादी-भण्डारोंको देखना चाहती है। मै पूरी आशा रखता हूँ कि तुम वहाँ शक्तिसे बाहर काम नही करोगे।

साथमें इटलीसे आये कुछ पत्र भेज रहा हूँ।

सस्नेह,

मोहन

श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज
१२, गोवर स्ट्रीट, लन्दन, डब्ल्यू० सी० १

अंग्रेजी (जी० एन० २६३०) की फोटो-नकलसे।

३३१. पत्र : एम० आर० जयकरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२१ सितम्बर, १९२८

प्रिय जयकर,

आपका पत्र मिला। आपके सामने जो प्रस्ताव रखा गया है, उसके बारेमें महादेवने मुझसे चर्चा की है। उसने मुझे एक छोटा-सा पत्र भी भेजा है, लेकिन कहा है कि उसके यहाँ आ जानेके बाद ही मै उत्तर दूँ। इसलिए इस सम्बन्धमें अभी कुछ न करना मेरे लिए सम्भव हो सका है और पूरी तरह विचार करनेके बाद मै इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आपको यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करना चाहिए। मेरा खयाल है कि वाइसरायको शास्त्रीके[1] उत्तराधिकारीके बारेमें खुद उन्हीसे परामर्श करना चाहिए; लेकिन यदि वे वैसा नहीं करते तो महाराज कुँवर सिंहको जाना चाहिए। यह काम बहुत कठिन है और इसे वही कर सकता है जो हृदयसे मानता है कि ब्रिटिश साम्राज्यके साथ सम्बन्ध रखना अच्छा है और इसलिए इसे कायम रखना चाहिए। इस मान्यताके पीछे जो तर्क है, उसे समझा पाना मुश्किल है, लेकिन मुझे भरोसा है कि मेरा दृष्टिकोण समझनेमें आपको कोई कठिनाई नही होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १९९५) की फोटो-नकलसे।

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री, जो उन दिनों दक्षिण आफ्रिकामें भारत सरकारके एजेंट जनरल थे।

३३२. पत्र : ई० सी० डेविकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२१ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और 'स्टुडेंट वर्ल्ड[1]' के जुलाई तथा अप्रैलके अंकोंकी प्रतियोंके लिए धन्यवाद।

दिसम्बर माहमें मैसूरमें होनेवाली कांफ्रेंसके सम्बन्धमें आपन जो-कुछ लिखा है, उसपर मैंने गौर किया है। अभी तक मैं आपको कोई निश्चित उत्तर देनेकी स्थितिमें नहीं हूँ और मैं आपको इस बातके लिए तो आगाह कर ही चुका हूँ कि कांफ्रेंसमें मेरे शामिल हो सकनेकी आशा रखकर कोई व्यवस्था न करें।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड ई० सी० डेविक
५ रसल रोड, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३५२९) की फोटो-नकलसे।

३३३. पत्र : चोइथराम पी० गिडवानीको

२१ सितम्बर, १९२८

प्रिय डॉ० चोइथराम,

मेरे लिए तो इस समय आश्रमसे निकल सकना असम्भव है और वल्लभभाईके हाथोंमें पहलेसे ही बहुत काम पड़े हुए हैं। मेरे खयालसे, अभी वल्लभभाईको तकलीफ न देना ही ठीक होगा। उन्हें बारडोलीमें रचनात्मक कार्यक्रमको सुस्थिर आधारपर खड़ा करनेके लिए मुक्त छोड़ दीजिए। वास्तवमें यह काम सरकारसे जूझनेसे भी ज्यादा कठिन है। फिर भी, मैं आपका पत्र वल्लभभाईके सामने रखूँगा और उनसे आपको जवाब लिखनेके लिए कहूँगा।

हृदयसे आपका,

डॉ० चोइथराम पी० गिडवानी
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (एस० एन० १३५३०) की फोटो-नकलसे।

१. वर्ल्डस् स्टुन्डेट क्रिश्चियन फेडरेशनकी।

३३४. पत्र : धन्वन्तरिको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२१ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्र मिले। छात्र-संघको मैं जो सन्देश भेज सकता हूँ, वह यह है:

"आप सरकारसे या आपकी राहमें बाधा डालनेवाली किसी भी शक्तिसे न डरें। आप आगे बढ़ें और अपने तथा उन करोड़ों मेहनतकश लोगोंके बीच एक सुदृढ़ सम्बन्ध कायम करें जो शिक्षा शब्दका अर्थ तक नहीं जानते।"

हृदयसे आपका,

श्रीयुत धन्वन्तरि
मन्त्री, लाहौर छात्र-संघ, लाहौर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५३१) की फोटो-नकलसे।

३३५. पत्र : कृष्णदासको

२१ सितम्बर, १९२८

प्रिय कृष्णदास,

तुम्हारा पोस्ट कार्ड मिला। . . .[१] तो बड़ा पाजी आदमी है। उसका यह कहना झूठ है कि वह यहाँसे कलकत्तातक पैदल चलकर तुमसे मिलने गया। वह इधर कई जगह गया है और उनमें से एक बृन्दावन भी है। वहाँसे उसने यह लिखा कि उसकी व्यवस्था लगभग हो गई है। वह दिलका अच्छा है, लेकिन भरोसा करने लायक बिलकुल नहीं।

राजेन्द्र बाबू यूरोपसे लौटनेपर यहाँ आये थे। उन्हें मैंने रामविनोदके बारेमें लिखा तुम्हारा पत्र[२] दिखाया। उनका विचार है कि इस सम्बन्धमें कुछ करना आवश्यक होगा।

श्रीयुत कृष्णदास

अंग्रेजी (एस० एन० १३६८९) की माइक्रोफिलमसे।

१. नाम छोड़ दिया गया है।
२. ३० अगस्तका पत्र; देखिए "पत्र : कृष्णदासको", १०-९-१९२८।

३३६. पत्र : एमी टरटोरको

२१ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और लिननके सुन्दर कपड़ेके लिए धन्यवाद। यहाँ जो-कुछ किया जा रहा है, उसका एक नमूना साथमें भेज रहा हूँ।

आपकी प्रार्थनाओंके लिए भी मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। हमारे बीच हुआ पत्र-व्यवहार मैं श्री एन्ड्रयूजको[1] भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

एम० एमी टरटोर
कैमोलिया, ४७ सीएना
इटली

अंग्रेजी (एस० एन० १४३९८) की माइक्रोफिल्मसे।

३३७. पत्र : जेठालाल जोशीको

आश्रम, साबरमती
२१ सितम्बर, १९२८

भाई जेठालाल,

कामवासनाको जीतनेका उपाय 'भगवद्गीता' में बताया गया है। यह उपाय है ईश्वरकी कृपाकी प्राप्ति और यह ईश्वरकी आराधनासे ही मिलती है।

विद्यापीठमें रहनेके बारेमें तुम काकासाहबसे मिलना। वहाँ अधिकतम वेतन ७५ रु० दिया जाता है। तुम यदि इतनेमें रह सको तो शायद काकासाहब तुम्हें विद्यापीठमें ले लें। मेरे विचारानुसार तो ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किये बिना आश्रममें रहा ही नहीं जा सकता।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० १३४४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको", २१-९-१९२८।

३३८. पत्र : जे० एस० अकर्तेको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२२ सितम्बर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाल-विवाहके खिलाफ जितने ज्यादा युवक उठ खड़े होंगे और अवसर मिलनेपर अपने विरोधको कार्य-रूपमें परिणत करेंगे, यह बुराई उतनी ही जल्दी मिटेगी। 'यंग इंडिया' में इस विषय पर मैं इतनी बार लिख चुका हूँ कि अब आपकी जातिसे सम्बन्धित इस विशेष मामले पर अलगसे लिखनेकी आवश्यकता मुझे नहीं जान पड़ती।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जे० एस० अकर्ते
सीनियर बी० ए० क्लास, हिस्लॉप कॉलेज
नागपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५३२)की माइक्रोफिल्मसे।

३३९. पत्र : एन० लक्ष्मीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२२ सितम्बर, १९२८

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। इस समय तो मैं आपको यही सलाह दे सकता हूँ कि आप 'गीतांजलि' पढ़ना जारी रखिए और साथ ही थोड़ा-सा 'गीता' भी पढ़िए।

अगर आप 'यंग इंडिया' नियमित रूपसे पढ़ती रही हैं तो आपके प्रश्नोंके कोई उत्तर देनेकी जरूरत नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीमती एन० लक्ष्मी
मेडिकल कॉलेज, वेल्लूर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५३३)की माइक्रोफिल्मसे।

३४०. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२२ सितम्बर, १९२८

प्रिय रामानन्द बाबू,

पत्रके लिए धन्यवाद। बड़ी शर्मिन्दगीके साथ कहना पड़ता है कि डॉ० संडरलैंड की पाण्डुलिपिको मैं अब तक हाथ नहीं लगा पाया हूँ। मैंने उसे अपने डेस्क पर रख छोड़ा है और यह बराबर मेरी नजरके सामने रहती है। लेकिन कह नहीं सकता कि इसे कब पढ़ पाऊँगा।

आपने जो शुद्धियाँ भेजी हैं, उन्हें मैं पाण्डुलिपिके साथ सँभालकर रखूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत रामानन्द चटर्जी
सम्पादक, 'मॉडर्न रिव्यू',
१, अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३५३४)की फोटो-नकलसे।

३४१ पत्र : भोगीलालको

२२ सितम्बर, १९२८

भाईश्री भोगीलाल,

मैंने बछड़ेको[1] समझ-बूझकर मरवाया, इस सम्बन्धमें अत्यन्त संक्षेपमें मेरी दलील यह है :

१. बछड़ेको बहुत कष्ट था। डाक्टरोंका इलाज करवाया किन्तु वे भी आशा छोड़ बैठे थे। हम बछड़ेकी किसी तरह मदद नहीं कर पा रहे थे। चार-पाँच आदमी होने पर ही उसे करवट बदलवाई जा सकती थी। इससे भी उसे कष्ट ही होता था। ऐसी स्थितिमें उसके प्राण ले लेना मुझे धर्म जान पड़ा।

२. अन्य प्राणियों पर मैं जो नियम लागू करता हूँ वही नियम ऐसी स्थितिमें मनुष्यपर भी लागू करना मैं धर्म समझता हूँ। मनुष्यके सम्बन्धमें ऐसे प्रसंग बहुत कम आते हैं, क्योंकि हमारे पास उसकी सहायता करनेके कहीं अधिक साधन हैं और हमें उनकी विशेष जानकारी भी है। किन्तु इतिहासमें ऐसे प्रसंग मिल जाते है तथा इससे मिलते-जुलते अन्य प्रसंगोंकी हम कल्पना कर सकते हैं कि इस तरह वध करने

१. देखिए "पावककी ज्वाला", ३०-९-१९२८।

में उसी प्रकार अहिंसा निहित है जिस प्रकार डॉक्टर द्वारा की जानेवाली शल्य-क्रियामें अहिंसा निहित रहती है।

३. यह दलील यहाँ लागू नही होती कि जो जीवन दे नही सकता उसे किसीका जीवन लेनेका भी अधिकार नही है तथा कोई किसी दूसरेके धर्मका नाश नही कर सकता। हिंसा अर्थात् निर्दयताको रोकनेके लिए ही उपर्युक्त दलील दी जा सकती है। जिस व्यक्तिकी अहिंसा-वृत्तिके बारेमें हमारे मनमें कोई शंका ही न हो उसके खिलाफ ऐसी दलील देना अपने-आपमें हिंसक कार्य है। क्योंकि इससे अहिंसक वृत्ति-वाला, यदि वह असावधान हो तो, उलझनमें पड़ जायेगा और कदाचित् अहिंसा-धर्मका पालन नही कर सकेगा।

४. प्रस्तुत कृत्यमें निहित अहिंसाको समझनेके लिए तीन बातें ध्यानमें रखनी आवश्यक हैं: १) वध-मात्र हिंसा है, यह मानना अज्ञान है। २) जिस प्रकार वध करनेमें हिंसा है उसी प्रकार जिमे हम वधकी अपेक्षा हलका दुःख मानते हैं, उसमें भी हिंसा है। ३) हिंसा और अहिंसा आखिर तो मन और भावनासे सम्बन्ध रखती हैं। उदाहरणार्थ क्रोधमें मारा गया तमाचा विशुद्ध हिंसा है किन्तु जिसे साँपने काट लिया हो उसे जगाये रखनेकी खातिर मारा गया तमाचा शुद्ध अहिसा है।

इसीमें से और भी बहुत-सी दलीलें दी जा सकती है। केवल धार्मिक दृष्टिकोणसे यदि मुझसे विशेष रूपसे कुछ पूछना चाहो तो अवश्य पूछना। तुम इस पत्रका जहाँ जो उपयोग करना चाहो कर सकते हो। मुझे तो धर्मकी खोज करनी है, उसे जानना है और उस पर आचरण करना है। यदि मैं ऐसा नही कर पाता तो एक साँस भी अधिक लेनेकी मेरी इच्छा नहीं है।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती (एस० एन० ११८११)की माइक्रोफिलमसे।

३४२. अफसरोंका जुल्म

धोलका ताल्लुकेसे एक संवाददाता लिखता है:[1]

इस तरहका जुल्म अगर भारतवर्षमें नहीं तो गुजरातमें तो अवश्य ही एक आश्चर्यकी बात होनी चाहिए। यह उचित है कि धोलका ताल्लुका-समितिने जुल्मको दूर करनेका काम अपने सिर लिया है। कांग्रेसकी समितियाँ ऐसे काम करनेके लिए बाध्य हैं। किन्तु कलेक्टरके पास शिकायत करना या न्यायके लिए अदालतमें जाना, इस दिशामें किये जानेवाले कामोंमें कमसे-कम महत्त्वका काम है। जहाँ अनिवार्य हो वहाँ ऐसा भले ही किया जाये। किन्तु सच्चा काम तो वह है जैसा बारडोलीमें किया गया, यानी लोगोंके बीच रहकर उन्हें निर्भयताकी शिक्षा दी जाये। यह शिक्षा

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पुलिस द्वारा एक अनाथ बालकके पीटे जाने तथा धोलका ताल्लुकाके किसानोंपर हो रहे अत्याचारका वर्णन था।

सिर्फ भाषणोंसे नहीं, खुद निर्भय रहकर लोगोंमें निर्भयताकी लगन जगाकर दी जाती है। ऐसी लगन जगानेके लिए लोगोंमें कुछ आवश्यक रचनात्मक कार्य होने चाहिए। उनके बिना लोगोंके साथ सम्पर्क नही साधा जा सकता, उनके जीवनमें प्रवेश नही किया जा सकता, उनका विश्वास—सम्पादन नहीं किया जा सकता। यह बात दिनों-दिन अधिक स्पष्ट होती जाती है कि अपने क्षेत्रमें बसनेवाले प्रत्येक कुटुम्बसे सम्बन्ध जोड़नेके लिए खादी-कार्य सबसे महत्त्वपूर्ण है। ऐसा काम करते हुए तलाटी और पुलिसके भी संसर्गमें आना चाहिए। वे भी कपड़ा पहनते हैं। उनतक भी खादीका सन्देश पहुँचना चाहिए। पुलिस और तलाटियोंके जुल्मोंका निवारण उनके हृदयको स्पर्श करनेसे हो सकता है। पुलिसके एक आदमी या किसी तलाटीको दण्ड मिल जाये तो उससे जुल्म बन्द नही हो सकता। किन्तु यदि नौकरी करते हुए भी उन्हें ऐसा भान हो कि हम लोगोंके मित्र या सेवक हैं, तो उनका बरताव बदल सकता है। बारडोलीके लोग निर्भय इसलिए बन सके थे कि स्थानीय पुलिस और तलाटी उनके मित्र हो गये थे। दण्ड देने अथवा बरखास्त करवा देनेकी बनिस्बत बहिष्कार कही अधिक प्रभावशाली अस्त्र है, किन्तु उसका प्रयोग केवल निर्भय मनुष्य ही कर सकते हैं। इसलिए धोलका ताल्लुका-समितिको मेरी सलाह है कि अदालत अथवा कलेक्टरसे न्याय करवानेका काम अनिवार्य हो तो उसे जारी रखते हुए भी वह लोगोंको निर्भय बनानेका काम जोरसे और धैर्यपूर्वक करे। जब वह ऐसा करेगी तो उसे अनुभव होगा कि कचहरीका काम और रचनात्मक काम एक साथ नही हो सकते। एकको साधनेसे दूसरेसे मुँह मोड़ना पड़ेगा। जहाँपर लोग बहुत दबे हुए और भयभीत रहते हों, वहाँ कार्यके आरम्भ-कालमें प्रसिद्ध नेताओंको ले जाना और लोगोंसे उनका परिचय कराना शायद आवश्यक हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-९-१९२८

३४३. खादीकी स्वावलम्बन पद्धति

'बिजोलियामें खादी-कार्य' नामक जो लम्बा लेख इस अंकमें दिया है, उसकी ओर मै पाठकोंका ध्यान खींचता हूँ। श्री जेठालाल गोविन्दजीने इसे जिस रूपमें लिखकर भेजा है—भाषा-सम्बन्धी सामान्य परिवर्तनोंके साथ—उसी रूपमें वह प्रकाशित किया जा रहा है। मै आशा करता हूँ कि पाठक लेखकी लम्बाई देखकर नहीं चौंकेंगे। हमारे पास बहुत थोड़े-से इने-गिने जो खादीके पीछे पागल लोग हैं, उन्हीमें से एक श्री जेठालाल हैं। 'गीता'की परिभाषामें खादीके पीछे पागल व्यक्तिको हम स्वकर्म-निरत कहेंगे। परमार्थकी दृष्टिसे ग्रहण किये हुए अपने कार्यमें लीन लोगोंकी देशको बहुत जरूरत है। इसके अलावा बिजोलियाके खादी-कार्यमें और जगहोंकी अपेक्षा बहुत जल्दी सफलता मिली है। ऐसी सफलता किस प्रकार मिली, किस हद तक मिली—यह जानना प्रत्येक खादी-कार्यकर्त्ताका कर्त्तव्य है। यही सोचकर मैंने यह

लेख पूरा-का-पूरा छापा है। पाठक यह स्पष्ट रूपसे देख सकेंगे कि इस कार्यके मूलमें खादीकी अविचल भक्ति और उससे उत्पन्न दृढ़ता और धैर्य है। लेखका यह भाग सबके याद रखने लायक है:

> **यहाँ यह कहना उचित होगा कि हमने ऐसी मर्यादाका पालन करनेका निश्चय किया था कि मानो हम खादीके सिवाय कुछ जानते ही नहीं, समझते ही नहीं, और खादीके लिए पागल हो गये हैं। खादीका उपदेश लोगोंको मीठा नहीं लगता था। क्रियात्मक बात होनेके कारण 'हाँ' कहकर भी लोग विचारमें पड़ जाते थे। मनुष्यत्वको नष्ट कर डालनेवाली स्थितियाँ — बीमारी, गन्दगी, अनीति, सामाजिक और राजनीतिक अशान्ति — हम अपनी नजरोंसे देख पाते थे। किन्तु फिर भी हम जो करनेके लिए गये थे उतना हो जाने पर हम दूसरी किसी बातमें दिलचस्पी नहीं लेते थे। हम समझते थे कि हमने दूसरी बातोंमें दिलचस्पी ली नहीं कि खादीके बारेमें हमारा आग्रह हलका पड़ जायेगा**

ऐसे चुस्त आदमी ही जाड़ेमें सवेरेका कड़कता जाड़ा, गर्मीमें दुपहरीकी चिलकती लू, चौमासेमें मूसलाधार वर्षा और बीच-बीचमें कीचड़को प्रसन्नतापूर्वक सहन करते और लोगोंको खादीका सन्देशा पहुँचाते है। किसानोंके लिए जो आरामका समय होता है, श्री जेठालालके शब्दोमें खादीका काम करनेवालोंके लिए वह 'कामका मौसम' होता है और कामकी सफलता तो कामके मौसममें ही काम करनेमें निहित होती है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २३-९-१९२८

३४४. बम्बईका राष्ट्रीय विद्यालय

देशमें अँगुलियों पर गिनने लायक जो राष्ट्रीय विद्यालय अभी चल रहे हैं वे ऐसे लगते हैं जैसे उजाड़ और निर्जल रेगिस्तानमें कोई छोटा-सा जलाशय हो। ऐसे ही विद्यालयोंमें से एक बम्बईका राष्ट्रीय विद्यालय है। इस विद्यालयको अनेक संकटोंका सामना करते हुए काम करना पड़ता है और इस समय भी उसके सामने संकट मौजूद हैं। इन संकटोंमें मुख्य संकट पैसेका है। विद्यापीठके नियम बहुत कठोर होनेके कारण ऐसे विद्यालयोंको उसमें पूरी तरह समाविष्ट करनेमें बाधाएँ है। विद्यापीठका एक नियम यह है कि जिस विद्यालयके शिक्षकोंमें स्वयं धन एकत्रित करनेकी सामर्थ्य न हो उन्हें कोई सहायता न दी जाये। यदि विद्यापीठको किसी दिन स्वावलम्बी बनना है, तो उसे इस नियमका पालन दिन-प्रति-दिन अधिक कठोरतासे करना ही चाहिए। यहाँ 'स्वावलम्बी' होनेका अर्थ समझ लेना आवश्यक है। स्वावलम्बीका अर्थ है आचार्यसे लेकर दूसरे अध्यापक तक सभी इतने प्रतिष्ठित हों कि उनकी प्रतिष्ठाके बलपर विद्यालय अपना खर्च आसानीसे चला सके। ऐसे विद्यालयके विद्यार्थी विद्यालयके खर्चके

लायक धन अपने उद्योगसे कमा लें तो यह सर्वोत्तम स्वावलम्बन है। ऐसे स्वावलम्बनको मैं असम्भव नहीं मानता। अमेरिकामें असंख्य विद्यार्थी अपनी फीसके लायक कमाई कर लेते हैं और उनके विद्यालय उनकी फीसकी आमदनीसे ही चलते है। भारतमें सरकारके संरक्षणमें चलनेवाले बहुत-से विद्यालय केवल अपना खर्च ही नही निकाल लेते, उनके मालिक उनसे पर्याप्त धन भी कमा लेते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। सरकारी शिक्षाकी बाजार-दर आँकी जा चुकी है और उसकी माँग सरकार द्वारा उक्त शिक्षा देनेकी सामर्थ्य और इच्छाकी अपेक्षा अधिक है। राष्ट्रीय शिक्षाका अभी मूल्यांकन होना है। यदि उसका मूल्यांकन हो गया होता तो हम आज स्वराज्यका उपभोग करते होते। किन्तु मेरी कल्पनाका स्वावलम्बन सरकारके नियन्त्रणमें चलनेवाले विद्यालयोंके स्वावलम्बन, और अमेरिकी विद्यालयोंके स्वावलम्बनसे भी भिन्न है।

इस देशमें उद्योगोंके वातावरणकी आवश्यकता है। इस देशकी शिक्षामें उसके प्रधान अंग उद्योग होने चाहिए। जब उद्योग शिक्षाके प्रधान अंग होंगे तो विद्यार्थी जो उद्योग सीखेंगे उनसे विद्यालयका खर्च निकाला जा सकेगा। ऐसी व्यवस्थाकी कल्पना श्री मधुसूदनदासने कटकके अपने चर्मालयके सम्बन्धमें की थी। उनकी योजना सुन्दर थी। किन्तु देशमें उद्योगों और चर्मालयोंको प्रोत्साहन देनेवाले वातावरणका अभाव होनेसे यह विफल हो गई। बढ़ईका काम हमारी उच्च शिक्षाका अविभाज्य अंग क्यों न हो? जिस शिक्षामें बुनाईकी व्यवस्था नही है, वह तो ऐसी ही है जैसे बिना सूर्यका सौरमण्डल। यदि इस तरहके धन्धे यथार्थ रूपसे सीखे जायें तो अवश्य ही विद्यार्थी अपने विद्यालयोंका खर्च निकाल सकते है। यह योजना तभी सफल हो सकती है जब विद्यार्थियोंमें शरीर-बल और इच्छा-शक्ति हो और शिक्षक उसके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करें। यदि एक जुलाहा कबीर हो गया तो दूसरे जुलाहे कबीर नहीं तो गिडवानी, कृपलानी या कालेलकर क्यों नही हो सकते? यदि एक मोची शेक्सपीयर हो सका तो अन्य अनेक मोची महाकवि भले ही न हों, रसायन-शास्त्र, अर्थशास्त्र और अन्य शास्त्रोंके विशारद क्यों नहीं हो सकते? हमें यह बात समझ लेनेकी आवश्यकता है कि उद्योग और बौद्धिक ज्ञानमें विरोध मानकर हम बहुत बड़े भ्रममें पड़कर लोगोंकी प्रगतिको रोक रहे हैं। इस बातको समझानेका काम विद्यापीठने अपने हाथमें लिया है। इस बीच राष्ट्रीय शिक्षामें विश्वास करनेवाले लोगोंको बम्बईके राष्ट्रीय विद्यालयको यथाशक्ति सहायता देनी चाहिए। यदि यह सहायता बम्बईके नागरिक नहीं देंगे तो और कौन देगा? मुझे आशा है कि बम्बईमें व्यापारकी मंदीका तर्क देकर कोई इस सहायतासे हाथ खींचनेका प्रयत्न नहीं करेगा। बम्बईके नागरिकोंमें चाहे अन्य बहुत-से दोष हों, किन्तु मैंने उनमें कृपणताका दोष तो नहीं देखा। इस-लिए मैं आशा करता हूँ कि बम्बईके राष्ट्रप्रेमी सज्जन आचार्य गोकुलभाईकी झोली भरकर उन्हें चिन्ता-मुक्त कर देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-९-१९२८

३४५. सीमन्त इत्यादि-सम्बन्धी भोज

जम्बुसरसे श्री मणिलाल छत्रपति लिखते है कि उनके परिवारमें सीमन्त संस्कारका अवसर आनेपर उन्होंने अन्तमें यह निर्णय करनेका साहस कर लिया है कि जाति-भोज नही दिया जायेगा। मै इसके लिए उन्हें बधाई देता हूँ। ऐसा साहस कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओमें कोई आश्चर्यकी बात नही मानी जानी चाहिए। इस प्रकारके साहसके लिए एक बातकी जरूरत होनी है और वह है जातीय बहिष्कारका भय न होना। जातिसे बहिष्कृत होनेका अर्थ है, जातीय भोजोमें भाग न ले पाना और बेटे-बेटियोके सम्बन्ध जातिमें न कर सकना। जहाँ जाति-भोजका बहिष्कार करना है वहाँ यदि हमें किसी भोजमें निमन्त्रण न मिले तो समझना चाहिए कि अच्छा हुआ, अपने-आप सकट कट गया और यदि बेटे-बेटियोंके सम्बन्ध जातिमें न हों तो इससे जातियोंके बन्धन सहजमें टूट सकते हैं। यदि देशका उत्थान होना है तो ये बन्धन तो टूटने ही चाहिए। इसलिए छत्रपति श्री मणिलाल-जैसे सुधारकोंको किसी प्रकारका भय करनेकी आवश्यकता नहीं है। इन भोजोंसे सभ्य लोग असभ्य बनते हैं, गरीबोंकी कमर टूटती है, देश कलंकित होता है। पैसे-टकेसे सुखी लोग भी भोज-प्रेमी बन जायें, यह हमें बिलकुल शोभा नही देता। इसलिए श्री मणिलाल छत्रपति-जैसे सुधारक ज्यों-ज्यों बढ़ते जायेंगे त्यों-त्यों ये कुप्रथाएँ कम होती जायेंगी। ऐसे भोजोंसे जो पैसा बचे उसका कुछ भाग सुधारकोंको सार्वजनिक कार्यके लिए और जो लोग जातिमें बने रहना चाहें उनकी सात्विक सेवाके लिए दे देना चाहिए। जहाँ पंच अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं, वहाँ वे अपने उच्च पदसे गिर जाते हैं और सम्मानके पात्र नही रहते। इसलिए दानी सज्जनोंको चाहिए कि वे जाति-सुधारों लिए निश्चित की हुई द्रव्य-राशि ठीक तरहसे काममें लाये जानेकी सावधानी रखें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २३-९-१९२८

३४६. पत्र : नानाभाई मशरूवालाको

आश्रम, साबरमती
२३ सितम्बर, १९२८

भाईश्री नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। अब जो स्थिति है उसमें तो मैं यह नही कह सकता कि मेरा जन्मदिन किस दिन है। पहले एक जन्मदिन था, किन्तु अब अनेक हो गये हैं। एक तो तिलक पंचांगके अनुसार है, जिसके बारेमें मुझे कुछ पता नहीं था। अंग्रेजी तारीखके अनुसार दूसरा दिन पड़ता है। सनातन पंचांगके अनुसार तीसरा, सौर पंचांगके अनुसार चौथा और सायण पंचांगके अनुसार पाँचवाँ होता है। इनके

अतिरिक्त यदि भविष्यमें कुछ अन्य दिन खोज लिये जायें तो वे भी ठीक। इसलिए यदि सब लोग तुम्हारी तरह अखण्ड चरखा चलाने लगें तो प्रति-दिन अपना जन्म-दिन मनाये जानेपर भी मैं कुछ नहीं बोलूँगा। ऐसा लगता है किशोरलालको बम्बई अनुकूल नही आया। फीनिक्समें मणिलाल और सुशीला एक-दूसरेमें ओतप्रोत हो गये जान पड़ते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६६७६)की फोटो-नकलसे।

३४७. पत्र: शौकत अलीको

साबरमती
२४ सितम्बर, १९२८

प्रिय भाई,

महादेव अभी-अभी शिमलासे लौटा है। उसने बताया है, आपने अखबारोंमें यह लिखा है कि मैंने शुएबको नेहरू कमेटीमें न आने देनेके लिए कुछ भी उठा नहीं रखा। आपके और डॉ० अन्सारीके बीच चल रहे विवादकी ओर मैं ठीक ध्यान नहीं देता रहा हूँ। बस, अखबारोंमें प्रकाशित आपका एक पत्र पढ़ा है, सो भी सरसरी तौर पर। इसीलिए आपका वह शगूफा मेरी नजरसे रह गया। खैर, मेरे लिए तो यह जानकारी बिलकुल नई है कि मैंने शुएबको कमेटीमें न आने देनेकी कोशिश की। मुझे तो यह भी याद नहीं आता कि मैंने उनके या दूसरोंके बारेमें क्या-कुछ कहा। मैं तो सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि मैंने शुएबको किसी चीजसे अलग रखनेकी बात कभी सोचीतक नही। उनकी ईमानदारी और स्वतन्त्र रूपसे निर्णय लेनेकी शक्तिका मैं इतना कायल हूँ कि उनको कभी किसी चीजसे अलग रखनेकी इच्छा मुझमें आ ही नहीं सकती और आपको तो मेरा स्वभाव मालूम होना चाहिए था। मैं अपने विरोधियोंको भी किसी चीजसे कभी अलग नहीं रखता। और अगर अलग रखना चाहता हूँ तो वैसा साफ कह भी देता हूँ। आपने कैसे सोच लिया कि मै शुएबको किसी उद्देश्यसे अलग रखना चाहता था?

अगर यह सिर्फ आपकी निजी भावनाकी बात है तो उस भावनाको तो समय और मेरा भावी आचरण ही दूर कर सकता है।

महादेवसे यह किस्सा मालूम होनेके बाद मुझे लगा कि आपकी गलतफहमी दूर कर देना — बशर्ते कि मेरी बातोंसे वह दूर हो सके — आपके प्रति मेरा कर्त्तव्य है।

हाँ, मैं यह जरूर कहूँगा कि डॉ० अन्सारीके नाम लिखा आपका जो एकमात्र पत्र मैंने पढ़ा, वह मुझे अच्छा नही लगा। मुझे वह बिलकुल अनावश्यक जान पड़ा। लेकिन उसके सम्बन्धमें आपसे कुछ कहना मुझे ठीक नहीं लगा। मैं मानता हूँ कि आपमें इतनी शालीनता हैं कि अगर आपको अपनी भूल दिखाई दे तो आप उसे

अवश्य सुधार लेंगे और आपके बारेमें मेरी जो धारणा है—अर्थात् यह कि आप सत्यवादी और ईश्वरसे डरकर चलनेवाले आदमी हैं—वह जबतक बनी हुई है तबतक तो आप अगर गलतियाँ भी करेंगे तो मेरे प्रिय ही बने रहेंगे। मैं तो खुद ही अकसर गलतियाँ करता हूँ और मुझे बराबर मित्रों और विरोधियोंकी क्षमा-शीलताकी आवश्यकता रहती है। इसलिए जिस चीजको मैं आपकी गलती मानूँ, उसको लेकर मैं चिन्ता क्यों करूँ?

सस्नेह,

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३६९२)की फोटो-नकलसे।

३४८. तार: श्यामनारायणको[1]

[२५ सितम्बर, १९२८]

श्यामनारायण
प्रोसिक्यूटिग इंस्पेक्टर, मेरठ सिटी

आपका पुत्र सही-सलामत पहुँच गया है। आपके आनेतक उसे रोक रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४७८०)की माइक्रोफिल्मसे।

३४९. तार: चोइथराम पी० गिडवानीको[2]

[२५ सितम्बर, १९२८]

डॉ० चोइथराम
हैदराबाद (सिन्ध)

वल्लभभाई बारडोली चले गये। वहाँसे कहीं जाना उनके लिए कठिन है।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४७८१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. श्यामनारायणके २५ सितम्बरके तारके उत्तरमें। अपने तारमें श्यामनारायणने लिखा था: "मेरा लड़का सरूपनारायण, जो १८ वर्षका है और दुबला-पतला तथा गोरे रंगका है, कालेजसे चला गया है। कृपया उसे वहीं रोक रखें। आ रहा हूँ।"

२. चोइथराम गिडवानीके २५ सितम्बरके उस तारके उत्तरमें जिसमें उन्होंने वल्लभभाईको सिर्फ एक दिनके लिए फुरसत देनेका अनुरोध किया था।

३५०. 'चौंकानेवाले निष्कर्ष'

प्रकाशककी प्रस्तावनाके अनुसार, विलियम आर० थर्स्टन अमेरिकाकी सेनामें मेजर थे। अमेरिकी सेनामें उन्होंने लगभग दस वर्षतक काम किया। इस अवधिमें उन्होंने दुनियाके अनेक भागोंमें, जिनमें चीन भी शामिल है, विविध प्रकारके अनुभव प्राप्त किये। अपने प्रवासके दौरान उन्होंने विवाह-सम्बन्धी कानूनों और रिवाजोंके समाजपर पड़नेवाले असरका अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें विवाहपर एक पुस्तक लिखनेकी प्रेरणा हुई। इस पुस्तकका नाम 'थर्स्टन्स फिलॉसफी ऑफ मैरेज' है, जिसे पिछले वर्ष न्यूयॉर्कके टिफेनी प्रेसने प्रकाशित किया। वह बड़े टाइपके केवल ३२ पृष्ठोंकी पुस्तिका है, जो एक घंटेके अन्दर पूरी पढ़ी जा सकती है। लेखक इस विषयकी विस्तृत दलीलोंमें नहीं उतरे हैं; उन्होंने अपने निष्कर्षोंके लिए आवश्यक कुछ थोड़ी-सी दलीलें ही दी हैं और फिर अपने निष्कर्ष सामने रख दिये हैं। प्रकाशकने इन निष्कर्षोंको 'चौंकानेवाले' कहा है, जो ठीक ही है। अपनी भूमिकामें लेखक यह दावा करते हैं कि इन निष्कर्षोंपर वे "व्यक्तिगत निरीक्षण, चिकित्सकोंसे प्राप्त तथ्यों, सामाजिक आरोग्य-विज्ञानके आँकड़ों तथा चिकित्सा-सम्बन्धी आँकड़ों" के आधारपर पहुँचे हैं। ये तथ्य और आँकड़े उन्होंने युद्धकालमें इकट्ठे किये थे। उनके निष्कर्ष ये हैं:

> **१. प्रकृतिका यह नियम कभी नहीं रहा कि स्त्री अपनी रोटी और निवास तथा सन्तान उत्पन्न करनेके अपने प्राकृतिक अधिकारपर अमल करनेके लिए किसी पुरुषके साथ जीवन-भर बँधी रहे और रोज रातको एक ही बिस्तरपर उसके साथ सोने अथवा एक ही घरमें उसके साथ रहनेके लिए मजबूर हो।**
>
> **२. पुरुष और स्त्रीका हर रात एक साथ सोना विवाहके वर्तमान नियमों और रिवाजोंका परिणाम है। यह स्थिति अनियंत्रित विषय-भोगकी प्रेरणा देती है; इससे पुरुष और स्त्री दोनोंकी सहज वृत्तियाँ विकृत हो जाती हैं और ९० प्रतिशत विवाहित स्त्रियाँ आंशिक रूपसे वेश्याओं-जैसा जीवन बिताती हैं। यह स्थिति इसलिए पैदा होती है कि विवाहित स्त्रियोंके मनमें यह विश्वास भरा गया है कि उनका यह वेश्यापन कानून-सम्मत होनेके कारण उचित और स्वाभाविक है तथा उनके प्रति उनके पतियोंका प्रेम कायम रहे, इसके लिए आवश्यक है।**

इसके बाद लेखक "सतत और अनियंत्रित विषय-भोग" के परिणामोंका वर्णन करता है, जिसका सार मैं नीचे देता हूँ:

> (क) इससे स्त्रीमें स्नायविक दुर्बलता आ जाती है; वह समयसे पहले बूढ़ी हो जाती है; उसका शरीर रोगका घर बन जाता है; वह चिड़चिड़ी

हो जाती है; उसका मन अशान्त रहने लगता है; उसमे असन्तोषकी भावना पैदा हो जाती है; और वह भली भाँति अपने बच्चोंकी भी सार-सँभाल करने लायक नहीं रह जाती।

(ख) गरीब वर्गोंमें इससे बहुतेरे अनचाहे बच्चे पैदा होते हैं, जिनका पालन-पोषण असम्भव हो जाता है।

(ग) ऊँचे वर्गके लोगोंमें अनियन्त्रित विषय-भोगके कारण गर्भ-निरोधक साधनों और गर्भपातके तरीकोंको काममें लाया जाता है। अगर आम वर्गकी स्त्रियोंको सन्तति-निग्रहके नामपर या और किसी नामपर गर्भ-निरोधक तरीके सिखाये जायेंगे, तो समस्त जाति सामान्यतः रोगी, दुराचारी और भ्रष्ट हो जायेगी और अन्तमें नाशको प्राप्त होगी। (रेखांकित पंक्तियाँ लेखकने तिरछे टाइपमें दी है।)

(घ) अतिशय विषय-भोग पुरुषकी वह शक्ति नष्ट कर देता है, जो अच्छी आजीविका कमानेके लिए जरूरी होती है। आज अमेरिकामें विधुरोंकी अपेक्षा विधवाओंकी संख्या २० लाख अधिक है। इनमे से बहुत थोड़ी स्त्रियाँ युद्धके कारण विधवा हुई होंगी। (रेखांकित पंक्तियाँ लेखकने तिरछे टाइपमें दी हैं।)

(ङ) वैवाहिक जीवनकी वर्तमान स्थितिसे उत्पन्न अनियन्त्रित विषय-भोग स्त्री और पुरुष दोनोंमें अपने जीवनकी विफलताका बोध भरता है। आज दुनियामें जो गरीबी है, बड़े-बड़े नगरोंमें जो गन्दी बस्तियाँ हैं, उनका कारण यह नही है कि करनेको कोई लाभदायक काम नहीं है, बल्कि यह है कि लोग अनियन्त्रित और अतिशय विषय-भोगमें डूबे रहते हैं, जो विवाह-सम्बन्धी वर्तमान नियमोंका स्वाभाविक परिणाम है। (रेखांकित पंक्तियाँ लेखकने तिरछे टाइपमें दी हैं।)

(च) मानव-जातिके भविष्यकी दृष्टिसे सबसे गम्भीर वस्तु गर्भ-कालमें किया जानेवाला विषय-भोग है।

इसके बाद इस बुराईको लेकर चीन और हिन्दुस्तानकी आलोचना की गई है, जिसका हवाला देनेकी जरूरत नहीं। यहाँ हम पुस्तिकाके आधे भागतक पहुँच जाते है। बाकी आधे भागमें इस बुराईसे बचनेके उपाय बताये गये हैं।

उपायोंसे सम्बन्ध रखनेवाली मुख्य बात यह है कि पति और पत्नी दोनोंको हमेशा अलग-अलग कमरोंमें रहना चाहिए, इसलिए दोनोंको आवश्यक रूपमें अलग बिस्तरपर सोना चाहिए और तभी मिलना चाहिए जब दोनोंकी — खासकर पत्नीकी — सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा हो। लेखकने विवाहके कानूनोंमें जो परिवर्तन सुझाये हैं, उन्हें मैं यहाँ देनेका इरादा नहीं रखता। एक बात दुनिया-भरमें सारे विवाहों पर समान रूपसे लागू होती है। वह है, पति-पत्नीके लिए एक कमरेमें और एक ही बिस्तर पर सोना। इसकी लेखकने तीव्र निन्दा की है, जो मेरे विचारसे सर्वथा उचित

है। इसमें कोई शक नहीं कि पुरुष या स्त्रीके स्वभावमें पाई जानेवाली अधिकतर काम-वासना इस धर्म-स्वीकृत अन्धविश्वासका फल है कि विवाहित स्त्री-पुरुषोंको अनिवार्यतः एक ही कमरे और एक ही बिस्तरका उपयोग करना चाहिए। इसने समाजमें ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी है जिसके खतरनाक असरका अनुमान लगाना हमारे लिए, जो इस अन्धविश्वास द्वारा पैदा किये हुए वातावरणमें ही रहते हैं, कठिन है।

जैसा कि हम देख चुके हैं, लेखक गर्भ-निरोधक उपायोंके भी उतन ही खिलाफ हैं।

मद्रासके उद्यमी प्रकाशक एस० नटेसनने भारतमें वितरणके लिए इस पुस्तिकाके पुनर्मुद्रणको स्वीकृति लेखकसे प्राप्त कर ली है। यदि वे ऐसा करते हैं, तो पाठक उसकी प्रतियाँ बहुत थोड़े पैसोंमें प्राप्त कर सकेंगे। उन्होंने अनुवादके अधिकार भी प्राप्त कर लिये हैं।

लेखकने जो अनेक दूसरे उपाय सुझाये हैं, उनका मेरी रायमें हमारे लिए कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है, और उनके लिए कमसे-कम कानूनकी स्वीकृति तो आवश्यक है ही। परन्तु प्रत्येक पति और पत्नी आजसे ही यह दृढ़ निश्चय कर सकते हैं कि वे रातमें कभी एक कमरेका या एक बिस्तरका उपयोग नहीं करेंगे और मनुष्य तथा पशु दोनोंके लिए निर्धारित प्रजोत्पत्तिके एकमात्र उदात्त हेतुके सिवा दूसरे किसी हेतुसे विषय-भोग नहीं करेंगे। पशु इस कानूनका पालन निरपवाद रूपसे करता है। मनुष्यको चुनावकी छूट होनेसे उसने गलत चुनाव करनेकी भयंकर भूल की है। प्रत्येक स्त्री गर्भ-निरोधक उपादानोंका प्रयोग करनेसे बिलकुल इनकार कर सकती है। पुरुष और स्त्री दोनोंको जानना चाहिए कि काम-वासनाकी तृप्ति न करनेसे कोई रोगी नहीं हो जाता, बल्कि उससे उसका स्वास्थ्य और शक्ति बढ़ती है, बशर्ते कि मनुष्यका मन उसके शरीरके साथ सहयोग करे। लेखकका विश्वास है कि विवाह-सम्बन्धी वर्तमान कानून ही "आजकी दुनियाकी अधिकतर बुराइयोंके लिए जिम्मेदार हैं।" मेरे सुझाये हुए दो अन्तिम निष्कर्षोंपर पहुँचनेके लिए यह जरूरी नहीं है कि कोई लेखकके इस अति व्यापक विश्वाससे सहमत ही हो। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि यदि हम स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंको स्वस्थ और पवित्र दृष्टिसे देखें तथा भावी पीढ़ियोंके नैतिक कल्याणके लिए अपनेको जिम्मेदार मानें, तो आजके बहुत-से दुःख-दर्द टल सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-९-१९२८

३५१. बिजोलियामें खादी-कार्य

नीचे खादी कार्यकर्त्ताओंके लिए श्रीयुत जेठालाल गोविन्दजी द्वारा तैयार किये गये एक विस्तृत विवरणका सार[1] दिया जा रहा है। श्री जेठालाल एक परम अध्यवसायी कार्यकर्त्ता है। उन्होंने बिना किसी बाहरी मददके खादी तैयार करनेका तरीका ढूंढ़ निकाला है। श्रीयुत जेठालाल गोविन्दजीको अपने तरीकेपर अडिग विश्वास है। चाहे कोई उनसे सहमत हो या नही, उन्होने चित्तकी जिस एकाग्रता और लगनसे यह तरीका ढूंढ़ा है, उसकी प्रशंसा किये बिना कोई नही रह सकता। उन्होने स्वेच्छासे अंगीकार किये इस कार्यको जिस तल्लीनतासे सम्पन्न किया वह अनुकरणीय है। उनमें ऐसा उत्साह है जो पराजय नही जानता। ऐसे कार्यकर्त्ताके अनुभव राष्ट्रसेवी जनोंके लिए स्वभावतः मूल्यवान होंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-९-१९२८

३५२. अभय आश्रम

यह बंगालकी एक सुसंचालित संस्था है, जिसे राष्ट्र-सेवाके उद्देश्य-से बहुतसे नव-युवकोने अपनेको अर्पित कर दिया है। 'यंग इंडिया' के पाठक अभय आश्रमसे अपरिचित नहीं हो सकते, क्योंकि इन स्तम्भोंमें उसकी चर्चा अनेक बार की गई है। सन् १९२७ की रिपोर्ट मेरे सामने है। पुस्तिकाके रूपमें छपी ३५ पृष्ठोंकी यह सचित्र रिपोर्ट निरन्तर प्रगतिका लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। डॉ० सुरेशचन्द्र बनर्जी प्रबन्ध-समितिके प्रधान हैं तथा डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष इसके मन्त्री है। इसके १३ सदस्य हैं, जिन्होंने निर्भयता, सत्य, प्रेम, अस्तेय, श्रम, पवित्रता और देशभक्तिका व्रत ले रखा है। आश्रमका उद्देश्य भारत-माताकी सेवा द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना है। इसका मुख्य कार्यालय कोमिल्लामें है और प्रवृत्तियाँ है — सूत कातना, चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता देना, अस्पृश्यताका निवारण, राष्ट्रीय शिक्षा, गो-पालन तथा कृषि। इन प्रवृत्तियोंमें खादी सबसे व्यापक है। इसके द्वारा आश्रमने गत वर्ष ६६ हजार रुपये कारीगरोंमें बाँटें, जिनमें से २८ हजार बुनकरोंको, २७ हजार कतैयोंको, १,२०० से अधिक खादीपर कसीदा करनेवाली स्त्रियोंको, ३,००० से अधिक धोबियोंको और ६,००० से अधिक दर्जियोंको मिले। इस वर्ष इसका विक्रय एक लाख बयालीस हजारसे अधिकका हुआ। खादी-विभागने लाभमें काम किया। उत्पादन और बिक्री-व्यवस्थापर कुल बिक्रीका १३ प्रतिशत खर्च हुआ। लाभ १,२०० रु० से अधिकका हुआ। खादी विभागके पास पूरे समय कार्य करनेवाले ६३ कार्यकर्त्ता हैं, जो प्रान्त-भरमें फैले २०

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है; देखिए "खादीकी स्वावलम्बन पद्धति", २३-९-१९२८।

केन्द्रोंमें काम कर रहे हैं। और "चूंकि खादी-संगठन स्वभावतः उस केन्द्रबिन्दुका काम करता है जिसके इर्द-गिर्द राष्ट्र-निर्माणमें सहायता देनेवाली संस्थाएँ पनपती हैं", इसलिए आश्रम द्वारा स्थापित खादी-केन्द्रोंकी छत्रछायामें बहुत-से वाचनालय, पुस्तकालय, प्रारम्भिक पाठशालाएँ, व्यायामशालाएँ तथा अन्य समाज-सेवी संगठन पनप रहे हैं। इस समय मैं चिकित्सा-विभाग, अस्पृश्यता-निवारण एवं राष्ट्रीय शिक्षा आदिका रुचिकर ब्योरा न देकर पाठकोंसे इस रिपोर्टको पढ़नेका ही अनुरोध करूँगा। रिपोर्टमें कहा गया है कि यदि आश्रमके विकासको जारी रखना है तो इसके विभिन्न विभागोंके लिए इसे आर्थिक सहायताकी आवश्यकता है। कुल ६१ हजार रुपयेका अनुमान लगाया गया है, जिसमें से १०,००० की आवश्यकता रँगाई विभागके लिए है, ४०,००० खादी-कार्यके विस्तारके लिए, ३,५०० कृषिके लिए, २,५०० दुग्धशालाके लिए और ५,००० उन अतिरिक्त इमारतोंके लिए जिनकी आवश्यकता अभय आश्रम-जैसी विकासमान संस्थाको सदैव रहती है। कहना न होगा कि अधिकांश कार्यकर्त्ताओंको मुश्किलसे जीवनयापन-भरको मिलता है। वास्तवमें आश्रम बलिदानकी भावनाका प्रतीक है — उस भावनाका, जिससे बंगाल शायद सभी प्रान्तोंसे अधिक अनुप्राणित है। मैं पाठकोंको रिपोर्टकी प्रतियाँ प्राप्त करके पढ़ने और इस महान् संस्थाको जितनी सहायता दे सकें, देनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-९-१९२८

३५३. पत्र : मीराबहनको

[२८ सितम्बर, १९२८][1]

चि० मीरा,

अभी तो तुम्हें सिर्फ यह बतानेको लिख रहा हूँ कि तुम्हारा पत्र मिल गया। क्या तुम्हें मालूम है कि जमनालालजी के पिता नहीं रहे? अबतक कोई निर्णय नहीं हो पाया है। आशा है, कल हो जायेगा। चूल्हा तैयार हो गया है। छोटेलाल अब बेहतर है।

सस्नेह,

बापू

श्रीमती मीराबाई
आश्रम, हटूंडी
अजमेर (राजपूताना)

सी० डब्ल्यू० ५३०९ तथा जी० एन० ८१९९ से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१. डाककी मुहरसे।

३५४. 'पावककी ज्वाला'[१]

१

अहिंसक प्राण-हरण

गोसेवा संघकी ओरसे सत्याग्रहाश्रममे आदर्श दुग्धालय-चर्मालय चलानेका प्रयोग कर रहा है। उसके सम्बन्धमें क्षण-क्षणमे धर्म-सकट आ खड़े होते हैं। अगर आश्रमका आदर्श केवल अहिंसाके ही मार्गसे सत्यकी शोध करनेका न होता तो ये संकट सामने नहीं आते।

कुछ दिन हुए, आश्रमका एक बछड़ा, जो अपंग हो गया था, कष्टसे बिलकुल बेहाल हो गया। पशु-चिकित्सककी सलाहके अनुसार उसकी चिकित्सा कराई गई। किन्तु जब उन्होंने उसके जीनेकी आशा छोड़ दी और जब हमने भी देखा कि वह कष्टसे छटपटा रहा है और करवट बदलवानेमें भी उसे बड़ा कष्ट हो रहा है तब मुझे लगा कि ऐसी स्थितिमें इस बछड़ेके प्राण लेना ही धर्म है, अहिंसा है। मैंने साथियोंसे सलाह की। उनमे से अनेकने मेरी रायका समर्थन किया। फिर सारे आश्रमके लोगोसे बातें की। उनमें से एक भाईने पर्याप्त तर्क देकर इसका सख्त विरोध किया और उसकी सेवा करनेका भार स्वयं अपने सिर लिया, और प्राणहरण किये जानेके क्षण तक वे उसकी सेवा करते रहे। उसपर मक्खियाँ न बैठने देना भी एक बड़ा काम था — आश्रमकी कई बहनोंने इस काममें उनका हाथ बँटाया।

उक्त भाईका तर्क यह था कि जो प्राण देनेकी शक्ति नही रखता, वह प्राण ले भी नहीं सकता। मुझे यह दलील इस जगह मौजूँ नहीं लगी। स्वार्थ-भावनासे किसीका प्राणहरण किया जाये तो यह दलील लागू हो सकती है। अन्तमें दीन भावसे किन्तु दृढ़तापूर्वक पास खड़े होकर मैंने डॉक्टर द्वारा जहरकी पिचकारी लगवाकर बछड़ेका प्राणहरण किया। प्राण निकलनेमें दो मिनटसे कम समय लगा होगा।

मैं जानता था कि लोकमतकी आज जो स्थिति है, उसे देखते हुए, यह काम लोगोंको पसन्द नहीं आ सकता। इसमें उन्हें हिंसा ही दिखाई देगी।

किन्तु धर्म लोकमतका विचार नहीं करता। मैंने तो यह सीखा है, और अनुभवके द्वारा अपने लिए यही ठीक भी पाया है कि जिसमें मैं धर्म देखता हूँ, उसमें दूसरा कोई अधर्म देखे तो भी उसीका आचरण करना चाहिए। यह तो पूरी तरह सम्भव है कि जिसे हमने धर्म मान लिया हो वह अधर्म भी हो, किन्तु अनेक बार अनजानमें भूल किये बिना धर्मका पता नही चलता। अगर मैं लोकमतको मानकर या किसी दूसरे भयसे जिसे धर्म मानूँ, उसका आचरण न करूँ तो धर्माधर्मका निर्णय

१. आश्रममें बीमार बछड़ेको मरवा देनेपर अहमदाबादके कुछ लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे थे और गांधीजी के पास क्रोधसे भरे सवालों और पत्रोंका तांता लग गया था। गांधीजी ने अहिंसाकी दृष्टिसे इस लेखमें उसी प्रश्नकी छानबीन की है।

मैं किसी दिन भी नहीं कर सकूँगा और अन्तमें धर्म-हीन हो आऊँगा। इन्हीं कारणों प्रीतमने गाया है कि :

प्रेमपंथ पावकनी ज्वाला भाली पाछा भागे जोने।[1]

अहिंसा-धर्मका पंथ प्रेमका पंथ है। इस पंथ पर आदमीको अकसर अकेले ही चलना पड़ता है।

मैंने ये प्रश्न अपने मनमें विचारे और मित्रोंसे इनकी चर्चा की। सवाल उठा कि जो-कुछ आप बछड़ेके बारेमें करना चाहते हैं क्या वैसा ही अपने बारेमें भी करना पसन्द करेंगे? किसी अन्य मनुष्यके सम्बन्धमें भी वही करनेको तैयार हो सकेंगे? मुझे लगा कि इन सभी मामलोंमें एक ही न्याय लागू होता है। मुझे यह स्पष्ट जान पड़ा कि यहाँ अगर 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का नियम लागू न होता हो, तो बछड़ेके प्राण नही लिये जा सकते। ऐसे दृष्टान्तोंकी कल्पना की जा सकती है जब कि मारनेमें ही अहिंसा हो और न मारनेमें हिंसा। मान लें कि मेरी लड़की स्वयं कोई राय देने लायक न हो, उसपर कोई आक्रमण करने आ जाये और मेरे पास उसे रोकनेका कोई दूसरा मार्ग ही न हो; ऐसी स्थितिमें यदि मैं अपनी लड़कीके प्राण लूँ और आक्रमणकारीकी तलवारके घाट उतर जाऊँ तो इसमें मैं शुद्ध अहिंसा देखता हूँ। बीमारीसे दुःखित प्रियजनोंको हम नहीं मारते; सो इसलिए कि उनकी सेवा करनेके साधन हमारे पास होते हैं और वे अपनी राय रखते हैं। किन्तु सेवा शक्य न हो, जीनेकी आशा ही न हो, रोगी बेहोश हो और महादुःख भोग रहा हो तो मैं उसके प्राणहरणमें लेशमात्र भी दोष नही देखता।

जिस तरह रोगीके भलेके लिए उसके शरीरमें चीर-फाड़ करके डाक्टर हिंसा नहीं करता, बल्कि शुद्ध अहिंसाका ही पालन करता है, उसी तरह इससे जरा और आगे जाकर किसीके प्राण लेना भी अहिंसाका पालन हो सकता है। यह तर्क पेश किया गया है कि चीर-फाड़में तो रोगीके अच्छे होनेकी सम्भावना है; प्राणहरण तो उस सम्भावनाको समाप्त कर देता है। किन्तु विचार करनेपर जान पड़ेगा कि दोनोंमें साध्य वस्तु एक ही है। प्राण लेने और चीर-फाड़ करने, दोनों ही बातोंमें मन्शा शरीरमें स्थित आत्माको दुःख-मुक्त करना है। शरीरमें चीर-फाड़ करके सुख शरीरको नहीं, आत्माको पहुँचाना है। आत्मारहित शरीरमें सुख-दुःख भोगनेकी शक्ति ही नहीं है।

मृत्युदण्डका जो डर आजकल समाजमें दिखलाई पड़ता है, वह अहिंसा-धर्मके प्रचारमें बहुत बाधक है। किसीको गाली देना, किसीका बुरा चाहना, किसीका ताड़न करना, कष्ट पहुँचाना, सभी-कुछ हिंसा है। जो मनुष्य अपने स्वार्थके लिए दूसरेको कष्ट पहुँचाता है, उसका अंग-भंग करता है, भर पेट खानेको नही देता, और अन्य किसी तरहसे उसका अपमान करता है, वह मृत्युदण्ड देनेवालेकी अपेक्षा कही अधिक निर्दयता दिखलाता है। जिसने अमृतसरकी गलीमें लोगोंको चींटीके समान पेटके बल

१. प्रेमका पंथ पावककी लपट है; लोग उसे देखते ही भाग खड़े होते हैं।

चलाया, अगर उसने उन्हें मार डाला होता तो वह कम घातक गिना जाता। अगर कोई यह माने कि पेटके बल रेंगवाना मृत्युदण्डसे हलकी सजा है तो मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नही है कि वह आदमी अहिसाको नही जानता। ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जब कि मनुष्यके लिए मृत्युका स्वागत करना ही अधिक उचित होता है। जो इस धर्मको नही समझते वे अहिंसाके मूल तत्त्वको नही जानते।

हरिनो मारग छे शूरानो नहि कायरनुं काम जोने।

अर्थात् धर्मका मार्ग शूरोंके लिए है, यहाँ पर कायरोंका काम नहीं है।

हमें ईश्वरसे रोज यह प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे नाथ! असत्यका आचरण करके जीनेकी अपेक्षा, मुझे मौत ही देना।'

अहिंसा-धर्मका पालन करनेवाला अपने दुश्मनसे ऐसी प्रार्थना करेगा, 'हे मेरे शत्रु! मेरा अपमान करने, मुझसे अमानुषिक कर्म करानेके बदले तू मुझे मार ही डाल तो मैं तेरा गुण गाऊँ।'

ये दृष्टान्त सामने रखनेका अभिप्राय यह बतलाना है कि प्राणहरण हमेशा हिंसा ही नही है। बछड़ेकी स्थितिमें पड़े हुए पशुके प्राण लेनेका मेल इन दृष्टान्तोसे बैठेगा या नहीं——यह जुदा विषय समझा जा सकता है, इस विषयमें मतभेद हो सकता है। यहाँ तो मैं सिर्फ अहिंसाके विषयमें प्रचलित कुछ भ्रमोंको सूचित करना चाहता हूँ।

केवल मरणमें से ही किसी आदमीको या पशुको थोड़े समयके लिए बचा लेनेमें अहिंसा है—यह मान्यता एक वहम है, और मै इससे आज देशमें घोर हिसा होते हुए देखता हूँ। एक दुःखी, महापीड़ित पशुके प्राण लेनेसे जो आघात पहुँचा है, उसके साथ मैं जब असंख्य प्रकारकी चलती हुई निर्दयताके सम्बन्धमें उदासीनताकी तुलना करता हूँ तब यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि हम अहिंसा-धर्मी हैं या अहिंसाके नाम पर जान-बूझकर या अनजाने अधर्मका आचरण करनेवाले हैं।

हमारे अविचार और भीरुताके कारण मै तो पग-पग पर हिंसा होते देख रहा हूँ। हमारे पिंजरापोल और हमारी गोशालाएँ हिसाका स्थान बन गई हैं। स्वार्थसे अंधे होकर हम रोज ही अपने पशुओंपर अत्याचार करते हैं, उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं। अगर उनके जबान हो तो वे अवश्य कहेंगे, हमें इस तरह जो कष्ट देते हो, उसके बदले हमें मार ही डालो तो हम तुम्हारा यश गायें। मैंने तो अनेक बार उनकी आँखोंमें ऐसी प्रार्थना पढ़ी है।

इस परसे यह कहा जा सकता है कि स्वार्थके वश होकर या क्रोधमें किसी भी जीवको कष्ट दिया जाये या उसके अनिष्ट या प्राणहरणकी इच्छा भी की जाये तो वह हिंसा है। निःस्वार्थ बुद्धिसे, शान्त चित्तसे, किसी भी जीवकी भौतिक या आध्यात्मिक भलाईके लिए दिया गया दुःख या उसका प्राणहरण शुद्ध अहिंसा हो सकता है। प्रत्येक दृष्टान्तका विचार करके ही यह कहा जा सकता है कि ऐसे दुःख या प्राणहरण कब अहिंसक कहे जायेंगे। अन्ततः अहिंसाकी परीक्षाका आधार भावनापर रहता है।

२

हिंसक प्राणहरण

प्रस्तुत दृष्टान्तसे उलटा एक दूसरा संकट आश्रमपर है। पहलेका निवारण सम्भव हो गया है। दूसरेका उपाय अभी प्राप्त नही हुआ है। आश्रममें बंदरोंका उपद्रव दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है। वे फलों और शाक-भाजीको बरबाद कर देते हैं। इस उपद्रवसे बचनेका उपाय मै खोज रहा हूँ। जो इस सम्बन्धमें रास्ता बतला सकते हैं, वैसे लोगोंकी सलाह ले रहा हूँ। मुझे अबतक कोई निर्दोष उपाय नही मिला है, किन्तु अनेक आदमियोंके साथ चर्चा करता हूँ और इसलिए शहरमें तरह-तरहकी अफवाहें फैली हुई हैं और मेरे पास कई कटु पत्र आये है। एक पत्रलेखक मानते हैं कि आश्रममें तीरसे बन्दरोंको घायल किया जाता है और इस कारण कितने ही बन्दर मर भी गये हैं। यह खबर झूठी है। बन्दरोंको हाँक निकालनेका प्रयत्न अवश्य किया जाता है और उसमें तीर भी काममें लाये गये हैं; किन्तु न तो किसी बन्दरको घायल किया गया, और न कोई बन्दर इस प्रकार मरा है।

घायल करनेकी बात खुद मेरे लिए असह्य है। अनिवार्य हो जाये तो उन्हें मार डालनेके बारेमें मैं चर्चा कर रहा हूँ। किन्तु यह प्रश्न बछड़ेके प्रश्नके समान सहज नही है।

बन्दरको मार भगानेमें भी मैं शुद्ध हिंसा ही देखता हूँ। यह भी स्पष्ट है कि अगर उन्हें मार डालना पड़े तो उसमें अधिक हिंसा होगी। यह हिंसा तीनों कालमें हिंसा ही गिनी जायेगी। उसमें बन्दरके हितका विचार नहीं, किन्तु आश्रमके ही हितका विचार है।

देहधारी जीवमात्र हिंसासे ही जीते हैं। उसके परम धर्मको सूचित करनेवाला शब्द आखिर नकारात्मक निकला। जगत् — यानी देहमात्र — हिंसामय है। और इसी कारण अहिंसा-प्राप्तिके लिए देहके आत्यन्तिक मोक्षकी तीव्र इच्छा पैदा होती है।

हिंसाके बिना कोई देहधारी प्राणी जी ही नहीं सकता। जीनेकी इच्छा छूटती नहीं है। मन अनशन करके देह छोड़नेकी इच्छा नही करता। देह अनशन करे और मन अशन तो यह मिथ्याचार कहलायेगा, और आत्माको अधिक बन्धनमें डालेगा। ऐसी करुणाजनक स्थितिमें रहकर जीनेके लिए विवश जीव भला क्या करे? कैसी और कितनी हिंसाको अनिवार्य गिने? समाजने कुछएक हिंसाओंको अनिवार्य गिनकर व्यक्तिको विचार करनेके भारसे मुक्त कर दिया है। तो भी प्रत्येक जिज्ञासुके लिए अपना क्षेत्र समझ कर उसे नित्य छोटा करते जानेका प्रयत्न तो बच ही रहता है।

इस दृष्टिसे खेतीके व्यापक धंधेमें जो हिंसा है उसकी मर्यादाका निश्चय अहिंसा-धर्मका पालन करनेकी इच्छा रखनेवाले किसानको करना है। मै अपनेको किसान मानता हूँ। मेरे सामने कोई सीधी लीक नहीं है। प्रत्येक किसान बिना विचारे किसी-न-किसी तरहसे अपना काम चला ही लेता है। क्योंकि शिष्ट-वर्गने उसकी अवगणना की है, उसके जीवनमें भाग नही लिया, दिलचस्पी नहीं ली और इसलिए किसान अपने जीवनमें उत्तरोत्तर उन्नति नहीं कर सके।

इसलिए मेरे जैसे किसानको तो अपना मार्ग ढूँढ़कर, दूसरे किसान भाइयोंके लिए हो सके तो मार्गदर्शक बनना ही है।

इस तरह खेतीपर लागू होनेवाले जो अनेक प्रश्न नित्य पैदा होते हैं, उनमें से बन्दरोंका अटपटा प्रश्न भी एक है।

किन्तु उसे जानसे मारनेमें हिंसा तो है ही; इसलिए यह अन्तिम कार्रवाई करनेके पहले जितने लोगोंकी सलाह ली जा सके, मैं उतने लोगोंकी सलाह ले लेना चाहता हूँ। 'नवजीवन' के पाठकोंमें से अगर कोई अनुभवी सज्जन आश्रमको रास्ता बतला सकेंगे तो वे उपकार करेंगे।

मैंने सुना है कि गुजरातके किसान ऐसे लोग रख देते है कि उन्हें देखते ही डर-कर बन्दर भाग जाते है और किसान इस तरह यह मानते है कि हम अन्तिम हिंसासे बच गये। यह मुमकिन है, किन्तु यदि न हो तो उसके बाद जानसे मारना ही रह जाता है। मैं जानता हूँ कि बन्दर ऐसे विचक्षण होते है कि जब वे समझ लेते है कि उन्हें कोई मारेगा नहीं तब वे गोलियाँ छोड़ते रहो तब भी नही डरते, उलटे मुँह चिढ़ाने और खिखियाने लगते है। इसलिए सलाह देनेवाले कोई सज्जन यह न मानें कि इस उपद्रवसे खेतीको बचानेका ऐसा कोई भी रास्ता है जिसपर आश्रमने सोचा-विचारा नही है। अभीतक जितने उपाय सामने आये है, उन सबमे हिंसा तो है ही। यदि विना हिंसाके इस उपद्रवसे खेतीको न बचाया जा सके तो यही विचार करना रह जायेगा कि कमसे-कम कितनी हिंसा करके उसे बचाया जा सकता है। इसमें मैं अनुभवी सज्जनोंकी मदद चाहता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-९-१९२८

३५५. कामरोगका निवारण

थर्स्टन नामक लेखककी विवाह-सम्बन्धी एक नई पुस्तकके[1] महत्त्वपूर्ण भागका अनुवाद अन्यत्र दिया जा रहा है। हरएक स्त्री-पुरुषको उसका ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिए। हमारे यहाँ १५ वर्षके बालकसे लेकर ५० वर्षतक के पुरुष, और इसी उम्रकी, या इससे भी छोटी बालिकासे लेकर ५० वर्षतक की स्त्रीके मनमें यह विचार रूढ़ है कि विषय-भोगके बिना रहा ही नहीं जा सकता। इसलिए दोनों ही त्रस्त रहते हैं। एक-दूसरेका विश्वास नही करते। स्त्रीको देखकर पुरुषका मन हाथसे जाता रहता है और पुरुषको देखकर स्त्रीकी भी यही दशा हो जाती है। इससे कितने ही ऐसे रिवाज रूढ़ हो गये है जिनके फलस्वरूप स्त्री-पुरुष रोगी, निर्बल और निरुत्साही नजर आते है और जिनके कारण हमारी जिन्दगी इतनी हलकी हो गई है, जैसी मनुष्यके लिए उचित नहीं है।

१. **थर्स्टन्स फिलॉसफी ऑफ मैरेज**; देखिए "चौंकानेवाले निष्कर्ष", २७-९-१९२८।

ऐसे वातावरणमें रचे गये शास्त्रोंमें भी इसी प्रकारकी आज्ञाएँ और मान्यताएँ देखनेमें आती हैं, जिनके परिणामस्वरूप स्त्री-पुरुषको परस्पर ऐसा व्यवहार करना पड़ता है, मानों वे एक-दूसरेके दुश्मन हों। क्योंकि एकको देखकर दूसरा विकारवश हो जाता है या उसे ऐसा होनेका भय रहता है।

इस मान्यता और उसके आधारपर गढ़े गये रिवाजोंके कारण या तो विषय-भोगमें या उसके विचारमें जीवन व्यतीत हो जाता है और अन्तमें संसार विषके समान कड़वा लगने लगता है।

वास्तविक रीतिसे तो मनुष्यमें विवेकबुद्धि होनेसे उसमें पशुकी अपेक्षा अधिक त्यागशक्ति और संयम होना चाहिए। मगर तो भी हम रोज ही यह अनुभव करते हैं कि पशु नर-मादाकी मर्यादाका कायदा जिस अंशतक पालता है, उस अंशतक मनुष्य नहीं पालता। सामान्य तौरपर स्त्री-पुरुषके बीच माता-पुत्र, बहन-भाई या पुत्री-पिताके समान सम्बन्ध होना चाहिए। यह तो स्पष्ट ही है कि दाम्पत्य सम्बन्ध अपवाद रूपमें ही हो सकता है। किसी पुरुषको स्त्रीसे या किसी स्त्रीको पुरुषसे तभी भय होनेकी परिस्थिति बनती है जब भाईको बहनसे या बहनको भाईसे डरनेकी नौबत आ जाये। आज तो परिस्थिति यह है कि भाई-बहनके बीच संकोच रखा जाता है और रखना सिखलाया जाता है।

इस दयनीय स्थिति अर्थात् विषय-वासनाके दूषित वातावरणसे निकल जाना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे बीच ऐसी मिथ्या भावनाओंने जड़ जमा ली है कि इस वासनासे उबरना असम्भव है। अब ऐसा दृढ़ विश्वास हममें उत्पन्न होना चाहिए कि इस मिथ्या भावनाको निर्मूल कर डालनेमें ही पुरुषार्थ है और ऐसा करना सम्भव भी है।

ऐसा पुरुषार्थ करनेमें थर्स्टनकी इस छोटी-सी पुस्तकसे बहुत मदद मिलेगी। इस लेखककी यह शोध मुझे तो ठीक जान पड़ती है कि विषय-वासनाके मूलमें आजकलकी विवाह-सम्बन्धी मान्यता और उसके आधारपर रचे गये रिवाज हैं, जो पूर्व-पश्चिम सभी स्थानोंमें व्याप्त हैं। स्त्री-पुरुषका रातको एकान्तमें, एक कमरेमें और एक बिस्तर पर सोना दोनोंके लिए घातक है, और विषय-वासनाको व्यापक और स्थायी करनेका प्रचण्ड उपाय है। एक ओर तो संसारके सभी दम्पति ऐसा व्यवहार करें और दूसरी ओर धर्मोपदेशक और सुधारक संयमका उपदेश दें तो यह आसमानमें पैबन्द लगानेके समान है। ऐसे विषय-वासनापूर्ण वातावरणमें संयमके उपाय निरर्थक हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? शास्त्र पुकार-पुकारकर कहते है कि विषय-भोग केवल प्रजोत्पत्तिके लिए ही किया जा सकता है। इस आज्ञाका उल्लंघन प्रतिक्षण होता है और इस वजहसे रोग हो जानेपर उनके दूसरे कारण ढूँढे जाते है। यह तो वैसी ही बात हुई कि बगलमें लड़का और शहरमें ढिंढोरा। अगर दीयेके समान ऐसी साफ बात समझ ली जाये तो:

१. पति-पत्नी आजसे प्रतिज्ञा करें कि हमें एकान्तमें सोना ही नही है और न दोनोंकी इच्छाके बिना प्रजोत्पत्ति करनी है। यथासम्भव दोनोंको दो जुदा कमरोंमें

सोना चाहिए। गरीबीके कारण जहाँ यह नितान्त असम्भव हो, वहाँ स्त्री-पुरुषको दूर और अलग-अलग बिस्तरों पर बीचमें किसी मित्र या सगे-सम्बन्धीको सुलाकर सोना चाहिए।

२. समझदार माँ-बाप अपनी लड़कीको ऐसे घरमें देनेसे साफ इनकार कर दें जहाँ लड़कीको अलग कमरा और अलग बिस्तर न मिल सके। विवाह एक तरहकी मित्रता है। बालकोंको ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि स्त्री-पुरुष सुख-दुःखके साथी होते है, किन्तु दम्पतिको विवाह होनेके बाद पहली ही रातको विषय-भोगमें पड़कर जिन्दगी बरबाद करनेकी नीव नही खोदनी चाहिए।

थर्स्टनकी शोधको स्वीकार करनेके पीछे जो नई, आश्चर्यकारक, कल्याणकर, शान्तिप्रद कल्पना छिपी हुई है, उसपर मनन करना योग्य है और उसके अनुसार विवाह-सम्बन्धी चालू विचारोंमें हेरफेर होना चाहिए – यह समझना उचित है। ऐसा होने पर ही इस शोधका लाभ मिलेगा। जो इस शोधका महत्त्व समझ गये हों, वे अगर बाल-बच्चेवाले हों तो अपने लड़कोंकी तालीम और घरका वातावरण बदलें।

विषय-भोग भोगते हुए भी प्रजोत्पत्तिका निवारण करनेके जिन कृत्रिम उपायोंका भयंकर प्रचार आज चल रहा है, वह हानिकर है, यह भी थर्स्टनके निष्कर्षोंमें निहित है; किन्तु इतनी-सी बात समझनेके लिए थर्स्टनकी साक्षी या उसके समर्थनकी जरूरत नही होनी चाहिए। इन उपायोंका प्रचार हिन्दुस्तानमें हो सकता है, यही आश्चर्यकी बात है। यह बात मेरी अक्लमें नहीं आ पाती कि शिक्षित आदमी हिन्दुस्तानके शक्तिहीन वातावरणमें ऐसे उपायोंकी सलाह किस तरह देते है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-९-१९२८

३५६. गुजरातमें संगीत

पाठक जानते ही होंगे कि अहमदाबादमें कुछ वर्षोंसे संगीत-मण्डल काम कर रहा है। इस मण्डलके अध्यक्ष डॉ० हरिप्रसाद देसाई हैं और मन्त्री हैं संगीत-शास्त्री नारायण मोरेश्वर खरे। यह मण्डल गुजरातमें धीरे-धीरे अपना काम फैलाता जा रहा है। संगीतमें गुजरातका दरजा बंगाल, महाराष्ट्र और दक्षिणी प्रान्तोंकी अपेक्षा बहुत नीचा है, इस बातको सभी गुजराती जानते हैं और उन्हें जानना भी चाहिए। गुजराती पुरुष और स्त्रियाँ संगीत नही जानते, इतना ही नही, बल्कि गुजराती बालक और बालिकाएँ भी एक स्वरमें कोई सामान्य-सी कविता भी नहीं गा सकते। इसलिए यही माना जायेगा कि गुजरातमें संगीतके प्रचारकी आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें मतभेद नहीं हो सकता। फिर, जिस संगीतका प्रचार संगीत-शास्त्री खरे करते हैं वह नीतिवर्धक और ईश्वरकी प्रार्थनासे पूर्ण है।

यद्यपि अहमदाबादमें इस संस्थाको कुछ सहायता मिल जाती है; किन्तु यह जितनी चाहिए उतनी नही है। लोगोंने अभी इसकी आवश्यकताका ठीक अनुभव

नहीं किया है, अथवा कहना चाहिए कि अभी लोगोंमें उसका प्रचार जितना होना चाहिए उतना नहीं हुआ है। डॉ० हरिप्रसाद और संगीत-शास्त्री खरे यह चाहते है कि आर्थिक सहायताकी प्राप्ति और लोगोंमें इस संगीतके प्रति रुचिकी वृद्धि दोनों साथ-साथ चलें। चूँकि इस कार्यके लिए धनी लोगोंसे अभी कम सहायता प्राप्त हो रही है, इसलिए मैं उनकी प्रकाशित योजनाका निम्न अनुच्छेद उद्धृत करता हूँ :[1]

मुझे आशा है कि अहमदाबादके लोग इस योजनाका स्वागत करेंगे और तुरन्त सौ व्यक्ति अपने नाम सदस्योंमें लिखा देंगे। विशेष विवरणके जिज्ञासु शास्त्रीजी से आश्रमके पते पर पत्र-व्यवहार करें।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३०-९-१९२८

३५७. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

३० सितम्बर, १९२८

प्रिय मोतीलालजी,

महादेवने मुझे आपका सन्देश दिया। मगर निश्चित रूपसे कहनेको कुछ नही था और इधर आश्रमके सिलसिलेमें कामका बोझ बहुत अधिक रहा, इसलिए अबतक आपको पत्र नहीं लिख सका।

महादेवने बताया है कि आप चाहते है, मै अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें शामिल होऊँ। मगर मैं वहाँ क्या करूँगा? कर भी क्या सकता हूँ? मैं जानता हूँ कि राष्ट्रीय कार्यका वह हिस्सा भी उपयोगी है, लेकिन अब उसमें मेरा मन जमता नहीं और उस कार्यकी ओर मेरा अधिकाधिक झुकाव होता जा रहा है, जिसे संक्षेपमें रचनात्मक कार्यके नामसे जाना जाता है। मेरा मतलब सिर्फ खादीसे ही नहीं है; क्योंकि मै जितना ध्यान दे सकता हूँ उतना ध्यान उन दूसरे रचनात्मक कार्योंकी ओर भी दे रहा हूँ जिनका कांग्रेसके कार्यक्रममें उल्लेख भी नहीं है और मैं देखता हूँ कि हर जगह मनोबलको जगानेकी आवश्यकता है और जिस हदतक उसे जगाया जायेगा, उसी हदतक हमारी प्रतिरोधकी शक्ति बढ़ेगी। साफ दीख रहा है कि लखनऊका सर्वसाधारणपर कोई असर नहीं हुआ। जिस गुजरातमें लोग पहले हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेका नाम भी नही जानते थे, वही आज उनके बीच दंगे हो रहे हैं। अभी-अभी खबर मिली है कि कल आश्रमके एक बहादुर नौजवानको दंगाइयोंने लगभग खत्म ही कर दिया था। वह प्रेसकी इमारतमें था कि तभी गुंडे लोग उसमें घुस आये, उसमें जो कोई भी था सबको अन्धाधुन्ध मारा-पीटा और फिर इमारतमें

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें कोई एक सौ सदस्य बनानेके पश्चात् प्रति सप्ताह संगीत-समारोह करनेका प्रस्ताव था।

आग लगा दी। गोधराके एक प्रसिद्ध वकीलको सांघातिक चोट लगी, और बम्बई कौंसिलके सदस्य वामनरावपर, जिन्हें आप भी जानते हैं, बहुत मार पड़ी। हर दिन किसी-न-किसी स्थानसे दंगेके नये-नये समाचार आते ही रहते हैं।

मैं जानता हूँ कि इस सबके बावजूद संविधान बनानेका काम पूरा करना ही है। मैं आपको सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि इन दंगोंने मुझे बहुत अंशोमें ऐसा काम करने लायक छोड़ा ही नही हैं। सच तो यह है कि आप इजाजत दें तो मैं कांग्रेस-अधिवेशनमें भी न शामिल होनेकी सोच रहा हूँ। इसका दोहरा कारण है: मौजूदा वातावरण और कलकत्ता कमेटीका यह निर्णय कि प्रदर्शनीका आयोजन मद्रासवाली प्रदर्शनीके[1] ढंगपर किया जाये। अखिल भारतीय चरखा संघकी परिषद्ने इस प्रदर्शनीसे अलग रहनेका निश्चय किया है। प्रदर्शनीका आयोजन मद्रासवाली प्रदर्शनीके ढंगपर करनेका विचार हालाँकि मुझे बहुत गलत जान पड़ता है, फिर भी मैं सार्वजनिक रूपसे उसकी आलोचना नहीं करना चाहता। यदि मैं कलकत्ता जाता हूँ तो उससे या तो कमेटीकी स्थिति अटपटी हो जायेगी या अपनी चुप्पीके कारण मैं ही अट-पटापन महसूस करूँगा।

तो ये हैं वे बातें जिनसे आजकल मेरा मन परेशान है। अब आप ही निर्णय कीजिए: अव्वल तो यह कि क्या आप चाहते हैं, मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी कलकत्तेकी बैठकमें शामिल होऊँ, और दूसरे, क्या आपकी इच्छा यह है कि मैं दिसम्बरमें कांग्रेस अधिवेशनमें आऊँ?

आपने और विट्ठलभाईने तो शिमलामें अद्भुत कार्य किया।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३६९५)की फोटो-नकलसे।

३५८. भेंट: डब्ल्यू० डब्ल्यू० हॉलसे[2]

[अक्टूबर, १९२८के पूर्व]

श्री हॉल बताते हैं कि उन्होंने किस प्रकार श्री गांधीसे एक-के-बाद-एक कई प्रश्न पूछे, जिनमें से पहलेका सम्बन्ध 'पेशेके चुनाव' से था। श्री हॉल जानना चाहते थे कि वह कौन-सा पेशा है जो "समाजके लिए सबसे अधिक कल्याणप्रद माना जाये।" उत्तरमें श्री गांधीने कहा:

असली बात यह नही है कि समाजको अपनी शक्तिका पूरा लाभ देनेके लिए कौन-सा पेशा अपनाया जाये। मुख्य चीज तो आत्म-दर्शन है। . . . पेशेके चुनावमें

१. देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ ४५५-५६।

२. **नॉर्थ अमेरिकन रिव्यूके** डब्ल्यू० डब्ल्यू० हॉल। गांधीजी से उन्होंने अहमदाबादमें आश्रममें मुलाकात की थी।

मनुष्यको सबसे अधिक ध्यान जीवनके आत्मिक पक्षका रखना चाहिए। इस बातको सर्वोपरि महत्त्व देते हुए उसे अपनी शक्तियोंका जायजा लेना चाहिए, यह तय करना चाहिए कि जिस समाजमें वह रहता है उस स्थानीय समाजकी विशिष्ट आवश्यकताओंकी पूर्तिमें वह कौन-सा काम करके सबसे अधिक सहायक हो सकता है, और फिर उसे अपनी शक्ति-भर उन आवश्यकताओंकी पूर्तिमें लग जाना चाहिए।

प्र० हमारे आजके कार्यक्रममें शिक्षाके क्षेत्रमें धर्म और चरित्रको क्या महत्त्व दिया जाना चाहिए?

शिक्षा, चरित्र और धर्म इन तीनोंको समानार्थक शब्द मानना चाहिए। सच्ची शिक्षा चरित्र-निर्माणमें बराबर सहायक होती है और ऐसा कोई भी सच्चा धर्म नही है जो चरित्रके निर्माणपर जोर न दे। कैसी शिक्षा दी जाये, यह बात तय करते समय समग्र जीवनको ध्यानमें रखकर चलना चाहिए। बहुत-से विषयोंको कंठाग्र कर लेना और बहुत-सी किताबें पढ़ लेना शिक्षा नही है। उन तथाकथित शिक्षा-पद्धतियोंमें मेरा कोई विश्वास नही है, जो चरित्र-बलसे रहित विद्वान् तैयार करती है।

पाश्चात्य राष्ट्रोंके लिए सैन्यवादका उपयुक्त विकल्प क्या हो सकता है?

सैन्यवादका मतलब तत्त्वतः अहंका पोषण है। इसलिए मै चाहूँगा कि इसके स्थानपर आत्मनिग्रहको अपनाया जाये।

लेकिन 'आत्मनिग्रह' का मतलब क्या है?

इसका मतलब वही है जो ईसा मसीहने लगाया था। अर्थात् यह कि "जो अपना जीवन उत्सर्ग कर देगा वही उसे प्राप्त भी करेगा।"

आज जो दुनिया-भरमें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंके बीच घोर विरोधका वातावरण दिखाई दे रहा है, उससे निकलनेका क्या उपाय है?

उदारता। हमें दूसरोंके प्रति सहिष्णुता और सम्मानका व्यवहार करना सीखना चाहिए। प्रत्येक धर्म किसी-न-किसी सीमातक मनुष्यकी आध्यात्मिक आवश्यकताकी पूर्ति करता है। अगर किसी धार्मिक कृत्य, उदाहरणके लिए घंटा बजाने, से मुझे खीझ होती हो तो मुझे उसको बन्द करवा देनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए, बल्कि यह समझना चाहिए कि यह दूसरे लोगोंकी एक आवश्यकताकी पूर्ति करता है और ऐसा सोचकर मुझे उस स्थानसे दूर हो जाना चाहिए जहाँ घंटा बजाया जाता है।

मैने इस प्रश्न पर अपने विचार सार्वजनिक रूपसे व्यक्त करना बन्द कर दिया है। फ्रांसीसी भाषामें यह कहावत है कि 'अपनी सफाई देनेका मतलब अपनेको दोषी बताना है।' सो मैं मानता हूँ कि मेरा सन्देश दूसरोंको बराबर उपदेश देते रहनेसे जितना प्रभावकारी होगा, उससे कही अधिक प्रभावकारी मेरे चुप रहनेसे साबित होगा। लेकिन जहाँ सत्य और न्यायका प्रश्न है, वहाँ निराश होनेकी कोई जरूरत नही है। दुनिया ठीक रास्तेपर ही चल रही है। जब आप यह विचार करेंगे कि सम्पूर्ण कालके सन्दर्भमें हमारा मर्त्य जीवन छोटे कतरेके समान है तो आप यह समझ

सकेंगे कि जब ऊपरसे यह दिखाई देता है कि दुनिया प्रगति नहीं कर रही है, तब भी शायद व प्रगति कर रही हो। मैं परम आशावादी हूँ।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन रिव्यू, अक्टूबर, १९२८

३५९. भाषण: एनी बेसेंटके जन्म-दिवसपर, अहमदाबादमें

१ अक्टूबर, १९२८

यहाँ आज शाम गांधीजी की अध्यक्षतामें डॉ० एनी बेसेंटकी बयासीवीं वर्षगाँठ मनाई गई। अनेक वक्ताओंने अत्यन्त भावपूर्ण शब्दोंमें उनको सम्मानांजलियाँ अर्पित कीं।

गांधीजी ने कहा कि डॉ० बेसेंटकी वर्षगाँठ मनानेका सबसे उचित तरीका यही होगा कि लोग उनके पद-चिह्नोंपर चलें। उन्होंने सदा ही अपनी कथनीको करनीमें परिणत किया है और उनमें अपने विश्वासोंके अनुरूप कर्म करनेका साहस है। उनके उद्‌गारोंमें अदम्य इच्छा और अटल संकल्पके दर्शन होते हैं।

गांधीजी ने कहा कि लोगोंको डॉ० बेसेंटके जीवनकी सादगी और आत्मविश्लेषणकी क्षमताका अनुसरण करना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा:

यदि आप छोटी-छोटी बातोंमें भी उनकी ही तरहकी इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्पसे काम लें तो आप बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। भारत स्वराज्य चाहता है, लेकिन क्या भारत उसके लिए उपयुक्त बन पाया है? भारतमाता बेड़ियों में जकड़ी हुई है और जब आप उन बेड़ियोंको तोड़कर स्वयंको स्वराज्यके उपयुक्त बना लेंगे, तभी आपको स्वराज्य मिल पायेगा और तब संसारकी कोई भी शक्ति उसे नही रोक सकेगी।

धर्म और राजनीतिका अलगाव दूर करनेका काम डॉ० बेसेंटने ही किया है। धर्म-रहित राजनीति शवके समान है। धर्मके बिना स्वराज्य किसी कामका नहीं होगा। गांधीजी ने अन्तमें कहा कि डॉ० बेसेंटने ही भारतको एक गहरी निद्रासे जगाया। डॉ० बेसेंटके लिए संसारमें कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। उनके जीवनकी मुख्य विशेषताएँ हैं -- दृढ़ संकल्प, सादगी, त्याग और तपश्चर्या। गांधीजी ने भारतके नवयुवकोंसे जोरदार अपील की कि वे अपने जीवनमें इनपर आचरण करनेकी प्रतिज्ञा करें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २-१०-१९२८

३६०. पत्र : श्रीप्रकाशको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय श्रीप्रकाश,

आपका सूत पहलेसे अच्छा है, लेकिन अब भी उस दर्जेका नही हो पाया है जैसा होना चाहिए। आपको कृपलानीके आश्रमसे[1] किसीको बुलाना चाहिए जो आपको सही तरीका बतलाये या यहाँ आकर सीख लीजिए।

बनारसकी घटना[2] मैंने जान-बूझकर छोड़ दी है, उसी प्रकार जिस प्रकार मैंने अपने जीवनके अन्य कई दिलचस्प अध्याय छोड़ दिये हैं। सच तो यह है कि मैं जैसे-जैसे इन अध्यायोंको लिखता जाता हूँ, मेरा संकोच भी बढ़ता जाता है। इसलिए कि उनमें भाग लेनेवाले मुख्य पात्र इस समय जीवित हैं और वे जनताके काफी जानेमाने व्यक्ति हैं। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि अब आगेके अध्याय लिखना छोड़ ही दूँ, पर १९२० के विशेष अधिवेशनके[3] काल तक पहुँचनेसे पहले इसे छोड़ा भी नही जाता। वैसे अपने तई मैं बनारसकी घटनाको अपने जीवनकी गर्व करने योग्य घटनाओंमें लिखता हूँ। मैं वास्तवमें उसके लिए तैयार नहीं था और आज तक मै नहीं समझ सका हूँ कि उस परीक्षासे सफलताके साथ निकलनेकी शक्ति मुझमें आ कहाँसे गई थी। अपने जीवनकी इस तरहकी बहुत सारी घटनाओंके बारेमें यही उक्ति दोहरा सकता हूँ – 'तुझमें जो कमियाँ थीं, उन्हें तेरी आस्थाने पूरा किया।'

आपका भेजा हुआ चेक यथासमय मिल गया।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत श्रीप्रकाश
सेवाश्रम
बनारस छावनी

अंग्रेजी (एस० एन० १३५३८)की माइक्रोफिल्मसे।

१. गांधी आश्रम, बनारस।

२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ २१७-१८। अपने २६ सितम्बरके पत्रमें श्रीप्रकाशने लिखा था: "आपकी **आत्मकथा**में मैं एक अध्यायकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकतासे कर रहा था। मेरा मतलब उस प्रसंगसे है जब आपने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयका शिलान्यास किया था और जब आपके भाषणमें यह एक वाक्य सुनकर कि "राजा-महाराजाओ! आप सब यहाँसे जाकर जवाहरात बेच दीजिए", सभी राजा-महाराजा वहाँसे उठकर चल दिये थे। इसकी "शिकायत" मैंने सेठ जमनालालसे की। उन्होंने आपको लिखनेको कहा। अब मैं इस आशासे आपको लिख रहा हूँ कि वह सुन्दर अध्याय अब भी शामिल किया जा सके और वह महान घटना सदाके लिए लिपिबद्ध हो जाये।"

३. कलकत्तामें आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका विशेष अधिवेशन।

३६१. पत्र : प्रफुल्लचन्द्र रायको

२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय डॉ० राय,

भारतकी गरीबीके बारेमें प्रोफेसर सी० एन० वकील द्वारा 'यंग इंडिया' में लिखी गई लेख-माला[1] साथमें भेज रहा हूँ। प्रोफेसर वकीलने मुझे लिखा था कि आप यह लेख-माला देखना चाहते हैं। ये लेख जिन अंकोंमें छपे थे, उन सबके आसानीसे उपलब्ध न होनेके कारण इनके संग्रहमें कुछ समय लग गया।

आशा है, आप पूर्णतः स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,

डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय,
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३५३९)की फोटो-नकलसे।

३६२. पत्र : नानकचन्दको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय नानकचन्द,

आपका पत्र पाकर हर्षित हुआ। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप स्वस्थ हैं। अब आपको बलिष्ठ, स्वस्थ और अधिक दमदार बनना चाहिए। वहाँ आपको जीवनकी सभी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, पर आपको बड़ी सख्तीके साथ उनसे अपने-आपको वंचित रखना चाहिए और यहाँ आनेकी बात सोचनेसे पहले मनमें दृढ़ संकल्प करना चाहिए और शरीरको बलिष्ठ बना लेना चाहिए। आश्रमके जीवनका कुछ अनुभव आप कर ही चुके हैं। आपको जो भी चीज ज्यादा अच्छी लगी हो, उसपर आप अपने यहाँ अमल कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत नानकचन्द, बी० ए०
मार्फत-शामलाल, एडवोकेट
रोहतक

अंग्रेजी (एस० एन० १३५४०)की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १२-७-१९२८ का उप-शीर्षक "क्या हम और भी गरीब होते जा रहे हैं?"

३६३. पत्र : एनी बेसेंटको

२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय डॉ० बेसेंट,

लखनऊके सर्वदलीय सम्मेलनके प्रतिवेदनके समर्थनके लिए गठित मद्रास-समितिके मन्त्रीकी हैसियतसे आपका हस्ताक्षरित ज्ञापन मुझे मिल गया है। आपके इस प्रयत्नके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। मै जानता हूँ कि यह प्रयत्न बड़ा ही समय-साध्य और श्रम-साध्य होगा, परन्तु मुझे पूरा भरोसा कि प्रतिवेदनको लोकप्रिय बनानेमें जो भी समय और श्रम लगाया जायेगा वह व्यर्थ नही होगा। कारण यह है कि जब सभी दलोंकी ओरसे एक सर्वसम्मत दस्तावेज आखिर तैयार कर लिया गया है तब यदि जनताने इस प्रतिवेदनका समर्थन नही किया तो वह एक भारी राष्ट्रीय दुर्भाग्य ही होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० बेसेंट,
अडयार, मद्रास

[पुनश्च :]
यह दिन बार-बार आये।[1]

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३६९९) की फोटो-नकलसे।

१. डॉ० एनी बेसेंटका बयासीवाँ जन्म-दिवस १ अक्टूबरको पड़ा था।

३६४. पत्र : कल्याणजी मेहता और कान्तिको

[२ अक्टूबर, १९२८][1]

भाईश्री कल्याणजी,

तुम्हारा और कान्तिका पत्र मिला। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। तुमने दूध देकर ठीक किया। वैरको हमें प्रेमसे ही जीतना है। कान्तिके सम्बन्धमें मुझे विस्तृत समाचार देते रहना।

चि० कान्ति,

तुमने खूब किया। अपने मनको ऐसा ही कोमल बनाये रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० २६८१)की फोटो-नकलसे।

३६५. कल्याणजी मेहताको लिखे पत्रका अंश

[३ अक्टूबर, १९२८को या इसके पूर्व][2]

महात्मा गांधीने सूरतके एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता, श्री कल्याणजीको सूरतके दंगोंके बारेमें एक पत्र लिखा है। गांधीजी ने उसमें कहा है कि दंगेमें (कांग्रेसी स्वयंसेवक) कावितीके[3] जख्मी हो जानेका उनको कोई दुःख नहीं है, पर वे ऐसे दंगोंमें सहायताके तौरपर कुछ कर सकनेकी असमर्थतापर दुःखी हैं। गांधीजी लिखते हैं:

परन्तु मेरा जीवन तो इसी एक आशापर टिका हुआ है कि ऐसी दुर्बलतासे ही नया बल पैदा होगा।

गांधीजी ने श्री कल्याणजीसे अनुरोध किया है कि वे उनको हर रोज पूरा विवरण भेजते रहें और मुसलमानोंके प्रति अपने मनमें भी कोई आक्रोश पैदा न होने दें। अन्तमें गांधीजी लिखते हैं:

१. डाककी मुहरसे।

२. यह समाचार "अहमदाबाद, ३ अक्टूबर"की तिथि-पंक्तिके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

३. सम्भवतः 'कान्ति'; देखिए पिछला शीर्षक।

लोग जब पागल हो जाते हैं, इसी तरहके काम करने लगते हैं। पर यदि हम इतना ही करें कि स्वयंको उत्तेजित न होने दें तो हम किसी दिन सचमुच कुछ हासिल कर लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ५-१०-१९२८

३६६. पत्र : मीराबहनको

साबरमती

३ अक्टूबर, १९२८

चि० मीरा,

तुम्हारा तार मिला। पोस्टकार्ड भी मिल गया था। तुमको मेरा पत्र मिला या नहीं? मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुम 'खूब चंगी हूँ' ऐसा तार भेज सकी। मैं इस बारेमें थोड़ा चिन्तित था। कान्ति पारेखके बारेमें प्रभुदास तुमको सब-कुछ बता देगा। उसे बतला देना कि मुझे उसका पत्र मिल गया है। मैं आज तो उत्तर नहीं दे सकूँगा। उद्योग मन्दिर वाला प्रस्ताव बैठकमें स्वीकृत तो हो गया, पर अभी काफी-कुछ करनेको पड़ा है।

सस्नेह।

बापू

श्रीमती मीराबाई
मार्फत – प्रभुदास गांधी
शैल खादी-शाला
अलमोड़ा (सं०प्रा०)

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३१०) से। सौजन्य : मीराबहन; जी० एन० ८२०० से भी।

३६७. पत्र : बबन गोखलेको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
३ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपको मालूम है कि दलित वर्गके हमारे मित्रगण दलित वर्गके बच्चोके लिए एक भवन, एक छात्रावास और एक पाठशाला भी बनानेका विचार कर रहे है। वे मेरे पास आये थे; मैं उन दिनो जुहूमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहा था। मैंने उनसे कहा था कि यदि वे खुद कुछ धन एकत्र कर लें, तो मै बड़ी खुशीसे उनके मामलेमें दिलचस्पी लूँगा। मैंने यह भी कहा था कि मै स्वयं भी उसके लिए लोगोंसे कुछ धन माँगूँगा। उन्होंने कई प्रयत्न किये, जिनमे उनको कमोबेश सफलता भी मिली। उन्होंने इस कामके लिए आवश्यक न्यास-पत्रोंके मसौदोंकी कई नकलें भी दिखाई। सबसे हालके न्यास-पत्रकी नकल मै साथमें भेज रहा हूँ। दो न्यासी तो खुद उन्हींके प्रतिनिधि होंगे, लेकिन शेषके नाम सुझानेका भार उन्होंने मुझपर छोड़ दिया है। उन दो न्यासियोंके नाम है: श्रीयुत रामचन्द्र सातवजी निकलजे और श्रीयुत जयराम ताबाजी गायकवाड़। मै चाहता हूँ कि आप इस मामलेमें दिलचस्पी लें। आप स्वयं ही पूरे मामलेका अध्ययन करें, जाकर स्थान देख लें और सभी प्रमुख सदस्योंसे मिल लें और तब मुझे परामर्श दें। मै यह भी चाहूँगा कि आप न्यासके मन्त्री और एक न्यासी भी बनें। अन्य सदस्योंके नाम आप मुझे सुझाएँ। मैं चाहूँगा कि आप सर पुरुषोत्तमदाससे मिलकर उनसे पूछे कि क्या उन्होने ५,००० रुपये देनेका वादा किया है और क्या वे यह राशि देकर एक न्यासी बनना पसन्द करेंगे। कुछ और नाम भी मुझे सुझाइए। मैं अपनी ओरसे राष्ट्रीय स्कूलके श्रीयुत गोकुलभाई भट्ट और श्री किशोरलाल मशरूवाला, श्रीमती अवन्तिकाबाई गोखले, सेठ जमनालाल बजाज और सर्वश्री जेराजाणी तथा यशवन्तप्रसाद देसाईके नाम सुझाऊँगा। यही न्यास काम-काजी किस्मका रहेगा। सर पुरुषोत्तमदास न्यासके अध्यक्ष बन सकते है। यदि श्री जयकर शामिल हो जायें, तो बड़ा अच्छा रहेगा। लेकिन आप चाहें तो इन सभी नामोंको बिलकुल छोड़कर, अपनी ओरसे दूसरे नाम भी सुझा सकते है। मै रामेश्वर बिड़लाकी बात सोच रहा हूँ। वे शायद न्यासी बननेको राजी न हों, हालाँकि इस तरहके कामके लिए उन्होंने मुझे काफी धन दिया है और मुझे आशा है कि अगर मैं उनको पूरी तरह आश्वस्त कर दूँ कि यह न्यास अच्छी तरह चलेगा और इसके मन्त्री आप या आप-जैसा ही कोई अन्य व्यक्ति होगा तो वे इस खास कामके लिए

भी काफी बड़ी राशि दानमें दे देंगे। और अधिक जानकारी आप यह पत्र ले जानेवाले श्रीयुत भोंसलेसे प्राप्त कर लें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बबन गोखले
गिरगाँव, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १४७३६)की माइक्रोफिल्मसे।

३६८. पत्र : फूलसिंहको

आश्रम, साबरमती
३ अक्टूबर, १९२८

भाई फूलसिंहजी,

तुम्हारा पत्र मिला। बन्दरोंके सम्बन्धमें तुम जो-कुछ जानते थे उसे तुरन्त लिख भेजनेके लिए मैं तुम्हारा आभार मानता हूँ। क्या तुमने इस बातका निश्चय कर लिया है कि दोनों स्थितियोंमें उपद्रवको सर्वथा रोका जा सकता है? अभी और बारीकीसे जाँच करना और मुझे लिखना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० २२७)की फोटो-नकलसे।

३६९. भ्रान्त मानवीयता?

श्रीयुत जमशेद मेहताकी कराचीके सबसे सत्यनिष्ठ व्यक्तिके रूपमें जो ख्याति है, वह सर्वथा उचित है। कराचीमें सार्वजनिक हितमें होनेवाला ऐसा कोई काम नहीं है जिसमें इनका हाथ न हो। वे अपना लगभग सारा समय सार्वजनिक कार्योंमें ही लगाते हैं। वे थियोसॉफीके एक सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं। उनकी देशभक्तिकी भाँति ही, उनकी ईमानदारी और उनकी वैचारिक स्वतन्त्रता निर्विवाद है। इसलिए इस तरहका कोई व्यक्ति जब निर्णयकी कोई भूल करता है या लोकमतके विरुद्ध चलता है तो उसके मित्रोंको हार्दिक दुःख पहुँचता है। मुझे लगता है कि कराची नगरपालिकाके अध्यक्ष श्रीयुत जमशेद मेहताने निर्णयकी एक ऐसी ही भूल की है। स्वयं खादी-प्रेमी होते हुए हालमें उन्होंने एक अनुपस्थित सदस्यकी ओरसे खादीके सम्बन्धमें एक ऐसा प्रस्ताव पेश करना जरूरी समझा जिसका अन्य सदस्योंने काफी डटकर विरोध किया। एक अन्य मामलेमें भी उनकी भ्रान्त धारणा सामने आई है। वह है, भारतमें यूरोपसे आई एक वस्तु — वनस्पति घीके बारेमें।

अनेक लोगोंने, जो हम दोनोंके मित्र हैं, इन विषयोंको लेकर कराचीमें चल रहे विवादकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया और मुझसे अपने विचार व्यक्त करनेका अनुरोध किया है। मेरा ख्याल है कि यह अनुरोध शायद इस आशासे किया गया है कि इस तरह वे या तो अध्यक्षके विचारोंको प्रभावित कर सकेंगे, क्योंकि अध्यक्ष महोदय जानते हैं कि मैं उनका कितना आदर करता हूँ, या यदि उनपर कोई प्रभाव नहीं डाल पायेंगे तो कमसे-कम इतना तो होगा कि वे एक लोकप्रिय अध्यक्षके — पत्रलेखकोंकी अपनी दृष्टिसे — भ्रामक विचारोंके कारण कराचीकी जनताको भ्रमित होकर गलत काम करनेसे रोक सकेंगे। मेरे विचारोंका ऐसा कोई प्रभाव पड़े या न पड़े, पर इन प्रश्नोंके बारेमें श्रीयुत जमशेद मेहताके विचारोंकी शान्त मनसे सम्मानपूर्वक छानबीन करना जरूरी है।

उनका कहना है कि उन्होंने खादी-सम्बन्धी प्रस्ताव नगरपालिकाकी भावनाओंका जायजा लेनेके लिए ही पेश किया और सदस्योंके विरोध करनेपर उसे वापस ले लिया। मैं एक समाचारपत्रसे उस प्रस्ताव और उसके सम्बन्धमें दिये गये तर्क उद्धृत कर रहा हूँ:

> **यह निगम दिनांक २ जुलाई, १९२४ का अपना प्रस्ताव, संख्या २०४, रद्द करनेका निश्चय करता है, क्योंकि हर मामलेमें हाथ-कते और हाथ-बुने खद्दरकी लाजिमी खरीद और इस्तेमाल नगरपालिकाके अलग-अलग विभागोंमें अक्सर नगरपालिकाके धनकी हर तरहसे बरबादी ही साबित हुआ है।**
>
> **अध्यक्ष महोदयने उक्त प्रस्ताव पेश करते हुए शुरूमें ही सदनको आश्वस्त किया कि वास्तवमें वे स्वयं तो खादीके प्रयोगको लोकप्रिय बनानेके पक्षमें ही हैं, लेकिन गत तीन वर्षोंमें निगमने इस कुटीर उद्योगको प्रोत्साहित करनेके लिए जो राशि खर्च की थी वह एक लाख रुपयेसे किसी कदर कम नहीं है, फिर भी उनकी ईमानदाराना राय यही थी कि निगम द्वारा दी गई खादी पहननेवाले गरीब श्रमिक कर्मचारियोंको बड़ी तंगीका सामना करना पड़ता है। खादीपर इतनी भारी राशि खर्च करके निगमके पार्षद स्वयं अपने साथ और करदाताओंके साथ भी बड़ा अन्याय कर रहे हैं, जबकि इस व्ययसे खादी पहनने-वालोंको भी कोई लाभ नहीं पहुँचता। इतना भारी कपड़ा पहनकर सड़कोंपर काम करनेके लिए भेजना मेहतरोंके साथ सचमुच निर्दयतापूर्ण व्यवहार करना है। और फिर सफेद खादी बहुत जल्द मैली हो जाती है और गरीब चपरासियोंको उसे धोनेपर काफी पैसे खर्च करने पड़ते हैं। रंगीन खादी भी प्रयोग की गई थी, पर उसका कोई लाभ नहीं दिखा। निगम तो उनको दो पोशाकें ही दे सकता है और उनको साफ रखनेके लिए उनको काफी खर्च करना पड़ता है। अध्यक्ष महोदयने बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा: "मैं आपसे कहता हूँ कि यह सचमुच क्रूरता है। हमने लगभग एक लाख रुपये खर्च किये हैं, लेकिन इनमें से ८५,००० रुपये बिलकुल बेकार गये। हमारा प्रयोजन पूरा नहीं हुआ।**

जबतक हम उनको ज्यादा अच्छे किस्मकी, हलकी-फुलकी खादी नहीं दे पाते, जिसमें इसका दूना खर्च पड़ेगा, तबतक हमें उनको खादीकी पोशाकें देनेकी बात नहीं सोचनी चाहिए। हम इस समय अपने चपरासियोंको जैसी पोशाकें दे रहे हैं, उनको देखकर रुलाई छूटती है।"

आइए, हम इस तर्कपर विचार करें। अध्यक्षने नगरपालिकाके कर्मचारियोंको अपने मापदण्डसे मापा है, और मुझे लगता है कि उन्होंने ऐसा करके कर्मचारियों और खादीके उद्देश्यके साथ भी घोर अन्याय किया है। उनका फतवा ठीक उस तरहका है जैसे कोई बड़ी ही नाजुक महिला अपनी खुदकी खुराकसे कठिन परिश्रम करनेवाले अपने कुछ अतिथियोंकी खुराकका अनुमान लगाये, या कोई चींटी किसी हाथीको आटेके कुछ दाने देकर सोचने लगे कि उसने अपने अतिथिको भरपेट भोजन करा दिया है। हम जानते हैं कि दोनोंका ही मानदण्ड गलत होगा। नाजुक महिला और चींटीका अनुमान ठीक होता, यदि उस महिलाकी अतिथि उसी महिला-जैसी कोई नाजुक महिला होती और चींटीको किसी दूसरी चींटीका आतिथ्य करना होता।

कराचीवाले मामलेमें अध्यक्ष द्वारा अपनाया गया मानदण्ड भी इसलिए गलत है कि नगरपालिकाके कर्मचारियोंका लालन-पालन उतने ऐशोआराममें नहीं हुआ, जितना कि प्रस्तावकका। अध्यक्ष द्वारा अपनाया गया मानदण्ड इसलिए दोहरा गलत हो गया है कि अव्वल तो मेहतरोंको उतने नफीस कपड़ोंकी जरूरत नहीं जितने कि अध्यक्षको चाहिए, और दूसरे, मेहतरोंको उसी तरहकी पोशाककी कोई जरूरत नहीं है जिस तरहकी पोशाक शिक्षित भारतीयोंने भय, अज्ञान, या महत्त्वाकांक्षावश अपने शासकोंकी नकलमें अपना ली है। मैं यह सुझानेकी धृष्टता करूँगा कि पार्षदोंको शोभा-शिष्टताके अपने विचार बदलने चाहिए और अपने कर्मचारियोंको ऐसे किस्मके वस्त्र देने चाहिए जो देशकी जलवायु और रहन-सहनके अनुकूल हों। तब उनको मोटीसे-मोटी खादीका प्रयोग करनेमें डरनेकी कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। तब वे नगरपालिकाका पैसा बचाते हुए, कर्मचारियोंको अधिक सुविधाएँ दे सकेंगे, वास्तविक कलाका पुनरुद्धार कर सकेंगे और साथ ही उन गरीबसे-गरीब भाइयोंको भी लाभ पहुँचा सकेंगे जिनके पास वे केवल खादीके जरिये ही पहुँच सकते हैं। अध्यक्ष महोदय अपने प्रति जैसे व्यवहारकी अपेक्षा कर्मचारियोंसे रखते हैं, यदि वे उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार करना चाहते हों तो उनको क्षण-भरके लिए उन कर्मचारियोंकी स्थितिमें अपने-आपको रखकर देखना चाहिए कि उनको कैसा लगता है। तब उनका मानदण्ड बिलकुल सही हो जायेगा।

पर यदि मान लीजिए कि नगरपालिकाकी शान बनाये रखनेके लिए कर्मचारियोंको अस्वाभाविक ढंगकी पोशाक पहनना जरूरी ही हो तो कीमत देनेपर नगरपालिकाको आजकल बढ़िया किस्मकी महीन खादी प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी और इसके लिए आजकल खाकी रंगकी खादी भी मिल ही सकती है।

सबसे सस्ता और देशभक्तिपूर्ण तरीका तो यही होगा कि नगरपालिकाकी पाठशालाओंके बालक-बालिकाओंको महीन सूत कातना सिखाया जाये और स्वयं पार्षद

लोग भी यह काम सीखें और फिर उसे अपने ही नगरमे बुनवा लिया जाये। तब अन्य नागरिक भी पार्षदोके देशभक्तिपूर्ण और श्रम-साध्य उदाहरणपर चलने लगेंगे और यदि कराचीके, मान लीजिए, एक तिहाई लोग भी परोपकारकी भावनासे केवल आधा घंटा रोज कताईको देने लगें तो कर्मचारियोंकी आवश्यकतासे कई गुनी अधिक खादी सुलभ हो जायेगी।

इस तरीकेको अपनानेपर एक बहुत ही ठीक आपत्ति यह की जा सकती है कि इस प्रकार तैयार की गई खादीसे उन गरीबोंको तो कोई मदद नही मिलेगी जिनके हितके लिए सार्वजनिक निगमोंको खादी अपनानेकी सलाह दी जाती है। इस प्रकारकी आपत्ति अपने-आपमें बिलकुल सही और उचित है, पर हमें यह नही भूलना चाहिए कि मेरे सुझाये इस तरीकेको यदि किसी शहरकी जनता अपना ले तो वह भारतके गरीबोंकी परोक्ष रूपमें ही सही, पर वास्तवमें काफी ठोस सेवा होगी, क्योकि त्यागकी भावनासे की जानेवाली कताईका नैतिक प्रभाव इतना व्यापक होगा कि चारों ओर कताईका एक वातावरण तैयार हो जायेगा और अबतक कोई उत्साह न दिखानेवाली जनता भी अपनी वर्तमान आयमें वृद्धि करनेके लिए इस तरीकेको अपनानेकी प्रेरणा पायेगी, क्योंकि सभी मानते है कि उसकी वर्तमान आयका स्तर उसे मनुष्यकी तरह जिन्दा रखनेके लिए भी अपर्याप्त है। जहाँ औसत रोजाना आमदनी सात पैसेसे भी कम हो, वहाँ एक पैसे रोजकी वृद्धि भी सचमुच बड़ी चीज होगी।

परन्तु हो सकता है कि इसको एक ऐसा आदर्शभूत परामर्श माना जाये जिस पर व्यावहारिक किस्मके कामकाजी लोगोंके लिए विचार करनेकी गुंजाइश नही है। खैर, मै जानता हूँ कि आदर्शवादी अध्यक्ष तो मेरे सुझावको इस तरह एक झटकेमें रद नही करेंगे। लेकिन जो लोग मेरे सुझाये ढंगसे घरोंमें हाथ-कताईके कामका संगठन गम्भीरता-पूर्वक और विधिवत् नही करना चाहेंगे, उनको मै बतलाना चाहता हूँ कि यदि वे इतना याद रखें कि खादीपर खर्च होनेवाली एक-एक पाई सीधे उन्ही लोगोंकी जेबमें जाती है जो जरूरतमन्द है और उसमें से भी कमसे-कम पचासी प्रतिशत भाग तो सबसे गरीब दस्तकारोंको मिलता ही है, जिनमें अधपेट रहनेवाले कतैये भी शामिल हैं, तो उनको खादीपर होनेवाला भारीसे-भारी व्यय भी निरर्थक नहीं लगेगा और उसके कारण उठाई गई बड़ीसे-बड़ी असुविधा भी असुविधा-जैसी नही लगेगी।

लेकिन अध्यक्ष महोदय कहते है :

> **कर्मचारियोंको स्वदेशी मिलोंके कपड़ोंकी बनी पोशाकें देकर खादीपर किये जानेवाले व्ययमें से साठ प्रतिशतकी बचत क्यों न की जाये?**

गरीबोंके दोस्त, श्रीयुत जमशेद मेहतासे तो मुझे इस तर्ककी जरा भी उम्मीद नहीं थी। यदि हर नगरपालिकामें सामर्थ्य हो और हर नगरपालिका खादीको बढ़ावा देनेके लिए यह साठ प्रतिशत राशि खर्च कर दे तो निश्चय ही वह कोई गलत काम नहीं होगा।

और मै इन पृष्ठोंमें बार-बार सिद्ध कर चुका हूँ कि खादी और मिलके कपड़ेकी उसी तरह कोई तुलना नहीं की जा सकती जिस तरह घरकी बनी चपाती और मशीनके

कहीं आसानीसे बने, सस्ते बिस्कुटोंकी कोई तुलना नहीं की सकती, भले ही चपाती तैयार करनेमें कितनी ही मेहनत और खर्च क्यों न लगता हो। मिलके वस्त्रोंको जनताके संरक्षणकी वैसी दरकार नहीं जैसी खादीको है। जब खादी किसी भी कीमतपर नहीं मिलती, जब मशीनका कपड़ा खरीदना आवश्यक हो जाता है और जब हम विदेशी वस्त्रों और स्वदेशी मिलोंके वस्त्रोंमें से ही एकको चुननेको विवश हो जाते है, तब भारतीय मिलोंके वस्त्रोंको वह वरीयता मिल ही जाती है जो उसे मिलनी चाहिए। यह तो स्पष्ट ही है कि खादीको इन दोनोंका स्थान लेना है। मिलके वस्त्रोंकी तरह खादीके लिए तो कोई जमा-जमाया बाजार है नहीं। खादी तो अबतक बाजारमें आम तौरपर मिलनेवाली वस्तु भी नहीं बन पाई है। खादीकी खरीदपर जितना भी व्यय किया जाता है उसका कमसे-कम पचासी प्रतिशत भारतके भुखमरों और गरीबोंको मिल जाता है। इसके विपरीत मिलके बने वस्त्रोंपर किये जानेवाले व्ययका पचहत्तर प्रतिशतसे अधिक भाग पूँजीपतियोंकी और पच्चीस प्रतिशतसे कम उन मजदूरोंकी जेबोंमें जाता है जो इतने असहाय नहीं है, जो अपने हितोंकी रक्षा आप कर सकते है, और जो कभी भी उस तरह भूखमे नहीं तड़पते और न जिन्हें उस तरह तड़पनेकी जरूरत है, जिस तरह कि भारतके वे करोड़ों लोग तड़पते है जिनकी राहतके लिए खादीकी योजना तैयार की गई है। सच तो यह है कि नगरपालिकाके जिन कर्मचारियोंके बारेमें ऐसा मानकर कि मोटी-खुरदरी खादी पहननेमे उन्हें असुविधा होती है, मानवीय दृष्टिकोणके धनी श्रीयुत मेहताने यह कदम उठाया है, उन कर्मचारियोंको यदि खादीका जबरदस्त राष्ट्रीय महत्त्व समझा दिया जाये और तब वे खुद ही मिलके कपड़ोंके बजाय — चाहे वे पहननेमें जितने भी सुविधाजनक हों — खादीको ही पसन्द न करें तो यह मेरे लिए बड़े आश्चर्यकी बात होगी। जबतक खादी करोड़ों लोगोंको रोजगार और इस तरह रोटी देनेका साधन बनी हुई है, तबतक मेरी रायमें वह हर कीमतपर सस्ती ही है।

(२)

श्रीयुत जमशेद मेहता मानवतावादी ही नहीं, एक अत्यन्त उत्साही शाकाहारी भी है और वे अपने सिद्धान्तोंकी खातिर अपने मित्रोंके कोपभाजन बननेसे भी भय नहीं खाते। पता नहीं कैसे, वे इस निष्कर्षपर पहुँचे है कि शुद्ध घीसे वनस्पति घीके नामसे जाना जानेवाला उत्पादन — जिसे विदेशोंके उद्यमशील निर्माता भारतमें लाये हैं — ज्यादा अच्छा होता है। उनका कहना है कि शुद्ध घी कहनेको तो शुद्ध घी होता है, लेकिन वास्तवमें उसमे लगभग हमेशा पशुओंकी चरबीकी मिलावट रहती है। शाकाहारके लिए मेरे मनमें किसीसे भी कम उत्साह नहीं है, और मै स्वयं बाजारके घीसे सदा बचता हूँ और यदि डाक्टरोका थोड़ा भी इशारा मिल जाये या मैं दृढ़तासे संकल्प कर सकूँ तो मै बकरीके दूधके घीको भी बिलकुल छोड़ दूँ, लेकिन इतना सब होनेपर भी, मैं आजतक कृत्रिम साधनोंसे रासायनिक रूपमें वनस्पतिसे तैयार की जानेवाली उस वस्तुका प्रयोग करनेके लिए अपने मनको तैयार

नही कर पाया जो आम तौरपर भोली-भाली जनताको धोखा देकर उसके हाथों घीके नामपर बेच दी जाती है।

चिकित्सा-शास्त्रके विशेषज्ञोंसे पूछताछ करके मैं जितना समझ पाया हूँ, उससे तो यही प्रकट होता है कि घी या पशुओसे मिलनेवाली चिकनाईके स्थानकी पूर्ति वनस्पतिके किसी भी उत्पादनसे पूरी तौरपर नही की सकती, क्योंकि उनमे 'ए' नामक पोषक तत्त्व पर्याप्त मात्रामें होता है, जो मनुष्यका स्वास्थ्य ठीक बनाये रखनेके लिए नितान्त आवश्यक है। इसलिए हम इस दुःखद (शाकाहारियोंके लिए) निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चरवी-मिश्रित घी शाकाहारके सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो बुरा है, परन्तु चिकित्साशास्त्रके दृष्टिकोणसे वह हानि-रहित है। श्रीयुत जमशेद मेहता-जैसे उत्साही आहार सुधारकोंके लिए तब एक ही उचित मार्ग रह जाता है कि वे शुद्ध घीको सर्वसुलभ बनानेके लिए जीतोड़ कोशिश करें और इस समान उद्देश्यको सफल बनानेके लिए मैं उनको गोसेवा सघमें शामिल होनेको आमन्त्रित करता हूँ। हाँ, यदि उनके पास इस उद्देश्यको प्राप्त करनेका कोई अन्य साधन हो और वह साधन ज्यादा जल्दी सफल भी हो सकता हो तो बात दूसरी है। वे कराची शहरमे दूध और घीका सम्भरण नगरपालिकाके अधिकारमे ले ले और पूरी दक्षताके साथ नगरपालिकाकी ओरसे एक दुग्धालय चलाये। वनस्पति घीका तो हर कीमतपर बहिष्कार ही करना चाहिए। कारण, वनस्पति घीमें तो बहुधा मिलावट ही रहती है और वह मिलावटी घीके विपरीत बहुधा स्वास्थ्यके लिए हानिकारक भी होता है, क्योंकि वह रासायनिक प्रक्रियामे तैयार किया जाता है। इसके अलावा आहारके रूपमें तो वह लगभग हर तरहसे निकम्मा होता है। हमारे देशमें तिलहन प्रचुर मात्रामे उपलब्ध है। और उनसे निकाले हुए तेल कृत्रिम रूपसे तैयार की गई वनस्पतीय चिकनाईसे कही अधिक गुणकारी होते हैं। वनस्पतीय चिकनाई अधिकतर नारियलसे प्राप्त चिकनाईसे ही तैयार की जाती है। भारतमें तो हर व्यक्ति चाहे तो स्वयं भी ताजे नारियलसे बढ़िया वनस्पति घी निकाल सकता है और बाजारमें नारियल काफी सस्ते मिल ही जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-१०-१९२८

३७०. प्राचीन भारतमें कताई

कोयम्बतूरके परम अध्यवसायी खादी-प्रेमी, श्रीयुत सी० बालाजीरावने डॉ० शामशास्त्री द्वारा किये गये (ईसा पूर्व ३२१-२९६ में विरचित) कौटिल्यके 'अर्थ-शास्त्र' के पाण्डित्यपूर्ण अनुवादसे निम्नलिखित रोचक उद्धरण[1] नकल करके मेरे पास भेजे हैं। ये उद्धरण उस कालके हमारे देशवासियोंके तौर-तरीकोंके बारेमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी देनेके साथ ही यह भी सिद्ध करते है कि उस कालमें कताई-धन्धा सीधे राज्यके नियन्त्रणमें था, जैसा कि आज भी होना चाहिए। हमारे देशमें जो

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

अपार जनशक्ति बेकार जा रही है, उसका कोई भी उपयोग केवल इसलिए नहीं हो पा रहा है कि हमारे यहाँ उसके अनुरूप संगठनका अभाव है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-१०-१९२८

३७१. पत्र : एन० आर० मलकानीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
४ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पिछला पत्र मैं तलाश नहीं कर पाया। अब तुम्हारे पिछले महीनेकी २७ तारीखके पत्रके बारेमें। देखता हूँ, तुम्हें ज्यादासे-ज्यादा इस महीनेके अन्ततक सहायता-कार्यसे छुट्टी मिल जायेगी। मैं जानता हूँ कि सिन्धमें तुम्हारे लिए काफी काम पड़ा है और मैं यह भी जानता हूँ कि तुम जहाँ भी काम करोगे, प्रभावोत्पादक ढंगसे ही करोगे। अब सवाल यही रह जाता है कि तुम्हें अन्तिम रूपसे चुनना क्या चाहिए। वैसे मैंने तो यह सोच रखा था कि तुम्हें प्रस्तावित अखिल भारतीय दलित वर्ग संघका मन्त्री बनाया जाये। लेकिन मैं इस मामलेमें तुम्हारा मार्गदर्शन नहीं कर सकता। तुम्हें उसी ओर जाना चाहिए जिस ओर जानेको खुद तुम्हारा मन कहे। यही सबसे अच्छा रहेगा। चुनाव तो आखिर तुम्हींको करना है और इसलिए तुम्हें वही काम चुनना चाहिए जो तुमको सबसे ज्यादा पसन्द हो और जिसे तुम अपने लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझते हो। यदि सिन्धको तुम्हारी जरूरत है और तुम भी महसूस करते हो कि तुम्हें अपने-आपको सिन्धके काममें ही खपा देना है तो फिर मुझे कुछ भी नहीं कहना है। हाँ, मनुष्यके लिए अन्तिम रूपसे निर्णय करना जहाँतक सम्भव है, वहाँतक तुम्हें अन्तिम निर्णय ही करना चाहिए।

तुमने अपनी पुत्रीके बारेमें जो लिखा है उसपर मैंने गौर किया है। बात मुझे ज्यादा पसन्द नहीं आई। लेकिन मुझे यकीन है कि उस परिस्थितिमें जो कदम उठाना सबसे अच्छा रहा होगा, तुमने वही कदम उठाया है। तुम दो हजार रुपयेके खर्चको छोटी-सी चीज मानते हो। यह बात यदि इतनी पीड़ाजनक न होती तो मैं इसपर दिल खोलकर हँसता। इस नये युगके हम गरीब लोग तो दस रुपयेको भी इतनी छोटी चीज नहीं मानते। रामदासकी शादी करानेमें शायद मेरा एक रुपया लगा था, यानी एक या दो नारियल और वर तथा वधूके लिए दो तकलियाँ, 'गीता' की दो प्रतियाँ और 'भजनावली' की दो प्रतियाँ। गुजरातमें तो आश्रमसे बाहरके लोग भी दो हजार रुपयेको एक बड़ी रकम लेखेंगे। मेरा खयाल है कि जमनालालजीने भी दो वर्ष पहले कमलाकी शादीपर शायद दो हजार रुपये खर्च नहीं किये थे। पर मैं जानता हूँ कि यदि मैं गुजरातके पैमाने या नये युगके पैमानेसे सिन्धको मापनेकी

कोशिश करूँ तो वह माप बहुत गलत होगा। मेरा अनुमान है कि तुमने शायद बीस हजारके बदले दो हजार रुपयेमें काम चलानेकी हिम्मत दिखाई है और इस तरह प्रगति ही की है और यदि तुम दो हजारसे बीस रुपयेपर उतर आते तो शायद तुम्हें अपनी सासका साथ छोड़ना पड़ जाता और पत्नीसे तलाक ही हो जाता। उस दृष्टिसे दो हजार रुपयेका सौदा बुरा नहीं रहा।

आशा है, तुम सपरिवार स्वस्थ होगे।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

श्रीयुत नारायणदास मलकानी
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (जी० एन० ८८८)की फोटो-नकलसे।

३७२. पत्र : डी० बी० कृष्णम्माको

आश्रम, साबरमती
४ अक्टूबर, १९२८

प्रिय कृष्णम्मा,

एलबम और फ्रेम पाकर खुशी हुई। कुछ अनुकृतियाँ तो बड़ी ही सुन्दर हैं। मैं यदि कभी राजमुन्द्री आ सका तो मुझे मूल चित्र अवश्य दिखलाइएगा।

आशा है, आप पूर्णतः स्वस्थ होंगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीमती डी० बी० कृष्णम्मा,
राजमुन्द्री

अंग्रेजी (एस० एन० १४७८७)की माइक्रोफिल्मसे।

३७३. तार: एनी बेसेंटको[1]

[५ अक्टूबर, १९२८]

डॉ० बेसेंट,

आपका तार मिला। मुझे पूरा यकीन है कि देशके समर्थनके अभाव के कारण नेहरू द्वारा प्रस्तावित सविधानकी असफलता अत्यन्त ही विनाशकारी सिद्ध होगी, जब कि ऐसे समर्थनसे स्वाधीनता का लक्ष्य प्राप्त करनेके प्रयत्नोंको कोई हानि नही पहुँचती। मैं यह तो मानता हूँ कि दलोंके बीच अधिकतम सहमति प्राप्त करना सदा ही अत्यावश्यक नही होता, फिर भी ऐसे मामलोंमें हमें सहमति पैदा करने की कोशिश करनी ही चाहिए, जिनमें राष्ट्रीय हितोको कोई हानि पहुँचनेकी आशंका नही।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३७००) की फोटो-नकलसे।

१. साबरमतीमें ५ अक्टूबरको मिले एनी बेसेंटके उस तारके उतरमें, जिसमें कहा गया था: "फ्री प्रेसके प्रतिनिधिसे अपनी भेंटके दौरान श्रीनिवास अय्यंगारने कांग्रेसियोंसे अपील की है कि वे सर्वदलीय परिषद्में शामिल न हों क्यों कि उसके प्रस्तावके मसविदमें स्वाधीनताको एक लक्ष्यके रूपमें स्वीकार नहीं किया गया है। उन्होंने राजनीतिक दलोंके बीच अधिकतम सहमति पैदा करनेके प्रयत्नोंके प्रति अविश्वास प्रकट किया है। मैं समझती हूँ कि सफलताके लिए अत्यावश्यक है कि आपकी स्पष्ट राय तुरन्त प्रकाशित की जाये। लखनऊ परिषद्का कल होनेवाला सम्मेलन भी कार्यकारिणीके हाथ मजबूत करनेके लिए ही शुरू किया जा रहा है।"

३७४. तार : मोतीलाल नेहरूको[1]

आश्रम, साबरमती
[६ अक्टूबर, १९२८]

मोतीलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद

आपका तार मिला। डॉ० बेसेंटने भी तार भेजा। कल विस्तृत उत्तर[2] दे दिया है। आशा है कि सब ठीक ही होगा।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३७०२)की फोटो-नकलसे।

३७५. तार : टी० आर० फूकनको[3]

आश्रम, साबरमती
६ अक्टूबर, १९२८

टी० आर० फूकन,
गोहाटी

अत्यधिक व्यस्तताके कारण उत्तर नहीं दे पाया। मेरी सलाह है कि आप धनाढ्य कांग्रेसियोंसे सम्पर्क करें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३५४९)की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह मोतीलाल नेहरूके ५ अक्टूबरके तार (एस० एन० १३७९९)के उत्तरमें भेजा गया था। अपने तारमें उन्होंने कहा था कि श्रीनिवास अय्यंगार कांग्रेसियोंसे श्रीमती बेसेंट द्वारा बुलाई मद्रास प्रान्तीय सर्वदलीय परिषद्से अलग रहनेकी अपील करके परिषद्के आयोजनमें अनुचित हस्तक्षेप कर रहे हैं और इसलिए आप उन्हें तार देकर इस कार्रवाईसे बाज आनेको कहें।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. इनके एक तार (एस० एन० १३५४३) के उत्तरमें, जिसमें कहा गया था : "कांग्रेसकी बकाया राशिके सिलसिलेमें हमारे खिलाफ १३,५०० रुपयोंकी डिगरीके सम्बन्धमें मैंने शिमलासे पत्र लिखा था। कृपया बचानेका कोई उपाय निकालिए।"

३७६. हमारा कर्त्तव्य

गोधरामें जो करुणाजनक दुर्घटना हुई और जिसके कारण भाई पुरुषोत्तमदास शाह्ने वीरतापूर्वक मृत्युको अपनाया, उसके बारेमें 'नवजीवन'में मैंने एक टिप्पणी लिखी थी।[1] उसका शीर्षक दिया था 'गोधरामें हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा'। यह शीर्षक कुछ हिन्दू भाइयोंको पसन्द नहीं आया। कितनोंने ही क्रोध-भरे पत्र लिखे और शीर्षक सुधारनेको कहा। मैं उस घटनाको दूसरा नाम नहीं दे सकता। मरनेवाले एक हों या अनेक, यदि दो पक्ष आमने-सामने खड़े होकर लड़ें या एक ही पक्ष मारे और दूसरा मरे, तो भी यदि इस सबका कारण वैमनस्य ही रहा हो तो यह लड़ाईके अन्तर्गत ही आयेगा। क्या गोधरामें और क्या दूसरे स्थानोंमें, आज हिन्दू-मुसलमानोंके बीच लड़ाई ही चलती है। सौभाग्यसे अबतक गाँव उससे अछूते रहे हैं और कुछ ही शहरोंको छोड़कर बाकी सभी छोटे-बड़े शहरोंमें, एक या दूसरे रूपमें लड़ाई चल ही रही है। अपने पास आये पत्रोंके आधारपर भी मुझे यही नजर आता है कि गोधरामें जो-कुछ हुआ, वह लड़ाईका ही परिणाम है और इस बातसे तो कोई इनकार करता हुआ नहीं जान पड़ता।

इसलिए अगर महज लेखके शीर्षककी शिकायत करके पत्रलेखक शान्त रह जाते तो मैं यहाँ कुछ भी न लिखता, और उन शिकायत करनेवालोंको अलग-अलग जवाब देकर शान्त हो जाता। किन्तु दूसरे पत्र जो आये हैं, उनमें मुझपर दूसरे ही कारणसे क्रोध प्रगट किया गया है। किसी स्वयंसेवकने एक लम्बा पत्र लिखा है; जिसका सार इस प्रकार है:

> **आप लिखते हैं कि मैंने हिन्दू-मुसलमानोंकी लड़ाईके विषयमें मौन ले लिया है। जब आपने हमसे खिलाफतमें मदद दिलवाई थी, तब मौन क्यों नहीं लिया था? आपने अहिंसाकी बात करते समय मौन क्यों नहीं लिया? अब जब दोनों लड़ रहे हैं और हिन्दू मारे जा रहे हैं, तब आप मौन धारण किये बैठे हैं। यह कहाँका न्याय है? इसमें अहिंसा कहाँ है? दो घटनाओंकी ओर आपका ध्यान खींचता हूँ।**
>
> **एक हिन्दू व्यापारीने मुझसे कहा: "मेरी दुकानमें आकर मुसलमान चावलके बोरे ले जाते हैं। वे दाम नहीं देते और मैं माँग भी नहीं सकता; क्योंकि अगर माँगूँ तो वे मेरी बखार ही लूट लें। इसलिए मुझे हर महीने दससे पन्द्रह बोरे तक मुफ्त देने पड़ते हैं और एक बोरेमें ५ मन चावल होता है।"**

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २०-९-१९२८।

दूसरे कहते हैं: "हमारे मुहल्लोंमें मुसलमान आकर हमारे देखते हुए ही हमारी स्त्रियोंका अपमान करते हैं और हम एक शब्द नहीं बोल सकते। अगर कुछ बोलें तो हमारी बड़ी गत बने। इस बारेमें हम शिकायततक नहीं कर सकते।"

अब आप ऐसे मामलोंमें क्या सलाह देंगे? यहाँ अहिंसा-धर्म किस प्रकार लागू करेंगे? क्या इसका जवाब भी मौन रखकर ही देंगे?

इस प्रकारके प्रश्नोंके जवाब 'नवजीवन' में दिये जा चुके हैं। मगर तो भी लोग बार-बार उन्हें पूछते ही चले जाते हैं; इसलिए बार-बार उनका जवाब देना उचित है।

अहिंसा डरपोक या निर्बलका धर्म नहीं है। वह तो बहादुर और जानपर खेलनेवालेका धर्म है। जो तलवारसे लड़ते हुए मरता है, वह बहादुर अवश्य है; किन्तु जो मारे बिना धैर्यपूर्वक खड़ा-खड़ा मरता है, वह अधिक बहादुर है। इसलिए जो मारके डरसे चावलके बोरे मुफ्त दे देता है, वह डरपोक है, कायर है, अहिंसक नहीं है; वह अहिंसाके तत्त्वको नहीं जानता।

मारके डरसे जो अपनी स्त्रियोंका अपमान सहन करता है, वह मर्द न रहकर नामर्द बनता है। वह पति, पिता या भाई बनने लायक नहीं है। ऐसे आदमियोंको शिकायत करनेका अधिकार नहीं है। जहाँ नामर्द बसते हैं, वहाँ बदमाश तो होंगे ही।

ऐसी घटनाओंका हिन्दू-मुसलमानोंके पुश्तैनी झगड़ेसे सम्बन्ध नहीं है। जहाँ मूर्ख होंगे, वहाँ ठग भी होंगे। इसी तरह जहाँ नामर्द होंगे, वहाँ गुंडे भी होंगे ही; फिर वे गुंडे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान। झगड़ा शुरू होनेके पहले भी ऐसी घटनाएँ हुआ ही करती थीं। इसलिए यहाँपर प्रश्न यह नहीं है कि अमुक जातिसे कैसे बदला चुकाया जाये, अथवा उसे किस तरह भला बनाया जाये; बल्कि सवाल यह है कि जो नामर्द हों, उन्हें मर्द कैसे बनायें। जो चतुर हैं, सयाने हैं, वे अगर हिन्दू-मुस्लिम तनातनीके मूलमें छिपी हुई दोनों जातियोंकी निर्बलता, दोनों जातियोंकी मूर्खताको देख जायें तो हम इन झगड़ोंका हल तुरंत निकाल सकते हैं। दोनोंको बलवान बनना है, दोनोंको चतुर बनना है। दोनों अथवा एक समझदारीसे होशियार बने तो यह हुआ अहिंसाका मार्ग; दोनों लाचारीसे होशमें आयेंगे तो वह हिंसाका मार्ग होगा। मनुष्य-समाजमें यानी स्वतन्त्रताको पूजनेवाले मनुष्य-समाजमें कायरको स्थान नहीं है। स्वराज कायरके लिए नहीं है।

इसलिए ये घटनाएँ लिखकर अहिंसाकी निन्दा करना, या मुझपर रोष प्रकट करना, मेरी दृष्टिमें व्यर्थ है। १९२१ के सालमें बेतियाके अनुभवके बादसे ही[1] मैं कहता आया हूँ कि जो मरकर अपनी या अपने सगोंकी रक्षा नहीं कर सकता, उसे मारकर अपनी या अपने सगोंकी रक्षा करनेका अधिकार है, यह उसका धर्म है। जिसमें इतनी शक्ति न हो, वह नपुंसक है। उसे कुटुम्बका मालिक या पालक होनेका अधिकार नहीं है। उसे अरण्यका सेवन करना चाहिए अथवा वह हमेशा लाचारकी स्थितिमें रहेगा, उसे रोज चींटीके समान पेटके बल रेंगनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ११८-२१।

मेरे पास तो एकमात्र मार्ग अहिंसाका ही है। मुझे हिंसाका मार्ग नही रुचता। उसे सिखलानेकी शक्ति मैं पैदा नही करना चाहता। आज जो वातावरण व्याप्त है उसमें अहिंसाके प्रचारको स्थान नहीं है। इसलिए मै आजकी लड़ाइयोके बारेमें मौन धारण किये बैठा हूँ। अपनी ऐसी लाचारीका प्रदर्शन मुझे प्रिय नही हो सकता। मगर ईश्वरका यह कायदा नहीं है कि हमें जो अप्रिय हो, वह कभी न होने दे, और जो प्रिय हो, वही होने दे। फिर ईश्वर निराधारका ही सहायक है, राम ही निर्बलका बल है, गजराज जब हार गये तभी भगवानने उनकी सहायता की; मैं यह सब जानता हूँ, इसलिए अपनी लाचारीको सहन कर रहा हूँ, और विश्वास रखता हूँ कि मुझे किसी दिन ईश्वर ऐसा मार्ग बतलायेगा, जिसे ग्रहण करके मै लोगोंको भी बता सकूँगा। मैंने अपना यह विश्वास जरा भी नही खोया है कि हिन्दू-मुसलमानोंको किसी-न-किसी दिन एक होना ही है। वे कब और कैसे मित्र बनेंगे सो हम कैसे जानें? भविष्यकी सरदारीका इजारा, ईश्वरने अपने ही हाथमें रखा है। हमें उसने विश्वासरूपी नौका दी है। यदि उसमें हम बैठें तो सहज ही शंकारूपी समुद्रको पार कर जायेंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ७-१०-१९२८

३७७. अहिंसाकी समस्याएँ

बछड़े और बन्दरोंके विषयमें लेख[1] लिखकर मैंने आलोचकोंका पर्याप्त रोष मोल ले किया है। कोई गालियाँ देकर अपनी अहिंसा प्रकट कर रहा है, तो कोई सख्त आलोचना करके मेरी अहिंसाकी परीक्षा ले रहा है। और कोई विवेकपूर्वक अपनी कठिनाइयाँ सामने रख रहा है। सभी पत्र-लेखकोंको जवाब देने लायक समय मेरे पास नहीं है, और न जवाब देनेकी जरूरत है। ठेठ गालियोंसे भरे लेखोंसे मेरी सहन-शक्तिका माप निकालनेके सिवा और कोई लाभ होनेवाला नही है। दूसरे दो प्रकारके पत्रोंमें से कुछ तर्क लेकर मैं उनपर विचार करना चाहता हूँ।

किन्तु उन तर्कोंके उत्तर देनेके पहले मैं लिखनेवालोंसे एक विनती कर लूँ। वे मर्यादाका पालन करते हुए मेरी जो भूल हो सो मुझे बतलायें और अपनी जो भूलें दिखें उन्हें देखें। खूब तटस्थ रहनेका प्रयत्न करते हुए भी:

१. अविवेकपूर्ण पत्रोंसे मैं बहुत नहीं सीख सकता।

२. पेंसिलसे लिखे हुए खराब अक्षरवाले लेखोंको पढ़ना अशक्य है।

३. लम्बे निबन्ध मेरे पास भेजना व्यर्थ है।

१. देखिए "पावककी ज्वाला", ३०-९-१९२८।

संक्षिप्त, सुन्दर अक्षरोंमें स्याहीसे लिखे गये पत्रोंको पढ़ने और उनपर विचार करनेके लिए मैं तैयार हूँ, उत्सुक हूँ। मैं एक नम्र शोधक हूँ। मैं 'नवजीवन' के द्वारा सिर्फ सिखलानेका ही काम नहीं करता, सीखनेका भी प्रयास करता हूँ।

लेखकोंके मुख्य तर्क और उपदेश इस प्रकार हैं:

१. अब आप अहिंसाके क्षेत्रसे त्यागपत्र दे दीजिए।

२. क्या आप अहिंसा-सम्बन्धी अपने विचार पश्चिमसे नहीं लाये है?

३. अगर आपके विचार सच्चे भी हों, तो भी जहाँ अनर्थ होनेका भय हो, वहाँ उन्हें आपको प्रकट नही करना चाहिए।

४. यदि आप कर्मवादको मानते हैं तो बछड़ेके प्राण लेकर कर्मके नियमका विरोध करना निरर्थक है।

५. आपको यह मान लेनेका क्या अधिकार था कि बछड़ा अब चंगा होगा ही नहीं; कदापि नही बचेगा? क्या आप नहीं जानते कि जिन्हें डाक्टर-वैद्योने चन्द मिनटोंका मेहमान कहा था, वे भी अनेकों बार बच गये है?

अहिंसाके या किसी दूसरे क्षेत्रसे त्यागपत्र देने या न देनेकी बात तो खुद मुझे ही विचारनी है। आदमी अधिकारसे त्यागपत्र दे सकता है; जो कर्त्तव्यसे त्याग-पत्र दे, वह कर्त्तव्यभ्रष्ट हुआ गिना जायेगा। सच कहने और करनेवाले के भाग्यमें लोकनिन्दा तो प्रायः होती ही है। मैंने यह सीखा है कि अपने-आपको जो बात सच्ची जान पड़े, अगर वह प्रस्तुत हो तो उसे प्रकट करना सत्याग्रहीका धर्म है। जबतक मुझे ऐसा लगे कि अहिंसाके विषयमें मैंने जो कल्पना की है, वह सही है, तो मेरा उसे जाहिर न करना कर्त्तव्यभ्रष्ट होना कहलायेगा।

बछड़ेके बारेमें मेरे विचार अगर पश्चिमी शिक्षाके परिणाम हों, तो मेरे लिए इसमें शर्मकी कोई बात नही है। पश्चिमसे ज्ञान लेना ही नही चाहिए, या वहाँ जो-कुछ होता है सो सब बुरा ही है, मेरी ऐसी मान्यता नही है। पश्चिमसे मैंने बहुत-कुछ सीखा है। मैंने अहिंसाके स्वरूपके बारेमें भी बहुत-कुछ वहाँसे सीखा हो तो इसमें आश्चर्य नही होना चाहिए। मेरे इन विचारोंपर कौन-सा बाहरी प्रभाव पड़ा है, सो मै नहीं जानता। हाँ, यह जानता हूँ कि अब तो वे मेरी अन्तरात्मामें बस गये हैं।

बात ऐसी नहीं है कि अपनी किसी भी रायको सच्ची माननेके कारण ही मैं उसे प्रकट कर देता हूँ। किन्तु बछड़ेसे सम्बन्धित मेरे विचारोंके मूलमें अहिंसा निहित है, इसलिए वे कल्याणकारी हैं, ऐसा मानकर मैंने उन्हें प्रकट किया था। मैं नहीं जानता, बन्दरोंके बारेमें मुझे क्या करना चाहिए; इसलिए उसे जाननेकी दृष्टिसे मैंने वह चर्चा छेड़ी। मुझे ऐसे पत्र भी मिले है जो उस मामलेको सुलझानेमें सहायक होंगे। बन्दरोंके बारेमें मैं इतना कह दूँ कि जब कोई और उपाय ही नहीं रहेगा, तभी मैं उनके प्राणहरण तक जाऊँगा। मैं जानता हूँ कि उससे बचनेका प्रयत्न करना मेरा धर्म है और इस चर्चाका उद्देश्य उससे बचना ही है।

कर्मवादको मैं अवश्य मानता हूँ, किन्तु पुरुषार्थको भी मानता हूँ। कर्मका सर्वथा क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है। यों तो बीमारकी सेवामें भी

कर्मकी गतिको रोकनेके मूढ़ प्रयत्नकी गन्ध आती है, फिर भी हम मानते हैं कि जो रोगीकी सेवा नहीं करता, उसे दवा नहीं देता, वह घोर हिंसा करता है। दैव और पुरुषार्थके द्वन्द्व-युद्धमें शामिल न होते हुए जो-कुछ सेवा-कार्य हो सके, उसे कर लेना मैं धर्म मानता हूँ और उसके पालनका प्रयत्न करता हूँ।

मुझे ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान तो नहीं था कि बछड़ा अब चंगा हो ही नहीं सकता। जिनसे डाक्टर निराश हो गये थे, ऐसे रोगियोंको चंगा होते हुए भी मैंने सुना है। महा अज्ञानमें पड़ा हुआ मनुष्य जहाँतक भविष्यके बारेमें अनुमान कर सके, वहाँतक करे और तदनुसार बरताव करे। असंख्य कर्मोंके सम्बन्धमें हम ऐसा ही करते हैं। किन्तु पता नहीं, हिन्दू-संसारको क्या हो गया है कि वह मौतके नामसे ही भड़क उठता है। वैसे मौतका कमसे-कम डर हिन्दूको ही होना चाहिए, क्योंकि हिन्दू धर्ममें बचपनसे ही आत्माकी अमरता और शरीरकी क्षणभंगुरताकी शिक्षा दी जाती है। बछड़ेको मारनेमें यदि भूल हुई भी हो, तो भी मैं जानता हूँ कि उसकी आत्माकी तो कुशल ही है। उसके कष्टमें डूबे हुए शरीरका दो घड़ी पहले नाश करनेमें शामिल होनेमें अगर त्रुटि रही हो तो मुझे उसकी सजा भोगनेकी भी तैयारी रखनी चाहिए। किन्तु बछड़ेको जो दो घड़ी कम समयतक श्वास लेनेको मिला, मुझे इसका अपार दुःख नही होता। जो बात मै बछड़ेके बारेमें कहता हूँ, वही अपने किसी प्रियजनके बारेमें भी कह सकता हूँ। कौन जानता है कि अपने लालन-पालनके ढंगसे, अपने मोहसे, अपने गलत इलाजसे हम अपने कितने सगे-सम्बन्धियोंके प्राण समयसे पहले जाने देनेमें मददगार नही हुए होंगे? इस प्रकार उनके प्राणहरणमें सहायक होना और बादमें रोना-धोना, यह तो दया-धर्मका पन्थ नहीं है। ऐसा करके हम अहिंसाको लजाते हैं। मुझे जो पत्र मिले हैं, वे मेरी यह राय दृढ़ करते हैं। मरणका भय अहिंसाको पहचाननेमें बड़ा भारी विघ्न है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ७-१०-१९२८

३७८. पत्र : गो० कृ० देवधरको[1]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ अक्टूबर, १९२८

प्रिय देवधर,

यह पत्र आपको श्रीमती उर्मिलादेवीका परिचय देनेके लिए लिख रहा हूँ। स्वर्गीय चित्तरंजन दासकी अब यही एक विधवा बहन बच रही हैं। उनका एकमात्र पुत्र पूनाके कृषि कॉलेजमें पढ़ रहा है। उसकी शिक्षाकी देख-रेख करने और उसके पास रहनेके लिए उन्होंने कलकत्तासे अपनी गृहस्थी समेट ली है और अब पूनामें ही बस जाना चाहती हैं। मैंने उनसे कहा कि उनके लिए यह ज्यादा अच्छा रहेगा

१. सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके।

और उनकी सेवावृत्तिके उपयुक्त भी होगा कि वे सेवासदनमें रहकर वहाँ कुछ काम करें या फिर प्रोफेसर कर्वेके विश्वविद्यालयमें – यानी उन्हें जो भी पसन्द आये या जहाँ भी स्थान मिल सके – रहें। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप श्रीमती उर्मिला-देवीके साथ उनके कुछ कर सकनेकी सम्भावनाओंपर बातचीत करें और अन्य बातोंमें भी उन्हें परामर्श दें। बेशक, वे आपसे यह तो नहीं ही कहना चाहती कि अगर उन्हें सेवासदनमें वाजिब तौरपर जगह नहीं मिल सकती तो आप उनके लिए कोई खास इन्तजाम करें। अगर उन्होंने उस संस्थामें रहना तय किया तो वे ऐसा महसूस करना चाहेंगी कि वे सचमुच वहाँ कुछ काम कर सकती हैं।

पहले तो मैंने सोचा था कि प्रोफेसर कर्वेको अलगसे एक पत्र लिखूँ। लेकिन यह पत्र लिखाते समय यह विचार आया कि सिर्फ यही लिखा दूँ और प्रोफेसर कर्वेसे श्रीमती उर्मिलादेवीको मिलानेका काम आपपर छोड़ दूँ। वे खुद ही दोनों संस्थाओंको देख लें और अगर उन्हें दोनोंमें जानेकी सुविधा प्राप्त हो तो खुद ही तय कर लें कि किसमें जाना है। और मैंने सेवासदनके बारेमें जो-कुछ कहा है, वह सब स्वभावतः प्रोफेसर कर्वेके आश्रमपर भी लागू होता है।

मैं श्रीमती उर्मिलादेवीको बहुत वर्षोंसे बहुत निकटसे जानता हूँ और मुझे मालूम है कि वे कुछ सेवा करनेको कितनी उत्सुक है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३५४४)की फोटो-नकलसे।

३७९. पत्र : रॉलैंड जे० वाइल्डको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
७ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। श्री विलसन साबरमती नहीं आ सके —इसका मुझे दुःख है। आज रविवार है, इसलिए मैं कल आपको एक तार भेज रहा हूँ, जो इस प्रकार है:

"आपका पत्र मिला। आपका हर समय स्वागत है। ज्यादा ठीक होगा यदि आप बारडोली जानेसे पहले अहमदाबाद पहुँचें। पत्र भेज रहा हूँ।"

मैं पूरे महीने आश्रममें रहूँगा — ऐसी आशा है। इसलिए आप जब भी चाहें, आ सकते हैं। आपको शायद मालूम ही होगा कि सोमवारको मेरा मौन-व्रत रहता है।

पता नहीं, आप हमारे साथ आश्रममें ठहरना पसन्द करेंगे या नहीं। आप जानते ही होंगे कि आश्रममें हम लोग अत्यन्त ही साधारण भोजन करते हैं और आपको यहाँका जीवन भी शायद बहुत ही सादा लगेगा। पर यदि आप आश्रमके

जीवनमें घुल-मिल सकें तो आपको अपने बीच पाकर हम सबको सचमुच बहुत ही खुशी होगी।

मैं आपकी इस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ कि बारडोली जानेसे पहले आश्रम आना आपके लिए ज्यादा अच्छा रहेगा।

हृदयसे आपका,

श्री रॉलैंड जे० वाइल्ड
सहायक सम्पादक, 'पायोनियर'
इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १४४६३)की माइक्रोफिल्मसे।

३८०. पत्र : मीराबहनको

सोमवार, ८ अक्टूबर, १९२८

चि० मीरा,

तुम्हारे पत्र नियमित रूपसे मिलते रहे हैं। तुम पत्रोंके विस्तारकी चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे और तुम्हारे कामके बारेमें सभी-कुछ जान लेना चाहता हूँ। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि तुम खुश और भली-चंगी हो और सभी प्रकारके अनुभव स्वयं प्राप्त कर रही हो। मैं इस बातसे खुश हुआ कि तुम जेठालालके साथ कड़ाईसे पेश आई। यदि वह अपने वचनका पालन करता रहे तो अच्छी बात होगी।

आश्रम अब नये परिवर्तनका अभ्यस्त होता जा रहा है। वैसे अभी यह नही कहा जा सकता कि परिणाम कैसा रहेगा। मसालेदार और सादी दो तरहकी रसोई पकाना आजसे शुरू हो गया है। मुझे मालूम नहीं कि इन दोनों वर्गोंमें कितने-कितने सदस्य हैं।

अब बादल छँट जानेसे दिनमें बहुत गरमी रहने लगी है।

आस्ट्रियासे आये मित्रोंने[1] अब रुई धुनना सीख लिया है और उनका आग्रह है कि उनकी बनाई सारी पूनियाँ मैं खुद ही देखूँ। इससे कामका भार फिर काफी बढ़ गया है। छोटेलाल मलेरियामें पड़ गया था। अब वह पहलेसे अच्छा है और उसे थोड़ा-बहुत काम करनेकी इजाजत मिल गई है। विमलाको फिरसे ज्वर आने लगा है।

स्नेह,

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३१२) से। सौजन्य : मीराबहन; जी० एन० ८२०२से भी।

१. फ्रेडरिक तथा फ्रैंसिस्का स्टैंडेनेथ।

३८१. पत्र : मीराबहनको

८ अक्टूबर, १९२८

चि० मीरा,

अलमोड़ाके पतेपर तुमको पत्र[1] लिख चुकनेके बाद तुम्हारा तार मिला। लेकिन मैं उस पत्रको पहलेवाले पतेपर ही जाने दे रहा हूँ। पत्र काफी विस्तृत तो है, पर उसमें कोई खास बात नहीं है।

यहाँ अभी मलेरियाका जोर है। छोटेलालकी 'बेकरी' तैयार हो चुकी है। वह तरह-तरहके प्रयोग करता रहा है।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३११) से। सौजन्य : मीराबहन; जी० एन० ८२०१ से भी।

३८२. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्को

८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय सुन्दरम्,

अपनी माताका संसारसे विदा होना किसीको भी अच्छा नहीं लगता, पर मैं तुमको अपना शोक-सन्देश नहीं भेज रहा हूँ। तुम्हारी माताजी अपने मनमें यह सुख-सन्तोष लेकर संसारसे विदा हुई कि उन्होंने पाल-पोसकर नेक और कर्त्तव्य-परायण सन्तान तैयार की और धर्मनिष्ठ जीवन बिताया। उनकी-जैसी मृत्यु तो ईर्ष्याकी वस्तु है। आशा है, तुम दोनों स्वस्थ होगे।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ३२०८)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

३८३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

लिखानेके बाद पढ़ा नहीं

८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय सतीश बाबू,

मैं बहुत थक गया हूँ और कामके बोझसे दबा हुआ हूँ। बकाया काम दिन-दिन बढते ही जाते है, जिससे मुझे बड़ी चिन्ता होती है। इसीलिए आपको उत्तर देनेमें देर हो गई।

मैं हेमप्रभादेवी और तारिणीके बारेमें कोई रास्ता निकालनेके लिए चिन्तित था। इसी बीच आपका यह पत्र आया, जिसमें आपने यह चर्चा की है कि उनकी क्या व्यवस्था की जाये। मैं उन्हें आश्रममें लेनेमें संकोच कर रहा था; क्योंकि मुझे मालूम था कि पिछली बार यह हेमप्रभादेवीको रास नही आया था। और कोई दूसरी जगह मुझे सूझी नहीं। तारिणीको भी वर्धामें कुछ अच्छा तो नहीं लगा था। बंगालमें या उसके आसपास ही किसी स्थानके बारेमें सोचना चाहिए। अब भी मैं इस सम्बन्धमें कोई प्रगति नहीं कर पाया हूँ।

अगर दोनोंका कोमिल्ला जा सकना सम्भव होता तो मुझे कितनी खुशी होती। मैं आपसे अभय आश्रमको पूरी तरह अपने काबूमें ले लेनेकी अपेक्षा रखता हूँ, भले ही उसके कारण प्रतिष्ठानका नुकसान हो या उसे बन्द हो जाना पड़े। सिर्फ इतना ध्यान रखना है कि क्षति उठाई जाये अथवा अपने अस्तित्वको उत्सर्ग किया जाये तो वह मजबूरीके कारण यन्त्रवत् नहीं, बल्कि सोच-समझकर स्वेच्छापूर्वक किया जाये। मेरे मनमें ये विचार उत्कलके बारेमें कही आपकी बातों परसे उठे है। जहाँ-तक मै देख सकता हूँ, खादीकी प्रगतिके साथ-साथ उससे सम्बन्धित बहुत-से संगठन स्थापित होते चले जायेंगे। उसके विकासकी यह एक शर्त है। लेकिन केन्द्रीय अथवा मुख्य प्रान्तीय संगठनको ऐसा रास्ता अपनाना है जिससे अपने चारित्र्य और योग्यताके बलपर यह सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सके और सभी उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखें। प्रतिष्ठानकी एक कठिनाई यह है कि इसके पास अधिक संख्यामें आत्मत्यागी स्वयंसेवक नही हैं। यह खुद आपका लालन-पालन जिस ढंगसे हुआ है, उसीका परिणाम है। खुद आपका त्याग बहुत बड़ा था और इसलिए आपने केमिकल वर्क्समें जो वातावरण तैयार किया था उसमें से बहुत कम लोगोंको आप अपने साथ ला पाये। आपके जीवनमें अचानक हुआ यह परिवर्तन छोटे-छोटे पौधों —— सामान्य लोगों —— को तभी छाया दे सकता था जब उसकी जड़ें जम जातीं और वह एक विशाल वृक्षका रूप ले लेता। वह तो आपने अब शुरू किया है। मुझे अतराईमें आपके साथ हुई वह बातचीत याद है जिसमें आपने बताया था कि आपने किस तरह स्वयं-सेवकोंको अलग करके वैतनिक लोगोंको रखा और अकाल-सहायताके कार्यको उनके

बलपर सफल बनाया। अगर आपका विकास दूसरे ढंगसे हुआ होता तो आप स्वयं-सेवकोंके बलपर ही उस कामको सफल बनाते। अहिंसाकी सफलता स्वयंसेवी कार्य-कर्त्ताओंके सफल संगठनपर निर्भर है। और खादी एक काफी व्यापक पैमानेपर अहिंसाको ही कार्यरूप देनेका प्रयत्न है। अगर हममें पर्याप्त धैर्य और तपस्याका बल है तो हम अवश्य सफल होंगे।

आशा है, आप मेरी बात समझ गये होंगे। इस पत्रको पढ़कर आपको परेशान या निराश नही होना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि यह आपमें भावी कठिनाइयोंको झेलनेके लिए ताजगी भरे। मैं आपको प्रेरणा और उत्साह दिलानेके लिए ही लिख रहा हूँ। जब शुरू किया था तो नहीं सोचा था कि यह कितना बड़ा होगा या इसमें क्या-कुछ कहूँगा।

उत्कलसे हम यह सीख लें कि किसी निश्चित कार्यक्रमके सम्बन्धमें डॉ० राय पर निर्भर नही करना चाहिए। उनसे खादीके लिए बराबर प्रयत्न करते रहनेकी अपेक्षा करना ठीक नही। वे तरह-तरहके कार्योंमें व्यस्त रहते है, उनके पास समय बहुत कम रहता है और फिर अब वे कोई जवान तो रहे नहीं। आश्चर्य तो यही है कि वे दौरे आदिके लिए अब भी सुलभ हो जाते है।

हेमप्रभादेवी और तारिणीको फिर गिरीडीह ही क्यों न भेज दिया जाये? आपको उन्हें स्वास्थ्यप्रद जलवायुमें ही भेजना चाहिए।

सस्नेह,

अंग्रेजी (एस० एन० १३७०१)की माइक्रोफिल्मसे।

३८४. पत्र : छोटालाल तेजपालको

९ अक्तूबर, १९२८

भाईश्री छोटालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी पुस्तक नहीं मिली। मिलनेपर मै उसे देख जाऊँगा। श्री क्लेटनको प्रागजी देसाई (बॉक्स नं० ५३९०, जोहानिसबर्ग) का पता भेज देना ताकि मुझे लिखना न पड़े।

मोहनदासके वंदेमातरम्

श्री छो० तेजपाल
आर्टिस्ट
राजकोट

गुजराती (जी० एन० २५८७)की फोटो-नकलसे।

३८५. पत्र : रेहाना तैयबजीको

आश्रम, साबरमती
१० अक्टूबर, १९२८

प्रिय रेहाना,

तुम्हारा पत्र[1] मिला। पाशाभाईने भी इसीके बारेमें लिखा है। मैं समझता हूँ कि इतनी छोटी-सी बातको लेकर तुमको चिन्तित नहीं होना चाहिए। तुमको इसे अपने दिमागसे बिलकुल ही निकाल देना चाहिए।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० ९६१०)की फोटो-नकलसे।

३८६. पत्र : गिरधारीलालको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१० अक्टूबर, १९२८

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

आपको इस महिलाके[2] बारेमें क्या कोई जानकारी है?

हृदयसे आपका,

लाला गिरधारीलाल,
लाहौर

अंग्रेजी (एस० एन० १३२८०)की माइक्रोफिल्मसे।

१. दिनांक ५ अक्टूबरका। अब्बास तैयबजीकी पुत्री रेहानाने बड़ौदामें एक यूथ लीग संगठित की थी। एक अन्य महिला उसकी अध्यक्षा चुनी गई थीं। बादमें सदस्योंने अध्यक्षाके किसी कामसे असहमति प्रकट की और उनसे शिष्टतापूर्वक उसकी सफाई देनेको कहा। इसपर अध्यक्षाने उनको कुछ बुरा-भला कह दिया था। कुछ सदस्य उसके बरतावके बारेमें समाचारपत्रोंमें लिखना चाहते थे। रेहाना ऐसा कदम उठानेमें संकोच कर रही थीं और उन्होंने गांधीजी से सलाह माँगी थी। (एस० एन० १३५४२)।

२. इस पत्रके साथ एक पत्रिकामें प्रकाशित कैथेरीनकी कहानी – 'विडो' (विधवा) — संलग्न थी। १९२१ में विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कार आन्दोलनके दौरान सीता नामक एक गरीब विधवाके पास केवल एक विदेशी साड़ी थी। उसे यह भय दिखाया गया कि विदेशी वस्त्र पहननेसे उसे कोढ़ हो जायेगा। बादमें कोढ़के भय और वस्त्रहीन रहनेकी विवशतासे दुःखी होकर उसने गलेमें फन्दा लगाकर आत्महत्या कर ली।

३८७. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

१० अक्टूबर, १९२८

भाई बनारसीदास,

आपके दो पत्र मेरे पास है।

'चाकलेट'[१] नाम पुस्तक पर जो पत्र था उसको मैंने 'यं. इं.' के लिये नोट लीखकर भेज दीया। पुस्तक तो नहिं पढा था। टीका केवल आपके पत्र पर निर्भर थी। मैंने सोचा इस तरह टीका करना उचित नहिं होगा। पुस्तक पढना चाहीये, मैंनें पुस्तक आज खतम की। मेरे मन पर जो असर आप पर हुआ नहिं हुआ है। मैं पुस्तकका हेतु शुद्ध मानता हुं। इसका असर अच्छा पड़ता है या बूरा मुझे मालम नहिं है। लेखकने अमानुषी व्यवहारपर घृणा ही पैदा की है। आपका पत्रकी 'चेझ' अब खुल्वा दुंगा।

महाराज कुंवरसीगजीके[२] बारेमें मैं क्या लीखु? बहोत सोच रहा हुं। सिर्फ लीखनेसे कुछ नहि हो सकेगा। शास्त्रीजी प्रयत्न कर रहे हैं। मै सावधान हुं।

परभुसींगके बारेमें बिहार सरकार कुछ करे तो हो सकता है। अन्यथा क्या हो सकता है? इस विषयमें मैं कुछ हिस्सा लेना नहिं चाहता हुं।

आपका,

मोहनदास

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी
९१ अपर सर्कुलर रोड
कलकत्ता

जी० एन० २५२१ की फोटो-नकलसे।

३८८. ईश्वर है

लोग पत्र लिख-लिखकर अक्सर मुझसे ईश्वरके बारेमें प्रश्न पूछते हैं और इन पृष्ठोंमें उनके उत्तर देनेका आग्रह करते रहते हैं। 'यंग इंडिया' में बार-बार ईश्वरकी दुहाई देनेका — जो एक अंग्रेज भाईके लेखे तो मेरा आत्म-प्रचारका चतुराई-भरा तरीका है — मुझे यही दण्ड भोगना पड़ता है। वैसे मैं ऐसे सभी प्रश्नोंके उत्तर इन पृष्ठोंमें नहीं दे सकता, पर निम्नलिखितका उत्तर तो देना ही पड़ेगा :

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की पुस्तक।

२. यहाँ स्पष्टतः तात्पर्य कुँवर महाराजसिंहसे है। उन दिनों दक्षिण आफ्रिकामें भारतके एजेंट जनरल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीके उत्तराधिकारीके रूपमें इनके और कूर्मा वी० रेड्डीके नामपर विचार किया जा रहा था।

मैंने १२-५-१९२७ के आपके 'यंग इंडिया' का पृष्ठ १४९ देखा है। उसमें आपने लिखा है — "इस संसारमें, जहाँ ईश्वर अर्थात् सत्यके सिवा कुछ भी निश्चित नहीं है, निश्चितताका विचार करना ही दोषमय प्रतीत होता है।"[1]

'यंग इंडिया' पृष्ठ १५२ — "परमात्मा बड़ा धैर्यवान और चिर-सहिष्णु है। जालिमको वह अपनी कब्र अपने-आप खोदने देता है। केवल समय-समयपर उसे गम्भीर चेतावनियाँ देता रहता है।"[2]

मेरा विनम्र निवेदन है कि ईश्वरका अस्तित्व कोई इतना सुनिश्चित तथ्य नहीं है। ईश्वरका लक्ष्य तो सत्यका चतुर्दिक प्रसार ही होना चाहिए। वह संसारमें तरह-तरहके बुरे लोगोंको रहने ही क्यों देता है? अपनी बेईमानी और विचार-शून्यताके साथ बुरे लोग दुनियामें सर्वत्र फलते-फूलते रहते हैं। वे अपनी बुराईकी छूत सब जगह फैलाते हैं और इस तरह आगे आनेवाली पीढ़ियोंको विरासतमें अनैतिकता और बेईमानी सौंपते चलते हैं।

ईश्वर यदि सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है, तो क्या उसे अपनी सर्वव्यापकताके बलपर इस दुष्टताका पूरा ज्ञान नहीं होना चाहिए और क्या उसे अपनी सर्वशक्तिमत्तासे इसका संहार करके सभी प्रकारकी हैवानियतको सर उठाते ही समाप्त नहीं कर देना चाहिए और इस प्रकार संसारमें दुष्ट लोगोंका पनपना असम्भव नहीं कर देना चाहिए?

ईश्वरको इतना अधिक सहिष्णु और धैर्यशील क्यों होना चाहिए? और यदि वह ऐसा है तो उसका प्रभाव ही क्या पड़ सकता है? संसारमें हैवानियत, बेईमानी और आततायीपन तो चल ही रहे हैं।

ईश्वर यदि आततायीसे ही स्वयं उसकी कब्र खुदवा सकता है, तो वह आततायीको पहले ही नष्ट क्यों नहीं कर देता जिससे गरीब लोग उसके अत्याचारके शिकार न बन पायें? अत्याचारीको नष्ट करनेसे पहले उसे अत्याचारका नंगा नाच दिखानेकी छूट ईश्वर क्यों देता है? ऐसा क्यों है कि वह उसे कब्रमें तब भेजता है, जब उसका अत्याचार हजारों लोगोंको बरबाद कर चुका होता है, उनके नैतिक बलको समाप्त कर चुका होता है?

संसारमें आज भी बुराईका उतना ही बोलबाला है जितना हमेशासे रहा है। ऐसे ईश्वरपर कोई आस्था ही क्यों रखे जो अपनी शक्तिके बलपर संसारको बदलकर उसे नेक और धर्म-निष्ठ व्यक्तियोंका संसार नहीं बनाता?

मैं ऐसे बुरे लोगोंको जानता हूँ जो अपनी सारी बुराइयोंके बावजूद स्वस्थ और दीर्घायु रहे हैं। कपटी लोग अपनी बुराइयोंके कारण अल्प वयमें ही क्यों नहीं मर जाते?

१. देखिए **आत्मकथा**, भाग ३, अध्याय २३। यह अध्याय **यंग इंडियाके** उपर्युक्त अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए खण्ड ३३, पृष्ठ ३३४।

मैं ईश्वरपर विश्वास लाना चाहता हूँ, लेकिन मुझे ऐसे विश्वासका कोई आधार नहीं मिलता। कृपया 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंके जरिये मुझे प्रकाश दिखाइए और मेरी अनास्थाको आस्थामें बदल दीजिए।

यह तर्क उतना ही पुराना है जितना कि मानव। मेरे पास इसका कोई बिलकुल मौलिक उत्तर भी नही है। फिर भी, मैं यह बतलानेकी कोशिश करूँगा कि मैं ईश्वरमें विश्वास क्यों करता हूँ। यह बतलानेकी प्रेरणा मुझे इस जानकारीसे मिली है कि अनेक नवयुवक मेरे विचारों और मेरे कामोंमें दिलचस्पी लेते हैं।[1]

एक ऐसी अव्यक्त, अपरिभाषित, रहस्यमयी शक्ति अवश्य है, जो विश्वके कण-कणमें व्याप्त है। मुझे उसकी प्रतीति होती है, हालाँकि मैं उसे देख नहीं पाता। यही वह अदृश्य शक्ति है जिसके प्रभावका अनुभव तो होता है पर वह किसी भी प्रमाणकी पकड़में नहीं आती। क्योंकि मैं अपनी इन्द्रियोंके जरिये जिन चीजोंका अनुभव कर पाता हूँ, वह उन सबसे सर्वथा भिन्न है। वह अतीन्द्रिय है।

लेकिन एक सीमातक ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करना सम्भव है। संसार के सामान्य कार्योंमें भी लोगोंको यह जानकारी तो नही रहती कि यह सब-कुछ किसके चलाये चल रहा है और वह क्यों और किस ढंगसे संसारका नियमन करता है, परन्तु इतना वे निश्चित तौरपर समझते हैं कि कोई शक्ति है अवश्य जो संसारका संचालन कर रही है। पिछले वर्ष मैसूरके अपने दौरेमें मैंने अनेक निर्धन ग्रामीणोंसे बातचीतके दौरान पाया कि उनको यह भी नहीं मालूम था कि मैसूरका शासक कौन है। उन्होंने इतना ही उत्तर दिया कि कोई देवता शासन करता है। यदि वे गरीब लोग अपने शासकके बारेमें इतना कम जानते थे तो फिर मेरी क्या बिसात? अपने शासककी तुलनामें वे जितने छोटे हैं, मैं तो ईश्वरकी तुलनामें उससे न जाने कितना छोटा हूँ। इसलिए यदि मैं ईश्वरके अस्तित्वको, सम्राटोंके सम्राट्के अस्तित्वको, महसूस न कर पाऊँ तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात? फिर भी मैं इतना महसूस करता हूँ – जैसे कि वे ग्रामीण मैसूरके बारेमें महसूस करते थे – कि ब्रह्माण्डमें एक व्यवस्था है, एक अटल नियम विश्वकी प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणीका नियमन कर रहा है। वह नियम अंधा नहीं है, क्योंकि कोई भी अन्धा या विवेकशून्य नियम जीवधारी प्राणियोंके आचरणका नियमन नहीं कर सकता। और अब तो सर जगदीशचन्द्र बसुकी आश्चर्यजनक खोजोंके आधारपर सिद्ध किया जा सकता है कि पदार्थतक जीवमय है। इस प्रकार विश्वके समस्त जीवनका नियमन करनेवाला नियम ही ईश्वर है। नियम और नियामक एक ही है। चूँकि मैं उस नियम या नियामक – ईश्वर – के बारेमें इतना कम जानता हूँ, इसीलिए मुझे उसके अस्तित्वको माननेसे इनकार तो नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार किसी भौतिक शक्तिको माननेसे मेरे इनकार करने या उसके

१. इसके बाद जो पाठ दिया जा रहा है वह, अन्तिम वाक्य और न्यूमैनकी पंक्तियोंको छोड़कर, कोलम्बिया ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी, लन्दन द्वारा २० अक्टूबर, १९३१ को रिकार्ड किया गया था जबकि गांधीजी किंग्सले हॉलमें ठहरे हुए थे।

बारेमें अज्ञाना बने रहनेसे मैं उसके प्रभावसे मुक्त नहीं हो जाता, उसी प्रकार ईश्वर या उसके नियमको स्वीकार न करनेसे तो मै उसके प्रभावसे अछूता नही रह पाऊँगा। दूसरी ओर नतशिर होकर मूक भावसे ईश्वरीय शक्तिको स्वीकार कर लेनेसे जीवन-यात्रा उसी प्रकार सुगम-सरल हो जाती है जिस प्रकार कोई व्यक्ति यदि उस सांसारिक सत्ताको, जिसके अधीन वह रहता है, स्वीकार कर ले तो उसकी जिन्दगी आसान हो जाती है।

मुझे एक आभास-सा तो अवश्य होता है कि इस सतत परिवर्तनशील और नाशवान विश्वके पीछे कोई ऐसी चेतन शक्ति है, जो स्वयं अपरिवर्तनशील है, जो कण-कणको एक सूत्रमें बाँधे है, जो सृजन, संहार और नव सृजन करती रहती है। वह सर्वज्ञ शक्ति ही ईश्वर है। और चूँकि अपने मात्र इन्द्रिय-ज्ञानके बलपर मैं जितनी भी वस्तुओंकी प्रतीति कर पाता हूँ, वे सभी नाशवान हैं, अनित्य हैं, इसलिए एक ईश्वर ही अनश्वर और नित्य है।

और यह शक्ति मंगलकारी है या अमंगलकारी? मुझे तो वह पूर्णतया मंगलकारी ही लगती है। इसलिए कि मैं देखता हूँ कि मृत्युके वातावरणमें जीवन, असत्यके घमासानमें सत्य और अन्धकारकी चपेटमें प्रकाश अपना अस्तित्व बनाये हुए है। इसीसे मैं निष्कर्ष निकालता हूँ कि ईश्वर जीवन, सत्य और प्रकाश-रूप है। वह प्रेम है। वह परम शिव-तत्त्व है।

मगर यदि ईश्वर बुद्धिको सन्तोष दे भी सकता हो तो वह ईश्वर ईश्वर नहीं है जो केवल बुद्धिको ही सन्तोष दे। ईश्वर तो तभी ईश्वर कहा जा सकता है जब उसका साम्राज्य हृदयपर हो, वह हृदयको बदल सके। उसके बन्देके हरएक, छोटेसे-छोटे काममें भी उसकी झलक मिलनी चाहिए। यह तो तभी हो सकता है जब उसका सच्चा दर्शन मिले। वह दर्शन पाँच इन्द्रियोंके ज्ञानसे अधिक सच्चा होना चाहिए। इन्द्रियोंका ज्ञान हमें चाहे जितना सच्चा क्यों न मालूम हो, किन्तु वह गलत हो सकता है, बहुत बार इन्द्रियाँ हमें धोखा देती हैं। जो ज्ञान इन्द्रियोंके परे होता है, उसमें भूल नहीं हो सकती। यह बाहरी प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता, बल्कि अपने भीतर ईश्वरकी सच्ची अनुभूति करनेवालेके आचार-व्यवहार तथा चरित्रमें परिवर्तनसे सिद्ध होता है।

इस प्रकारका साक्ष्य सभी देशों तथा जातियोंके नबी-पैगम्बरों, ऋषि-मुनियोंके अनुभवमें मिलता है जिनकी श्रृंखला कभी टूटती नहीं। इस प्रमाणको अस्वीकार करना अपने अस्तित्वको अस्वीकार करना है।

ऐसा अनुभव अटूट आस्थाके आधारपर ही प्रतिफलित होता है। जो भी व्यक्ति ईश्वरके अस्तित्वका स्वयं अनुभव करके देखना चाहे, वह जीवन्त आस्थाके बलपर ही ऐसा कर सकता है। और चूँकि आस्थाको भी किसी बाह्य प्रमाणके आधारपर सिद्ध नहीं किया जा सकता, इसलिए सबसे निरापद माँग यही है कि संसारके नैतिक नियमनपर और इसीलिए नैतिक नियमको, सत्य तथा प्रेमके नियमको, सर्वोपरि नियम मानकर उसपर आस्था रखी जाये। और उस आस्थाका मार्ग

अपनाना उसी व्यक्तिके लिए सर्वाधिक फलप्रद रहेगा, जो सत्य और प्रेमके विरुद्ध पड़नेवाली हर चीजका सर्वथा त्याग करनेका दृढ़ संकल्प कर लेगा।

परन्तु पत्र-लेखकने जो तर्क प्रस्तुत किया है, उसका उत्तर ऊपर कही गई बातोंमें नहीं मिलता। मै स्वीकार करता हूँ कि उनको बुद्धिके धरातलपर पूर्णतः सन्तुष्ट करने योग्य कोई भी तर्क मेरे पास नहीं है। आस्था तर्कसे ऊपरकी चीज है। बस, मै उनको यही परामर्श दे सकता हूँ कि वे असम्भवको करनेका प्रयत्न न करें। बुराईके अस्तित्वका मैं अन्य कोई युक्तिसंगत कारण नहीं सोच पाता। ऐसा करनेकी इच्छा करना अपने-आपको ईश्वरका समकक्षी मान लेना है। इसलिए मैं पूरी विनम्रताके साथ बुराईको बुराईके रूपमें स्वीकार करके ही सन्तुष्ट हूँ। और मैं ईश्वरको अत्यन्त सहिष्णु और धैर्यशील भी इसीलिए कहता हूँ कि वह बुराईको संसारमें रहने देता है। मैं जानता हूँ कि ईश्वरमें बुराईका तत्त्व एकदम नही है, वह सर्वथा शुद्ध है, और इसके बावजूद यदि बुराई है, तो वह उससे अछूता है।

मैं यह भी जानता हूँ कि यदि मै अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर बुराईके विरुद्ध संघर्ष नहीं करूँगा तो मैं ईश्वरको कभी भी नहीं जान पाऊँगा। मेरा अपना तुच्छ और सीमित अनुभव मेरे इस विश्वासको पुष्ट बनाता है। मै शुद्ध-पवित्र बननेका जितना ही अधिक प्रयत्न करता हूँ, अपने-आपको ईश्वरके उतना ही निकट महसूस करता हूँ। आज तो मुझमें नाम-मात्रकी ही श्रद्धा है, फिर भी मैं अपने-आपको उसके कुछ निकट महसूस करता हूँ। पर जब मेरी श्रद्धा हिमालय-जैसी अटल और उसकी चोटियोंके हिम-जैसी धवल और उज्ज्वल बन जायेगी तब मैं कितनी अधिक निकटता उससे महसूस करने लगूँगा? तब पत्र-लेखकसे मेरा आग्रह है कि तबतक वे न्यूमैनकी इस प्रार्थनाका पाठ करें। न्यूमैनने अपने अनुभवके आधार-पर यह गीत रचा था:

> इस घिरते अंधकारमें, हे प्रेममय ज्योति
> मेरा मार्ग आलोकित कर;
> मैं घरसे बहुत दूर पड़ा हूँ और रात अँधेरी है,
> हे ज्योति, मेरा मार्ग आलोकित कर;
> मेरे लड़खड़ाते पैरोंको तू बल दे,
> बहुत दूर-दूर तक मेरा पथ दीप्त हो उठे—
> ऐसा मैं नहीं कहता, मै तो चाहता हूँ बस एक डग-भर,
> एक डग-भरका आलोकित पथ पर्याप्त होगा मेरे लिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-१०-१९२८

३८९. पत्र : खुर्शेद नौरोजीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ अक्टूबर, १९२८

तुम्हारा लम्बा-चौड़ा खत मिला। मुझे इस बातकी बेहद खुशी है कि तुमने मुझे इतनी तफसीलके साथ लिखा। नाउम्मीद होनेकी तो कोई वजह दिखाई नहीं पड़ती। तुम्हारा काम नया-नया है, इसलिए उसमें वक्त लग सकता है। लेकिन मैं चाहता हूँ कि अगर तुमसे बन सके तो तुम भारतीय संगीतका एक और हुनर अपने अन्दर पैदा कर लो।

यहाँ जरूर आओ और आश्रममें कुछ दिन बिताओ। अगर तुम आश्रमकी जिन्दगीको अपना सको तो इससे बढ़िया बात और क्या होगी? लेकिन मैं जानता हूँ कि तुम्हारे लिए ऐसा करना बहुत मुश्किल पड़ेगा।

आजकल यहाँ एक आस्ट्रियाई दम्पती है। पत्नी कण्ठ-संगीत और वाद्य संगीत, दोनों ही जानती हैं। वे काफी हुनरमन्द लगती हैं। वे अंग्रेजी भाषा जैसे-तैसे ही बोल पाती हैं। वे भजन-संगीतकी बेहद शौकीन हैं। मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम उनसे मिलतीं और उनका संगीत सुनतीं।

कुमारी खुर्शेद नौरोजी,
नेपियन सी रोड, मलाबार हिल, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३५४६)की फोटो-नकलसे।

३९०. पत्र : जुगलकिशोरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
११ अक्टूबर, १९२८

प्रिय जुगलकिशोर,

आपका पत्र बहुत दिनोंतक मेरी फाइलमें ही लगा रहा, लेकिन मैं समय निकाल ही नहीं पाया। आज जब कि सभी लोग कताईमें लगे हुए हैं और मुझे भी नित्यप्रतिसे काफी अधिक समयतक कताई करनी है, शेष पड़े हुए पत्रोंको निबटानेका थोड़ा समय मिल गया है।

आपकी योजना अच्छी तो है, पर आवश्यकतासे अधिक उच्चाकांक्षी लगती है। आपका प्रस्ताव है कि विवाहितोंको ७५ रुपये और अविवाहितोंको ३० रुपये दिये जायें। मेरा खयाल है कि आपको यह अन्तर नहीं रखना चाहिए, दोनोंके लिए समान व्यवस्था करनी चाहिए। आप कह सकते हैं कि आप विवाहितोंके मामलेमें

उनकी आवश्यकताओंको देखकर ही तय करेंगे। और यदि इन लोगोंकी पत्नियाँ भी गाँवोंमें काम करनेके लिए तैयार होंगी, तो उनकी वृत्ति बढ़ा दी जा सकती है। आपको इन सभी कार्यकर्त्ताओंसे खादी, अस्पृश्यता, नशाबन्दी इत्यादिकी प्रतिज्ञाएँ भी करानी चाहिए और हिन्दीका ज्ञान वांछनीय होगा — यह कहनेके बजाय आपको हिन्दी अनिवार्य बना देनी चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि भली भाँति हिन्दी न जाननेवाले लोगोंको भरती करनेसे आपको साफ इनकार कर देना चाहिए। आपका यह कथन बिलकुल सही है कि आपका कार्यक्षेत्र संयुक्त प्रान्त रहेगा। फिर किसी ऐसे विद्यार्थीको भरती करके आप अपनी कठिनाई क्यों बढ़ायें जो हिन्दी भली भाँति न जानता हो।

मै अभी तुरन्त इस योजनाको प्रकाशित नही कर रहा हूँ। और मैं इसे जब भी प्रकाशित करूँ आप यह उम्मीद तो नहीं ही करते कि मैं इसे पूरा-का-पूरा प्रकाशित करूँ। मुझे बतलाइए कि इस योजनाको मंजूरी मिल गई है या नही और यह चालू कर दी गई है या नहीं। यदि ऐसा हो चुका हो तो मैं 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें सहर्ष इसकी चर्चा करूँगा।

आशा है, आप दोनों भले-चंगे होंगे और आपका काम ठीक चल रहा होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १३७०३) की माइक्रोफिल्मसे।

३९१. तार: मोतीलाल नेहरूको

१२ अक्टूबर, १९२८

मोतीलाल नेहरू
इलाहाबाद

आपके बुखारकी बात सुनकर दुःख हुआ। अपनी और कमलाकी भी हालत तार द्वारा सूचित कीजिए।

गांधी

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

३९२ तार: वल्लभभाई पटेलको

१२ अक्टूबर, १९२८

वल्लभभाई पटेल
स्वराज आश्रम
बारडोली

प्रतीक्षित पत्र मिला जिसमें किसी भी तरहका अन्दरूनी समझौता हो चुकनेकी बातका स्पष्ट रूपसे खण्डन किया गया है। आगेकी कार्रवाईके बारेमें विचार करनेके लिए यहीं आ जाओ तो ज्यादा ठीक रहेगा।

बापू

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६)से।

३९३. तार: मेरठ राजनीतिक सम्मेलनको

१२ अक्टूबर, १९२८

मन्त्री
राजनीतिक सम्मेलन
मेरठ

खेद है कि शामिल नहीं हो सकूँगा। सम्मेलनकी पूरी सफलताकी कामना करता हूँ।

गांधी

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० २४५६) से।

३९४. पत्र : एलिजाबेथ नुडसेनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय कुमारी नुडसेन,

एक लम्बे अरसेके बाद आपका पत्र पाकर मन बड़ा हर्षित हुआ।

गुलाबोंके बारेमें आपकी फटकारकी मैं ताईद करता हूँ। जाहिर है कि आपको इसकी जानकारी नही है कि भारतमें आजकल नारी-उत्थानके पक्षमें कितना जोरदार आन्दोलन चल रहा है।

आशा है, आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगी।

हृदयसे आपका,

कुमारी ई० नुडसेन
वाई० डब्ल्यू० सी० ए० बिल्डिंग
कराची

अंग्रेजी (एस० एन० १३५४८)की माइक्रोफिल्मसे।

३९५. पत्र : सर एम० वी० जोशीको[1]

१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। कल ही पहुँचा है। श्रीमती सरलादेवी अम्बालाल साराभाई-के जरिये एक बार पहले भी पूछे जानेपर मैंने यही उत्तर दिया था कि मुझे बड़ा खेद है कि मैं आपकी कमेटीके सामने साक्ष्य नहीं दे सकूँगा। इसलिए आशा है, आप इसका अन्यथा नहीं मानेंगे।

हृदयसे आपका,

सर एम० वी० जोशी
एज ऑफ कन्सेंट कमेटी
कैम्प अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १३५५०)की फोटो-नकलसे।

१. एम० वी० जोशीके ९ अक्टूबरके पत्र (एस० एन० १३५४५) के उत्तरमें। पत्रमें कहा गया था कि १५ से १९ अक्टूबरतक अहमदाबादमें एज ऑफ कन्सेंट कमेटीका शिविर रहेगा और गांधीजी-से अनुरोध किया गया था कि उस दौरान वे अपनी सुविधानुसार कमेटीके सामने साक्ष्य देनेके लिए उपस्थित हों। इस समितिकी नियुक्ति सरकारने केन्द्रीय विधान सभामें पेश बाल-विवाह विधेयकपर हुई चर्चाके सिलसिलेमें इस समस्याके सभी पहलुओंपर विचार करने और उनसे विधान सभाको अवगत करानेके लिए की थी।

३९६. पत्र : रूपनारायण श्रीवास्तवको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। स्पष्ट है कि हम एक ही चीजको परस्पर विरोधी दृष्टिकोणोंसे देख रहे हैं। आपका विचार है कि आत्मरक्षाके प्रयत्नमें किसीको मार डालना हिंसा नहीं है, जबकि बछड़ेके ही भलेके लिए – चाहे बादमें यह निष्कर्ष गलत ही ठहरे – उसे मार देना आपकी नजरमें हिंसा है। मुझे नहीं दिखाई पड़ता कि इसमें हम दोनों कहीं भी एक-दूसरेसे सहमत हो सकेंगे। मैं तो साँपको मारना भी हिंसा ही समझता हूँ। भले ही मैं साँपसे भय खाकर उसे मारनेके लिए विवश हो जाऊँ, पर इससे हिंसाके उस कार्यमें तो किसी तरह भी कोई कमी नहीं आयेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत रूपनारायण श्रीवास्तव
मार्फत – सेठ जमनादास, एम० एल० ए०
जबलपुर (म० प्रा०)

अंग्रेजी (एस० एन० १३५५१) की फोटो-नकलसे।

३९७. पत्र : एस० सुब्रह्मण्यम्‌को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपका इतना आग्रह था, इसलिए मैं सैण्डिल और धोती आपको भेज रहा हूँ और आपके दानकी राशिमें से इनका डाकखर्च काट रहा हूँ।

अच्छी किस्मकी साड़ियाँ और धोतियाँ आपको खादी-भण्डार, प्रिंसेज स्ट्रीट, बम्बईसे मिल सकती हैं। मैं नहीं समझता कि वी० पी० भेजने और मँगानेकी व्यवस्था हमारे देश और मलायाके बीच है। इसलिए आपको उनके पास नकद राशि भेजनी पड़ेगी, तभी वे ऑर्डरका माल भेज सकेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० सुब्रह्मण्यम्
गवर्नमेंट इंग्लिश स्कूल
सेगामट, जोहोर
मलाया

अंग्रेजी (एस० एन० १३५५२) की माइक्रोफिलमसे।

३९८. पत्र : आइजक सान्त्राको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। पुस्तिका मिलनेपर मैं उसे अवश्य पढ़ूँगा। लेकिन मैं इस तरहके काम अपने ही ढंगसे करना पसन्द करता हूँ। अभी इस समय मैं साम्राज्य द्वारा किये जानेवाले किसी भी काममें शरीक नहीं होना चाहता, क्योंकि मुझे साम्राज्यपर अविश्वास है।

हृदयसे आपका,

श्री आइजक सान्त्रा
मुख्य अधिकारी
कुष्ठ सर्वेक्षण
मार्फत — पोस्ट मास्टर, जामनेर
पूर्वी खानदेश

अंग्रेजी (एस० एन० १३५५३)की माइक्रोफिल्मसे।

३९९. पत्र : मीराबहनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रभुदासके यहाँ पहुँचनेसे पहले ही तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया। यह देखकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ कि तुमको यात्रा आनन्ददायक लग रही है और तुम उसके बारेमें इतने प्रफुल्लित मनसे लिख रही हो। मैं चाहता हूँ कि तुम यात्रासे भरपूर स्फूर्ति और प्रफुल्लित मन लेकर लौटो।

आश्रममें शीतके आगमनके लक्षण दिखने लगे हैं। अब रातें काफी ठण्डी होने लगी हैं और काफी-कुछ ओढ़ना पड़ता है। आश्रममें मलेरिया भी जोर पकड़ता जा रहा है। राजकिशोरी और शारदा भी ज्वरकी चपेटमें आ गई हैं। चिमनलाल और छोटी शारदा तो पिछले तीन दिनसे पड़े ही हैं।

कल मजदूरों-सहित आश्रमके सभी लोगोंने परिपाटीके अनुसार एक साथ बैठकर फलोंका भोजन किया। हम लोगोंकी संख्या ३०० से ऊपर थी। भोजनमें खजूर, मूँगफली, केले और किशमिश थे।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३१३) से। सौजन्य : मीराबहन; जी० एन० ८२०३ से भी।

४००. पत्र: हे० सॉ० लि० पोलकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय भाई,

आपका फटकार-भरा पत्र मिला। फटकार उचित ही है। परन्तु उसमें सोलहों आने गणेशनकी भूल ही थी। भेजनेका काम आश्रमने नहीं किया था। गणेशन उसके प्रकाशक हैं और वे काफी सावधान आदमी हैं। पर पता नहीं कैसे, वे आपको कोई प्रति[1] भेजना भूल गये। एन्ड्रयूजने तार भेजा था, इसलिए उनको एक या एकाधिक प्रतियाँ मिल गई।

गब्रिएल आइजकके नामका उल्लेख छूट जानेपर भी आपने झिड़की दी है। मुझे उनके नामका उल्लेख न होनेकी जानकारी नहीं है। मैंने अभी-अभी अंग्रेजी अनुवादकी सांकेतिका देखी है। उसमें उनका नाम नहीं मिला। परन्तु इसे तो इस बातका यथेष्ट प्रमाण नहीं माना जा सकता कि उनका नाम उस पुस्तकमें[2] कहीं है ही नहीं। और अगर नहीं भी हो, तो उसे जान-बूझकर तो नहीं ही छोड़ा गया है। मैंने आश्रमके लोगोंसे बहुधा उनके और उनके त्यागके बारेमें बातें की हैं। उनका, उनकी नेकदिली और उनकी सादगीका मुझे बहुधा स्मरण हो आता है। फिर भी अगर मैं उल्लेख करना भूल गया हूँ तो कह नही सकता कि यह कैसे हुआ। मै कह सकता हूँ कि अन्य कुछ प्रिय जनोंके नाम भी इसी प्रकार गफलतसे छूट गये हैं।

जेलोंके उल्लेखमें जो गड़बड़ी है, उसकी मुझे चिन्ता नहीं। किसी आदमीका जीवन यदि घटनाओंसे इतना भरा-पूरा हो, और वह यदि दस वर्षके बाद उन सभी घटनाओंको याद करके लिखना शुरू करे तो इस तरहकी अशुद्धियाँ स्वाभाविक ही हैं। क्या इतना ही काफी नहीं है कि सार रूपमें वह इतिहास बिलकुल सच्चा है और उसमें किसी प्रकारका कोई आग्रह या पक्षपात नहीं है? पुस्तकके पाठकोंने उसके बारेमें यही राय दी है। और मैं दावेके साथ कहता हूँ कि आप भी उसके बारेमें यही राय देंगे।

अबतक शायद आपको मालूम हो गया होगा कि मगनलालके स्मारकका रूप क्या होगा। पर यदि आपको 'यंग इंडिया' का[3] वह अंक न मिला हो तो मैं आपको बतलाये देता हूँ कि मगनलालके खादी-प्रेम और इस सम्बन्धमें उनके तकनीकी ज्ञानके योग्य ही विशेष तौर पर बनाई जानेवाली एक इमारतमें एक खादी-संग्रहालय स्मारकके रूपमें प्रतिष्ठित किया जायेगा। बारडोलीका आन्दोलन बीचमें आ जानेके कारण

१ व २. **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**; देखिए खण्ड २९।

३. १७ मई, १९२८ का अंक; देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ३४२-४३।

स्वभावतः उन लोगोंका ध्यान – जैसा कि उचित था – उस ओर अधिक चला गया जो अन्यथा मगनलाल स्मारकके लिए अधिक उदारतासे चन्दा देते। इसलिए चन्दे बहुत धीरे-धीरे आ रहे हैं।

हॉलैंडका सुन्दर पोस्टकार्ड मुझे मिल गया।

आश्रममें सब-कुछ ठीक-ठीक चल रहा है। उसमें इन दिनों काफी परिवर्तन किये जा रहे है। परिवर्तनोंकी रूपरेखा पूरी तरह स्पष्ट हो जानेपर आपको 'यंग इंडिया' के जरिये उनकी जानकारी मिल जायेगी। मीरा कताई-क्षेत्रोंके दौरेपर गई है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि वह जिन-जिन गाँवोंमें जाती है वहाँ अपने-आपको कितनी अच्छी तरह रमा लेती है। उसने जो हिन्दी सीखी थी, वह अब काफी काम आ रही है।

आस्ट्रियाई दम्पति आजकल यहीं है। बहुत ही भले लोग हैं। पति ग्रेजके चिकित्सा-विद्यालयमें प्राध्यापक हैं और पत्नी उत्तम गायिका और उससे भी कही अच्छी दार्शनिक है। वे दोनों अपने विवाहके समयसे ही ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे हैं। इन सभी उत्तम गुणोंकी स्रोत पत्नी ही है। उसका कहना है कि उसके मनमें संभोगकी कभी कोई इच्छा ही नहीं उठी। दोनों कई मानीमें अनुपम हैं।

रामदास बारडोलीमें है और देवदास दिल्लीमें। छगनलाल यहीं है। महादेव, प्यारेलाल, सुब्बैया और बाकी लोग तो यहाँ हैं ही।

हम सबकी ओरसे स्नेह-वन्दन,

हृदयसे आपका,

श्री हेनरी सॉलोमन लिअन पोलक
४२,४७ व ४८ डेन्स इन हाउस
२६५ स्ट्रैंड, लन्दन, डब्ल्यू० सी०–२

अंग्रेजी (एस० एन० १४३९४)की फोटो-नकलसे।

४०१. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय चार्ली,

तुम्हारे पत्र मिले। तुम 'यंग इंडिया'की अपनी प्रतिमें अपना लेख "ऋषियोंका देश"[1] देखोगे।

शास्त्रीका उत्तराधिकारी चुननेकी समस्या बड़ी टेढ़ी सिद्ध हो रही है। मुझे पता नहीं कि भारत सरकार क्या-कुछ कर रही है। लेकिन मैं थोड़ा चिन्तित हो उठा हूँ। शास्त्रीके स्थानके लिए उनके जैसा उपयुक्त पात्र मिलना कठिन है और

१. देखिए "ऋषियोंका आश्रम", २१-१०-१९२८।

यदि सरकारने अपने कृपापात्रको ही उसपर बैठा दिया तो शास्त्री द्वारा किया गया इतना अमूल्य कार्य वड़ी आसानीसे मटियामेट हो जायेगा।

आश्रममें सब-कुछ ठीक चल रहा है; हाँ, इस बार मौसमी मलेरियाका कुछ जोर अवश्य है और यह जबतक है, तबतक थोड़ा कष्ट तो रहेगा ही।

मोहन

अंग्रेजी (एस० एन० १४४०९)की फोटो-नकलसे।

४०२. पत्र : सरोजिनी नायडूको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मीरा,

आपका पत्र मिला। मेरे पत्रका पद्मजाने[1] जो उत्तर दिया है, वह भेज रहा हूँ। जब डॉक्टर लोग ही उसको सेनेटोरियम छोड़नेकी सलाह नहीं देते तो मैं कर ही क्या सकता हूँ? मैं उसे फिर पत्र लिखूँगा और जब-तब लिखता रहूँगा और उसके साथ सम्पर्क बनाये रहूँगा। आप बिलकुल निश्चिन्त होकर अपना कार्यक्रम पूरा करें। मेरी और आपकी अपेक्षा ईश्वर उसकी कहीं अच्छी देख-भाल कर लेगा और जब भी वह चाहेगा आपको और मुझे अपने साधनकी तरह प्रयुक्त कर लेगा।

मैं आशा करता हूँ कि इस दौरेमें आप अपना स्वास्थ्य ठीक रखेंगी। आशा है, आप समय-समयपर पत्र लिखती रहेंगी।

राजनीतिक वातावरणमें कोई शान्ति नहीं है, और न वह स्पष्ट ही। बेचारे मोतीलालजी जितना उठा सकते हैं, कामका उतना बोझ उनके सिरपर मौजूद है।

श्रीमती सरोजिनी नायडू
मार्फत – टॉमस कुक ऐंड सन्स,
न्यूयॉर्क, संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रेजी (एस० एन० १४४१०) की फोटो-नकलसे।

१. सरोजिनी नायडूकी पुत्री।

४०३. पत्र : एस्थर मेननको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१२ अक्टूबर, १९२८

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र एक लम्बे अरसेके बाद मिला। इसलिए दोहरी खुशी हुई। आशा है, मेरा पत्र मिलनेके समय तुम्हारा स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा होगा और यदि ऑपरेशन हुआ भी होगा तो पूर्णतया सफल रहा होगा और उसने कोई बुरा प्रभाव नही छोड़ा होगा।

आजकल आश्रममें अनेक परिवर्तन हो रहे है। समय आनेपर 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें उनका विस्तृत विवरण तुमको देखनेको मिलेगा। वर्षके इन दिनोंमें यहाँ मलेरिया जोर पकड़ता है। इस वर्ष भी है। बाकी सब ठीक चल रहा है।

मेननको पत्र लिखो तो मेरी याद दिलाना।

श्रीमती एस्थर मेनन

अंग्रेजी (एस० एन० १४४११) की फोटो-नकलसे।

४०४. हानिकर प्रथा

एक काठियावाड़ी लिखते हैं:[१]

हिन्दू समाजमें वास्तवमें यह कठिनाई है और वह केवल काठियावाड़में ही नहीं है। जिस युवा पतिको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान हो गया है, यदि उसे इस स्थितिमें से निकलना हो तो अपना मार्ग स्वयं ही खोजना चाहिए। उसे चाहिए कि वह अपने माता-पिताको नम्रतासे समझाये और उनके सम्मुख विवाहका सच्चा अर्थ स्पष्ट करे। यदि उसे अपने माता-पिताको समझानेमें कुछ कठिनाई हो तो वह जबतक स्वावलम्बी न हो सके तबतक दृढ़तापूर्वक अपनी स्त्रीके साथ रहनेसे इनकार कर दे। जहाँ चाह होती है वहाँ राह भी निकल आती है। मनुष्यकी प्रतिष्ठा कठिनाइयोंमें से निकलनेमें ही हो सकती है और वह उनमें से निकलकर ही सच्चा मनुष्य बन सकता है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १४-१०-१९२८

१. अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखककी शिकायत थी कि जब परिवारके साथ रहते हुए पति-पत्नी एक-दूसरेसे बाततक नहीं कर पाते तब वह विवाहको मित्रताका रूप कैसे दे सकते हैं।

४०५. बारडोलीकी गायें

बारडोली ताल्लुकेके एक वैश्य सज्जन लिखते हैं:[1]

यदि ये तथ्य ठीक हों तो इस समय बारडोलीमें जो रचनात्मक कार्य किया जा रहा है, हमें उसे अधिक व्यापक बनाना चाहिए। 'नवजीवन' में अनेक बार बताया जा चुका है कि बैलोंको बधिया न करानेसे कितनी हानि हो रही है। इसमें सन्देह नही कि भैंससे जितना दूध मिल सकता है लगभग उतना ही गायसे भी मिल सकता है। किन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब गायकी सार-सँभाल वैज्ञानिक विधिसे की जाये। यदि हम अन्ततः भैंसेके वधसे बचना चाहते हों तो हमें गोवंशकी उन्नतिकी ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। गोवंश जितना उपयोगी है, भैंसकी नस्ल उतनी उपयोगी नहीं है, यह बात सहज ही सिद्ध की जा सकती है। गायोंको भले-बुरे कैसे भी साँड़से मिला देनेसे गोवंश उत्तरोत्तर दुर्बल होता जाता है। हमने इस ओर ध्यान दिया ही नहीं है। बारडोलीमें जो भारी जागृति हो रही है उसके फलस्वरूप गायोंका प्रश्न हल किया जा सके तो बारडोलीके लोगोंने सत्याग्रहके द्वारा जो सेवा की है, उसमें वे बहुत अधिक वृद्धि कर सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-१०-१९२८

४०६. बेहाल

एक नवयुवक लिखता है:[2]

इस युवकने अपना नाम दिया है। किन्तु उसके समान ही दूसरे बहुत-से हैं और इसलिए वह 'नवजीवन' के द्वारा उपाय जानना चाहता है। मेरे पास कोई रामबाण दवा नहीं है। इसे मैं एक प्रकारका रोग मानता हूँ। मुझे मालूम है कि इस रोगके बहुत-से रोगी हैं। जिससे कुछ लोगोंको फायदा हुआ है, वह उपाय बतलाता हूँ।

मुख्य वस्तु ईश्वरपर श्रद्धा है। और जिसके मनमें श्रद्धा है, वह अपनी दुर्बल स्थितिमें ईश्वरकी सहायता माँगता है, और उसे सहायता मिलती भी है। प्रार्थना किससे करें? ईश्वर क्या सहायता करनेके लिए निठल्ला बैठा हुआ है? अगर निठल्ला बैठा

१. अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें कहा गया था कि बारडोली और अन्य ताल्लुकोंमें प्रायः रानीपरज समाजके लोग ही गाय पालते हैं। अन्य लोग भैंसें रखते हैं और बैलोंको काममें लाकर जब वे बूढ़े हो जाते हैं तब आवारा छोड़ देते हैं। झूठी भावनाके कारण बैलोंको बधिया करनेका विरोध भी किया जाता है, फलस्वरूप नस्ल खराब होती रहती है।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उन्नीस वर्षीय इस विवाहित युवकने अपनी कुटेवके आगे लाचार होकर उसका उपाय पूछा था।

हो तो वह अन्तर्यामी होनेके कारण क्यों नहीं प्रार्थना करनेसे पहले ही रोगको समझकर उसका निवारण करता? इस तरहकी दलीलोंके प्रपंचमें न पड़ते हुए, ईश्वरकी गतिको गहन समझकर और दूसरे जो उसकी शरण लेकर तर गये हैं, उनके दृष्टान्तको सामने रखते हुए श्रद्धापूर्वक सच्चे हृदयसे याचना करनी चाहिए।

जितनी जरूरत प्रार्थनाकी है, उतनी ही पुरुषार्थकी भी है। बिना प्रयत्नके प्रार्थना आडम्बर बन जाती है। प्रार्थना शुष्क तो है ही। फिर यदि वह हार्दिक न हो तो उसका केवल यान्त्रिक उच्चारण निरर्थक है। प्रयत्न करनेवाले में तुरन्त आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है। प्रयत्नमें सतत शारीरिक उद्यम आवश्यक है। उद्यम चाहे कितना ही हलका क्यों न हो, उसकी कोई परवाह नहीं। जो-कुछ पढ़ा जाये, वह पवित्रताका पोषक ही हो। एकान्तका सेवन बिलकुल ही नहीं करना चाहिए। पत्नीका सहवास छोड़ना अनिवार्य है। इस सबको करते रहें और रोगको भूल ही जायें। यदि सतत उद्यम करेंगे तो रोगकी याद ही नहीं आयेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-१०-१९२८

४०७. एक समस्या

बछड़ा-प्रकरण[1] जल्दी ही समाप्त होता नहीं दीखता। अहिंसाके नामपर हिंसा करनेवाले भाई अभीतक डाकखानेकी आमदनी बढ़ा रहे हैं। कुछ लोग मानते हैं कि मैं साठ वर्षका हो गया हूँ और इसलिए मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। सासून अस्पतालमें[2] मेरे रोगको असाध्य मानकर डाक्टरों या मित्रोंने मुझे जहरकी पिचकारी दे दी होती, तो वह गरीब बछड़ा जहरकी पिचकारीसे बच जाता और बन्दरोंके ऊपर मैं मृत्युदण्डकी जो तलवार उठाये हुए हूँ, उसका भय भी हनुमानके वंशजोंको न रहता। इनके अलावा ऐसे ही अहिंसक उद्गारोंवाले अन्य पत्र भी आया करते हैं। और इस तरहके पत्र जितने अधिक आते हैं, मुझे उतना ही अधिक ऐसा लगता है कि इस विषयकी 'नवजीवन' में चर्चा करके मैंने ठीक ही किया था। ये पत्रलेखकगण समझते ही नहीं हैं कि अहिंसा-धर्मको जानने और माननेका दावा करते हुए भी उनका ऐसे पत्र लिखना हिंसा करना है। किन्तु ऐसे पत्रोंमें अपवाद-रूप दो-चार दूसरे प्रकारके पत्र भी आये हैं। मैं उनमें से चुनकर एक यहाँ दे रहा हूँ। इस पत्रके लेखक कहते हैं:

> **बछड़ा-प्रकरणके विषयमें आपकी मीमांसासे कितने ही संशय दूर हुए। आपने अहिंसाकी मर्यादाके ऊपर भली भाँति प्रकाश डाला है, किन्तु उसके साथ ही आपने एक नई उलझन भी पैदा कर दी है। वह यह है: मान लीजिए, कोई व्यक्ति या व्यक्तियोंका समूह किसी बड़े जनसमुदायको कष्ट पहुँचा रहा है और दूसरी तरहसे उसका निवारण न हो सकनेकी अवस्थामें**

1. देखिए "पावककी ज्वाला", ३०-९-१९२८।
2. जहाँ जनवरी, १९२४ में उनका आन्त्रपुच्छका ऑपरेशन हुआ था; देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २०२-४।

यदि पीड़ित जनसमुदाय उसका नाश करे तो यह अनिवार्य समझकर अहिंसामें गिना जायेगा या नहीं? बछड़ा-प्रकरणमें आपने भावनाको प्राधान्य दिया है, तो इस स्थलमें भी पीड़ा देनेवाले पापीका वध करनेमें भावनाके उच्च होनेके कारण क्या यह वध अहिंसक नहीं गिना जायेगा? फसलका नाश करनेवाले जीवोंके नाशको आपने हिंसा नहीं गिना है। उसी भाँति क्या आप मानव-समाजका नाश करनेवाले आदमीके नाशको अहिंसा न मानेंगे?

विवेकी पाठकोंने तो यह देख ही लिया होगा कि इस पत्रमें मेरे लेखका अनर्थ लक्षित होता है। अहिंसाकी जो व्याख्या मैंने दी है, उसमें उपर्युक्त ढंगसे मनुष्योंके वधका समावेश हो ही नहीं सकता। किसान जो अनिवार्य जीवनाश करता है, उसे भी मैंने कभी अहिंसामें नही गिनाया है। यह वध अनिवार्य होनेके कारण क्षम्य भले ही माना जाये, किन्तु अहिंसा तो निश्चय ही नहीं है। किसान द्वारा की गई हिंसामें या लेखकने जो दृष्टान्त दिया है, उसमें निहित हिंसामें समाजका स्वार्थ तो छिपा हुआ है ही। अहिंसामें स्वार्थको स्थान नहीं है। बछड़ेके प्राण-हरणमें स्वार्थका नहीं, केवल बछड़ेके भलेका ही विचार था। उसमें खेती या किसी अन्यकी रक्षाका सवाल नहीं था और न उसमें मेरी या किसी दूसरेकी सुविधाका सवाल था। दु:खसे पीड़ित और जिसकी दूसरी कोई सेवा असम्भव हो गई थी, ऐसे बछड़ेके प्रति जो कर्त्तव्य था, सवाल उसीका था। प्रस्तुत लेखकके प्रश्नकी तुलना बन्दरोंके प्रश्नसे जरूर की जा सकती है। मगर इन दोनोंमें बहुत भेद है। बन्दरका हृदय-परिवर्तन करनेका कोई सामाजिक उपाय हमारे पास नहीं है, इसलिए उसका प्राणहरण शायद क्षम्य गिना जाये, किन्तु पापीका, कष्ट देनेवाले मनुष्यका हृदय-परिवर्तन हमेशा शक्य है। ऐसे परिवर्तनके उपायोंकी योजना भी समाजने की है। इसलिए स्वार्थी मनुष्यके वधको अहिंसाके क्षेत्रमें स्थान कभी नहीं मिल सकता। मनुष्यका वध करना अनिवार्य हो सकता है; यह बात मुझे सूझ ही नही सकती। यह याद रखनेकी जरूरत है कि बछड़ेकी स्थितिमें पड़े हुए मनुष्यके बारेमें मैंने जो कल्पना की है, उसका यहाँ कोई सवाल नहीं है।

अब रही भावनाकी बात। यह सही है कि मैंने भावनाको प्राधान्य दिया है, किन्तु अकेली भावनामे अहिंसा सिद्ध नहीं हो सकती। यह सच है कि अहिंसाकी परीक्षा अन्ततः भावनासे ही होती है, किन्तु कोरी भावनासे अहिंसाको नहीं आँका जा सकता, यह भी उतना ही सच है। भावनाका माप भी कार्यसे ही सिद्ध करना पड़ता है। जहाँ स्वार्थवश होकर हिंसा की गई है, वहाँ भावना चाहे कितनी ही ऊँची क्यों न हो, तो भी स्वार्थमय हिंसा तो हिंसा ही रहेगी। इससे उलटे, जो आदमी मनमें वैरभाव रखता है किन्तु लाचारीसे उसे काममें नहीं ला सकता, उसे वैरीके प्रति अहिंसक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसकी भावनामें वैर छिपा हुआ है। इसलिए अहिंसाको मापनेमें भावना और कार्य दोनोंकी परीक्षा की जरूरत रहती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-१०-१९२८

४०८. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

आ[श्विन] सु[दी] १ [१४ अक्टूबर, १९२८][1]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला।

बीमारीके कारण खाटपर पड़े हुए व्यक्ति द्वारा चरखा चलानेका प्रश्न ही नहीं उठता। आपकी प्रतिज्ञामें भी बीमारीका अपवाद तो था। हाँ, यदि आप आलस्यवश या कामके बोझके बहाने चरखा न चलायें तो मेरी दो कड़वी बातें अवश्य सुननी पड़ेंगी। इतना ही नहीं, बल्कि आपके प्रति यदि मेरा इतना प्रेम हो कि मैं सत्याग्रह कर सकूँ तो शायद आपके खिलाफ सत्याग्रह करनेकी नौबत भी आ सकती है। आप अपनी बीमारीमें भी चरखा चलाते रहें, ऐसी अनुचित माँग मैं कैसे कर सकता हूँ! और यदि श्रीमती पट्टणी अब भी निष्ठापूर्वक चरखा चलाती हों तो यह मेरे लिए आपके कातने-जैसा ही है। किन्तु उनकी सच्ची निष्ठाके बारेमें मुझे सन्देह है। मै आपके प्रमाणपत्रको पक्षपातपूर्ण मानता हूँ, इसलिए मैं अपनी दृष्टिसे उनकी निष्ठाकी परीक्षा लूँगा। फिर आप ही लिखते हैं कि वे सदा 'पाणकोरुं' (गजी) नहीं पहनतीं। किन्तु जो निष्ठावान है, उसके लिए क्या कोई अपवाद होता है? 'पाणकोरुं' तो हमारे घरोंमें प्रचलित शब्द है। वे 'पाणकोरुं' जितना महीन चाहें उतना महीन पहनें। मैं यह नहीं मानता कि 'पाणकोरुं' का अर्थ केवल मोटा कपड़ा ही होता है। हमारी बहन-बेटियाँ जैसा भी कातकर दे सकें उसी कपड़ेको 'पाणकोरुं' कहा जाता है। महीन सूत कतवाना तो आपके हाथकी बात है। ऐसा लगता है जैसे मैंने यह पत्र रमाबहनके लिए लिखा है।

अब आपसे जो मैं आशा करता हूँ उसमें कुछ बातें ये हैं। अपनी रियासतके उत्पादनोंपर होनेवाले खर्चके लिए आपको अपने बजटमें उसी प्रकार काफी गुंजाइश रखनी चाहिए जैसे कि आप करोंकी वसूलीपर होनेवाले खर्चके लिए रखते हैं। आज-कल तो यह खर्च मुझे उठाना पड़ रहा है। किन्तु मुझमें अब उस खर्चको उठानेकी शक्ति कहाँ है?

आपकी रियासतमें मद्य-निषेध कानूनका जो परिणाम निकला हो उसकी रिपोर्ट तैयार करवाकर जनताकी अथवा मेरी जानकारीके लिए भिजवायें।

सरकारी डेरी-विशेषज्ञके जो लेख 'यंग इंडिया'में प्रकाशित हुए हैं उनके आधारपर आप एक आदर्श डेरी रियासतकी ओरसे चलायें। आखिरकार इसमें नुकसान तो होगा ही नहीं।

१. **यंग इंडिया**के २७-९-१९२८ तथा ११-१०-१९२८ के अंकोंमें प्रकाशित डेरी परिचालन-सम्बन्धी लेखोंके आधारपर इस पत्रका वर्ष निर्धारित किया गया है।

इन कामोंको आप खाटपर पड़े-पड़े भी शुरू कर सकते हैं। आप अभी इतना करें और बादमें अन्य सुझावोंके बारेमें पूछें।

किन्तु मैं एक बात तो कह ही डालूँ। आप खटिया छोड़ दें। आपको यह काम कठिन जान पड़ेगा और मुझे भी कठिन लगता है, किन्तु इस सिलसिलेमें आप डाक्टरोंके अतिरिक्त किसी नीम-हकीमकी राय भी लें। ऐसा एक नीम-हकीम तो कुवलयानन्द है जिसे शायद आप जानते हैं। मैं अभीतक उसे परख नहीं सका हूँ। ऐसा ही एक नीम-हकीम और भी है। वह योगका तो नाम भी नहीं जानता, किन्तु जलोपचार करता है। यदि आप ऐसे लोगोंको अपने आसपास इकट्ठा करना चाहें तो मैं पता लगाऊँ। उनकी बात सुनकर जो चिकित्सा निरापद जान पड़े और जिसपर विश्वास जमे वह उपचार करें। खाटपर पड़े रहनेका तो कोई कारण नहीं है। क्या इन नीम-हकीमोंमें मैं भी एक नहीं हूँ? किन्तु अब मैं निकम्मा हो गया हूँ। फिर भी सबसे बड़ा हकीम राम तो है ही। यदि मैंने उसे जान लिया होता तो उसे आपके पास भेज दिया होता। किन्तु ऐसा दिन तो "सोनियाके पाँवमें मुतिया"[1] ही कहा जायेगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३२१७) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: महेश पट्टणी

४०९. पत्र: हरिभाऊ उपाध्यायको

मौनवार, १५ अक्टूबर, १९२८

भाई हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई जेठालालके कामकी कमियोंके बारेमें मीराबहनने मुझे विस्तारपूर्वक लिखा है। उसने लिखा है कि जेठालालने अपनी भूल सुधारना स्वीकार कर लिया है। तुम भी जेठालालको प्रेरित करते रहना।

तुम्हारा तैयार किया हुआ तलपट मैंने समझ लिया है। मेरी सलाह है कि तुम असत्यके विभाग मत करो। अतिशयोक्ति, अर्ध सत्य, असत्य इन सबके प्रति आँखें मूंद लेना असत्य ही है। हम स्वयं अपने प्रति बहुत उदारतापूर्वक बरतते हैं, जब कि अपने प्रति हमें बहुत कृपण होना चाहिए। हमें अपना राई बराबर दोष पहाड़ जैसा दीखना चाहिए।

ब्रह्मचर्यके बारेमें भी मुझे कुछ ऐसा ही दिखाई देता है। जिसे हम सूक्ष्म ब्रह्मचर्यका भंग समझकर दरगुजर कर देते हैं अक्सर वह स्थूल ब्रह्मचर्यका ही भंग होता है। उदाहरणके लिए, मलिन स्पर्श-मात्र स्थूल ब्रह्मचर्यका भंग है। स्पर्शहीन

१. आशय किसी गरीब लड़कीके पाँवमें मोतीके आभूषण-जैसी असम्भव बातसे है।

किन्तु मलिन विनोदके बारेमें भी यही बात है। 'मलिन' यानी विकार उत्पन्न करनेवाला।

तुमसे यह बात कहनेकी जरूरत तो नहीं थी, किन्तु फिलहाल आश्रममें इस बातको समझानेकी आवश्यकता है। जब मैं अपने जीवनपर नजर डालता हूँ तो मुझमें भी यह ढिलाई दिखाई देती है। इसलिए तुम्हें पहलेसे चेताये दे रहा हूँ। सच बात तो यह है कि पवित्र जीवन नया जन्म ही है और वह ईश्वरकी कृपाके बिना नहीं मिलता।

जब लग गजबल अपनो बरत्यो
नेक सरचो नहि काम।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०६२) की नकलसे।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

४१०. पत्र : विपिनबिहारी वर्माको

१५ अक्टूबर, १९२८

भाई विपिन,

आपका पत्र मीला है। मेरा आना या किसीको भेजना असंभवित सा है। साधु वास्वानीको[1] मोतीहारी तक आनेको ललचा सके हो इसलीये आप सबको धन्यवाद देता हुं। बिहारके छात्रोंको यह कहना अनावश्यक है की सच्ची विद्वत्ता जीवनकी पवित्रता बढ़ानेमें और इसलीये सरलता, सादगीमें है।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री विपिनबिहारी
स्वागत समिति
छात्र-सम्मेलन
मोतीहारी
बिहार

सी० डब्ल्यू० ९१२८ की फोटो-नकलसे।

१. टी० एल० वास्वानी।

४११. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

१५ अक्टूबर, १९२८

भाई रामेश्वरदास,

तुमारे पत्र तो आते ही रहते है। अब तो धर्मपत्निको पूरा आराम हो गया होगा। चित शांतिका एक ही उपाय है -- रामनामको हृदयमें अंकित करना।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० १९६ की फोटो-नकलसे।

४१२. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

१५ ओक्टूबर, १९२८

चि० ब्रजकिसन,

तुमारा पत्र मीला है। तुमारे जैसी शंका बहोत खतोंमें है। उत्तर 'न० जी०'[1] में दीया है इसलीये यहां कुछ नहिं लीखता हुं। तुमारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३६० की फोटो-नकलसे।

४१३. पत्र : करीम गुलामअलीको[2]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका खत मिला। आपकी स्थिति भी वैष्णव सम्प्रदायवालोंकी-जैसी ही है। मेरा जन्म भी इसी सम्प्रदायमें हुआ है। तमाम सम्प्रदायोंमें जो अन्दरूनी बुराइयाँ आ गई हैं, वे उन अलग-अलग सम्प्रदायोंके लोग खुद ही दूर कर सकते हैं। ऐसे

१. देखिए "पावककी ज्वाला", ३०-९-१९२८। उक्त लेख **हिन्दी नवजीवन**के ४-१०-१९२८के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. इस पत्रकी टाइपशुदा दफ्तरी प्रति (एस० एन० १३५५६) पर निम्नलिखित टिप्पणी मिलती है: "खोजा फिरका और यूरोपमें परम पावन एच० एच० आगाखाँ द्वारा खर्च की जानेवाली बड़ी-बड़ी राशियोंके बारेमें (पत्र नष्ट कर दिया गया)।"

सुधारोंका मुझे कोई सीधा बना-बनाया रास्ता नहीं दिखाई पड़ता — बस एक ही रास्ता है कि लगातार कोशिश करते रहें और आवामकी रायको सुधारोंके हकमें मोड़ते चलें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

करीम गुलामअली साहब
खारधार
कराची

अंग्रेजी (जी० एन० २३३) की फोटो-नकलसे।

४१४. पत्र : डॉ० सी० मुत्थुको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय डॉ० मुत्थु,

आपका पत्र मिला। कृपया मुझसे किसी अपीलपर हस्ताक्षर करनेके लिए मत कहिए। आप देखेंगे कि मैं स्वयं अपनी ओरसे जारी की गई अपीलोंके अलावा किसी भी और अपीलके साथ अपना नाम नहीं जुड़ने देता। इसका सीधा-सा कारण यह है कि अगर मैं एक अपीलपर हस्ताक्षर कर दूँ तो फिर मुझे दूसरी कई अपीलों पर भी हस्ताक्षर करने पड़ेंगे और मुझे यह बात कतई पसन्द नहीं है। लेकिन आशा है कि आप सेनेटोरियमका काम सम्पन्न करके अपनी एक महत्वाकांक्षा पूरी कर सकेंगे।

हृदयसे आपका,

डॉ० सी० मुत्थु
९ मॉन्टिएथ रोड, एगमोर, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३५५५) की माइक्रोफिल्मसे।

४१५. पत्र : रॉय हॉपकिन्सको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला और उसके साथ ५ पौंडका चेक भी, जो आपने 'शान्ति' विषयपर मुझसे एक छोटा-सा लेख लिखवानेके लिए भेजा है। पत्र और चेकके लिए धन्यवाद। मगर अभी तो मेरे हाथमें इतना काम है कि लिखनेके लिए थोड़ा समय निकालना भी सम्भव नहीं दिखाई पड़ता, और मेरा खयाल है कि मेरे अन्दर इतनी विनम्रता तो है ही कि मै महसूस कर सकूँ कि शान्तिके लिए लालायित सारा संसार शान्ति प्राप्त करनेके उपायोंके बारेमें मेरे शब्द सुननेके लिए ही कान लगाये नहीं बैठा है।

आपने जो चेक भेजनेकी कृपा की है, उसे मैं लौटा रहा हूँ। मैं यदि कभी कुछ लिखूँ भी तो पारिश्रमिकके लिए नहीं लिखूँगा। क्योंकि मैंने ऐसा कभी नही किया। कुछ पत्रिकाओंके लिए मैंने लेख लिखे हैं और कई बार मुझे उनके लिए पारिश्रमिक भी मिला है। ऐसी सभी राशियाँ मेरे सार्वजनिक कार्योंको चलानेके लिए चन्दोंके रूपमें दे दी गई हैं। मुझसे कोई लेख लिखा पाना किसीके लिए भी आसान काम नहीं होता, क्योंकि मैं किसी व्यक्ति या किसी पत्रिकाके लिए लिखनेसे बहुत बचता रहता हूँ। इसलिए आप चेक लौटाने और अपनी असमर्थता प्रकट करनेके लिए मुझे क्षमा करनेकी कृपा करें।

हृदयसे आपका,

श्री रॉय हॉपकिन्स
प्रबन्ध-निदेशक
लन्दन जनरल प्रेस
८ बुवरीज़ स्ट्रीट
लन्दन ई० सी० ४

अंग्रेजी (एस० एन० १४३८८) की फोटो-नकलसे।

४१६. पत्र : रुखी गांधीको

१६ अक्टूबर, १९२८

चि० रुखी,

मैं झटपट उत्तर दे दूँ, यही ठीक है न? बैलके सम्बन्धमें चुप लगाकर तुमने ठीक किया। वहाँ तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है और तुम अच्छा काम भी कर रही हो इसलिए तुम्हें यहाँ बुलानेका मुझे तनिक भी लोभ नहीं है। "सुतर आवे त्यम तुं रहे, जेम त्यम करीने हरिने तुं लहे।"[१]

लगता है केशू वहाँ अच्छी तरह जम गया है। मैं फिलहाल राधाके बारेमें कुछ नहीं कह सकता। आजकल यहाँ मलेरियाकी अच्छी प्रदर्शनी हो रही है।

बापूके आशीर्वाद

चि० रुक्षमणि
मार्फत — खुशालभाई गांधी
मिडिल स्कूलके सामने
नवापुरा, राजकोट

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७६१)की नकलसे।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

४१७. शास्त्रीका करतब

इस सप्ताह एक पत्र-लेखकने क्लॉर्क्सडॉर्पकी घटनाका आँखों देखा हाल पूरी तफसीलके साथ भेजा है। घटना अब काफी प्रसिद्धि पा चुकी है। दक्षिण आफ्रिकाके समाचारपत्र उसके विवरणसे रँगे रहते हैं। हालाँकि अब संघ सरकार द्वारा दी गई ब्योरेवार, खुली और खरी सफाईके बाद घटनाके बारेमें राजनीतिक दृष्टिकोणसे कहनेके लिए अधिक कुछ नहीं रहा या उसकी जरूरत नहीं रह गई है, फिर भी श्रीयुत शास्त्रीके आचरणकी प्रशंसामें जितना भी कहा जाये थोड़ा होगा। वह एक ऐसा कुचक्र था जिसके परिणाम घातक भी निकल सकते थे, पर श्रीयुत शास्त्रीने उसका सामना कितनी बहादुरी और कितनी उदारतासे किया! मेरे पास जो पत्र आया है, उससे प्रकट है कि श्री शास्त्री जिस सभामें भाषण दे रहे थे उसे तोड़नेके लिए डिप्टी

१. अर्थात्, जिसमें सुविधा जान पड़ती हो वैसे रहो, किन्तु जैसे बने वैसे हरिको पाओ।

मेयरके नेतृत्वमें आई एक टोलीने वहाँकी सारी बत्तियाँ बुझा दीं पर भारतके इस सच्चे सपूत और प्रतिनिधिने घबराये या विचलित हुए बिना अपना भाषण जारी रखा। और जब एक विस्फोटके फलस्वरूप श्रोताओंको सभा-भवनमें साँस लेना भी दूभर हो गया, तब श्रीयुत शास्त्री भवनसे बाहर निकले और वहाँ उन्होने इस भावसे अपना भाषण पूरा किया जैसे कोई गम्भीर बात या गड़बड़ी हुई ही न हो। उन्होंने अपने भाषणमें उस घटनाका उल्लेखतक नही किया। वैसे तो दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंमें वे इस घटनासे पहले ही काफी लोकप्रिय हो चुके थे। किन्तु अब उनके अविचलित साहस और उदारमना आचरणने उनको यूरोपीयोंकी नजरोंमें और भी ऊँचा उठा दिया।

और चूँकि वे किसी भी व्यक्तिगत यशके भूखे नहीं थे (चन्द ही व्यक्ति मिलेंगे जो प्रसिद्धिसे श्रीयुत शास्त्रीकी तरह दूर भागते हों), इसलिए उन्होंने अपनी लोकप्रियताका उपयोग उस उद्देश्यको आगे बढ़ानेके लिए ही किया जिसके लिए उन्होंने इतनी अनुपम योग्यता और सफलताके साथ काम किया है। दक्षिण आफ्रिकामें इतने अल्प कालतक रहकर ही उन्होंने संसारके उस भागमें हमारे देशवासियोंकी प्रतिष्ठा काफी ऊँची उठा दी है। आशा है कि वे लोग आदर्श आचरण करके अपने-आपको उनके योग्य सिद्ध कर दिखायेंगे।

परन्तु दक्षिण आफ्रिकाकी पेचीदा और नाजुक समस्याको हल करनेमें शास्त्रीका योगदान इस आकस्मिक घटनाके दौरान उनके आचरणतक ही सीमित नहीं है। राजदूतके कार्यालयकी आन्तरिक कार्य-प्रणालीके विषयमें हमारी जानकारीका एकमात्र स्रोत उसके परिणाम ही होते हैं। उनके अलावा हम उसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। सो हम क्या जानें कि इस काममें उन्होंने किस प्रकार अपना पूरा राजनीतिक कौशल लगा दिया — वह राजनीतिक कौशल जिसके मूलमें व्यक्तिका यह विश्वास काम कर रहा हो कि उसका उद्देश्य सही है और जिसमें कोई गलत, ओछा और धूर्ततापूर्ण काम करने अथवा ऐसे कामका समर्थन करनेकी गुंजाइश न हो? परन्तु इस बातकी जानकारी तो हमें है ही कि उन्होंने अपने उद्देश्यकी खातिर प्रकृति द्वारा मुक्तहस्तसे प्रदान की गई अपनी वक्तृत्व-कला, अंग्रेजी और संस्कृतके अपने पाण्डित्य तथा ज्ञानके विशाल और वैविध्यपूर्ण भण्डारका उपयोग करनेमें कभी तनिक भी संकोच नहीं किया। वे आम और विशिष्ट यूरोपीयोंकी सभाओं और बैठकोंमें भारतीय दर्शन तथा संस्कृतिके विषयपर भाषण करते रहे हैं, जिससे यूरोपीय लोगोंको कुछ सोचनेका मसाला मिला। इसके फलस्वरूप उनके पूर्वग्रहोंकी वह मोटी-कड़ी परत कुछ ढीली पड़ गई जिसके कारण आम यूरोपीय अबतक भारतीयोंमें कोई अच्छाई देख ही नहीं पाते थे। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके ध्येयको आगे बढ़ानेमें उनका सबसे बड़ा और सबसे स्थायी योगदान शायद यही है — उनके ये भाषण ही।

श्रीयुत शास्त्रीका उत्तराधिकारी चुनना भारत सरकारके लिए सचमुच बड़ा दु:साध्य कार्य होगा। शास्त्रीजी से दक्षिण आफ्रिकामें कुछ और समयतक रहनेके लिए जितनी बार भी आग्रह किया गया, वे लगातार अस्वीकार करते आये हैं। दक्षिण

आफ्रिकासे आनेवाले पत्रोंसे पता चलता है कि वहाँके भारतीय श्रीयुत शास्त्रीके निकट भविष्यमें वहाँसे प्रस्थान करनेकी बात सोचकर कितने काँप उठते हैं। जिस पुनीत कार्यको श्रीयुत शास्त्रीने इतनी सफलतापूर्वक आरम्भ किया और जिसे उन्होंने इतनी खूबीके साथ निभाया, यदि उसे जारी रखनेके लिए कोई सुयोग्य उत्तराधिकारी न मिला तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मैं तो आशा करता हूँ कि वाइसराय-भवनमें अब यह परम्परा प्रतिष्ठित हो चुकी है कि दक्षिण आफ्रिका-स्थित भारतके प्रतिनिधिके स्थानको एक ऐसा पक्षातीत स्थान माना जायेगा जिसका उपयोग सरकार और सभी लोकप्रिय दल सम्मिलित रूपसे कर सकते हैं। हमें आशा रखनी चाहिए कि उनका उत्तराधिकारी कोई ऐसा व्यक्ति चुना जायेगा जो सरकार और जनता दोनोंको समान रूपसे स्वीकार्य होगा और जो केवल भारत सरकारका ही नहीं, बल्कि भारतीय जनताका भी सच्चा प्रतिनिधित्व करेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-१०-१९२८

४१८. तार: एन० सी० केलकरको[1]

१८ अक्टूबर, १९२८

अन्य कारणोंके अतिरिक्त, ऐसे सम्मेलनको सफल बनानेके लिए भी मैं चाहूँगा कि मुझे न बुलाया जाये।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३७०५) की फोटो-नकलसे।

१. यह केलकरके पूनासे भेजे गये १७ अक्टूबरके तारके उत्तरमें दिया गया था। तार इस प्रकार था: "यदि हम नेहरू रिपोर्ट और लखनऊ प्रस्तावोंके समर्थन और प्रचारके लिए साइमन कमीशनके प्रस्थानसे एक दिन पहले २७ तारीखको पूनामें बम्बई प्रेसीडेन्सी सर्वदलीय सम्मेलन बुलानेका फैसला करें तो क्या आप उसकी अध्यक्षता स्वीकार कर सकेंगे? आपका तार मिलनेके बाद ही अन्तिम निर्णय सूचित करूँगा।"

४१९. पत्र : पेरिन कैप्टेनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

तुम्हारे दो पत्र मिले। तुम मेरे साथ कलकत्ता जरूर आओ और जो भी वस्तुएँ बेचना चाहो अवश्य बेचो, मगर प्रदर्शनीमें नहीं।

श्रीमती पी० बैरमजी मुझसे नागपुरमें मिली थीं और उन्होंने काफी खादी खरीदी थी। इससे ज्यादा मैं कुछ नही कह सकता। बस इतना ही। भरोसा रखने या न रखनेका कोई सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि हमारा तो नियम ही है कि हम नकद दामोंपर ही खादी बेचें।

काकासाहबसे बात हुई थी। उनका कहना है कि उनको बिलकुल भी याद नहीं पड़ता कि उन्होंने कभी तुमको कोई ऐसा वचन दिया था या विद्यापीठमें खादी बेचनेकी अपनी योग्यताके बारेमें तुमसे कोई बात की थी। और कसीदेके कामकी खादीके लिए तो उनको ग्राहक मिल ही नहीं सकते। क्या उन्होंने तुमसे कहा था कि उनका कोई अपना भण्डार है?

मैं भला-चंगा हूँ।

श्रीमती पेरिन कैप्टेन

अंग्रेजी (एस० एन० १३५५९) की माइक्रोफिल्मसे।

४२०. पत्र : एल० वी० पटनायकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरेतईं कर्मभूमिका अर्थ मौज-मजे और सुख-भोगकी भूमि नहीं, बल्कि त्यागके भावसे, यज्ञके भावसे कर्म करनेके आनन्दकी भूमि है।

सीता सूत कातती थी –– ऐसा कहनेका मेरे पास एक प्रमाण यह है कि इतिहास हमको बतलाता है कि उस कालमें प्रत्येक घरमें एक चरखा रहता था। तब सीताके घरमें चरखा नहीं होगा –– ऐसा माननेका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० वी० पटनायक
डाकघर – दिगपाहण्डी (गंजाम)

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६०) की माइक्रोफिल्मसे।

४२१. पत्र : यज्ञेश्वर प्रसादको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

तपेदिकसे बीमार जिस लड़केकी बाबत आपने लिखा है, यदि वह इतना बड़ा हो कि अच्छाई-बुराईको खुद समझ सकता हो तो मै समझता हूँ कि उसे अपना फैसला आप करने देना चाहिए और उसे अपने धार्मिक दृष्टिकोणके अनुसार जो-कुछ खाना उचित लगे, वह खाने देना चाहिए। पर यदि उसकी उम्र इतनी कच्ची हो कि वह अपनी राय खुद न बना सकता हो, तो उसके लिए अपने पिताकी इच्छाके मुताबिक चलना ही उचित रहेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत यज्ञेश्वर प्रसाद
७९०, नई बस्ती, क्वीन्स रोड, दिल्ली

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६१) की फोटो-नकलसे।

४२२. पत्र : वीणा दासको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय बहन,

आपका पत्र कुछ दिन पहले मिला था। मैं उसका उत्तर नही दे सका। मैंने आत्म-रक्षातक के लिए शारीरिक बलके प्रयोगकी वकालत कभी नहीं की। मैंने केवल इतना कहा है कि कायरताके मुकाबले शारीरिक बलका प्रयोग ज्यादा अच्छा है, मतलब यह कि यदि हम कहीं शारीरिक बलका प्रयोग करना चाहें तो सिर्फ मृत्युके भयसे उसका प्रयोग करनेसे हाथ रोकना गलत होगा। मैं जिस चीजकी वकालत करता हूँ वह यह है कि हमारे अन्दर मृत्युको वरण करनेका साहस होना चाहिए, वह चाहे आत्म-रक्षाके लिए हो या देशकी खातिर।

हृदयसे आपका,

श्रीमती वीणा दास
७, राममोहन राय रोड, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६२) की फोटो-नकलसे।

४२३. पत्र : उर्मिला देवीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

आपका पत्र मिला। परेशानियाँ आपका पल्ला कभी नहीं छोड़ती। फिर भी, आशा है कि अब धीरेन काफी स्वस्थ हो गया होगा।

देवधर या तो अपने घरमें मिल जायेंगे या सेवा-सदनमें। मेरा खयाल है कि वे जब भी पूनामें होते हैं, सेवा-सदन अवश्य जाते हैं।

अभी इस समय आश्रममें मलेरियाके कई मरीज हैं। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं, क्योंकि यह मौसम ही मलेरियाका है। इसकी हम अधिक चिन्ता नहीं करते, क्योंकि इसका सिर्फ एक इलाज है —— जबतक ज्वर रहे उपवास करो और पहले कोई दवा आजमाकर देख लो और बीमारी दूर न हो तो कुनैनका सेवन करो।

श्रीमती उर्मिला देवी
जाह्नवी विला
डाकघर — डेकन जिमखाना
पूना

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६३) की फोटो-नकलसे।

४२४. पत्र : टी० आर० फूकनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं ऐसी क्या अपील जारी कर सकता हूँ जिसे लेकर आप लोगोंके पास जा सकें? मेरा यही सुझाव था कि पैसेवाले कांग्रेसियोंके पास आप स्वयं जाकर उनसे इस मुश्किलसे बाहर निकलनेमें मदद देनेके लिए कहें।[1] मैं समझता हूँ कि आपके लिए यही एक उचित मार्ग है और मैं यह भी महसूस करता हूँ कि पैसेवाले कांग्रेसियोंको आपका यह भार उठाना ही चाहिए। मेरी सलाह है कि आप जाँचा हुआ प्रमाणित लेखा लेकर उनके पास जायें।

१. देखिए "तार : टी० आर० फूकनको", ६-१०-१९२८।

कांग्रेसियोंके पास जानेके लिए आप मेरे इस पत्रका जो भी इस्तेमाल चाहें कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० आर० फूकन
गोहाटी (असम)

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६४) की माइक्रोफिल्मसे।

४२५. पत्र : महाराजा नाभाको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। श्रीयुत गणेशन् भी मेरे पास आये थे। खेद है कि मैं आपकी सहायता करनेमें असमर्थ हूँ। मैं अपनी असमर्थताके कारण आपको और आपकी ओरसे मेरे पास आनेवाले मित्रोंको बता चुका हूँ।

हृदयसे आपका,

महाविभव महाराजा नाभा
ऑब्जर्वेटरी, कोडाइकनाल, दक्षिण भारत

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६५)की माइक्रोफिल्मसे।

४२६. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१८ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मोतीलालजी,

आपके दो पत्र मिले।

मैं कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशनमें सम्मिलित होनेके सम्बन्धमें आपकी इच्छाका पालन अवश्य करूँगा।

मैंने प्रदर्शनीके मामलेका उल्लेख इस उद्देश्यसे नहीं किया था कि आप उसमें हस्पक्षेप करें।[2] अगर किसी क्षेत्रके लोग अपनी समझके अनुसार कोई काम कर रहे

१. नाभाके अपदस्थ महाराजा, गुरुचरण सिंहने अपने दिनांक १९ सितम्बरके पत्रमें गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे सरकारसे न्याय दिलाने और क्षतिपूर्ति करानेमें उनकी सहायता करें।

२. देखिए "पत्र: मोतीलाल नेहरूको", ३०-९-१९२८।

हों तो मैं किसी भी दशामें किसी किस्मका हस्तक्षेप करना पसन्द नहीं करूँगा। मैंने तो आपको अपनी कठिनाई बतलाई थी। मैंने यन्त्र-मात्रके प्रदर्शनपर तो निश्चय ही कोई आपत्ति नहीं की है। मुझे तो भारतीय मिलोंमें बने वस्त्रोंको रखनेपर ही आपत्ति थी और अब भी है। यन्त्रोंके बारेमें मेरी दलील यह है कि हमें प्रदर्शनीमें चाहे जिस यन्त्रको स्थान नहीं देना चाहिए, पर ऐसे यन्त्र जरूर रखे जा सकते हैं, जो हम खुद किसानोंके लिए उपयोगी मानते हों और जिनका अभी देशमें प्रचलन न हुआ हो।

मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि दंगोंके बावजूद हमें अपना राजनीतिक कार्य तो जारी रखना ही है।

आपके और कमलाके स्वास्थ्यके बारेमें मनको आश्वस्त करनेवाला आपका तार मिल गया था। कलकत्तामें आपको जरूरतसे ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी, इसलिए आपको अपना स्वास्थ्य बहुत ही बढ़िया बना लेना चाहिए।

हृदयसे आपका,

पण्डित मोतीलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १३७०७)की फोटो-नकलसे।

४२७. पत्र : मीराबहनको

१९ अक्टूबर, १९२८

चि० मीरा,

तुम्हारे पत्र, जो हर तरहसे दुरुस्त और सुन्दर होते हैं, मुझे मिलते रहे हैं। उन्हें पढ़कर मन आनन्दित होता है और सारी चिन्ता दूर हो जाती है। यदि मैं अभी विस्तारसे या नियमित रूपसे तुमको न लिख पाऊँ तो बुरा मत मानना। छगनलाल तुमको प्रभुदासके बारेमें तार भेजेगा।

स्नेह।

बापू

श्रीमती मीराबाई
जामिया मिलिया, करोल बाग, दिल्ली

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३१४)से। सौजन्य : मीराबहन; जी० एन० ८२०४ से भी।

४२८. तार : मीराबहनको

१९ अक्टूबर १९२८

मीराबहन
मार्फत – देवदास
करोल बाग, दिल्ली

प्रभुदासके बारेमें अपने ही विवेकसे निर्णय लो और जो भी ठीक समझो करो।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३१५) से। सौजन्य: मीराबहन; जी० एन० ८२०५ से भी।

४२९. पत्र : बी० जी० हॉर्निमैनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२० अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पहला पत्र मुझे तब मिला जब निर्धारित समय बीत चुका था और इसीलिए मैंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। आपका दूसरा पत्र कल मिला, पर उसकी प्राप्ति सूचित करनेके लिए तुरन्त ही आपको लिखनेका समय नहीं मिला। आप यदि कभी आश्रममें मेरे साथ चौबीस घण्टे बिताकर देखें तो फिर आप सौ शब्दोंकी बात तो दूर, पाँच शब्दोंका भी कोई लेख कभी मुझसे नही माँगेंगे। मैं फिलहाल जिन कामोंमें लगा हुआ हूँ, उनसे अधिक कुछ भी करनेकी न तो मुझमें शक्ति है और न समय ही। इसलिए आपको निराश करनेके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री बी० जी० हॉर्निमैन
बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६६) की फोटो-नकलसे।

४३०. 'ऋषियोंका आश्रम'

दीनबन्धु एन्ड्र्यूजने इस शीर्षकसे यूरोपसे एक लेख भेजा है, जो 'यंग इंडिया' में[1] प्रकाशित हुआ है।

जर्मनीके मार्बर्ग नगरमें एक विद्यापीठ है। इसीको उक्त लेखमें दीनबन्धु एन्ड्र्यूजने ऋषियोंका आश्रम कहा है। इसमें ऋषि-जीवन बितानेवाले एक वयोवृद्ध अध्यापकका वर्णन पठनीय है। मार्बर्गके इस विद्यापीठमें वेदोंका अध्ययन बड़े पैमानेपर करवाया जाता है। जो अध्यापक यहाँ अध्ययन करते हैं उनके जीवनपर वेदोंकी इतनी गहरी छाप पड़ी जान पड़ती है कि वे स्वयं ऋषियों-जैसे आचारका पालन करते हैं। इन अध्यापकोंमें अध्यापक ओटो प्रधान है। उनका वर्णन निम्न प्रकार है:

> कुछ देरके लिए ही सही, मैं अध्यापक ओटोका अतिथि भी रहा और उससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। अध्यापक ओटो बाल-ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने विवाह ही नहीं किया। उन्होंने अपना सारा जीवन वेदाभ्यासमें ही लगा दिया है। उनके बाल सफेद हो गये हैं। उनकी बहन, जो लगभग उन्हींकी आयुकी होंगी, उनका घर सँभालती हैं। मुझे तो वे माँ-जैसी लगीं। क्योंकि उन्होंने माँकी तरह प्रेमपूर्वक मेरी पूरी देखभाल की। अध्यापक ओटो कई बार हिन्दुस्तान जा चुके हैं। उनसे मिलनेपर हिन्दुस्तानके बारेमें बातें हुई। मैंने देखा कि भारतके बारेमें बातें करते हुए उनके चेहरेपर आनन्द छाता चला गया। इससे मैं समझ सका कि उन्हें हिन्दुस्तानसे कितना प्रेम है, हालाँकि हिन्दुस्तानमें रहने से उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था। १९१२ में मलेरियाने उन्हें इस तरह धर दबाया था कि वे अब भी उससे पूरी तरह पीछा नहीं छुड़ा सके हैं; और पिछले वर्ष जब वे हिन्दुस्तान आये थे तब तो इतने सख्त बीमार हो गये और इतने दिन चारपाईपर पड़े रहे कि अबतक भी उनका स्वास्थ्य सँभला नहीं है — फिर भी उन्हें हिन्दुस्तानके सपने तो आते ही रहते हैं। उन्होंने भारतीय सभ्यताका अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन किया है। हिन्दू धर्मके गम्भीर अध्ययनके लिए उन्होंने वेद, उपनिषद् और 'गीता'को ही नहीं, पुराणोंको भी पढ़ा है। उन्होंने हिन्दू धर्मकी आधुनिक स्थितिके विषयमें भी खोज-बीन की है। हिन्दुस्तानकी कई बातोंके उनके सूक्ष्म ज्ञानसे मैं आश्चर्यचकित रह गया। किन्तु उसका कारण यह है कि उन्होंने किसी-न-किसी प्रकार अपना सम्पूर्ण जीवन शोधमें बिता दिया है। संस्कृत उनके लिए मातृभाषा-जैसी है और आवश्यकता पड़नेपर वे संस्कृतमें बातचीत कर सकते हैं।

१. तारीख ११-१०-१९२८ के अंकमें।

यह तो मैंने एक ही ऋषिके जीवन-वृत्तका अनुवाद दिया है। मुझे लगता है कि यूरोपमें, मुख्यतः जर्मनीमें, कुछ विद्वान् जिस भाव, लगन और सचाईसे वेदों तथा अन्य हिन्दू ग्रन्थोंका अध्ययन और मनन करते हैं, उसका यहाँ आज लगभग लोप ही हो गया है, यह बात हमें लज्जापूर्वक स्वीकार करनी चाहिए। यहाँ ऋषियोंके जीवनका अनुकरण तो बहुत कम दिखाई देता है और केवल अध्ययनकी ही खातिर आडम्बरके बिना सहज भावसे ब्रह्मचर्यका पालन आज कहाँ देखनेमें आता है? बहन भाईका साथ देनेके लिए कुमारी रहती और उसका घर सँभालती है; यह बात कैसी हर्षोत्पादक और वातावरणको पवित्र करनेवाली है! कुछ दिन पहले अमेरिकाके एक प्राध्यापकने बम्बईके ‘टाइम्स’ समाचार-पत्रमें अपना अनुभव लिखा था। यह प्राध्यापक भी संस्कृतका विद्वान् है। उसने लिखा है, मै भारतमें बहुत आशा लेकर आया था; किन्तु यहाँ आनेके बाद मुझे यहाँके अनुभव होनेपर और संस्कृतके पण्डितोंसे मिलनेपर निराशा हुई। उसके इस कथनमें अत्युक्ति है, उसकी यह धारणा उतावलीमें बनी हुई है, और उसमें भारतमें रहनेवाले यूरोपीयोंके वातावरणका प्रभाव है। किन्तु इस सबको छोड़कर जो शेष रहता है उसमें भी मुझे सत्यका अंश दिखाई दिया है और उससे मुझे लज्जा अनुभव हुई है। यदि हममें सच्ची धार्मिक जागृति हो और हमारी प्राचीन संस्कृतिमें जो-कुछ सत्य, शिव और सुन्दर है, उसको संग्रह करनेकी धुन हो तो हमारी स्थिति जैसी आज है उससे भिन्न ही होगी। ऋषि निर्भय होकर वनमें रह सकते थे। उनके लिए ब्रह्मचर्यका पालन सहज कार्य था। आज तो हम शहरोंमें भी निर्भय होकर नहीं रह सकते। हमें ब्रह्मचर्यका पालन विचित्र लगता है और स्थिति यह है कि परिश्रमपूर्वक ढूँढ़नेपर ही शायद कोई सच्चा ब्रह्मचारी मिले। ब्रह्मचारिणियाँ तो मिल ही कैसे सकती है? इससे एक क्षणके लिए मनमें यह धारणा बन जाती है कि इस समय भारत ऋषि-भूमि नहीं रहा है और ऋषि यूरोपके किसी कोनेमें रहने लगे हैं।

इस लेखका हेतु यह नहीं है कि कोई इसे पढ़कर जर्मनी अथवा कहीं अन्यत्र जाकर ऋषि बननेका प्रयत्न करे। यदि कोई ऐसा प्रयत्न करेगा तो उसका प्रयत्न विफल होगा। कोई भारतीय जर्मनी जाकर ऋषि बन सकता है, यह बात मेरी कल्पनामें नहीं आ सकती। भारतीयोंको तो भारतमें रहते हुए अध्यापक ओटो-जैसे लोगोंका अनुकरण करके ऋषियोंकी संस्थाका पुनरुद्धार करना होगा। कहा जा सकता है कि इस दिशामें आर्यसमाजने भगीरथ प्रयत्न किया है। किन्तु समूचे देशको देखते हुए यह प्रयत्न सागरमें बिन्दुवत है। देशमें ऐसे अनेक महान् प्रयत्न किये जायें तभी हमें अपनी प्राचीन सभ्यताकी खोई हुई चाबी पुनः मिल सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-१०-१९२८

४३१. भोले मजदूर

पंचमहालसे प्राप्त एक पत्रसे मालूम हुआ है कि नीतिहीन और पैसेके लोभी दलाल भोले राजपूतों और अन्य जातियोंके लोगोंको वहाँसे असमके चाय-बागानोंके लिए बहकाकर ले जाते हैं। मेरे पास इस तरह ले जाये गये बारह मजदूरोंके सम्बन्धमें हलफिया बयान भेजे गये हैं, जिनसे पता चलता है कि इन दलालोंने जवान पुरुषों और स्त्रियोंको बड़ौदाके पास मजदूरी दिलानेका झूठा वादा करके उन्हें ठेठ असम पहुँचा दिया।

प्रश्न यह नहीं कि वे असममें सुखी हैं या दुःखी; बल्कि यह है कि किसीको धोखा देकर इतनी दूर कैसे ले जाया जा सकता है। हलफिया बयान देनेवालों का कहना है कि वे अपनी खेती-बाड़ी छोड़कर गये थे। वे बेचारे इस आशासे घरसे निकले थे कि उन्हें कहीं पास ही अच्छी मजदूरी मिल जायेगी। किन्तु वे इस तरह जालमें फँस गये और उनके सगे-सम्बन्धी घोर चिन्तामें पड़े हुए हैं।

इस अनिष्टकर स्तिथिको रोकनेका एक ही उपाय है। दलाल दलाली पानेके लिए मजदूरोंको बहकाते और उन्हें झूठा लालच देते हैं। यदि मजदूर भरती करनेपर दलाली देना बिलकुल बन्द कर दिया जाये तो कोई किसीको बहकाने ही न जाये। असमके बागान-मालिकोंको उचित ढंगसे समुचित शर्तें प्रस्तुत करके मजदूर प्राप्त करनेका अधिकार है। वे चाहें तो सही-सही विज्ञापन भी प्रकाशित कर सकते हैं; किन्तु दलालोंके जरिये मजदूरोंको भरती करनेकी प्रथा बन्द की जानी चाहिए। दलालोंको हर मजदूरपर कुछ दलाली दी जाती है। सुना गया है कि उन्हें प्रति व्यक्ति दस रुपये दिये जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि महीनेमें तीस मजदूरोंको बहका लिया तो ३००रु० कमाई हो गई। यह लालच कोई मामूली लालच नहीं है। इसलिए बागान-मालिक चाहे जितनी चेतावनी क्यों न दें, दलाल इस तरह झूठका आश्रय लिये बिना नहीं रहेंगे।

यदि वेतन ठीक हो और नौकरी आकर्षक हो तो वास्तवमें दलालकी मध्यस्थताकी आवश्यकता होनी ही नहीं चाहिए। अनुभव बताता है कि जहाँ काम सख्त, तनख्वाह कम और कामकी जगह घर-बारसे दूर हो, वहीं दलालोंकी मध्यस्थताकी जरूरत होती है। यहाँ कामकी जगहका दूर होना तो अनिवार्य है; किन्तु तनख्वाह और दूसरी शर्तें आकर्षक हों तो मजदूर बेशक वहाँ अपने-आप चला जायेगा। जितना रुपया दलालोंपर खर्च किया जाता है यदि वही मजदूरोंको अच्छी सुविधाएँ देनेमें लगाया जाये तो जैसे अन्यायकी घटनाओंके हलफिया बयान प्राप्त हुए हैं वैसे अन्यायका उन्मूलन हो जाये।

बहरहाल, मालिक दलालोंसे काम लेना बन्द करें या न करें; जिन लोकसेवकोंको इन अन्यायोंका पता चले, उन्हें लोगोंमें वस्तु-स्थितिका प्रचार कर उन्हें सावधान कर देना चाहिए ताकि वे इन दलालोंके पंजोंमें न फँसें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-१०-१९२८

४३२. टिप्पणियाँ

सजा कब दी जाये?

विनयमन्दिरके एक शिक्षक पूछते हैं:[1]

मेरी सलाह तो यह है कि विद्यार्थियोंको किसी भी तरहकी सजा देना अनुचित है। विद्यार्थियोंके प्रति शिक्षकोंके दिलमें जो आदर तथा शुद्ध प्रेम होना चाहिए उसमें ऐसा करनेसे न्यूनता आ जाती है। सजा देकर विद्यार्थियोंको सिखानेकी पद्धति क्रमशः उठती चली जा रही है। मैं जानता हूँ कि कई-एक प्रसंग ऐसे होते है जब बड़ेसे-बड़े शिक्षक भी सजा दिये बिना नहीं रह पाते। परन्तु वह अपवाद गिना जा सकता है, और उसका समर्थन किसी भाँति नहीं होना चाहिए। शारीरिक सजा देनी पड़े, यह भी एक बड़े शिक्षक की कलाकी न्यूनता मानी जायेगी। स्पेंसर-जैसों ने तो सजा-मात्रको अनुचित माना है। यों अपने सिद्धान्तोंपर वह भी हमेशा अमल करनेमें समर्थ नहीं हो पाया था। इस उत्तरके बाद उपर्युक्त प्रश्नोंका विस्तृत जवाब देनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

सामान्यतः सजा अहिंसाके साथ मेल नहीं खाती। मैं ऐसे उदाहरण दे सकता हूँ कि अमुक हालतमें दी गई सजाको सजा नहीं माना जा सकता। परन्तु वे उदाहरण शिक्षकोंके लिए अनुपयोगी हैं। जैसे कोई पिता अत्यन्त दुःखी होकर दुःखमें अपने पुत्रको सजा दे डाले, तो यह प्रेमकी सजा है। पुत्र भी उसे हिंसा नहीं मान सकता। अथवा सन्निपातमें बकवास करनेवाले रोगीको कभी-कभी शुश्रूषा करनेवाले लोग एकाध चाँटा लगा देते हैं; उसमें हिंसा नहीं, अहिंसा है। परन्तु, ये दृष्टान्त शिक्षकके लिए निरुपयोगी हैं। उनके लिए बिना मारे विद्यार्थियोंको पढ़ानेकी तथा अनुशासित रखनेकी कला सीखना आवश्यक है। ऐसे शिक्षकोंके उदाहरण मौजूद है जिन्होंने कभी किसी विद्यार्थीको पीटा ही नहीं। शारीरिक सजाके सिवा और सजाएँ भी हैं; जैसे विद्यार्थीको अपमानित करना, उससे बैठकें लगवाना, अँगूठे पकड़वाना, उसे गालियाँ देना वगैरह। इन सभी प्रकारकी सजाओंको मैं वर्ज्य मानता हूँ।

विद्यार्थियोंको सुधारनेके लिए सजा देना और फिर पश्चात्ताप करना पश्चात्ताप नहीं है। सजासे सुधार किया जा सकता है, ऐसी मान्यता विद्यार्थीके मनमें पैदा करने और स्वयं शिक्षक द्वारा अपने मनमें रखनेसे वह समाजमें रूढ़ हो जाती है; हिंसा-बलके द्वारा सुधार करनेका मिथ्या भ्रम इसीसे पैदा हुआ है। मेरी तो यह धारणा है कि जो राष्ट्रीय शिक्षक जान-बूझकर सजाका उपयोग करता है, वह अपनी प्रतिज्ञा भंग करता है।

१. अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने शिक्षा अथवा नीति-विषयक चूक होनेपर विद्यार्थियोंको, विशेषतः राष्ट्रीय शालाओंके विद्यार्थियोंको, शारीरिक दण्ड देनेके औचित्यके विषयमें प्रश्न किये थे।

बोल्शेविज्म

विद्यापीठमें कुछ प्रश्न पूछे गये थे; उनमें से कई प्रश्नोंके अभीतक उत्तर देने हैं। जगहकी कमीसे उन्हें मैंने मुल्तवी कर रखा था। आज उनमें से एक लिया जा सकता है। प्रश्न इस प्रकार है:

> **बोल्शेविज्ममें सामाजिक, आर्थिक रचना-सम्बन्धी जो विचार हैं, उनके बारेमें आप क्या सोचते हैं? हमारे देशको उन विचारोंमें से भविष्यके लिए क्या-कुछ स्वीकार करना चाहिए?**

मुझे कबूल करना चाहिए कि आजतक मैं बोल्शेविज्मके अर्थको पूरी तरह नहीं समझ पाया हूँ। परन्तु जो-कुछ मै जानता हूँ वह यह है कि निजी मिल्कियत किसीके पास न हो — प्राचीन भाषामें कहें तो व्यक्तिगत परिग्रह न हो। यह बात यदि सभी लोग अपनी-अपनी इच्छासे कर लें तब तो इसके जैसा कल्याणकारी काम दूसरा नहीं हो सकता। परन्तु बोल्शेविज्ममें जोर-जबरदस्तीसे काम लिया जाता है, ऐसा दिखाई पड़ता है। जबरदस्ती निजी मिल्कियत जब्त की गई है और उसपर पशुबलके द्वारा ही राज्यका कब्जा है।

यदि यह बात सच हो तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि जबरदस्तीसे साधा गया यह व्यक्तिगत अपरिग्रह दीर्घ कालतक नहीं टिक सकता। पशुबल द्वारा साधी गई एक भी चीज आजतक दीर्घ काल-पर्यन्त न तो निभ सकी है और न निभेगी। मेरे कहनेका अभिप्राय यह हुआ कि बोल्शेविज्मको जिस रूपमें मैंने जाना है वैसा बोल्शेविज्म लम्बी मुद्दततक टिका नहीं रह सकता।

तथापि बोल्शेविज्मकी साधनामें असंख्य मनुष्योंने आत्मबलिदान किया है, लेनिन-जैसे प्रौढ़ व्यक्तिने अपना सर्वस्व उसपर निछावर कर दिया था; ऐसा महात्याग व्यर्थ नहीं जा सकता और उस त्यागकी स्तुति हमेशा की जायेगी।

स्वर्गीय दलसुखभाई शाह

पिछले सप्ताह गोधराके वकील श्री दलसुखभाई शाहका देहान्त हो गया। इसकी खबर देते हुए मामा साहब लिखते हैं:[1]

स्वर्गीय दलसुखभाईसे मेरा व्यक्तिगत परिचय था। उनकी सज्जनताका मुझे पूरा-पूरा परिचय प्राप्त हो चुका था। श्री पुरुषोत्तमदास शाहके देहान्तके बाद पंचमहालको जो यह दूसरी हानि उठानी पड़ी है वह तो असह्य ही मानी जायेगी। दोनों सज्जन पंचमहालके जीवनकी शोभा बढ़ानेवाले और जनताके सच्चे सेवक थे। परन्तु आज नहीं तो कल सभीको मृत्युकी गोदमें तो जाना ही है। जैसा मामा साहबने लिखा है, इस कमीको पूरा करनेका काम युवक-वर्गका है। फिर स्वर्गीय दलसुख-

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। मामा साहब फड़केने लिखा था कि दिवंगत सज्जन एक आदर्श वकील थे। वे अपनी जीविका प्रामाणिकतासे अर्जित करते थे, अपनी आवश्यकता-भर सूत स्वयं कातकर पहनते थे और असहयोग आन्दोलनके समय उन्होंने वकालत भी छोड़ दी थी।

भाईका बड़ा बेटा चि० नगीनदास विद्यापीठका स्नातक है और इस प्रकार उसपर पुत्रके नाते पिताके नामको उज्ज्वल करने और चारित्र्यकी जो विरासत वे छोड़ गये है उसमें वृद्धि करनेका दुहरा कर्त्तव्य आ पड़ा है। विद्यापीठके स्नातकके रूपमें पंचमहालमें सेवकोंके रिक्त स्थानको भर कर विद्यापीठकी शोभा बढ़ाना उसका विशेष कर्त्तव्य हो गया है। ईश्वर उसे इसका पालन करनेकी शक्ति दे और दिवंगत आत्माको शान्ति तथा कुटुम्बी जनोंको धीरज दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-१०-१९२८

४३३. जैन अहिंसा ?

एक जैन मित्रने, जिन्होंने जैन दर्शन तथा दूसरे दर्शनोंका अभ्यास किया है, इस चर्चाके विषयमें एक लम्बा पत्र लिखा है। पत्र विचारणीय है और बड़े विनय तथा शान्तिसे तर्क उपस्थित करनेवाले पत्रोंमें से एक है; इसलिए उसका सारांश नीचे दे रहा हूँ। ये मित्र लिखते हैं:

> आपका अहिंसाका अर्थ लोगोंको किंकर्त्तव्यमूढ़ बना देता है। हिंसाका सामान्य अर्थ किसी भी प्राणीके प्राण ले लेना है और ऐसा न करना अहिंसा है। किसी भी जीवको पीड़ा न देना अहिंसा शब्दका अर्थ-विकास है। अब अहिंसा शब्दके अर्थमें किसी भी तरहके प्राणहरणका समावेश हो, यह बात मेरे गले नहीं उतरती। इसका अर्थ यह न लगाये कि मैं ऐसा मानता हूँ कि किसी भी परिस्थितिमें किसी भी प्रकारसे प्राणहरण उचित नहीं गिना जायेगा। वस्तुतः नीतिका कोई भी नियम बिलकुल निरपवाद है, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। 'अहिंसा परमो धर्मः', यह महान् दिशासूचक धर्म है, किन्तु अहिंसा ही परम धर्म है, ऐसा नहीं कह सकते। इसीसे आप जिसे अहिंसक प्राणहरण कहकर समझाते है वह धर्म हो सकता है; परन्तु उसे अहिंसक कर्म नहीं गिना जा सकता।

मेरा तो ऐसा अभिप्राय है कि जिस प्रकार जीवनका विकास होता है, उसी प्रकार शब्दोंके अर्थका भी विकास होता है। इसे हम प्रत्येक धर्मसे अनेक दृष्टान्त देकर सिद्ध कर सकते है। हिन्दू धर्ममें ऐसा एक शब्द 'यज्ञ' है। श्री जगदीशचन्द्र बोसके प्रयोग शब्दोंके अर्थमें क्रान्ति पैदा कर रहे हैं। उसी तरह यदि हम अहिंसाकी साधना करना चाहते हों तो हमें अहिंसा शब्दके अर्थसमुद्रमें कूद ही पड़ना होगा। अपने पूर्वजोंकी विरासतमें वृद्धि करना ही हमारा धर्म है। 'अहिंसा परमो धर्मः' सूत्रको हम नहीं सुधार सकते; परन्तु यदि हम उस पूँजीके वारिस बने रहना चाहते है तो हमें उसमें निहित अमित शक्तिकी खोज करते रहना चाहिए। फिर भी मै शब्दके झगड़ेमें पड़ना नहीं चाहता। मैंने जिस परिस्थितिका वर्णन किया है, उसमें प्राणहरण अहिंसक कर्म न गिना जाये और धर्म माना जाये तो मैं उसका विरोध करना नहीं चाहता।

इन मित्रकी दूसरी शंका यह है:[1]

पुत्री अपवित्र हो जायेगी, इस भयसे मैं उसके प्राणहरण नही कर सकता; परन्तु यदि वह अपनी राय बतला सकती हो और अगर मैं यही समझूँ कि वह प्राण-त्यागको श्रेयस्कर ही मानेगी, तो मैं उसके प्राणहरण करूँगा। लोकापवादसे डरकर यदि वह ऐसी याचना करेगी तो मै उसे अवश्य रोकूँगा। परन्तु यदि वह किसी व्यभिचारीकी जबरदस्तीके वश होनेके बदले अपनी ही इच्छासे मृत्युकी भेंट करना चाहती है, ऐसा देखकर ही मैं उसके प्राणहरण करूँगा। सीता स्वतन्त्र रीतिसे ऐसी याचना ही करती, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अमुक परिस्थितिमें वीर पुरुष मृत्युको विशेष पसन्द करता है ऐसा हम जानते हैं; और यह उचित ही है। मैं असत्य भाषण करनेकी अपेक्षा मृत्युको ही अधिक पसन्द करूँगा। मैं व्यभिचार करनेकी अपेक्षा मृत्युको ही अधिक पसन्द करूँगा। मेरी मान्यता है कि शास्त्रोंकी भी यही आज्ञा है। ऐसी मृत्यु हजारों अथवा लाखों चाहते हैं, ऐसा मेरा अनुभव है; और इस विचारका विस्तृत प्रचार करना मैं आवश्यक समझता हूँ। शीलभंग और दूसरे अंगके भंगमें कोई भेद नहीं है, मैं इस बातको स्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु अंग-भंगके विषयमें भी ऐसी वस्तुस्थितिकी कल्पना की जा सकती है कि जब मनुष्य उस अंग-भंगकी अपेक्षा मृत्युको अधिक प्रिय माने।

तीसरी शंका यह है:

> **अमुक परिस्थितिमें बन्दरोंको मार डालनेका अन्तिम उपाय विचारनेके बदले साधारण तौरसे दो-चारको जख्मी करनेका उपाय या उसका विचार आप असह्य क्यों मानते हैं? अनेक अंधे-लूले एवं असाधारण दर्दसे घिरे हुए प्राणियोंमें भी जीवित रहनेकी वृत्ति प्रबल होती है, क्या आप यह नहीं मानते? हम किसीका दुःख न देख सकें, इससे उसे मार डालनेका विचार करनेका कारण हमारी एकान्त स्वार्थ बुद्धि ही है, क्या आप ऐसा नहीं मानते?**

दो-चार बन्दरोंको जख्मी करनेका विचार भी मुझे असह्य लगता है, क्योंकि दूसरे प्राणियोंके अनुभवसे मैं जानता हूँ कि उन बन्दरोंको आखिर पीड़ित होकर मरना ही होगा। और यदि मैं किसीको मारना उचित मान लूँ तो उसे दुःखी करके मारनेकी अपेक्षा तत्क्षण मार डालना ही मैं अधिक पसन्द करूँगा। मैं शायद जख्मी बन्दरोंके लिए अस्पताल खोलनेकी बात न सोचूँ, फिर भी उन्हें जख्मी करनेमें दया-धर्म कहाँ है, यह मेरी समझके बाहर है। जो अंधे-लूले इत्यादि जीवित रहनेकी

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीके "पावककी ज्वाला" (३०-९-१९२८) शीर्षक लेख तथा कुछ अन्य लेखोंको पढ़कर यह शंका उठाई थी कि कोई अपनी पुत्रीपर बलात्कार करनेवालेको मारे, यह तो समझमें आता है, लेकिन पुत्रीको मारे, यह समझमें नहीं आता। उसके अनुसार, जिसपर बलात्कार हुआ हो वह लोकापवादके भय से स्वयं चाहे तो भी उसे मरने नहीं देना चाहिए। पत्र-लेखकके विचारसे किसीका अंग-भंग कर दिया जाये या उसपर बलात्कार किया जाये, दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है।

वत्ति रखते हैं उन्हें ऐसा ज्ञान है कि कोई-न-कोई उन्हें सहायता देगा ही। परन्तु किसी अन्धेको हम वीरान जंगलमें छोड़ आयें और यह मानें कि वह नास्तिक है और उसे विश्वास है कि उसे किसीकी भी मदद मिलनेवाली नहीं है तो ऐसी परिस्थितिमें मैं यह नहीं मानता कि वह जीवित रहना चाहेगा। किसी भी परिस्थितिमें प्राणीकी जीवित रहनेकी इच्छाको बल प्रदान करना ही चाहिए, मै ऐसा धर्म स्वीकार नहीं करता।

चौथी शंका यह है:

जैन धर्मका अहिंसाका विचार तीन सिद्धान्तोंपर आधारित है:

१. ऐसी कोई परिस्थिति हो ही नहीं सकती जिसमें चाहे जैसी पीड़ा होनेपर भी कोई भी प्राणी समझ-बूझकर जीवित रहनेकी आशाका त्याग करके दूसरोंके हाथसे मृत्यु चाहे। इसलिए इस भाँतिके प्राणहरणको कभी धर्म न गिनना चाहिए।

२. हिंसासे भरी हुई अनेक प्रवृत्तियोंसे व्याप्त इस संसार-व्यवहारमें मुमुक्षु प्राणीको चाहिए कि जहाँतक सम्भव हो, बहुत कम प्रवृत्तियोंका सूत्रधार बनकर अहिंसाका आचरण करे।

३. कुछ-एक हिंसाएँ प्रत्यक्ष होती हैं और कुछ-एक अप्रत्यक्ष। उदाहरण-स्वरूप, खेती करनेमें प्रत्यक्ष हिंसा है। अन्न खानेमें खेतीसे सम्बन्ध रखनेवाली अप्रत्यक्ष हिंसा है। दो प्रकारकी इस हिंसामें जहाँ एकसे भी बच सकनेका उपाय ही न हो, वहाँ प्रत्यक्ष हिंसासे यथाशक्ति दूर रहकर सुज्ञ मनुष्यको चाहिए कि वह अहिंसा-धर्मका पालन करे।

इन तीन सिद्धान्तोंकी आप अवश्य चर्चा करेंगे। क्योंकि जैनियोंकी अहिंसा-दृष्टि और आपकी अहिंसा-दृष्टिमें एक महत्त्वपूर्ण भेद यह दिखाई पड़ता है कि जैनियोंकी अहिंसा-दृष्टि निवृत्तिपर आधारित है; जब कि आपकी अहिंसा-दृष्टि प्रवृत्ति पर वर्तमान काल-धर्म-कर्मपरायण है; इसलिए यदि अहिंसा, देश और कालसे अबाधित धर्म हो तो अभी तक अहिंसाका विचार निवृत्तिकी ओर झुकनेकी दृष्टिसे ही किया गया है। उसका कर्मप्रधान वर्तमान युगमें क्या स्वरूप हो सकता है और उसको व्यवहारमें कैसे लाया जा सकता है, इस विषयपर लोगोंमें विचार-जागृति करनेकी मुझे परम आवश्यकता प्रतीत होती है।

ऐसी सिद्धान्त-चर्चामें उतरना मुझे प्रिय नहीं है। ऐसी चर्चा करनेमें हानि भी हो सकती है, यह मैं जानता हूँ। परन्तु कुछ अंशोंमें यह चर्चा स्वयं मैंने ही उठाई है; इसलिए इन मित्रकी इच्छित सिद्धान्त-चर्चासे मैं सर्वथा इनकार नहीं कर सकता। पहले सिद्धान्तके विषयमें मैं अपनी नम्र मान्यता इसी लेखमें प्रकट कर चुका हूँ। मेरी ऐसी भी मान्यता है कि चाहे जैसी दशा क्यों न हो, जीनेकी इच्छा प्राणी छोड़ ही नहीं सकता, इस सिद्धान्तको मान लेनेमें हमारी भीरुता छिपी हुई है और उसीके

कारण बहुत हिंसा हुई है और हो रही है और यदि ऐसे सिद्धान्तोंका प्रतिपादन होता रहा तो जो हिंसा हो रही है वह बढ़ेगी, घटेगी नहीं। मुझे प्रतीत होता है कि जिस तरहसे पहला सिद्धान्त यहाँ रखा गया है वह यदि सचमुच सिद्धान्त ही हो तब तो वह मोक्षका विरोधी है। जो मनुष्य निरन्तर मोक्षकी याचना किया करते हैं वे हमेशा दूसरोंकी मृत्युके आधारपर अपनी देह बनाये रखना नहीं चाहेंगे। मुमुक्षु तो इस जगत्में पर्याप्त संख्यामें हैं ही। वे जीवित रहनेकी आकांक्षाको छोड़े चुके हैं, ऐसा हमें मानना ही पड़ेगा। तब उक्त मित्रके बताये सिद्धान्तका ये मुमुक्षु भंग तो नहीं करते? अथवा इस मित्रने उक्त सिद्धान्तको शायद इस तरह रखना न चाहा हो। जिन्होंने मोक्षको बुद्धिसे भी नहीं जाना है ऐसी मूर्च्छावस्थामें पड़े हुए प्राणी जीवित रहनेकी आकांक्षा नहीं छोड़ सकते। ऐसी आकांक्षा रखनेवालों के बीच जिसने आकांक्षाका त्याग किया है, ऐसा मुमुक्षु अपना स्वार्थ साधने या अपनी देहकी रक्षा करने क्यों आयेगा? यदि मैं इस मोक्ष-प्रकरणको छोड़कर स्वदेश-प्रेम अथवा कौटुम्बिक प्रेमके क्षेत्रका विचार करूँ तब भी मालूम पड़ता है कि जिन्होंने जीवित रहनेकी आकांक्षा छोड़ दी है, ऐसे अनेक देश-प्रेमी, कुटुम्ब-प्रेमी, जगत-प्रेमी अपने-अपने कर्त्तव्यके प्रति परायण रहते हैं। आज इस दुनियामें जीवित रहनेकी आकांक्षा छोड़नेकी शिक्षा दी जा रही है। हर अवसरपर जीवित रहनेकी आकांक्षाको साथ लिये फिरनेमें मैं तो स्वार्थकी पराकाष्ठा देखता हूँ। मेरे इस कथनका कोई अनर्थ न कर बैठे। उस आकांक्षाका त्याग किसीसे जबरदस्ती नहीं कराया जा सकता। यहाँ तो मैं सिर्फ जीवित रहनेकी आकांक्षाके सिद्धान्तके विरुद्ध दृष्टान्त दे रहा हूँ, और उस सिद्धान्तमें निहित अनर्थको सामने रख रहा हूँ।

दूसरा सिद्धान्त, उसे सिद्धान्त कहें अथवा और कुछ, मुझे मान्य है।

तीसरे सिद्धान्तको मित्रने जिस प्रकार रखा है उसमें तो मैं बहुत दोष देख रहा हूँ। उस सिद्धान्तका भयंकर नतीजा तो यह निकलता है कि जिस खेतीके बिना मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता, वह खेती, अहिंसा-धर्मका पालन करनेवाले को उसीपर निर्भर रहनेके बावजूद त्याग ही देनी चाहिए। ऐसी स्थिति मुझे अतिशय पराधीनता-पूर्ण और करुणाजनक प्रतीत होती है। खेती करनेवाले असंख्य मनुष्य अहिंसा-धर्मसे विमुख रहें और खेती न करनेवाले मुट्ठी-भर मनुष्य ही अहिंसाको सिद्ध कर सकें, ऐसी स्थिति मुझे परम धर्मको शोभनेवाली अथवा उसे सिद्ध करनेवाली नहीं मालूम होती। इससे विपरीत, मुझे तो यह प्रतीत होता है कि मुज्ञ मनुष्य जबतक खेतीका सर्व-व्यापक उद्योग नहीं अपनाते तबतक वे नाम-मात्रके ही सुज्ञ हैं। वे अहिंसाकी शक्तिका सच्चा माप निकालनेमें असमर्थ हैं। उनमें खेती-जैसे व्यापक उद्योगमें लगे हुए असंख्य मनुष्योंको धर्मकी राहपर लगानेकी योग्यता नहीं है। यदि यह सचमुच सिद्धान्तमें गिनी जानेवाली वस्तु हो तो अहिंसाके उपासकका कर्त्तव्य है कि वह उसके बारेमें बार-बार विचार करे। खेतीके दृष्टान्तका जरा विस्तार करें तो परिणाम हास्यजनक आता है। साँपको मारे बिना यदि चल ही नहीं सकता तो मुझे उपर्युक्त सिद्धान्तानु-सार उसे दूसरेसे मरवाना चाहिए; चोरको सजा देकर भगाना अनिवार्य हो तो उस

हालतमें मुझे दूसरोंसे उसे दंड दिलाना चाहिए; मेरे संरक्षणमें रहनेवाले बालकों और बालिकाओंकी अत्याचारी मनुष्योंसे रक्षा करना अनिवार्य हो तो मुझे वह भी दूसरोंसे करवानी चाहिए, और इस प्रकार 'अहिंसा-धर्मका पालन करना चाहिए'। मेरी दृष्टिमें यह धर्म नहीं, अधर्म है; यह अहिंसा नही, हिंसा है; ज्ञान नहीं, मोह है। मैं स्वयं जबतक साँपका, चोरका, अत्याचारीका सीधे मुकाबला नहीं करता तबतक मै भयमुक्त नहीं होनेका, और जबतक मैं भयमुक्त नहीं होता तबतक अहिंसा-धर्मका पालन मेरे लिए वन्ध्यापुत्रके अस्तित्व-जैसा ही रहेगा। और अहिंसा-धर्मका जो एक महापरिणाम निकलना चाहिए वह तो कभी निकल ही नही सकता। अहिंसाके विषयमें शास्त्रोंकी शिक्षा तो यह है कि उसके सान्निध्यमें चोर चोरी छोड़ेगा, हिंसक मनुष्य अथवा दूसरा प्राणी हिंसा छोड़ेगा, जुल्मी जुल्म छोड़ेगा। इस शिक्षाका यत्किंचित् पालन करनेसे भी मैं सत्यका अनुभव कर सका हूँ। इसीसे मुझे मालूम होता है कि तीसरे सिद्धान्तको प्रस्तुत करनेके रूपमें कुछ भूल हुई है। और यदि भूल न हुई हो तथा यह वास्तवमें जैन अहिंसाका सिद्धान्त हो तो भी मेरी बुद्धि या मेरा हृदय उसको कदापि स्वीकार नहीं कर सकता।

अब रहा प्रवृत्ति-निवृत्तिका झगड़ा। मैं निवृत्ति-धर्मको मानता हूँ। परन्तु यह निवृत्ति प्रवृत्तिमें छिपी हुई होनी चाहिए। देह-मात्र प्रवृत्तिके बिना पल-भर भी टिक नहीं सकती, यह स्वयंसिद्ध वस्तु है। प्रत्येक साँस जो हम लेते हैं प्रवृत्ति-सूचक है, वहाँ निवृत्तिका अर्थ यही हो सकता है कि शरीर निरन्तर प्रवृत्त रहनेपर भी आत्मा निवृत्त रहे, अर्थात् उसके विषयमें अनासक्त रहे। इसलिए निवृत्ति-परायण मनुष्य सिर्फ परमार्थके लिए ही अपनी प्रवृत्ति जारी रखे। अर्थात् मुझे तो यह प्रतीत होता है कि अनासक्त रहकर परमार्थके लिए की गई प्रवृत्ति ही निवृत्ति है; फिर चाहे वह खेती हो या सूत कातना हो या अन्य कोई ऐसी प्रवृत्ति हो जो परमार्थ कही जा सकती हो। इसलिए इस प्रकारके निवृत्ति-धर्मको माननेवाले मुझ-जैसे व्यक्तिके लिए यह जानना और खोजना आवश्यक है कि देहधारी अहिंसाका पालन किस तरह और किस अंश तक कर सकता है। इस विचारको सादी भाषामें ही रख दूँ। मनुष्य-जीवनके लिए खेती वगैरह अनिवार्य उद्योगों-जैसे काम करनेवाला अहिंसा-धर्मको कैसे जाने, उसका पालन किस भाँति करे, मुझे तो यही मालूम करना है। धर्ममें सर्वव्यापक होनेकी शक्ति होनी चाहिए। धर्म जगत्के शतांशका इजारा नहीं हो सकता, होना भी नहीं चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सत्य और अहिंसा, ये जगद्व्यापी धर्म हैं। इसीसे तो उसके अर्थकी खोजमें जीवन खपाते हुए भी मैं रस लूट रहा हूँ और दूसरोंको भी उस रसको लूटनेका आमन्त्रण दे रहा हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-१०-१९२८

४३४. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२१ अक्टूबर, १९२८

आपकी अपील[१] मैं प्रकाशित कर रहा हूँ। पर मैं इससे सन्तुष्ट नहीं हूँ। वह बहुत ही असम्बद्ध ढंगसे लिखी हुई है और इसका कोई स्पष्ट रूप नहीं बन पाया है। आपको विपदग्रस्त क्षेत्रकी जन-संख्या, विपत्तिकी रूपरेखा और अपेक्षित राशिका उल्लेख तो करना ही चाहिए था। आपने जिस तरह सामान्य प्रकारकी एक अपील तैयार कर दी है वह लोगोंको प्रभावित कैसे कर पायेगी? इससे स्पष्ट दिखता है कि आप बहुत थके हुए, हैं चिन्ताओं तथा व्यस्तताके बोझसे दबे हुए है और आपने जल्दबाजीमें यह अपील लिख डाली है। यदि आप चाहते हैं कि लोगोंपर इसकी अच्छी प्रतिक्रिया हो तो मेरे पास एक ऐसी अपील तैयार करके भेज दीजिए जो आपकी लिखनेकी योग्यताके अनुरूप हो।

अब आप कैसे हैं?

आशा है कि बछड़ेसे सम्बन्धित विवादसे[२] आपका कुछ मनोरंजन तो हुआ होगा, कोई शिक्षा उससे भले ही न मिली हो। इस सम्बन्धमें आनेवाले सभी पत्रोंको यदि मैं महत्त्व देने लगता, तो मुझे साबरमतीमें डूब ही मरना पड़ता। मगर अभी तो स्थिति यह है कि इन पत्रोंसे कुछ मनोरंजन भी हो जाता है और थोड़ी शिक्षा भी मिलती है।

हृदयसे आपका,

च० राजगोपालाचारी

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६७) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "दक्षिणमें अकाल", २५-१०-१९२८।
२. देखिए "पावककी ज्वाला", ३०-९-१९२८।

४३५. पत्र : रामदास गांधीको

मौनवार, २२[१] अक्टूबर, १९२८

चि० रामदास,

तुम्हारा पत्र मिला। बा ठीक है, चिन्ताका कोई कारण नहीं है। नीमू कल यहाँ पहुँच गई और वह अच्छी है। आते ही वह बा की सेवामें लग गई। अन्य बीमार भी अच्छे होते जा रहे हैं। तुम्हें यह खबर मिल गई होगी कि सुशीलाके कन्या हुई है।

नानाभाईने उसका नाम धैर्यबाला रखनेकी सूचना तार द्वारा दी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६८५४) की फोटो-नकलसे।

४३६. पत्र : नानाभाई मशरूवालाको

मौनवार [२२ अक्टूबर, १९२८][२]

भाई नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। यहाँ भी एक तार मिला था, जिसे मैंने तुम्हें भेज देनेको कहा भी था। अहिंसाके सम्बन्धमें तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई।

मैं तुम्हें उत्तर तो देना चाहता हूँ किन्तु फुरसत मिलनेपर ही उत्तर दे सकूँगा।

किशोरलाल[३] शुक्रवारको रवाना हो रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६६७७) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें २१ तारीख है; देखिए अगले दो शीर्षक।

२. इस पत्रमें जिस तारका उल्लेख है वह सम्भवतः मणिलाल गांधीने दिया था। उसमें सुशीलाके कन्या होनेका समाचार था; देखिए अगला शीर्षक।

३. किशोरलाल मशरूवाला।

४३७. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

२३ अक्टूबर, १९२८

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारा पत्र मिला; तार भी मिल गया है। आशा है, यह पत्र मिलने तक सुशीला स्वस्थ होकर चलने-फिरने लगी होगी और धैर्यबाला हँसने-खेलने लगी होगी। नानाभाईका पत्र मुझे कल ही मिला है, जिसमें उन्होंने तार देने और बच्चीका नाम सुझानेकी बात लिखी है। आज भी यदि अभी-अभी अर्थात् सुबहके साढ़े तीन बजे मुझे तुम्हारे पत्रकी याद न आती तो वह पड़ा रह जाता। पिछली डाकके समय भी ऐसा ही हुआ था। आजकल मुझे पत्र लिखनेका बहुत ही कम समय मिलता है। इसीलिए सुबह तीन बजे और कभी दो बजे उठकर पत्र लिखवाता हूँ।

रसिक और नवीन के दिल्ली जानेकी बात मैं तुम्हें लिख चुका हूँ।[1] रामदास अभी बारडोलीमें है। नीमू यहीं है। बा की तबीयत कुछ बिगड़ गई है, किन्तु चिन्ताकी कोई बात नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७४४) की फोटो-नकलसे।

४३८. पत्र : मीराबहनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती

२३ अक्टूबर, १९२८

चि० मीरा,

तुम्हारा तार मिला। आजकल तो सोमवारको भी इतना समय निकालना मुश्किल हो गया है जिससे मैं तुम्हें स्नेह-पत्र लिख सकूँ। इसलिए अभी तुमको मेरे नियमित पत्रोंके बिना ही काम चलाना पड़ेगा। हाँ, लेकिन तुम्हारे पत्र तो नियमित रूपसे आते ही रहने चाहिए।

यहाँ सभी-कुछ काफी ठीक चल रहा है, हालाँकि मैं नहीं कह सकता कि सब ठीकसे जम गया है।

महादेवको आज जाँचके सिलसिलेमें बारडोली जाना है। एक सप्ताह या शायद इससे कुछ अधिक समय तक उसे बाहर रहना पड़ेगा।

१. देखिए "पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको", ३१-८-१९२८ के पश्चात्।

'बेकरी' क्रमशः तरक्की करती जा रही है। प्यारेलालने गेहूँके मुरमुरे बनानेका एक नया तरीका निकाला है। मैं सोच रहा हूँ कि मुरमुरे तैयार होते ही उसका एक पैकेट तुम्हें भेज दूँ।

तुम्हारे बारेमें एसोसिएटेड प्रेसका एक छोटा-सा समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। वह शायद उसी भेंटका विवरण है, जिसका तुमने उल्लेख किया था।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

मैंने तुमको यह बतलाया या नहीं कि ग्रेग आजकल यहीं है?

मीराबहन

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३१६) से। सौजन्य : मीराबहन; जी० एन० ८२०६ से भी

४३९. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२३ अक्टूबर, १९२८

प्रिय भाई,

आप मेरे प्रति बड़े ही शुभेच्छु और कृपालु रहे हैं। आपके पत्र नियमित रूपसे मिलते रहे हैं। उनसे मुझे मानसिक शान्ति मिली है और उनके आधारपर मैं शिकायतें करनेवालों को जवाब भी दे सका हूँ।

आपने चमत्कार कर दिखाया है। आपने कहा है कि मैं आपसे और अधिक समय तक इस पदपर बने रहनेका आग्रह न करूँ। मैंने अत्यन्त ही निष्ठापूर्वक उसका पालन किया है और साथ ही मैं अन्य भाइयोंसे भी ऐसा आग्रह न करनेके लिए कहता रहा हूँ, परन्तु जब मैं भविष्यकी बात सोचता हूँ तो मन काँप उठता है। तरह-तरहकी भोंडी अफवाहें सुनाई पड़ रही हैं। बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण बात होगी, यदि यह पद सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिकी बजाय किसी कृपापात्रको दे दिया गया। मुझे कोई भी ऐसा नाम नहीं सूझ पड़ता, जिसके पक्षमें मैं लोकमतको लानेका प्रयास करूँ। ईश्वर आपको दीर्घायु बनाये।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० ११९९४) की फोटो-नकलसे।

४४०. पत्र : पेरिन कैप्टेनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ अक्टूबर, १९२८

अब मैं तुम्हारा मतलब समझ गया। मृदुलाने अबतक अपना भण्डार नहीं खोला है। यदि वह भण्डार खोले और उसमें तुम्हारा खद्दर भी रखे तो उसे कोई रोकेगा नहीं। काकासाहब तुम्हारी किस रूपमें सहायता कर सकते हैं?

आन्ध्रके बारेमें मुश्किल यह है कि वहाँके अनेक निर्माता अप्रामाणिक साबित हो चुके हैं। इसलिए ज्यादासे-ज्यादा होशियारी रखना जरूरी हो गया है।

श्रीमती पेरिन कैप्टेन
इस्लाम क्लब बिल्डिंग्स, चौपाटी, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३५६९) की माइक्रोफिल्मसे।

४४१. पत्र : प्रताप दयालदासको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप और आपकी धर्मपत्नी जो करनेकी सोच रहे हैं वह गर्भनिरोध नहीं, बल्कि गर्भपात है। गर्भपात कानूनकी नजरमें एक अपराध है और वास्तवमें उससे आपकी पत्नीके स्वास्थ्यको स्थायी रूपसे हानि भी पहुँच सकती है। इसलिए मैं आप दोनोंसे जोरदार आग्रह करूँगा कि वैसा कदम न उठायें। गर्भनिरोध तो कृत्रिम साधनोंसे गर्भको ठहरने न देना हुआ, जो गर्भपातसे बिलकुल ही भिन्न चीज है। क्योंकि यह तो भ्रूण-हत्या है, इसलिए मैं आपको एक ही मार्ग सुझा सकता हूँ कि गर्भको अपनी सहज गतिसे विकसित होने दीजिए और जब बच्चा पैदा हो तो उसे स्नेहपूर्वक पालिए-पोसिए। आगे गर्भ न ठहरने देनेके लिए आपको दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि आप उस बिस्तर या उस कमरेमें नहीं सोयेंगे, जिसमें आपकी पत्नी सोती हैं और आप दोनोंको एक साथ एकान्तमें रहनेसे हर हालतमें बचना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रताप दयालदास
मार्फत — दयालदास मूलचन्द
मेन बाजार, हैदराबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १३५७१) की माइक्रोफिल्मसे।

४४२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२४ अक्टूबर, १९२८

प्रिय सतीश बाबू,

आपके दो पत्रोंका उत्तर मुझे देना है। यह बात तो ठीक ही है कि अगर सिर्फ अनाजके ही खेत होते तो बन्दरोंसे हमें इतनी परेशानी नहीं होती जितनी आजकल है। परन्तु मुझे तो इस समस्याको ऐसे ढंगसे हल करना है जिसका इस्तेमाल दूसरे लोग भी कर सकें। अनाज-ही-अनाजके खेत रखनेके लिए लोगोंसे कहना तो कोई हल नही होगा। वृक्षोंको न रहने देनेके अभियानका अनिवार्य परिणाम वर्षा और फलोंका अभाव ही होगा, जबकि कृषिके क्षेत्रमें भारतकी सबसे बड़ी आवश्यकता है—और अधिक वृक्ष, और ज्यादा फलदार वृक्ष लगाना।

ढोरोंके सम्बन्धमें आपकी इस बातसे मैं बिलकुल सहमत हूँ कि आदर्श बात तो यही होगी कि ढोरोंके बिना ही काम चलाया जाये। परन्तु इसका अर्थ भी यही होगा कि हम कृषि न करें और जहाँतक कृषिकी बात है, सवाल सिर्फ ढोरोंका ही नही, बल्कि हमें खेतीका काम करनेमें भी और अनेक प्राणियोंको नष्ट करना पड़ता है। इसमें यदि हमारा कोई लक्ष्य हो सकता है तो यही कि कमसे-कम प्राणियोंको नष्ट होने दिया जाये और ढोरोंके साथ दयाका बरताव किया जाये। मैं चाहता हूँ कि आप इस समस्याको लेकर अपना सिर न खपायें। और अब आपके पहले पत्रके बारेमें।

आपकी अहिंसाकी पूर्ण अभिव्यक्ति खादीके क्षेत्रमें ही होगी और आपको उसी क्षेत्रकी समस्याको हल करनेमें अपना दिमाग खपाना है। मैं जानता हूँ कि आप जल्दबाजीमें यन्त्रवत् कोई कदम नहीं उठायेंगे और सभी चीजें अपने सहज क्रममें उपयुक्त अवसरपर होती चलेंगी।

मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि हेमप्रभादेवी आश्रम आकर सामूहिक भोजनालय और अन्य कार्योंमें यथाशक्ति हाथ बँटायें। जब भी उनको ठीक लगे, वे यहाँ आ सकती हैं।

प्रदर्शनीसे सम्बन्धित हमारा परिपत्र सभी सम्बद्ध और सहायता-प्राप्त संगठनोंको भेजा जा चुका है।

कराची नगरपालिकाको खादीके नमूने भेजनेका जो भी फल निकले, मुझे अवश्य लिखियेगा।

हृदयसे आपका,
बापू

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी-प्रतिष्ठान, सोदपुर

अंग्रेजी (जी० एन० १५९७)की फोटो-नकलसे।

४४३. 'मृत्यु विश्राम है'[1]

मेरे पास तो ऐसे पत्रोंकी भरमार रहती है जिनकी प्रत्येक पंक्तिमें मृत्युका भय और उसके परिणामस्वरूप अहिंसाका विकृत रूप देखनेको मिलता है। इसलिए मगनलाल गांधीकी मृत्युके सिलसिलेमें एक मित्रद्वारा भेजा यह अत्यन्त सुन्दर संवाद पढ़कर मन ताजगीसे भर गया :

जू कुंगने कन्फ्यूशियससे कहा : "प्रभु मैं थक गया हूँ और मुझे विश्राम चाहिए।"

मनीषीने उत्तर दिया : "जीवनमें कहीं भी विश्राम नहीं है।"

शिष्यने पूछा : "तो क्या मुझे कभी विश्राम नहीं मिलेगा ?"

कन्फ्यूशियस बोले : "मिलेगा। देखो, चारों ओर बिखरी हुई इन कब्रोंको देखो। कुछ सुन्दर हैं और कुछ बड़ी मामूली। ऐसी ही किसी कब्रमें तुमको विश्राम मिलेगा।"

जू कुंगके मुँहसे सहसा यह हर्षोद्‌गार निकल पड़ा : "मृत्यु कितनी अद्‌भुत चीज है। ज्ञानी लोग उसमें विश्राम पाते हैं और सांसारिक लोग उसमें गर्क होकर रह जाते हैं।"

कन्फ्यूशियस बोले : "वत्स, मैं देख रहा हूँ, तुमको ज्ञान हो गया है। अज्ञानी व्यक्ति जीवनको मात्र एक वरदान समझते हैं; वे नहीं जानते कि वह एक महाबन्धन है। वे वृद्धावस्थाको दौर्बल्यकी अवस्था मानते हैं; वे नहीं समझते कि वह शान्तिकी अवस्था है। वे मृत्युको बस घृणास्पद ही समझते हैं, वे नहीं समझते कि वह विश्रामकी एक अवस्था है।"

येन जू बोल पड़ा : "मृत्युके सम्बन्धमें प्राचीन कालका विचार कितना सुन्दर है। पुण्यात्माएँ उसमें विश्राम पाती हैं; दुष्टात्माएँ उसमें गर्क हो रहती हैं। मृत्युके द्वारा प्रत्येक प्राणी उसीमें लीन हो जाता है जहाँसे वह आया था। प्राचीन कालके लोग मृत्युको अपने घर लौटना और जीवनको घरसे बाहर रहना मानते थे। और जो प्राणी अपना घर भूल जाता है, वह अपनी पीढ़ीमें बहिष्कृत हो जाता है तथा हेय दृष्टिसे देखा जाता है।"

यह उद्धरण देनेका मंशा किसी जीवित प्राणी या वस्तुको प्राणदण्ड देनेका औचित्य सिद्ध करना नहीं है। उद्धरण देनेका मंशा यह सिद्ध करना है कि मृत्यु सभी परिस्थितियोंमें भयास्पद नहीं होती, जैसा कि अनेक पत्र-लेखक कहते हैं। कुछ

१. इसी विषयपर गांधीजी का एक लेख अन्तमें एक अतिरिक्त पैरेके साथ गुजराती **नवजीवनके** ४-११-१९२८ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

परिस्थितियोंमें मृत्यु मुक्ति भी हो सकती है, विशेषकर जब वह किसीपर दण्डस्वरूप न थोपी जाकर एक दवा, एक मरहमके रूपमें उसे दी गई हो। एक अंग्रेज कविकी उक्ति है: "मृत्यु एक निद्रा और विस्मरण ही है।" सद्गुणोंका माहात्म्य दिखानेके लिए हमें ऐसी कल्पनाएँ नहीं करनी चाहिए कि मृत्युके पश्चात् पापकर्मोंके लिए नारकीय यन्त्रणाएँ दी जायेंगी और पुण्य कर्मोंके लिए पुरस्कारस्वरूप हूरें मिलेंगी। सद्गुण यदि अपने-आपमें आकर्षक न हों तो उनको बेकार मानकर घूरेपर फेंक देना ही उचित होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि प्रकृति हमको जितनी लगती है, उतनी क्रूर है नहीं। हम तो स्वयं ही बहुधा बड़े क्रूर होते हैं। स्वर्ग और नरक दोनों हमारे अन्दर ही मौजूद हैं। मृत्युके बाद जीवन होता तो है, पर वह हमारे वर्तमान अनुभवोंसे इतना भिन्न नही होता कि हम उससे भयभीत हों या उसपर प्रसन्नतासे पागल-से हो उठें। 'गीता' का उपदेश है: "हर्ष और विषादसे ऊपर उठ जानेवाला ही स्थितप्रज्ञ है। . . . ज्ञानीको न मृत्यु व्यापती है और न जीवन।" ये दोनों एक ही वस्तुके दो पहलू हैं।[1]

हमारे धर्ममें अहिंसाकी कल्पना दूसरेको दुःख न देनेकी दृष्टिसे की गई है। जहाँ दुःख देनेका रंच-मात्र भी विचार न हो, वहाँ भूलसे अथवा जान-बूझकर किये गये किसीके प्राण-हरणपर हाय-तोबा क्यों मचानी चाहिए? इस हाय-तोबाके पीछे अगर मृत्युका भय नहीं तो और क्या है? और मृत्युका भय मनुष्यको शोभा नहीं देता। जहाँ यह भय है वहाँ अहिंसारूपी पुरुषार्थ अशक्य है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-१०-१९२८

४४४. दक्षिणमें अकाल[2]

तमिल प्रदेशके सेलम, कोयम्बतूर और अन्य क्षेत्रोंकी जनता मध्यवर्ती क्षेत्रोंमें अनिश्चित तौरपर होनेवाली वर्षापर निर्भर रहती है। यह वर्ष उनके लिए सबसे बुरे वर्षोंमें से एक सिद्ध हो रहा है। खादी-केन्द्रोंसे प्राप्त विवरणोंसे पता चलता है कि गाँवोंमें बेरोजगारी बहुत अधिक बढ़ गई है। खेती-बाड़ीका मौसम आम तौरसे अक्टूबरमें शुरू होता है और खादी-क्षेत्रोंकी किसान महिलाएँ अपना कताईका काम अगले चार महीनोंके लिए अकसर बन्द कर देती हैं। वैसे कुछ महिलाएँ पूरे वर्ष भी कताई करती रहती हैं, लेकिन खेतोंमें काम कर सकनेवाली महिलाएँ आम तौरपर इस अवधिमें चरखे बन्द कर देती हैं। परन्तु इस वर्ष कतैयोंकी संख्या घटने की बजाय और बढ़ गई है और हमारे भण्डारोंपर रुई लेनेवालोंकी खासी भीड़ लगी रहती है। . . .

१. इसके बादका पैरा गुजराती **नवजीवन**से लिया गया है।

२. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा की गई अपीलसे; यहाँ केवल कुछ अंश उद्धृत किये जा रहे हैं।

पाठकोंको भूलना नहीं चाहिए कि ये लोग एक आना रोजकी मजूरीके लिए इस तरह भीड़ लगाये रहते हैं। . . .

भारतके बुद्धिजीवी और खाते-पीते तबकोंके लोग इस बातको कब समझ पायेंगे कि हम जो वस्त्र पहनते हैं, वह मात्र पोशाक या सज्जाकी चीज नहीं, बल्कि राष्ट्रके आर्थिक ढाँचेका एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण अंग है, वह राष्ट्रीय संसाधनोंके वितरणका एक साधन है और इस साधनको निष्प्रभ बना देना राष्ट्रके लिए विनाशकारी होगा? पुदुपालयम और अन्य अकालग्रस्त क्षेत्रोंमें, जहाँ हम खादी-केन्द्र खोलनेमें समर्थ रहे हैं, लोगोंको काफी बड़ी राहत पहुँचा सकते हैं, लेकिन तभी जब लोग हमारी तैयार की हुई खादी तेजीसे और बड़े पैमानेपर खरीदते रहें। तैयार खादीकी तुरन्त खपत होनेका मतलब होगा और भी अधिक कताई होना और भूखों मरते लोगोंको अत्यधिक आवश्यक राहत पहुँचा सकना। श्रीयुत सन्तानम् इस विपद्‌कालके दौरान पुदुपालयम क्षेत्रमें कताईके कामको बड़ेसे-बड़े पैमानपर संगठित करना चाहते हैं, और यदि हमें जनतासे समर्थन और सहानुभूति मिली तो उनको आशा है कि वे वहाँ सस्ते तथा निर्धारित मूल्यपर खाद्यान्नों और बीजोंकी बिक्रीकी व्यवस्था भी कर सकेंगे, जिसमें होनेवाले घाटेकी पूर्ति अकाल-राहत-कोषसे की जायेगी। . . .

जनता इस काममें इस तरह सहायता कर सकती है:

(क) खादी मँगानेके लिए उदारतापूर्वक आर्डर भेजकर;

(ख) निःशुल्क या अकाल-पीड़ित लोग जिन भावोंपर खरीद सकें, उन भावोंपर अनाजका वितरण करनेके लिए दान देकर या कताई-केन्द्रोंकी सहायताके लिए दान देकर, जिनके लिए आरम्भिक व्यय जुटाना जरूरी है।

च० राजगोपालाचारी

मैं समझता हूँ कि लोग इस अपीलके प्रति पूरा उत्साह दिखायेंगे। स्पष्ट है कि यह अपील जल्दबाजीमें पूरे तथ्य एकत्र किये बिना लिखी गई है। परन्तु पिछला अनुभव बतलाता है कि ऐसे मामलोंमें सामान्य ढंगसे स्थिति बतला देनेसे स्थितिकी विभीषिका उतनी उजागर नहीं हो पाती जितनी कि मात्र तथ्य जुटानेसे हो जाती है। इसलिए पाठकोंको ब्योरेवार रिपोर्ट मिलने तक अपनी-अपनी थैलियोंके मुँह खोलनेसे अपने-अपने हाथोंको रोक नहीं रखना चाहिए। आशा है कि मैं बहुत शीघ्र मोटे तौरपर वहाँकी आवश्यकताओंका अनुमान दे सकूँगा। पाठकोंको यह भी याद रखना चाहिए कि उनकी सबसे अच्छी सहायता यही होगी कि वहाँ तैयार की जा रही और की जानेवाली खादीकी खपतमें उनकी सहायता की जाये। वर्षाका अभाव तो सदा बना ही रहेगा, पर खादीका प्रचलन बढ़ जानेपर वहाँके लोगोंको ऐसी परिस्थितिमें दूसरोंके दानका मोहताज नहीं बनना पड़ेगा। हाथ-कताईका काम राष्ट्रव्यापी आधारपर संगठित तो किया जा रहा है, पर आपत्कालीन परिस्थितियोंका

सामना करनेके लिए दानके रूपमें कुछ राहत भी दरकार होगी। कारण, ऐसा तो नहीं है कि सभी अकालपीड़ित लोग कताई करनेके लिए तैयार हों या कात सकते हों और न यही है कि राष्ट्रकी ओरसे प्रत्येक गाँवमें कताईके इच्छुक लोगोंके लिए पर्याप्त सुविधाएँ जुटा दी गई हों।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-१०-१९२८

४४५. छुट्टियाँ मनानेका सच्चा तरीका

एक पत्र-लेखकने मुझसे आग्रह किया है कि मैं उन लोगोंको चेतावनी दूँ जो आगामी दीवालीकी छुट्टियोंमें अपनी कमाईका पैसा आतिशबाजियों, रद्दी-सद्दी मिठाइयों और स्वास्थ्यके लिए हानिकारक रोशनी करनेमें फूँकनेकी सोच रहे हैं। मैं हृदयसे इसका समर्थन करता हूँ। यदि मेरी चले तो मै इन छुट्टियोंके दौरान लोगोंको घरोंकी सफाई करने, हृदयोंको शुद्ध बनाने और बच्चोंके लिए निर्दोष प्रकारका शिक्षाप्रद मनोरंजन जुटानेपर विवश कर दूँ। मैं जानता हूँ कि आतिशबाजियोंमें बच्चोंको बड़ा मजा आता है, पर वह इसीलिए तो कि हम वयस्कोंने उनको इस चीजका आदी बना दिया है। मैंने देखा है कि सरल-प्रकृति आफ्रिकी बच्चोंको ऐसा कोई चाव नहीं है। वे इसके बदले नृत्य करते हैं। बच्चोंके लिए इससे अधिक स्वास्थ्यप्रद तथा श्रेष्ठ मनोरंजन और क्या हो सकता है कि उनको खेल-कूदमें लगाया जाये या ऐसी गोठ या वन-विहारका आयोजन किया जाये जिनमें वे बाजारकी सड़ी-गली मिठाइयोंके बजाय ताजा फल और सूखे मेवे अपने साथ ले जायें। धनी और गरीब दोनों ही घरोंके बच्चोंको अपने घरोंकी सफाई और पुताई करना भी सिखाया जा सकता है। आरम्भमें छुट्टियोंके दौरान ही यदि उनको प्यारके साथ श्रमका सम्मान करना सिखाया जाये, श्रमका माहात्म्य महसूस कराया जाये तो यह एक बड़ी बात होगी। पर यहाँ मैं जोर इस बातपर देना चाहता हूँ कि आतिशबाजी इत्यादिसे बचाया हुआ, यदि पूरा नहीं तो, कुछ पैसा भी खादीके लिए अवश्य ही दिया जाना चाहिए, या यदि खादीसे चिढ़ ही हो तो किसी ऐसे कामके लिए दिया जाना चाहिए जिससे दरिद्रनारायणकी सेवा हो सके। स्त्री-पुरुषों, बच्चों और वृद्धोंके लिए इससे बढ़कर हर्षकी बात और कोई नहीं हो सकती कि वे छुट्टियोंके दिनोंमें देशके दरिद्रनारायणकी बात सोचें और उससे अपना कुछ नाता जोड़ें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-१०-१९२८

४४६. हमने हिन्दुस्तान कैसे गँवाया[1]

देशबन्धुकी मृत्युसे ठीक पहलेकी बात है। जलपाईगुड़ीके व्यापारियों द्वारा दिये गये एक मानपत्रके उत्तरमें मैंने उनसे कहा था कि हिन्दुस्तान व्यापारियोंके द्वारा पराधीन हुआ और अब उन्हींके द्वारा हमें उसे स्वाधीन भी कराना चाहिए।[2] अगर इस कथनकी पुष्टिकी जरूरत हो तो नीचे उद्धृत की गई इस ध्यान देने योग्य गश्ती-चिट्ठीसे, जो एक व्यापारिक संस्था द्वारा अन्य व्यापारिक संस्थाओंको भेजी गई थी, उसकी यथेष्ट पुष्टि होती है:

> **जैसा कि आप जानते हैं, मैंचेस्टरके कपड़े और सूतका व्यापार इन दिनों बहुत गिर गया है, और दिन-ब-दिन उसके गिरते जानेके ही लक्षण प्रकट दिखाई देते हैं। देखनेमें यह आया है कि व्यापारी लोग इस व्यापारमें अब पहलेकी भाँति दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। इस उदासीनताके कारण हमारे देश-भाई अपनी आदमनी और फायदेके एक ऐसे भारी जरियेको धीरे-धीरे खो रहे हैं, जो उन्हें अब भी बहुत लाभ दे सकता है। अन्य व्यापारी-समाजोंकी भाँति मारवाड़ी-समाजकी भी कपड़े और सूतके व्यापारमें काफी दिलचस्पी है। इसलिए मेरी समितिने इसी महीनेकी ७ तारीखकी बैठकमें इस महत्त्वपूर्ण व्यापारको पुनः उन्नत करनेकी गरजसे एक प्रस्ताव द्वारा उसकी मौजूदा मन्दीके कारणोंकी पूरी छान-बीन करनेका निश्चय किया है।**
>
> **यह बात सबके हानि-लाभकी है। इसलिए समितिने यह उचित समझा है कि इससे सम्बन्ध रखनेवाली भिन्न-भिन्न संस्थाओंके प्रतिनिधि किसी जगह सम्मिलित होकर विचार करें, जिससे यदि हो सके तो सब मिल-जुलकर कोई उपाय करें। . . .**

चिट्ठी १९ जुलाई, १९२८की है।[3] मुझे पता नहीं कि इस प्रयत्नका क्या नतीजा निकला। पर इस समय हमें उसके नतीजेसे कोई सरोकार भी नहीं है। एक तरफ जहाँ देश हर तरहके विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेकी तैयारी कर रहा है, वहाँ दूसरी तरफ हमारे यहाँकी प्रतिष्ठित व्यापारिक संस्थाएँ मैंचेस्टरके कपड़े और सूतके व्यापारको बनाये रखनेके लिए उपायोंकी आयोजना करनेमें व्यस्त हैं। यह एक ऐसा दुश्चिह्न है, जिसकी ओर प्रत्येक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताको ध्यान देना जरूरी है।

१. इस विषयपर एक और लेख गांधीजी ने ४-११-१९२८ के गुजराती **नवजीवन**में भी लिखा था।

२. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ २२१।

३. **नवजीवन**वाले लेखमें तारीख ७ जुलाई, १९२८ बताई गई है।

इन पृष्ठोंमें यह बतानेके लिए समय-समयपर काफी सबूत पेश किया जा चुका है कि अंग्रेज भारतको व्यापारके लिए ही अपने अधीन रखे हुए हैं, और यह तो जानी-मानी बात है कि ब्रिटेनसे हमारे यहाँ सबसे ज्यादा कपड़े ही आते हैं। सचमुच यह सिद्ध करनेके लिए तो किसी भी कमेटी या कमीशनकी जरूरत नहीं है कि जबतक हम अपने देशकी इस लूटको नहीं रोकेंगे, अंग्रेज हर सम्भव तरीके से हिन्दुस्तान पर अपना कब्जा बनाये रखेंगे। इसलिए भारतमें रहनेवाले अंग्रेजों या अंग्रेज शासकोंको यहाँसे निकालने या उनके हृदय-परिवर्तनका सवाल हमारे सामने अभी उतना प्रधान नहीं है। इस समय सबसे भारी जरूरत तो हमारे अपने उन करोड़पति व्यापारियों तथा उनके सहायक जनोंके हृदयको बदल देनेकी है, जो अपने लाभके लिए देशको बेच रहे है।

पर उन करोड़पति व्यापारियोंको देशके लिए अपने-आपको बरबाद भी नही करना होगा। वे जितना कपड़ा और सूत विदेशोंसे मँगा रहे हैं, उतने कपड़े और सूतकी जरूरत तो देशको रहेगी ही। बस, उन्हें तो सिर्फ अपनी असन्दिग्ध व्यापारिक शक्ति और कौशल देशके सात लाख गाँवोंमें उतना सूत और कपड़ा तैयार करानेमें लगा देनेकी जरूरत है। यदि वे ऐसा करेंगे तो स्वभावत: उन्हींका फायदा होगा। हाँ, यह जरूर है कि उन्हें जुआ, सट्टा, तथा उन ऊँचे महलोंको भी छोड़ देना पड़ेगा जो उनके आसपासके परिवेशके मुकाबलेमें जरा भी नहीं फबते। उन्हें उतनी ही आमदनीपर सन्तुष्ट रहना पड़ेगा जो उनसे व्यापार करनेवाले लोगोंकी तथा जिनके लिए वे व्यापार करेंगे, उनकी स्थितिसे कुछ सम्बन्ध रखती होगी। दूसरे शब्दोंमें, आज जो वे गाँवोंका खून चूसनेमें भाग ले रहे हैं, उसके बजाय वे उन गाँवोंको कुछ थोड़ा-सा प्रतिदान दे सकेंगे जिनपर व्यापारियोंकी समृद्धिका सारा दारोम-दार रहा है। पेट और अन्य अंगोंकी वह कहानी सनातन सत्य है। करोड़ों श्रमजीवी देशका पेट हैं। व्यापारी तथा दूसरे वर्गके लोग उसके अन्य अंग है। अगर पेटमें कुछ नहीं है, तो हाथ-पाँव अवश्य ही रक्तहीन हो जायेंगे। जिनके आँखें है, वे देख सकते है कि पेटको हम निर्लज्जता-पूर्वक मुद्दतसे भूखों मारते आ रहे हैं। इसलिए अब हाथ-पैरोंका गलना अवश्यम्भावी है, जैसे कि दिनके बाद रातका आना। इसलिए अभीसे सावधान हो जानेमें बुद्धिमानी है। 'समय चूकि पुनि का पछिताने।'

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-१०-१९२८

४४७. 'इकॉनॉमिक्स ऑफ खद्दर'

'इकॉनॉमिक्स ऑफ खद्दर' (खद्दरका अर्थशास्त्र) के लेखक, श्री रिचर्ड बी० ग्रेग अत्यन्त अध्यवसायी अध्येता हैं। उन्होंने अपनी स्थापनाओंके समर्थनमें कुछ और सामग्री जुटाई है और अपनी प्रकाशित पुस्तकमें मुद्रणकी कुछ अशुद्धियाँ भी खोज निकाली हैं। उन्होंने भूल-सुधार और परिवर्धनकी वह सामग्री[1] मुझे भेजी है। आशा है, श्री ग्रेगकी पुस्तकको पढ़नेवालों के लाभके लिए वह सामग्री यहाँ दी जानेका पाठक बुरा नहीं मानेंगे। उनको यह जानकर भी खुशी होगी कि अब वे पुस्तकके लिए एक विस्तृत सांकेतिका तैयार करनेमें लगे हुए हैं, जिससे कि खादीप्रेमियोंको अध्ययन और शोध-कार्यमें सुविधा हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-१०-१९२८

४४८. सन्देश : साहित्य परिषद्को

२६ अक्टूबर, १९२८

जहाँ आनन्दशंकरभाई अध्यक्ष हों वहाँ सफलता निश्चित ही है। मैं आशा करता हूँ कि साहित्य-सेवक गुजरातके गरीबोंको नहीं भूलेंगे और आनन्दशंकरभाई उन्हें भूलने भी नहीं देंगे।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, २८-१०-१९२८

४४९. पत्र : स्वेन्स्का किर्केन्सको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती

२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आश्चर्य है कि आपको मेरा पत्र[2] अब तक नहीं मिला। मेरे पत्रका सारांश यही था कि आप स्वेडिश भाषामें 'आत्मकथा'को अनूदित कर

१. यहाँ नहीं दी जा रही है।

२. ८ जून, १९२८ का पत्र; देखिए खण्ड ३६।

सकते हैं, इसपर कोई रोक नहीं है और आप इसके एवजमें जो भी राशि मुझे भेजेंगे वह किसी सार्वजनिक कार्य पर ही खर्च की जायेगी।

हृदयसे आपका,

मैसर्स स्वेन्स्का किर्कान्स
डायकॉनिस्टिरेलिसस
हॉकफोरलाग, स्टॉकहोम ७ (स्वीडन)

अंग्रेजी (एस० एन० १२७८३)की फोटो-नकलसे।

४५०. पत्र : एफ० बी० फिशरको[1]

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

हिंघमसे आपका पत्र मिल गया था। 'अंडरस्टैंडिंग इंडिया' नामक पुस्तक भी मिल गई है। कह नहीं सकता कि समय कब मिल पायेगा, पर समय मिलते ही मैं श्रीमती विलियम्सकी पुस्तक पढ़ जाऊँगा।

आपकी तरह मुझे भी आशा है कि अगले वर्ष किसी समय हमारी मुलाकात जरूर होगी।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड एफ० बी० फिशर
मेथॉडिस्ट एपिस्कोपल चर्च
३, मिडिलटन स्ट्रीट, कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३५०९)की फोटो-नकलसे।

१. फिशरके ७ सितम्बरके पत्रके उत्तरमें, जिसमें लिखा था : "**मदर इंडिया**के प्रकाशनसे अमेरिकामें खलबली मच गई है। समझमें नहीं आ रहा है कि परिस्थितिको सँभाला कैसे जाये। . . . अब एक और पुस्तक प्रकाशित होने जा रही है — गर्टूड मार्विन विलियम्सकी पुस्तक **अंडरस्टैंडिंग इंडिया**। मैं समझता हूँ कि उससे कुमारी मेयो द्वारा पेश की गई गलत तसवीरको कई मानोंमें ठीक करनेमें मदद मिलेगी। . . ."

४५१. पत्र : हैरिएट ऐशब्रुकको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला; धन्यवाद। श्रीमती विलियम्स-कृत पुस्तक भी मिल गई। समय मिलते ही, मैं उसे पढ़कर आपको अपनी राय लिखूँगा। परन्तु इस समय इतना अधिक व्यस्त हूँ कि कह नहीं सकता पुस्तक पढ़नेका समय कब निकाल पाऊँगा।

हृदयसे आपका,

हैरिएट ऐशब्रुक
कोवर्ड मैककैन
४२५, फोर्थ एवेन्यू, न्यूयॉर्क

अंग्रेजी (एस० एन० १४३९०)की फोटो-नकलसे।

४५२. पत्र : होरेस हॉल्बीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

'वर्ल्ड यूनिटी' पत्रिका भेजनेकी सूचनावाला पत्र मिला।

मैंने प्रबन्धकको हिदायत दे दी है कि आपका नाम पत्रिका-आदान-प्रदान सूचीमें शामिल कर लिया जाये।

हाँ, 'यंग इंडिया' में आपको जो भी पसन्द आये, आप निस्संकोच उद्धृत कर सकते हैं और यदि आपकी पत्रिकामें मुझे 'यंग इंडिया' के पाठकोंके कामकी कोई चीज मिलेगी तो मैं उसे यथाविधि आभार-प्रदर्शनके साथ ले लूँगा।

हृदयसे आपका,

होरेस हॉल्बी महोदय
सम्पादक, 'वर्ल्ड यूनिटी'
४ ईस्ट, १२वीं स्ट्रीट, न्यूयार्क

एक प्रति प्रबन्धक, 'यंग इंडिया' को आवश्यक कार्रवाईके लिए।
अंग्रेजी (एस० एन० १४३९७) की माइक्रोफिल्मसे।

४५३. पत्र : जे० बी० पेनिंगटनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने जिस पुस्तकका जिक्र किया है, काश उसे पढ़नेका समय मुझे मिल जाता।

गरीबीकी समस्याके सिलसिलेमें मुझे यही कहना है कि क्या ही अच्छा हो कि आप भी उस भारतके दर्शन कर सकें जिसे मैं जानता हूँ। मुझे पूरा यकीन है कि तब भारतकी गरीबीके आप जो कारण मानते हैं उन्हें तो आप बदलेंगे ही, उसके बारेमें आपकी दृष्टि भी तुरन्त बदल जायेगी। आपकी आलोचना मैंने श्री वकीलको भेज दी है।[1]

आशा है, आपकी उमरके अभी अनेक वर्ष शेष हैं।

हृदयसे आपका,

जे० बी० पेनिंगटन महोदय
३, विक्टोरिया स्ट्रीट
३ वेस्ट मिन्सटर, साउथ-वेस्ट

अंग्रेजी (एस० एन० १४४०४) की फोटो-नकलसे।

४५४. पत्र : सर डैनियल एम० हैमिल्टनको

२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं इसकी एक प्रति सर पुरुषोत्तमदासके पास भेज रहा हूँ।

आपने देखा होगा कि मैंने 'यंग इंडिया' में आपका निबन्ध प्रकाशित किया है। अनेक अर्थशास्त्री मित्रोंमें उसके प्रति रुचि जाग्रत हुई है। आशा है कि उसकी कमसे-कम एक आलोचना तो अवश्य मिलेगी।

१. पेनिंगटनने लिखा था कि सी० एन० वकीलने भारतकी निर्धनताके एक मुख्य कारण — हिन्दू उत्तराधिकार कानूनके फलस्वरूप छोटे-छोटे टुकड़ोंमें भूमिके बँटते जानेके तथ्यपर ध्यान नहीं दिया है।

आशा है कि आपके लेखवाला 'यंग इंडिया' का अंक आपको मिल गया होगा।

हृदयसे आपका,

सर डैनियल हैमिल्टन
बालमाओआरा, बाईकीले
रॉस शायर, इंग्लैंड

अंग्रेजी (एस० एन० १४४१८) की माइक्रोफिल्मसे।

४५५. पत्र: डब्ल्यू० एच० पिटको

२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

इतने लम्बे अरसेके बाद, वह भी आपके बिलकुल बदले हुए हालातमें[1] लिखा गया आपका पत्र पाकर बहुत खुश हुआ।

मैं आपकी बातसे पूर्णतया सहमत हूँ कि श्री कृष्ण पिल्लेकी[2] मृत्युसे बड़ी हानि पहुँची है।

त्रावणकोरमें अस्पृश्यताकी समस्या अब भी हल नहीं हो पाई है। हाँ, अस्पृश्यता क्रमशः दूर हो रही है, हालाँकि उसकी गति बहुत ही मन्द है।

आशा है, आप और श्रीमती पिट दोनों वहाँ आनन्दपूर्वक होंगे।

हृदयसे आपका,

डब्ल्यू० एच० पिट महोदय
लिडिंगटन
स्वीडन, विल्ट्स

अंग्रेजी (एस० एन० १४४२३) की फोटो-नकलसे।

१. पिट अप्रैल १९२८ तक त्रावणकोरमें पुलिस कमिश्नरके पदपर रहे थे। उन्होंने अपना दिनांक १५ जूनका पत्र (एस० एन० १४४२२) इन शब्दोंके साथ शुरू किया था: "प्रिय महात्माजी, मैं अब एक नागरिक-मात्र रह गया हूँ, अधिकारियोंके आचरणके नियमोंका बन्धन अब नहीं रह गया है; इसलिए मैं आपको अब श्री गांधीभर कहनेकी बजाय आपके विरुदसे सम्बोधित कर रहा हूँ।"

२. त्रावणकोरमें देवस्वम कमिश्नर।

४५६. पत्र : एस० गणेशन्को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय गणेशन्,

स्पेनसे आया एक पत्र भेज रहा हूँ। इनको अपेक्षित सूचना भेजनेकी कृपा कीजिए और पुस्तकें अग्रिम मूल्य मिल जानेपर ही भेजिएगा।

श्री ग्रेग यहीं हैं। उनकी शिकायत है कि आपने उनको पत्र ही नहीं लिखा, यहाँतक कि व्यावसायिक पूछताछके उत्तरमें भी नहीं। उनका कहना है कि आपने श्री राय तकको शान्तिनिकेतनमें पुस्तककी प्रति नहीं भेजी। अब मैंने श्री रायको यहींसे एक प्रति भिजवा दी है। इतनी लापरवाही क्यों?

भारतीके गीतोंके सिलसिलेमें आपने एक पत्र लिखा था। मैंने आज ही तार[1] द्वारा उसका उत्तर भेजा है।

मैंने कुछ दिन पहले महाराजा नाभाको भी एक पत्र लिखा था।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० गणेशन्
१८ पाइक्रॉफ्ट्स रोड,
ट्रिप्लिकेन, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १३५७३) की माइक्रोफिल्मसे।

४५७. पत्र : मीठूबहन पेटिटको

२६ अक्टूबर, १९२८

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मेरे हाथमें आज ही आया है। मैंने तो ऐसा सुना है कि रामदास तुम्हारी [उक्त] आज्ञाका पालन पहलेसे ही कर रहा है। तथापि तुम्हारा पत्र मैं उसे भेज रहा हूँ।

तुमने बहुत बड़े कामका बोझ उठा लिया है, किन्तु तुम्हारे हाथमें यश है; इसलिए मैं आशा करता हूँ कि सब ठीक निबट जायेगा। अपनी तबीयतका खयाल तो रखती ही होओगी।

बापूके आशीर्वाद

मीठूबहन

गुजराती (जी० एन० २७०७) की फोटो-नकलसे।

१. उपलब्ध नहीं है।
२. देखिए "पत्र: महाराजा नाभाको", १८-१०-१९२८।

४५८. तार : श्रीमती एस० आर० दासको

[२६ अक्टूबर, १९२८को या उसके पश्चात्][1]

श्रीमती एस० आर० दास
कलकत्ता

मेरी हार्दिक समवेदना। आपकी इस क्षतिमें आपके अनेकानेक मित्र भी सहभागी हैं जिनमें से एक मैं अपने आपको लेखता हूँ।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १३५८५) की फोटो-नकलसे।

४५९. पत्र : मीराबहनको

२७ अक्टूबर, १९२८

चि० मीरा,

कुसुमको मलेरिया हो गया है। इसलिए मैं ढाई बजे रातसे लिखता ही रहा हूँ। यहाँ आजकल बहुत-से लोग बीमार पड़े हैं। छगनलाल जोशीका पूरा परिवार बीमारीमें जकड़ा है। नारणदासका बुखार फिर लौट आया है। बा को बड़ी कठिनाईसे गुजरना पड़ा है; प्यारेलाल खाट पकड़े है। छोटेलालको फिर ज्वरके लक्षण दिख रहे हैं; बलिष्ठ सुरेन्द्र तक इससे बच नहीं पाया है। और भी कई हैं, जिनका उल्लेख करनेकी जरूरत नहीं। पर स्टैन्डेनेथका उल्लेख करना मुझे नहीं भूलना चाहिए। उसपर काफी जोरका प्रकोप हुआ है। अब तुम अनुमान लगा सकती हो कि मुझे कितनी मुश्किलोंका सामना करना पड़ रहा है। महादेव बारडोलीमें है।

लेकिन बीमारोंकी इस लम्बी सूचीके बावजूद ईश्वरकी यही इच्छा है कि मैं अपना काम करता रहूँ और वह मुझे काफी भला-चंगा रखे हुए है। पर कौन कह सकता है — ?

सभी चीजें धीरे-धीरे आगे चलती जा रही हैं। बछड़ेवाली घटनाकी ओर मुझे काफी ध्यान देना पड़ा है। उससे एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि लोग सोचनेके लिए प्रेरित हुए हैं।

(इतना लिखनेके बाद मुझे प्रार्थनाके लिए कलम रोक देनी पड़ी थी।)

१. वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के विधि-सदस्य, एस० आर० दासकी मृत्यु २६ अक्टूबरको हुई थी।

सवा चार बजे शाम

संलग्न तार[1] हरजीवन कोटकने श्रीनगरसे भेजा था। यदि तुम नेपाल न जाओ, तो मैं चाहूँगा कि तुम कार्यक्रम बदलकर कश्मीर हो आओ। वहाँके पर्वतों और साथ ही वहाँ चलनेवाले खादी-कार्यको देखनेके लिए तुम्हें वहाँ जाना चाहिए।

पण्डित मोतीलालजी आज यहीं हैं।

मैं नवम्बरके अन्तिम सप्ताहमें वर्धा जानेकी सोच रहा हूँ।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ५३१७) से। सौजन्य: मीराबहन; जी० एन० ८२०७ से भी।

४६०. पत्र के० एस० सुब्रह्मण्यम्को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२७ अक्टूबर, १९२८

प्रिय सुब्रह्मण्यम्,

आपका पत्र मिला। परिषद्के[2] सदस्योंसे बातचीत किये बिना मैं कोई भी सलाह नहीं दे सकता। हाँ, मुझे यह जरूर लगता है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरूकी यह बात सही है कि अनेक अन्य कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण वे एजेन्सीके कामके लिए जितना चाहिए उतना समय नहीं दे पायेंगे।

आपका भेजा पण्डित जवाहरलालका पत्र मैं इसके साथ लौटा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० सुब्रह्मण्यम्
अखिल भारतीय चरखा संघ, अहमदाबाद
३९५ कालबादेवी रोड, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १२७८४) की माइक्रोफिल्मसे।

१. २७ अक्टूबरके इस तारमें कहा गया था: "मैं चाहूँगा कि यदि सम्भव हो और आप अनुमति दें तो मीराबहन अपने दौरेमें श्रीनगरको शामिल कर लें।" इसपर गांधीजी ने यह टिप्पणी लिखी थी: "इनको ही लिखो, हरजीवन कोटक, अखिल भारतीय चरखा संघ डिपो, श्रीनगर." (सी० डब्ल्यू० ५३१८)।

२. अखिल भारतीय चरखा संघकी। सुब्रह्मण्यम्ने संघकी ओरसे सभी खादी संगठनोंको भेजे जानेवाले एक परिपत्रका मसविदा साथमें भेजा था। उसका आशय यह था कि कलकत्ता कांग्रेसमें आयोजित की जानेवाली प्रदर्शनीकी नीतिके बारेमें संघ और कांग्रेस अधिवेशनकी स्वागत-समितिके बीच मतभेद पैदा हो जानेके कारण खादी संगठनोंको उस प्रदर्शनीमें कोई हाथ नहीं बँटाना चाहिए।

४६१. पत्र : डी० एन० बहादुरजीको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२७ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आप जानते ही हैं कि बारडोली जाँच-समिति अगले महीने अपना काम शुरू करने जा रही है। मेरी बड़ी इच्छा है कि समितिके सामने रैयतकी ओरसे कोई बड़ा ही सुयोग्य और प्रतिष्ठित वकील पैरवी करे। क्या आपको इस मामलेका पूरा अध्ययन करने और जाँच शुरू होनेपर इसकी पैरवी करनेका समय मिल पायेगा? मुझे यह अपेक्षा नहीं कि आप समितिकी प्रत्येक बैठकमें हाजिर हों। पर मैं इतना जरूर चाहता हूँ कि आपकी इच्छा हो और आपके पास समय हो तो आप रैयतके सभी सलाहकारोंका सामान्यतया मार्ग-दर्शन करते रहें और जब भी जरूरत पड़ जाये आप स्वयं समितिकी बैठकोंमें हाजिर हों।

महादेव यह पत्र आपको स्वयं जाकर देगा। मैं भूलाभाईको[1] भी ऐसा ही पत्र लिख रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

डी० एन० बहादुरजी महोदय
रिज रोड, मलाबार हिल, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १३५७५) की फोटो-नकलसे।

४६२. पत्र : कल्याणजी मेहताको

शनिवार [२७ अक्टूबर, १९१८][2]

भाईश्री ५ कल्याणजी,

ऐसी शिकायत मिली है कि 'हिन्दू' के मन्त्रीके बेड़ियाँ डाल दी गई हैं और अन्य प्रकारसे भी उनके साथ अत्याचार किये जा रहे हैं। इस बारेमें तुम यदि कुछ जानते हो तो मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

१. भूलाभाई देसाई।
२. डाककी मुहरसे।

[पुनश्च :]

आशा है, कान्ति अब चलने-फिरने लगा होगा।

भाईश्री ५ कल्याणजी
पाटीदार आश्रम
सूरत

गुजराती (जी० एन० २६८०) की फोटो-नकलसे।

४६३. पत्र : रामदास गांधीको

शनिवार [२७ अक्टूबर, १९२८][1]

चि० रामदास,

तेरा पत्र मिला।

आजकल तू किस काममें लगा हुआ है, लिखना। मीठूबहनके मण्डलमें सम्मिलित हो गया, यह ठीक किया।

बा नीमूको वहाँ भेज देनेके लिए अधीर है। नीमूने किसी तरहकी माँग नहीं की। किन्तु आज बा बहुत आग्रह करने लगी, इसलिए इतना लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह पत्र लिखनेके बाद मैंने साथका पत्र पढ़ा, किन्तु अब तो मैं तेरा पथ-प्रदर्शन करूँ, इसकी जरूरत नहीं रही। मीठूबहनकी मीठी नजरके नीचे तुझे कोई अड़चन नहीं होगी।

बापू

गुजराती (जी० एन० ६८५८) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

४६४. दक्षिणमें अकाल

दक्षिणके दुःखका पार नहीं है। एक ओर सेलमके आसपास भयंकर अकाल पड़ा हुआ है, जबकि दूसरी ओर काकीनाडाके आसपास बाढ़ आनेकी खबर है। बाढ़से कितना नुकसान हुआ है, यह तो अभी मालूम नहीं हुआ। इस बीच अकालके सम्बन्धमें श्री राजगोपालाचारीने जो अपील की है वह 'यंग इंडिया' में प्रकाशित[1] कर दी गई है। उससे मालूम होता है कि पानीकी कमीसे फसल न होनेके कारण किसान चिन्तामें पड़ गये हैं। कातनेवाली बहनोंका ताँता लगा हुआ है। पिछले वर्ष सितम्बरमें जो बहनें आश्रममें रुई लेने आई थीं, उनकी संख्या २४७३ थी और इस वर्ष सितम्बरमें ६४२३ बहनें आईं। इसी महीनेमें पिछले वर्ष ४७८५ रतल सूत प्राप्त हुआ था और इस वर्ष १२८०२ रतल प्राप्त हुआ है।

यह काम अकाल-पीड़ितोंकी शुद्धतम मदद है। और यदि यह अच्छी तरह जम जाये तो अकालके बावजूद लोगोंको उसका दुःख नहीं व्यापेगा। इस समय अकालसे कष्ट होता है, क्योंकि किसानोंके पास काम नहीं रहता, अर्थात् कोई आय नहीं होती। यदि उन्हें निश्चित रूपसे किसी सहायक धन्धेका सहारा मिलता रहे तो वे चिन्तामुक्त हो सकते हैं। इस समय उन्हें दो प्रकारसे सहायता दी जा सकती है: एक तो अकाल के दौरान बनाई गई खादी खरीदकर और, दूसरी, बिना किसी शर्तके दान देकर। मुझे आशा है कि मैं अकाल-सम्बन्धी आँकड़े बादमें प्रकाशित कर सकूँगा। फिलहाल जो इस दुःखमें हिस्सा बटाना चाहते हैं वे यथाशक्ति दान दें या खादी खरीदें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-१०-१९२८

४६५. गुजरात विद्यापीठ

महाविद्यालय और विनयमन्दिरमें दिवालीकी छुट्टियाँ शुरू होनेके दिन आचार्यने जो निवेदन तैयार किया था और सत्रावसानके उत्सवमें पढ़कर सुनाया था वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसे लम्बा होने पर भी संक्षिप्त ही कहा जा सकता है; क्योंकि उसमें अलंकृत भाषा या पुनरुक्ति नहीं थी। शुद्ध सत्य उसकी विशेषता थी। उसमें दोषको छिपाने या सामान्य बतानेका प्रयत्न भी नहीं किया गया था, फिर भी ११२ दिनके इस सत्रका वृत्तान्त बहुत ही आशाजनक है। इस निवेदनमें अनेक प्रवृत्तियोंका संक्षेपमें विवरण है। उसे पढ़नेसे मालूम हो सकता है कि इसमें छोटी-छोटी बातोंपर भी ध्यान दिया गया है। इसमें खेती-विभाग और उद्योग ध्यान खींचे बिना नहीं रहते। खेतीमें फलोंके पेड़ लगाना और कपास बोना नये ही प्रयोग हैं। उद्योगोंमें कपास लोढ़ना, रुई पीजना, सूत कातना, कपड़ा बुनना और बढ़ईगिरीका

१. देखिए "दक्षिणमें अकाल", २५-१०-१९२८।

काम खास तौरसे ध्यान खींचते हैं। उद्योग सीखनेमें हर रोज कमसे-कम दो घंटेका समय दिया जाता है। किसी उद्योगको ठीक-ठीक सीखनेके लिए उसमें अधिक समय लगानेकी जरूरत तो पड़ती ही है; क्योंकि पूरा अभ्यास किये बिना कोई भी उद्योग पूरी तरह नहीं सीखा जा सकता, भरपूर काम किये बिना कारीगरके हाथमें सफाई नहीं आ सकती। मानसिक क्रियाकी तरह उद्योगका विकास नहीं किया जा सकता। थोड़ा-सा पढ़ना सीख लेनेके बाद मनुष्य अपना मानसिक विकास बिना अधिक पुस्तकें पढ़े कर सकता है, क्योंकि मनुष्य कोई भी काम करते हुए अपने मनसे विचार करता रह सकता है। इसके विपरीत उद्योग विशुद्ध शारीरिक कार्य है, इसलिए वह जितने अधिक समय तक किया जाता है उसमें उतनी ही अधिक परिपक्वता आती है। इसीलिए उसके लिए अभ्यासकी बहुत आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त मध्यम वर्गके लोगोंको उद्योग करनेकी आदत नही होती, इसलिए उन्हें उसकी आदत डालनेके लिए अभ्यासकी और भी अधिक जरूरत होती है।

इस निवेदनमें जिस दूसरी बातकी ओर ध्यान खींचा गया है, वह है गुजराती शब्द-कोषकी रचना। इस समय शब्दोंकी वर्तनीमें अराजकताके कारण गुजराती भाषाका विकास रुक रहा है। काकासाहबने यह आशा व्यक्त की है कि यह कोष मार्च महीने तक तैयार हो जायेगा। इस कामके पूरा हो जानेसे एक महत्त्वका काम, जो अबतक अधूरा पड़ा था, समाप्त हो जायेगा। भारतकी सभी भाषाओंमें एक गुजराती ही ऐसी भाषा दिखाई देती है जिसमें लोग शब्द-रूपोंके बारेमें निरंकुशता बरत पाते हैं।

इस निवेदनमें नौकरोंके साथ मित्र-भाव साधनेके एक नये प्रयोगका उल्लेख है। कहा गया था कि यदि नौकर रखने ही पड़ें तो उनसे एकता साधनेका उपाय यह है कि उनके प्रति साथियों-जैसा बरताव किया जाये। काकासाहबको यह आशा है कि यदि नौकरोंके लिए एक वर्ग चलाया जाये तो उनके साथ यह एकता प्राप्त की जा सकती है। यदि विद्यार्थी इस कामको ईमानदारीसे करेंगे तो काकासाहबका यह शुभ उद्देश्य पूरा हो जायेगा।

इस प्रकार नई-नई प्रवृत्तियाँ चलाते रहकर भी विद्याभ्यासकी उपेक्षा नहीं की गई है। पाठकोंको इस निवेदनसे यह अवश्य ही ज्ञात हो जायेगा कि इस विभाग पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। अर्थात् विद्यापीठके विद्यार्थियोंको ग्राम-सेवक बनानेके लिए जिस सामग्रीकी आवश्यकता है उसे उनके सम्मुख सचाईसे रखनेका प्रयत्न जारी है। विद्यार्थी इस सामग्रीको पचा सकेंगे या नहीं यह उनके उत्साह पर निर्भर है और विद्यार्थियोंका उत्साह शिक्षण-कला पर निर्भर है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-१०-१९२८

४६६. वौठाका मेला

यह मेला वौठामें हर कार्तिक पूर्णिमाको होता है। इसके सम्बन्धमें श्री डाह्याभाई पटेलने ताल्लुका समितिकी ओरसे एक सूचना निकाली है। यह नीचे दी जाती है :[1]

इसमें दो माँगे की गई हैं: एक स्वयंसेवकोंकी और दूसरी धनकी। मुझे आशा है कि उन्हें दोनों प्रकारकी सहायता अवश्य मिलेगी। श्री डाह्याभाईने यह सूचना भेजते हुए कहा है कि उन्हें प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी ओरसे ३००रु० की सहायता मिल चुकी है। इसके अतिरिक्त अन्य लोगोंसे अबतक केवल ३१ रु० मिले हैं। इस कार्यमें कमसे-कम ५०० रु० खर्च होंगे। आशा है, शेष जो रकम अभी तक नहीं मिली है, वह मिल जायेगी। इतना रुपया खर्च करके लोगोंकी सेवा की जा सके, मैं इसे अच्छा समझता हूँ। मैंने यह भी देखा है कि सेवा-समितियाँ ऐसे अवसरों पर बहुत धन खर्च कर देती हैं।

जैसा कि सूचनामें कहा गया है, ऐसे मेलोंमें लोगोंको शुद्ध आनन्द मिलता है; किन्तु यह सदा सम्भव नहीं होता। डाह्याभाईने तो आदर्श बताया है। सेवकोंका कार्य ऐसे मेलोंमें शुद्धताकी रक्षा करना है। प्राय: यह देखा गया है कि मेलोंमें——

१. मर्यादाका ध्यान नहीं रखा जाता;

२. जुआ खेला जाता है;

३. मारपीट हो जाती है;

४. पाखण्डी लोग अपना ढोंग फैलाते हैं, और

५. लोग अनेक प्रकारकी अखाद्य वस्तुएँ खाते हैं और ऐसी चीजें बेचते है जो बेचने योग्य नहीं होतीं।

हजारों लोगोंकी भीड़में इन सब अवांछनीय बातोंको एक-साथ रोक सकना असम्भव है। किन्तु यदि हर बार मेलेमें यह प्रयत्न किया जाये तो सुधार किया जा सकता है। ऐसे अवसरपर विदेशी कपड़ेके व्यापारी विदेशी कपड़ा बहुत बेचते हैं। इसके बदले खादीका प्रचार भलीभाँति किया जा सकता है। किन्तु यदि यहसब कार्य करना हो तो इसके लिए पहलेसे तैयारी की जानी चाहिए और स्वयंसेवक अच्छे, समझदार, त्यागी और पर्याप्त संख्यामें होने चाहिए। ऐसी तैयारी हो तो इस प्रकारके मेले लोक-शिक्षणके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-१०-१९२८

१. यहाँ नहीं दी जा रही है। इसमें एकत्रित तीर्थयात्रियोंके लिए लोगोंसे स्वयंसेवकके रूपमें काम करने और धन देनेकी अपील की गई थी।

४६७. अहिंसा-प्रकरण

(१)

एक पत्र-लेखक लिखते हैं :

आपका 'पावककी ज्वाला'[१] नामक लेख मैंने पढ़ा। बार-बार पढ़ा। खूब संतोष हुआ। परन्तु बन्दरोंके विषयमें पढ़कर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मेरे दिलमें तो यह था कि शायद सूर्य-चन्द्रकी गति भले रुक जाये परन्तु आप-जैसे पुरुष, जिसकी रग-रगमें अहिंसा भरी हुई है, यह कभी न कहेंगे कि 'मैं हिंसा करके आश्रमकी रक्षा करूँगा।' यही मेरी मान्यता थी; किन्तु जान पड़ता है, मैंने ऐसा सोचकर भूल की थी। बन्दरोंसे सम्बन्धित लेख पढ़कर मुझे गहरा आघात पहुँचा। मनमें कुढ़न भी अवश्य हुई। क्या आप मेरी परेशानी दूर करेंगे?

ऐसे ही दूसरे पत्र भी आये हैं। मैं देखता हूँ कि मेरे विषयमें बहुत-से सज्जनोंनें बहुत बड़ी आशाएँ बाँध रखी हैं। लगता है कि अहिंसादि सिद्धान्तोंकी जो व्याख्याएँ मैंने की हैं उनके अनुसार ही मैं इन सिद्धान्तोंपर पूरी तरह अमल कर सकता हूँ। ऐसा ये सज्जनगण मानते हैं। बछड़े और बन्दरोंके विषयमें मेरे द्वारा अपनी मनोवृत्ति प्रकट करनेपर उपयुक्त भ्रम दूर हो रहा है, यह मेरे लिए बड़े ही सन्तोषकी बात है। महात्माके पदकी अपेक्षा सत्य मुझे अनन्त गुना प्रिय है। मैं जानता हूँ कि मै महात्मा नहीं हूँ, अल्पात्मा हूँ और इसका मुझे बराबर खयाल है और इसीसे महात्मा-पदसे मुझे कभी धोखा नहीं हुआ। मुझे कबूल कर लेना चाहिए कि मैं प्रतिक्षण हिंसा करके अपना शरीर निभाता हूँ और इसीसे शरीरके प्रति मेरा मोह क्षीण होता जा रहा है। आश्रमकी रक्षा करनेमें भी हिंसा कर रहा हूँ। प्रत्येक साँस लेनेमें सूक्ष्म कीटाणुओंकी हिंसा करता हूँ और यह जानते हुए भी साँसको मैं रोक नहीं सकता। बनस्पतिका आहार करनेमें हिंसा करता हूँ, फिर भी आहारका त्याग नहीं करता। मच्छरों आदिके कष्टसे बचनेके लिए मिट्टीका तेल-जैसी चीजोंको काममें लानेसे उनका नाश होता है, यह जाननेपर भी इन नाशक द्रव्योंका उपयोग करना नहीं छोड़ता। साँप के उपद्रवसे आश्रमवासियोंको बचानेके लिए जब उन्हें बिना मारे दूर नहीं कर सकते तब मारने भी देता हूँ। बैलोंको हाँकनेमें आश्रमके मनुष्य उन्हें पैनी आर चुभोते हैं, मैं वह भी सहन कर लेता हूँ। यों मेरी हिंसाका अन्त ही नहीं है। अब मुझे बन्दरोंका उपद्रव परेशान कर रहा है। बन्दरोंको मार ही डालनेका निश्चय मैं कभी कर सकूँगा या नहीं, उसकी मुझे कुछ खबर नहीं है। ऐसे निश्चयसे मैं दूर भागता हूँ। अभी तो कई-एक उपयोगी सुझावों द्वारा मित्र लोग मदद कर

१. तारीख ३०-९-१९२८ का।

रहे हैं, परन्तु आश्रमकी खेती रहे या न रहे, फिर भी मैं बन्दरोंका कभी नाश करूँगा ही नहीं, ऐसी प्रतिज्ञा करनेकी हिम्मत मुझमें आज तो नहीं है। मेरी इस विनम्र स्वीकृतिसे मित्र लोग मेरा त्याग कर दें तो मैं लाचार हो जाऊँगा और मैं उस त्यागको सहन करूँगा। परन्तु अहिंसा-सम्बन्धी अपनी कमजोरी अथवा अपूर्णताको छिपाकर किसीसे मैत्री रखनेकी मुझे इच्छा नहीं है। अपने विषयमें मैं सिर्फ इतना ही जोर देकर कह सकता हूँ कि अहिंसादि महाव्रतोंको पहचानने तथा उनका मन, वचन तथा शरीरसे सम्पूर्ण पालन करनेका मैं सतत प्रयत्न कर रहा हूँ। उस प्रयत्नमें थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली है, फिर भी मैं जानता हूँ कि इस दिशामें मुझे अभी बड़ी लम्बी मंजिल तय करनी है। अतः ये पत्र-लेखक यदि मेरी अपूर्णताको क्षम्य न गिनते हों तो फिर उनको सन्तुष्ट करनेका मेरे पास अन्य कोई उपाय नही है।

(२)

दूसरे सज्जन पूछते है:

> **मान लीजिए कि मेरे बड़े भाई भयंकर असह्य रोगसे कष्ट पा रहे हैं और डॉक्टर लोग उनके जीवनकी आशा छोड़ देते हैं। मैं भी मानता हूँ कि वे बचनेवाले नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें क्या मुझे उनका प्राणहरण करना चाहिए?**

प्राणहरण नही करने चाहिए, यही मेरा जवाब है। इस विषयमें जो प्रश्न आये हैं, उनसे मैं यह देखता हूँ कि पढ़नेवालों ने मेरे लेखको समझनेकी तकलीफ ही नहीं उठाई। जो दशा बछड़ेकी थी उसी स्थितिमें पहुँचे हुए मनुष्यके प्राणहरणका भी मैंने समर्थन किया है। इस समानताको पत्र-लेखक अपनी कठिनाई पेश करते वक्त भूल जाते हैं। वस्तुतः बछड़ेकी-सी स्थितिमें मनुष्य कदाचित् ही पड़ता है। प्रथम तो यह कि उसका कद बछड़ेकी अपेक्षा छोटा है और इसलिए उसे इधर-उधर उठाना-बैठाना उतना मुश्किल काम नहीं है। दूसरे, वह बछड़ेके समान मूक प्राणी नही है, इसलिए ज्यादातर तो वह अपनी इच्छा भी प्रदर्शित कर सकता है। और बिना मर्जी किसीके भी प्राणहरण करनेमें अहिंसा है, ऐसा मैंने बछड़ा-प्रकरणमें कहीं नहीं लिखा। बेहोशी-की हालतमें भी मनुष्यके जीनेकी आशा हम कोई जल्दी नहीं छोड़ देते। फिर आशा छूट जानेपर भी सेवा करनेकी आशा और अवकाश तो असंख्य प्रसंगोंमें बना ही रहता है। इसलिए बछड़ेकी स्थितिको पहुँचा हुआ मनुष्य शायद ही कोई मिले। मनुष्यका उदाहरण तो मैंने इसलिए दिया था कि मनुष्य और बछड़ेके बीच अहिंसाकी दृष्टिसे भेद हो ही नहीं सकता। जो न्याय बछड़ेपर घटता है वही मनुष्यपर भी घटता है। परन्तु मुझे आशा थी कि मनुष्य तथा बछड़ेकी तुलनासे सभी पाठक मनुष्य प्राणी और बछड़े के बीच जो स्वभाविक भेद है उसे समझ ही जायेंगे। प्राणहरणकी शर्तें मैं फिरसे गिना देता हूँ:

१. रोग असाध्य हो।
२. सभीने रोगीके जीनेकी आशा छोड़ दी हो।
३. उसकी सेवा करना असम्भव हो।
४. उसकी इच्छा जानना भी असम्भव हो।

इन चार प्रकारकी स्थितियोंमें से किसी एकके भी अभावमें प्राणहरण नहीं किया जा सकता।

(३)

तीसरे पत्र-लेखक कहते हैं:

> **बछड़ेका तो ठीक, परन्तु आपके इस उदाहरणसे देवी-देवताओंको चढ़ानेकी खातिर बकरों वगैरहका जो वध करनेमें आता है, उस प्रथाको प्रोत्साहन मिलेगा, क्या इसपर आपने विचार किया है? क्या आप यह नहीं जानते कि बकरोंकी बलि चढ़ानेवाले यह दावा करते हैं कि वे बकरोंका कल्याण चाहते हैं?**

मेरे कार्यका ऐसा दुरुपयोग होनेकी पूरी गुंजाइश है। मै जानता था कि लोग ऐसा करेंगे भी। परन्तु जबतक पाखण्ड और मूर्खता इस जगतमें है तबतक ऐसे दुरुपयोग होते ही रहेंगे। किस धर्मके नामपर आजतक पाखण्ड और अधर्म नही फैला? इसलिए दुरुपयोगके डरसे जो वाजिब हो उसे करनेमें मनुष्यको डरना न चाहिए, ऐसा सामान्य नियम है। बलिदानके रूपमें बकरोंका वध करनेवालोंके लिए मेरे दृष्टान्तकी कोई जरूरत नहीं है। वे अपना कार्य शास्त्रके नामपर करते है। सच्चा डर तो यह है: मेरे कार्यका दृष्टान्त देकर अपने माने हुए दुश्मनोंका वध करनेको भी कुछ-एक लोग तैयार होंगे। वे कहेंगे: "दुश्मनको मारकर हम जनताका और उसका दोनोंका कल्याण करते हैं।" ऐसी दलीलें मैंने कईबार सुनी हैं। मेरे लिए तो इतना ही काफी है कि मेरे दृष्टान्त और उल्लिखित कामोंमें कोई साम्य नही है। बकरे या दुश्मनके वधमें दोनोंमें से एककी भी सम्मतिकी तो बात ही नही है और यदि वध न करनेसे बकरे तथा दुश्मनका कल्याण माना जाये तो उसमें वध करनेवालों का स्वार्थ भी कम नहीं है। परन्तु जिनको आँख खोलकर देखना ही नही है, वे तो ऐसा स्पष्ट भेद भी नहीं देख सकेंगे। तुलना करनेवाले यदि तुलनाके नियमोंका ही लोप कर दें तो उसका क्या उपाय किया जा सकता है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-१०-१९२८

४६८. विद्यार्थियोंसे प्रश्नोत्तर[1]

भविष्यकी रचना

विद्यार्थियोंकी प्रश्नावलीमें से एक प्रश्न यह है:

> **हमारे देशकी भावी आर्थिक रचना आपके मतानुसार किन सिद्धान्तों पर और कैसी होनी चाहिए? उसमें वर्तमान बैंक, बीमा कम्पनियाँ और अन्य औद्योगिक संस्थाओंका क्या स्थान होगा?**

इसका संक्षिप्त उत्तर यह है: इस देशकी और सारे विश्वकी आर्थिक रचना ऐसी होनी चाहिए कि जिससे एक भी प्राणी अन्न-वस्त्रके अभावसे दुखी न हो, अर्थात् सभीको अपने निर्वाहके लिए आवश्यक उद्यम मिलता रहे। और यदि हम सारे जगत्के लिए ऐसी स्थिति चाहते हों तो अन्न-वस्त्रादि उत्पन्न करनेके साधन प्रत्येक मनुष्यके पास होने ही चाहिए। किसीको भी यह लोभ नहीं रखना चाहिए कि दूसरेको हानि पहुँचाकर स्वयं फायदा उठाये। जैसे हवा और पानीपर सबका समान हक है अथवा होना चाहिए, वैसे ही अन्न-वस्त्रपर भी होना चाहिए। इसका इजारा किसी एक देश, जाति अथवा व्यापारिक संस्थाके पास हो तो वह न्याय नहीं, अन्याय है। इस महान् सिद्धान्तपर कार्य-रूपमें अमल नहीं होता और बहुधा यह विचारके रूपमें भी स्वीकार नहीं किया जाता, इसीसे इस देश और जगत्के अन्य भागोंमें लोग अभावग्रस्त बने हुए हैं। इस परिस्थितिका निवारण करनेके लिए चरखा और खादीकी प्रवृत्तिका आयोजन हुआ है। मेरे सुझावके अनुसार आर्थिक रचना हो जानेपर भी बैंक तथा शायद बीमा कम्पनियाँ भी रहेंगी। परन्तु उन सबका रूपान्तर हो चुकेगा। आजकल इस देशमें ये बैंक गरीबोंके लिए नहीं-जैसे ही हैं। अनेक तो भार-रूप हैं। बीमा कम्पनियोंकी उन्हें जरूरत ही नहीं है। मेरी कल्पित आदर्श स्थितिमें बीमा कम्पनियोंका स्थान क्या होगा, सो मैं नहीं कह सकता। बैंक गरीबोंकी यत्किंचित् धरोहर सँभालनेवाली देशहितकी दृष्टिसे रची गई संस्थाएँ होंगी। सरकार द्वारा संचालित अनेक संस्थाओंके प्रति मुझे कोई भी मोह नहीं है; फिर भी उसके सेविंग्स बैंक गरीबोंको मदद करनेवाली संस्थाएँ कही जा सकती हैं। तथापि उनका लाभ भी मुख्यतः शहरोंमें रहनेवालों को ही मिलता है। परन्तु जबतक सरकार हमारा खजाना हिन्दुस्तानसे बाहर रखती है तबतक मैं इन सेविंग्स बैंकों को भी उपयोगी नहीं समझता। जो राज्य-पद्धति लोकहित के ही खातिर और उसकी सम्मतिसे नहीं रची गई वह मौका पड़नेपर भरोसा रखने लायक नहीं कही जा सकती। यदि देशमें

१. गांधीजी ने गुजरात विद्यापीठके विद्यार्थियोंके अधिक सम्पर्कमें आनेकी इच्छासे उनके कुछ वर्ग लेना प्रारम्भ कर दिया था। वे इन वर्गोंमें **हिन्द स्वराज्य** पढ़ाते थे। वर्ग प्रारम्भ होनेसे पहले विद्यार्थियोंने कुछ लिखित प्रश्न किये थे और गांधीजी ने उनमें से कुछ चुने हुए प्रश्नोंके उत्तर **नवजीवन**में भी दिये थे। देखिए "टिप्पणियाँ", २१-१०-१९२८ ।

लड़ाई शुरू हो जाये तो सरकारकी मददमे चलनेवाले तमाम बैंक निकम्मे गिने जा सकते हैं। क्योंकि उनमें जमा किया गया रुपया लोगोंके विरुद्ध काममें लाया जा सकता है। यह जोखिम चाहे अनिवार्य मान ली जाये, फिर भी इसे समझ करके ही सब कोई अपना रुपया सरकारी बैंकोंमें जमा कराते हैं; इस आधारपर कहा जा सकता है कि जो सरकारी बैंकोंमें अपना रुपया जमा कराते हैं वे सरकारकी जड़ मजबूत करते हैं। हम ऐसे काम करते हुए भी उसके नतीजेको समझें और जानें, यह आवश्यक है।

परदेशी बनाम स्वदेशी

विद्यापीठके विद्यार्थियोंकी प्रश्नावलीमें से एक अन्य प्रश्न यह है:

> **वस्त्रके सिवा विदेशसे आनेवाली चीजोंके व्यापारके विषयमें आपकी क्या राय है? इनमें से किन-किन चीजोंका व्यापार आपकी दृष्टिमें तत्काल बन्द हो जाना चाहिए? भविष्यमें इसका क्या स्वरूप हो?**

वस्त्रके सिवा अन्य विदेशी चीजोंके बारेमें मैं तटस्थ हूँ, ऐसा कहना चाहिए। कोई चीज़ केवल विदेशी होनेके कारण त्याज्य है, मेरी धर्मपोथीमें ऐसा कहीं भी लिखा नही है। मेरी धर्मपोथीमें यह लिखा है: स्वदेशको जो हानिकर हो, ऐसी तमाम विदेशी वस्तुएँ त्याज्य हैं। अर्थात् जो चीज काफी मिकदारमें हम अपने देशमें पैदा कर सकते हों उसे विदेशसे कभी नहीं मँगवाना चाहिए, जैसे गेहूँ। आस्ट्रेलियाका गेहूँ विशेष अच्छा है, इसलिए उसे मँगवाना और देशके गेहूँका त्याग करना मैं पाप मानता हूँ। परन्तु यदि 'ओटमील' की आवश्यकता सिद्ध हो जाये तो उसे स्कॉटलैंडसे मँगवानेमें मुझे कुछ भी संकोच नही होगा, क्योंकि हमारे यहाँ 'ओटमील' की पैदावार नहीं होती; अर्थात् द्वेष-भावके कारण विदेशी वस्तुका त्याग करना चाहिए, मैं इस पक्षमें नहीं हूँ। हमारे देशमें चमड़ा बहुत तैयार होता है। वह चाहे थोड़ा हलका ही क्यों न हो, फिर भी उसके जूते काममें लाना ही मैं उचित समझता हूँ। विदेशी जूते अधिक अच्छे और अधिक सस्ते मिलते हों फिर भी उनको मैं त्याज्य गिनता हूँ। हिन्दुस्तानमें शक्कर और गुड़ बहुत पैदा होता है। उस हालतमें विदेशी शक्कर अथवा खाँडको दाखिल करना मैं दोष समझता हूँ। इससे देखा जा सकता है कि विदेशी होनेसे जो त्याज्य हैं, ऐसी सभी वस्तुओंकी सूची देना मेरे लिए मुश्किल है। प्रत्येक वस्तुके विषयमें मैंने ऊपर जो सामान्य नियम बतलाया है उसीसे अपना व्यवहार-निर्णय कर सकते हैं। इस सम्बन्धमें आज हम जिस नीतिका प्रचार कर रहे हैं, वही मैं भविष्यमें भी चाहूँगा, बशर्ते कि उन चीजोंकी पैदावारके बारेमें हमारी स्थिति आजकी जैसी ही रहे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-१०-१९२८

४६९. भाषण: नवीन गुजराती शाला, अहमदाबादमें

२८ अक्टूबर, १९२८

इस शालाकी स्थापनाका श्रेय भाई इन्दुलाल याज्ञिकको है। यदि इस शालाके साथ हम भाई इन्दुलालके नामका स्मरण न करें तो अपना कर्त्तव्य करनेमें चूकेंगे और कृतघ्न ठहरेंगे। गुजरातमें लोगोंको सार्वजनिक प्रवृत्तियोंमें रस लेनेके लिए आकर्षित करनेमें और इन प्रवृत्तियोंको बढ़ानेमें भाई इन्दुलालका बड़ा योग है। इसे हम भूल नही सकते। यह शाला उन्हीके प्रयत्नोंका फल है। शिक्षकोंने इस शालाको सफलतापूर्वक चलाया है, इसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं। शालाके आचार्यने विद्यापीठके साथ शालाके सम्बन्धका उल्लेख किया। विद्यापीठके कार्यवाहक मण्डलसे शालाका सम्बन्ध नही है। किन्तु मेरा दुःखद अनुभव है कि विद्यापीठ और ऐसी अन्य संस्थाओंके कार्यक्षेत्रको यदि हम सीमित न करें तो वे अच्छी तरह नही चल पाती। विद्यापीठका कार्यक्षेत्र आजकल कुछ छोटा कर दिया गया है; इसका उद्देश्य उसे आगे बढ़ाना ही है, पीछे हटाना नहीं। मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि जो भी शालाएँ राष्ट्रकी सेवा कर रही हैं उनकी तनिक भी हानि नहीं होने दी जायेगी। विद्यापीठ गुजरातमें चलनेवाली शिक्षाकी प्रवृत्तियोंका पोषण करनेके लिए है। आजकल वह हरएक शालाको स्वावलम्बी बनानेका तथा उनमें जो शिथिलता तथा आलस्य आ गया है उसे दूर करनेका प्रयत्न कर रहा है। इस शालाके लिए तो शिथिलता और आलस्यका कोई डर है ही नहीं, यदि ऐसा कोई डर होता तो मैं यहाँ आता ही नहीं। यहाँके शिक्षकों और बालकोंसे मैं बहुत-कुछ करनेकी आशा रखता हूँ। बलिदानके विषयमें तुमने नाटकके रूपमें एक बहुत सुन्दर संवाद प्रस्तुत किया। लूथरने स्वतन्त्रताके लिए अपना बलिदान दिया। राष्ट्रीय शालाओंकी अभिवृद्धिके लिए इसी तरह मरणशय्यापर सोनेकी तैयारी करनेकी आवश्यकता है, फिर भले हमें मृत्युको भेंटना पड़े या न पड़े। हम आरम्भशूर हैं। की हुई प्रतिज्ञाओंको बादमें छोड़ देते हैं, क्योंकि हमें अपने कार्यमें श्रद्धा नहीं है। जबतक हम लोगोंमें श्रद्धाके अभावका यह दोष रहेगा तबतक हम दुनियामें भारतकी जो शान कायम करना चाहते हैं वह नहीं कर सकते।

स्वतन्त्रताकी देवी तो मानों मृत्युकी देवी है। वह मुँह खोले बैठी हुई है और हमें उसमें प्रवेश करनेका निमन्त्रण दे रही है। यदि हम उसके लिए तैयार नहीं हैं तो हमें वांछित वस्तु नहीं मिल सकती। तुम लोग खेलो-कूदो और अपने शरीर तथा मनको बलवान बनाओ, यह बहुत अच्छी बात है। किन्तु राष्ट्रीय शालाओं और सरकारी स्कूलोंमें जो बुनियादी भेद है, उसे तुम मत भूलना। सरकारी स्कूलोंमें मिलनेवाली शिक्षा, सम्भव है, अच्छी हो, किन्तु एक चीज वह नहीं दे सकती। मैं तो आज भी घोषणापूर्वक यही कहता हूँ कि सरकारी स्कूल हमारे लिए त्याज्य

हैं। तुम अपनी इस शालासे जो भी विद्या प्राप्त करो, यहाँ रहते हुए जो भी शारीरिक बल प्राप्त करो वह सब भारत-माताके चरणोंमें अर्पित करनेका संकल्प करना। इस शालासे राष्ट्रप्रेमकी शिक्षाका ऐसा प्रसार होना चाहिए कि हरएक विद्यार्थी यह निश्चय करे कि बड़ा होनेपर वह भारतकी सेवा करेगा। सत्य और अहिंसाका पालन करते हुए यदि तुम भारतकी सेवा करोगे तो उसमें कुटुम्बकी सेवा अपने-आप हो जायेगी। मैं बालकोंको आशीर्वाद देता हूँ और शिक्षकोंसे कहता हूँ कि आपने यहाँ जिन आदर्शोंको स्वीकार किया है उन्हें अपने आचरणमें पूरी तरह उतारिएगा। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो विद्यार्थी उन्हें कदापि आत्मसात् नही कर सकते।

[गुजरातीसे]
प्रजाबन्धु, ४-११-१९२८

४७०. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

मौनवार [२९ अक्टूबर, १९२८को या उसके पूर्व][1]

चि० शान्तिकुमार,

तुम्हारा पत्र मिला। स्वदेशी संगठनका मसौदा पढ़कर मुझे निराशा हुई। इसमें मुझे व्यापार-वृत्तिकी गन्ध ही मिली। किन्तु एक प्रकारसे जो-कुछ हो रहा है वह ठीक है। इस मसौदेके द्वारा मिल-मालिकोंका सही रूप सामने उभर आता है। फिर, इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि हम जैसे हैं वैसे ही दिखाई दें।

मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि यदि तुम उससे अलग रह सको तो अलग रहना। यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि भाई जयसुखलाल इसमें पड़े हैं। यदि तुम यह पत्र उन्हें या ऐसे किसी भी व्यक्तिको, जो मेरे दृष्टिकोणको समझ सके, दिखाना चाहो तो दिखा सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७०६)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१. डाककी मुहरसे।

४७१. पत्र : मीराबहनको

[२९ अक्टूबर, १९२८][1]

चि० मीरा,

छीलनेके लिए सब्जियाँ ठीक की जा रही हैं, तबतक थोड़ा समय मुझे खाली मिल गया है।[2] तुम बिहारमें ही हो, तो मैं सोच रहा हूँ कि अब तुम मल्खाचकके खादी-कार्यके बारेमें क्या करोगी। कृष्णदास भी वहीं है। ठीक वही करना जिसकी प्रेरणा अन्दरसे मिले। मैं तो सिर्फ वस्तु-स्थिति बतला रहा हूँ। राजेन्द्रबाबू शायद न चाहें कि तुम वहाँ जाओ, क्योंकि अखिल भारतीय चरखा संघसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

छोटेलालजी की डबल रोटीका काम अच्छी प्रगति कर रहा है।[3] और रसोईका काम भी काफी सरल बन गया है। यह सब तो तुम लौटनेपर खुद ही देखोगी। देवदास और जामियाके साथ सम्पर्क बनाये रखना।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

यह तो तुमको बतलाना ही चाहिए कि मैं अपना धुनाईका काम स्वयं करने लगा हूँ। मैंने मध्यम धुनकीसे काम शुरू किया है।

बापू

श्रीमती मीराबाई
खादी-भण्डार
मुजफ्फरपुर, बिहार

अंग्रेजी जी० एन० ८२०९ से; तथा सी० डब्ल्यू० ५३१९) से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१. डाककी मुहरसे।

२. **बापूज़ लेटर्स टु मीरा**में मीराबहन लिखती हैं : "सम्मिलित भोजनालयके लिए सब्जियाँ काटने छीलनेके काममें गांधीजी भाग लिया करते थे।"

३. "छोटेलालजी ईंटोंका चूल्हा बनानेमें सफल हुए थे और उन्होंने खमीरका उपयोग किये बिना डबल रोटी तैयार करनेकी कला सीख ली थी" (मीराबहन)।

४७२. पत्र : महादेव देसाईको

मौनवार, २९ अक्टूबर, १९२८

चि० महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला, किन्तु आत्मकथा [की किस्त] नहीं मिली। इस बातका भरोसा तो है कि कलतक मिल जायेगी, किन्तु प्यारेलालने उसका अनुवाद करनेकी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली है। उसकी तबीयत अब ठीक है। कुसुम ठीक तो है, किन्तु अभी बिछौना नहीं छोड़ सकी है। मेरी गाड़ी तो भगवान्‌के भरोसे चलती ही रहती है न? क्या आजतक किसीका काम अटका है? इसलिए मेरा काम चल गया, इसमें कोई खास बात नहीं है।

यह अच्छा ही हुआ कि भूलाभाई तुरन्त सहमत हो गये।[1] यदि ऐण्डर्सन आदिकी रिपोर्ट रद हुई मान ली जाये तो जिम्मेवारी हमपर नहीं आती, बल्कि वृद्धिके औचित्यको सिद्ध करनेकी जिम्मेवारी सरकारपर है।

तुम्हारे नाम आया एक पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। मैं हस्ताक्षर पढ़ नहीं सका। 'ब्रेड एन्ड ब्रेड मेकिंग' (रोटी और रोटी बनाना)के बारेमें भूल तो नहीं गये।

परीक्षितलाल 'अन्त्यज सर्व-संग्रह'के बारेमें जानना चाहते हैं कि क्या उक्त पुस्तक तुमने उन्हें दी थी?

बा खटियासे उठ खड़ी हुई है। वह बहुत कमजोर तो है ही और कहा जा सकता है कि बहुत दुबली हो गई है। राधा और सन्तोक राजकोट गई हैं और दिवालीके बाद वापस लौटेंगी। मीराबाई मुजफ्फरपुर पहुँच गई है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मोतीलालजी कल आये थे और आज वापस लौट गये। हम निरन्तर कांग्रेसके बारेमें ही बातें करते रहे। जुगतरामको प्रस्तावना अलगसे भेज रहा हूँ।

गुजराती (एस० एन० ११४४६) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र: डी० एन० बहादुरजीको", २७-१०-१९२८।

४७३. तार : घनश्यामदास बिड़लाको[1]

अहमदाबाद
३० अक्टूबर, १९२८

घनश्यामदास बिड़ला
बिड़ला पार्क, कलकत्ता

महादेव बारडोलीमें है। दक्षिण आफ्रिकी पत्रकारोंको आमन्त्रित करना सामान्यतया ठीक कदम होगा।

गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७८७८) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

४७४. पत्र : मीराबहनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
३१ अक्टूबर, १९२८

चि० मीरा,

तुम्हारे दो पत्र एक साथ मिले — एक आश्रमके बारेमें और दूसरा तुम्हारी मेरठ-यात्राके वृत्तान्तका। मैंने तुमको मुजफ्फरपुरके पतेपर दो पत्र लिखे थे, पहला रविवार और दूसरा सोमवारको।

समझमें नहीं आता कि समाचारपत्रोंमें आश्रमके बारेमें समाचार कैसे छप जाते हैं। खैर, उनमें से अधिकांश बिलकुल मनगढ़न्त होते हैं। यदि कोई भारी परिवर्तन होता तो मैं तुमको अवश्य लिख देता। नामके परिवर्तनके बारेमें भी मैंने अखबारमें कुछ नहीं लिखा, इसलिए कि महादेव और दूसरे लोगोंका आग्रह था कि समाचारपत्रोंमें इस बातकी भी सूचना नहीं दी जानी चाहिए। लेकिन अब तो जाहिर है, लिखना ही पड़ेगा। पर उद्योग मन्दिरकी समिति ब्रह्मचर्यसे सम्बन्धित नियममें कोई ढिलाई नहीं करेगी। अतः ब्रह्मचर्यसे सम्बन्धित आधारभूत नियम और अन्य सभी आधारभूत नियम तो ज्यों-के-त्यों रहेंगे। इसी प्रकार सामूहिक भोजनालय भी कमसे-कम एक वर्षतक तो चालू रहेगा ही। वर्षके अन्तमें ही इस अवधिके भीतर हुए

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीके इस प्रस्तावके बारेमें कि दक्षिण आफ्रिकाके पत्रकारोंको भारतीय संस्कृतिसे परिचित करानेके लिए उनका एक दल भारतमें आमन्त्रित किया जाये, भारत सरकारने घ० दा० बिड़लाकी राय पूछी थी। बिड़लाने महादेव देसाईके नाम अपने २७ अक्टूबरके पत्रमें उनसे प्रस्तावके बारेमें गांधीजी की राय लिखनेका अनुरोध किया था।

अनुभवको ध्यानमें रखते हुए इस प्रश्न पर पुनर्विचार किया जायेगा। भोजनालय बड़े मजेमें चल रहा है।

मेरठके गांधी आश्रमके लोग चाहते हैं कि २१ नवम्बरको होनेवाले मेलेके अवसरपर धुनाई और ऐसी ही अन्य क्रियाओंका प्रदर्शन भी किया जाना चाहिए। तुम यदि नेपाल नहीं जा रही हो, तो अच्छा यही रहेगा कि तुम कार्यक्रम तबदील कर लो। और इस मेलेमें पहुँचकर इन लोगोंकी जितनी भी बन सके सहायता करो और इसके बाद कश्मीर चली जाओ। मैं अन्य कारणोंके अलावा इसलिए भी चाहता हूँ कि तुम कश्मीर जाओ कि तुम वहाँके खादी-कार्यको देखो। यह तभी होगा जब तुम ऐसे समय जाओ जब वहाँ खादी-कार्य चल रहा हो। देवदास, रसिक और नवीनकी सहायतासे तुम वहाँ खादी तैयार करनेकी प्रक्रियाओंके प्रदर्शनका आयोजन कर ही सकती हो। तब फिर यहाँसे किसीको भेजनेकी जरूरत नही रह जायेगी, क्योंकि हम तो वैसे ही आजकल कार्यकर्त्ताओंकी कमीके कारण आश्रमसे किसीको भेजनेमें असुविधा महसूस कर रहे हैं। लेकिन मेरठवालों की सहायता मैं जरूर करना चाहता हूँ। मैंने अपने विचार बतला दिये हैं। अब तुम अपनी सुविधाके अनुसार जो भी ज्यादा ठीक समझो, करना। मैंने मजमूदारको कोई उम्मीद नहीं बँधाई है। पत्र मजमूदारने ही लिखा था।

सस्नेह,

बापू

श्रीमती मीराबहन
मार्फत — खादी-भण्डार
मुजफ्फरपुर (बिहार)

अंग्रेजी जी० एन० ८२१० से; तथा सी० डब्ल्यू० ५३२० से भी।
सौजन्य : मीराबहन

४७५. पत्र : आर० कृष्णय्यरको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
३१ अक्बटूर, १९२८

प्रिय मित्र,

सुब्बैयाके नाम आपका पत्र मैंने देख लिया है। मैं बम्बई होता हुआ वर्धा तो शायद नहीं जा सकूँगा। बारडोलीवाला रास्ता ही सबसे सीधा और कम खर्चीला है। इसलिए आप चन्देकी जमा की हुई राशि आश्रमके पतेपर ही भेज दें, क्योंकि मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि बम्बई कब पहुँचूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० कृष्णय्यर,
८२/२४, मिरेण्डा बिल्डिंग, दादर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५७७) की माइक्रोफिल्मसे।

४७६. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

३१ अक्तूबर, १९२८

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। विपिन बाबूकी बात मैं समझ रहा हूँ।[1] परन्तु मेरे दृष्टि-कोणमें कोई परिवर्तन नहीं आया। मेरे मनमें यह सारी चीज दिन-दिन अधिक स्पष्ट होती जा रही है: हमें जीवनको ही सब-कुछ मानना और मृत्युको निस्सार समझना भूलना चाहिए। सचमुच, हमें मृत्युको भी आनन्ददायक मानना सीख लेना चाहिए।

प्रदर्शनी यदि उसी तरह की होने जा रही हो जैसी आप कहते हैं[2] तो उससे हमारा दूर रहना ही अच्छा होगा।

आपने इस पत्रमें तारिणीके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
सोदपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १३५७८) की फोटो-नकलसे।

४७७. पत्र : जे० येसुथासेनको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
३१ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। तीव्र वेदनाके क्षणोंमें सभी लोगोंको एक सर्वव्यापी शक्तिके अस्तित्वका भान नहीं होता और न उन्हें अपने भीतर उसे शान्तिपूर्वक सह जानेके बलका ही अनुभव होता है। किन्तु, कुछ लोगोंको निस्सन्देह ऐसी अनुभूति होती है। बात बिलकुल ठीक है कि पीड़ा जब सहिष्णुताकी सीमा लाँघ जाती है तब हमारा

१. सतीशचन्द्र दासगुप्तने अपने पत्रके साथ विपिनचन्द्र पालके एक लेखकी कतरन भेजी थी। **इंग्लिशमैन**में छपे उस लेखमें पालने बछड़ेके सम्बन्धमें चलनेवाली बहसके सिलसिलेमें गांधीजी द्वारा व्यक्त विचारोंकी आलोचना की थी।

२. कलकत्ता कांग्रेसकी स्वागत समितिने इस आशयका एक प्रस्ताव स्वीकृत किया था कि कलकत्ताके आगामी कांग्रेस अधिवेशनके दौरान होनेवाली प्रदर्शनीमें भारतीय मिलोंके बने सूती वस्त्र और कढ़े हुए विदेशी वस्त्र भी रखे जा सकेंगे।

सिरजनहार मृत्युके जरिये उस पीड़ाको समाप्त कर देता है। सहिष्णुताकी सीमा व्यक्तिपर निर्भर करती है और यदि हम प्रत्येक सम्भावित अवस्थामें मृत्युको भयावह मानकर ही न चलें तो कुछ ऐसी सुनिश्चित परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं जिनमें हम अहिंसाके नियमोंका उल्लंघन किये बिना भी मृत्युका वरण कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

जे० येसुथामेन महोदय
बैलमोंट
कुनूर, नीलगिरि

अंग्रेजी (एस० एन० १३५७९) की फोटो-नकलसे।

४७८. पत्र : ई० सी० डेविकको

३१ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा पक्का इरादा था कि मैं दिसम्बरमें फेडरेशनके सम्मेलनके दौरान आप सबके साथ समय बितानेका सुख प्राप्त करूँ।[1] लेकिन मैं देख रहा हूँ कि वैसा नहीं हो पायेगा। मैं अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ, इसलिए मैंने जमनालालजी का यह आमन्त्रण स्वीकार कर लिया है कि मैं कांग्रेस-सप्ताहके दौरान कलकत्ता जानेसे पहले पूरे एक महीने वर्धामें रहकर आराम करूँ। आप मुझे क्षमा करनेकी कृपा करें।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड ई० सी० डेविक
५, रसेल स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १३५८०) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : ई० सी० डेविकको", २१-९-१९२८।

४७९. पत्र : एन० के० एस० नौलखाको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
३१ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

शंकरलालजी ने आपका पत्र मेरे पास भेज दिया है। मुझे बिलकुल ठीक याद है कि लगभग तीन महीने पहले मैंने आपके पत्रका उत्तर दिया था और उसमें लिखा था कि आपके लिए सबसे अच्छा यही रहेगा कि आप अपनी योजनाके सिलसिलेमें सतीश बाबूसे मिलें, क्योंकि मेरी समझमें नहीं आता कि मैं यहाँसे आपका मार्गदर्शन कैसे कर पाऊँगा। अगर आपने किसी दूसरे पत्रका हवाला दिया हो तो कृपया मुझे लिखिए। मैं तुरन्त उसका उत्तर दूँगा।

आशा है, आपका सब-कुछ ठीक-ठीक चल रहा होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० के० एस० नौलखा
नौलखा भवन, अजीमगंज (बंगाल)

अंग्रेजी (एस० एन० १३५८१) की माइक्रोफिल्मसे।

४८०. पत्र : जैकब सॉरिसको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
३१ अक्टूबर, १९२८

प्रिय मित्र,

मुझे मालूम हुआ है कि मेरी लंका-यात्राके दौरान आपने कुछ चन्दा जमा किया था। वह राशि आपने अहमदाबादकी बजाय इलाहाबाद भेज दी और इलाहाबाद कार्यालयने वह आपको लौटा दी, जो तबसे आपके ही पास पड़ी हुई है। वह राशि चूँकि खादीके लिए जमा की गई थी, इसलिए आशा है कि आप उसे किसी और काममें न लगाकर मेरे पास खादीपर खर्च करनेके लिए भेज देंगे।

हृदयसे आपका,

श्री जैकब सॉरिस
मेसर्स पॉल सॉरिस ऐंड कम्पनी
बदुल्ला (लंका)

अंग्रेजी (एस० एन० १३५८२) की माइक्रोफिल्मसे।

परिशिष्टांश

१. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

३ जुलाई, १९२८

प्रिय जवाहर,

तुम्हारा पत्र मिला। हाँ, तुम्हारे पिताजीने कमला और इन्दुका सब समाचार मुझे लिखा था।

साफ दिख रहा है कि अभी समुचित समझौतेके लायक ठीक वातावरण मौजूद नही है। खड़गपुरकी विभीषिका तो देखो। जमकर कुछ और टक्करें हो जानेके बाद ही सम्बन्धित पक्षोंके लोगोंको होश आयेगा।

मैं चाहता हूँ कि तुम अकेलापन महसूस न करो। हमको अब समझ लेना चाहिए कि कार्यकर्त्ताओंके सामने जो काम है वह उतना आसान नहीं है जितना कि हम कभी उसे समझते थे। मैं चाहूँगा कि तुम धैर्य बराबर बनाये रखो और कोई ऐसा काम हाथमें ले लो जिसमें तुम अपने-आपको जीवन्त आस्थाके साथ पूरी तरहसे लगाये रख सको। 'गीता' को पथ-प्रदर्शिका मानकर चलो।

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू कागजात, १९२८।

सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

२९ जुलाई, १९२८

प्रिय जवाहरलाल,

पूरी आशा है कि कमला और इन्दु खूब स्वस्थ-सानन्द होंगी। तुम्हारा तार मिल गया था और पत्र भी। अध्यक्ष-पदका प्रकरण अब समाप्त हो चुका है।

मैं तुमसे भुवरजीके बारेमें सलाह लेनेके लिए यह पत्र लिख रहा हूँ। वह आश्रमसे बीस रुपये प्रति माह चाहता है और इस सिलसिलेमें सौ रुपये पेशगी। तुम मुझे बतलाओ कि उसका काम कैसा है और क्या तुम उससे सन्तुष्ट हो। अ० भा० च० सं० उसको न तो कुछ देगा और न दे ही सकता है। क्या तुम सलाह दोगे कि आश्रम उसकी आवश्यकताएँ पूरी करे? वह किस किस्मका काम कर रहा है?

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू कागजात, १९२८।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

बारडोली रिपोर्ट

विशेषणों आदिसे रहित यह रिपोर्ट अधिकसे-अधिक तर्कपूर्ण और नपी-तुली हुई है। इसमें सदस्योंने चार प्रश्नोंपर विचार किया है: "चूँकि लगान-वृद्धि जमींदारों द्वारा अपनी रैयतसे माँगी जानेवाली लगान-दरोंपर आधारित है, इसलिए यह तय करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि रैयत द्वारा अदा किये गये लगानसे सम्बन्धित तालिका क्या इतनी सावधानीसे तैयार की गई है कि उसमें सिर्फ आर्थिक दृष्टिसे उपयुक्त लगान दरें ही दर्ज की गई हों। यदि यह तालिका बहुत दोषपूर्ण पाई जाये तो इसके आधारपर निकाले गये सभी निष्कर्ष बेमतलब ही माने जाने चाहिए। फिर, यह बात भी उचित जान पड़ती है कि प्रतियोगी लगान-दरों (कम्पिटीटिव रेंट्स) को बन्दोबस्तकी नीतिके आधारके रूपमें स्वीकार करनेके पूर्व ठीक-ठीक पता लगा लेना चाहिए कि जोती-बोई जानेवाली जमीनका कितना हिस्सा नकद लगान देनेवाली रैयतके हाथमें है। तीसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि पुराने बन्दोबस्तके अधीन लगानकी जो दरें चलती रही हैं, उनकी जाँच-पड़ताल करते समय क्या असामान्य अवधियोंको मुजरा कर दिया गया है। और अन्तमें हमें इस बातपर विचार करना है कि भू-राजस्व संहिता और बन्दोबस्ती नियमावलीके अनुसार यह बात कहाँतक उचित है। नई लगान दरें तय करनेके लिए लगभग पूर्ण रूपसे जमाबन्दी मूल्यपर निर्भर रहा जाये।" और संहिता तथा बन्दोबस्ती नियमावलीके अध्ययन और अनेक गाँवोंमें सम्बन्धित लोगोंसे की गई पूछताछ और जाँच-पड़तालके बाद वे इस निष्कर्षपर पहुँचे:

१. तालिका बहुत ही दोषपूर्ण थी, क्योंकि रेहनके सौदों, या पूरी तरह वसूल न किये गये लगानों, अथवा सशर्त बिक्रियोंको उसमें से अलग नहीं रखा गया था, और ऐसे लगानोंको मिनहा नहीं किया गया था जो भू-राजस्व संहिताके खण्ड १०७ के अधीन जोतदारके खर्चेपर जमीनमें किये गये सुधारोंके कारण वसूल किया गया था।

२. नकद लगानवाला क्षेत्र कुल क्षेत्रका लगभग २० प्रतिशत माना जा सकता है, और यह देखते हुए कि १८९५ में "९४ प्रतिशत जोतदार और भूस्वामी जमीन खुद जोतते हैं," रैयत द्वारा जोती जानेवाली जमीनका अनुपात ३० प्रतिशत मानना भी आज इतना ज्यादा लगता है कि आश्चर्य होता है।

३. खुद राजस्व सदस्यके वक्तव्यके अनुसार इस तालिकामें १९१८-१९ और १९२४-२५ की खुशहालीकी अवधियोंको शामिल नहीं करना चाहिए था।

४. बन्दोबस्त आयुक्तने अपने "एक-मात्र सच्चे मार्ग-दर्शक" के रूपमें लगान-सम्बन्धी अपर्याप्त और बिना जँचे आँकड़ोंपर निर्भर किया। वास्तवमें उन्हें यह जाननेकी

फिक्र नहीं थी कि अप्रत्यक्ष जाँचके परिणाम सही हैं या नहीं, बल्कि वे तो खेतीके खर्चमें हुई वृद्धिपर विचार करने और उसे मिनहा करनेसे बचना चाहते थे। उन आँकड़ोंका उपयोग उन्होंने (बन्दोबस्ती नियमावलीके शब्दोंमें) "लगान-वृद्धिको बहुत ऊँचा जानेसे रोकनेके लिए" नहीं बल्कि लगान-दरमें वृद्धिके लिए किया।

जाँचके उपर्युक्त परिणामोंके आधारपर श्रीयुत कुँजरू, श्रीयुत वझे और श्रीयुत ठक्कर इस निष्कर्षपर पहुँचे कि "फिरसे जाँच करानेकी माँग पूर्णतः उचित है," और "हालकी इस घोषणासे कि वीरमगाम ताल्लुकेके नये बन्दोबस्तपर फिरसे विचार किया जायेगा, बारडोली ताल्लुकेके बन्दोबस्तपर पुनर्विचारकी माँग इतनी उचित हो जाती है कि इससे इनकार ही नहीं किया जा सकता।"

श्रीयुत वझेने एक और वक्तव्य जारी किया, जिसमें उन्होंने इस बातपर विशेष जोर दिया कि "बारडोलीका वर्तमान आन्दोलन विशुद्ध रूपसे आर्थिक आन्दोलन है; यह सामूहिक सविनय अवज्ञाकी योजनाका अंग नहीं है...। सारे मामलेको देखने-परखनेके बाद मुझे विश्वास हो गया है कि यह आन्दोलन चलानेमें इसके नेताओंका उद्देश्य केवल इतना ही है कि वे पूरी कोशिश करके उस निर्णयको रद करवायें जिसे वे सचमुच बारडोलीके किसानोंके साथ किया गया निष्ठुरतापूर्ण अन्याय मानते हैं। इसपर भी यदि सरकार इस आन्दोलनको वैसा कोई बृहत्तर राजनीतिक महत्त्व देती है जैसा महत्त्व इसका है ही नहीं तो यह उसकी नासमझी भी होगी और अन्याय भी।"

यह रिपोर्ट सभी राजनीतिक विचारधाराओंके नेताओंको जँची; इस सम्बन्धमें जिन कुछ-एक भारतीय अखबारोंने ढुलमुल रवैया अपना रखा था, इस रिपोर्टके परिणामस्वरूप उनकी सहानुभूति भी निश्चित रूपसे सत्याग्रहियोंकी ओर हो गई है; और उदारदल-सहित अन्य सभी हलकोंमें जनताकी माँगों और उसको जो न्यूनतम चीज मिलनी चाहिए थी उसके पक्षमें लोकमत तैयार करनेमें सबसे बड़ा हाथ इस रिपोर्टका ही था।

[अंग्रेजीसे]

द स्टोरी ऑफ बारडोली

परिशिष्ट २

बारडोली समझौता

समझौतेके दस्तावेज

१

समझौतेकी शर्तोंके सम्बन्धमें सूरतके विधान परिषद्के सदस्यों और सरकारके बीच हुआ पत्र-व्यवहार

विधान परिषद्में बारडोली ताल्लुके और सूरत जिलेका प्रतिनिधित्व करनेवाले सदस्योंने माननीय राजस्व सदस्य (रेवेन्यू मेम्बर)को निम्नलिखित पत्र भेजा :

पूना
६ अगस्त, १९२८

सेवामें
माननीय राजस्व सदस्य

महोदय,

आपके ३ अगस्त, १९२८ के पत्रके उत्तरमें हमें यह कह पानेपर खुशी हो रही है कि हम सरकारको यह सूचित करनेकी स्थितिमें हैं कि परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयने २३ जुलाईको विधान परिषद्में अपने उद्घाटन भाषणमें जो शर्तें रखी थीं उन्हें पूरा किया जायेगा।

हृदयसे आपके,

ए० एम० के० देहलवी
भासाहेब (केरवाडाके ठाकुर)
दाउदखाँ सालेभाई तैयबजी
जे० बी० देसाई
बी० आर० नाइक
एच० बी० शिवदासानी
एम० के० दीक्षित

२

जाँचकी घोषणा

इसके बाद सरकारने निम्नलिखित जाँचकी घोषणा की :

जाँचका काम राजस्व अधिकारी और न्यायिक अधिकारी (ज्यूडिशियल आफिसर) को सौंपा जायेगा। जहाँ दोनोंमें मतभेद होगा, वहाँ न्यायिक अधिकारीका निर्णय अन्तिम माना जायेगा। जाँचके विषय निम्न प्रकार होंगे :

बारडोली और वालोडकी जनताकी इस शिकायतकी जाँच करना और रिपोर्ट देना कि

(क) हालमें की गई लगान-वृद्धि भू-राजस्व संहिताकी शर्तोंके अनुसार उचित नहीं है;

(ख) जनताको सुलभ रिपोर्टोंमें ऐसे पर्याप्त तथ्य नहीं हैं जिनके आधारपर लगान-वृद्धिका औचित्य सिद्ध हो सके और कुछ तथ्य गलत भी हैं; और यदि जनताकी शिकायत सही पाई जाये तो यह तय करना कि अगर पुरानी जमाबन्दीमें कोई घटा-बढ़ी करनी है तो कितनी करनी है।

जाँच पूरी, खुली और स्वतन्त्र होनी है, इसलिए जनताको कानूनी सलाहकारों-सहित अपने अन्य प्रतिनिधियोंकी सहायतासे गवाही देने और गवाहीकी जाँच करवाने-की छूट होगी।

३

विधान परिषद्में बारडोली ताल्लुके और सूरत जिलेका प्रतिनिधित्व करनेवाले सदस्यों तथा माननीय राजस्व सदस्यके बीच आगे निम्नलिखित पत्र-व्यवहार हुआ :

पूना
७ अगस्त, १९२८

सेवामें
माननीय राजस्व सदस्य

महोदय,

अब बारडोली-समस्याके असली मुद्देका सन्तोषजनक निबटारा तो हो ही गया है, इसलिए हमें यह आशा और विश्वास है कि सरकार

(क) सभी सत्याग्रही कैदियोंको छोड़ देगी,
(ख) जब्त की गई सभी जमीनें वापस कर देगी,
(ग) त्यागपत्र देनेवाले सभी तलाटियों और पटेलोंको बहाल कर लेगी।

हृदयसे आपके,
ए० एम० के० देहलवी
दाउदखाँ सालेभाई तैयबजी
मासाहेब (केरवाडाके ठाकुर)
भीमभाई आर० नाइक
एच० बी० शिवदासानी
जे० बी० देसाई
एम० के० दीक्षित

४

माननीय राजस्व सदस्यने ७ अगस्त, १९२८को विधान परिषदके उपर्युक्त सदस्योंको निम्नलिखित पत्र भेजा :

सज्जनो,

आपके इसी ७ तारीखके पत्रके सम्बन्धमें सूचित कर रहा हूँ कि अपने विशेषाधिकारका प्रयोग करते हुए सरकार सभी सत्याग्रही कैदियोंको रिहा करने जा रही है और आपके दूसरे अनुरोधको पूरा करनेके सम्बन्धमें भी वह आदेश जारी करेगी।

तलाटी और पटेल यदि कायदेके मुताबिक अर्जियाँ देंगे तो उन्हें माफ कर दिया जायेगा।

हृदयसे आपका,
जे० एल० रियू

ध्यातव्य : जिन जमीनोंको सरकारने, रिपोर्टके ८६ वें अनुच्छेदमें बताये अनुसार, बेच दिया था और जिन्हें आर० बी० नाइकके नाम हस्तान्तरित कर दिया गया था उनकी कीमत लगभग ११,००० रुपये या लगानकी दूनी थी। इस तरह सरकारको जो अतिरिक्त रकम मिली, उसे भी सरकारने सम्बन्धित काश्तकारोंको वापस कर दिया और इस प्रकार उन्हें अपनी जेबसे कुछ भी गँवाये बिना अपनी-अपनी जमीनें वापस मिल गईं।

[अंग्रेजीसे]
द स्टोरी ऑफ बारडोली

परिशिष्ट ३

दक्षिण आफ्रिकी माफी

[१. प्रार्थनापत्रका प्रपत्र]

(नाम) ———————————— भारतमें (नाम) ————————— से पहचाने जानेवाले (संघमें स्थानीय पता) ——————— के (पेशा) ———————

१. प्रार्थीके पंजीयन प्रमाणपत्र, अधिवास प्रमाणपत्र अथवा अन्य प्रमाणपत्रकी संख्या ——————————————————

२. प्रार्थीका जन्म-स्थान/ग्राम तथा देश ——————————

३. प्रार्थीके पिताका नाम ——————————————

४. संघमें प्रार्थीके प्रथम प्रवेशकी तिथि एवं स्थान ——————————

५. पत्नी हो तो उसका नाम तथा मौजूदा विवरण——————————

६. बच्चे (यदि हों) ——————————————————

माता	बच्चेका नाम	पुरुष या स्त्री	जन्म-स्थान	आयु	मौजूदा विवरण
———	————	————	————	——	————

मैं, ————————————विधिवत् आगाह कर दिये जानेके बाद, इसके द्वारा पूरी गम्भीरता और सत्यनिष्ठाके साथ घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त प्रश्न

मुझे———————————————में भली-भाँति समझा दिये गये हैं। मैं इसके द्वारा घोषणा करता हूँ कि इन प्रश्नोंको मैंने समझ लिया है और इनके उत्तर बिलकुल सही-सही दिये हैं।

प्रार्थीके हस्ताक्षर (रोमन लिपिमें या अँगूठा निशानी)

————————————————

पूरा पता

मैं ———————————————————————ने समझाया।

हस्ताक्षर ———————————————————————

मेरे समक्ष ——————— में आज दिनांक ———— को घोषित किया गया।

तिथि————————वर्ष————————को घोषित किया गया।

प्रार्थीकी अँगूठा निशानी ————————————

बायें ———————————— दायें ————————

————————————————————————

मजिस्ट्रेट या प्रवास-अधिकारी जो शपथ आयुक्त है

[२. पत्र-व्यवहार][1]

पी० के० देसाईको सी० एस० स्मिटका पत्र

दक्षिण आफ्रिकी संघ
गृह-विभाग
केप टाउन
२४ फरवरी, १९२८

महोदय

मैं आपके दिनांक ६ जनवरी, १९२८ के पत्रकी प्राप्ति-सूचना देनेका श्रेय ले रहा हूँ। आपने उस पत्रमें माननीय गृह-मन्त्रीको दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस द्वारा जनवरी, १९२८ में किम्बरलेमें हुए आठवें अधिवेशनके दौरान पारित किया गया निम्नलिखित प्रस्ताव भेजा है:

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजके प्रतिनिधिकी हैसियतसे, सम्मेलनमें समवेत 'दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस' का यह आठवाँ अधिवेशन अपनी और अपनी सम्बद्ध संस्थाओं — अर्थात् ट्रान्सवालके भारतीय समाजकी प्रतिनिधि की हैसियतसे, 'ट्रान्सवाल भारतीय कांग्रेस', केप प्रान्तके भारतीय समाजकी प्रतिनिधिकी हैसियतसे, 'केप ब्रिटिश भारतीय परिषद', और नेटालके भारतीय समाजकी प्रतिनिधिकी हैसियतसे 'नेटाल भारतीय कांग्रेस' — की ओरसे, इसके

१. इसके बादका अंश १६-८-१९२८ के *यंग इंडिया*से लिया गया है।

द्वारा संघ सरकारको आश्वस्त करता है कि वह भारतीय और संघीय सरकारोंके बीच केप टाउनमें हुए समझौतेका समर्थन करेगा और आम तौरपर तथा समझौतेमें निहित भावनाके अनुरूप उसका पालन करेगा और यह अधिवेशन सदाकी भाँति फिर घोषणा करता है कि वह संघमें भारतीयोंका अवैध प्रवास किसी भी रूपमें सहन नहीं करेगा।

इस आश्वासनको देखते हुए और संघमें भारत सरकारके प्रथम एजेंटके रूपमें परम सम्माननीय वी० एस० एस० शास्त्री, प्रिवी कौंसलरकी नियुक्तिके अवसर पर अपनी अनुकम्पा प्रदर्शित करनेके लिए, संघ सरकारने यह निर्णय करनेकी कृपा की है कि वह १९२७ के अधिनियम ३७ के खण्ड ५ द्वारा संशोधित रूपमें १९१३ के अधिनियम २२ के खण्ड १० की व्यवस्थाओंको उस भारतीय पर पूरा-पूरा लागू नहीं करेगी जो गृह-मन्त्रीको इस बातसे सन्तुष्ट कर देगा कि वह आरेंज फ्री स्टेटके अतिरिक्त संघके अन्य किसी प्रान्तमें ५ जुलाई, १९२४ से पहले प्रविष्ट हुआ था; किन्तु यह छूट निम्न व्यवस्थाओंके अधीन दी जायेगी :

(क) संघमें अवैध रूपसे प्रवेश कर चुकनेवाले प्रत्येक भारतीयको स्वयं ही या दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस या उससे सम्बद्ध किसी संस्थाके जरिये एक प्रार्थनापत्र देना चाहिए, जो ट्रान्सवालमें प्रिटोरिया-स्थित प्रवास तथा एशियाई कार्य-आयोगको और केप तथा नेटाल प्रान्तोंमें यथास्थिति केप टाउन तथा डर्बन-स्थित मुख्य प्रवास-अधिकारियोंको दिया जाना चाहिए और वह इन अधिकारियों द्वारा माँगा गया सारा विवरण प्रस्तुत करेगा। ऐसा प्रार्थनापत्र उल्लिखित अधिकारियोंके पास १९२८ की पहली अक्टूबरको या इससे पहले पहुँच जाना चाहिए। जिन भारतीयोंके पास संघमें या संघके किसी प्रान्तमें प्रवेश करने, निवास करने या बने रहनेका अधिकार देनेवाले ऐसे पंजीयन प्रमाणपत्र या अधिवास प्रमाणपत्र या अन्य दस्तावेज हों जो उन्होंने स्वयं या उनकी ओरसे पेश किये गये झूठे विवरणोंके आधार पर प्राप्त किये हों, उनको यहाँ पैरा (ख) में उल्लिखित संरक्षण प्रमाणपत्र या दस्तावेजोंको अपने पास रखनेके प्राधिकरणके लिए प्रार्थनापत्र देना चाहिए।

(ख) इस बातसे सन्तुष्ट हो जाने पर कि प्रार्थी इस रियायतकी शर्तें पूरी करता है, मन्त्री आदेश देगा कि प्रार्थीको या तो विहित रूपमें संरक्षण प्रमाणपत्र दे दिया जाये या उसे अवैध रूपसे प्राप्त किये दस्तावेज अपने पास रखनेके लिए प्राधिकृत कर दिया जाये। इस रियायतकी शर्तें पूरी न करनेवाले किसी भी व्यक्तिका प्रार्थनापत्र स्वीकार नहीं किया जायेगा।

(ग) संरक्षण प्रमाणपत्र या पैरा (ख) के अन्तर्गत अपने पास रखनेके लिए प्राधिकृत दस्तावेज जिस भारतीयके पास होंगे उसके वे सभी अधिकार संरक्षित रहेंगे जिनका उपभोग वह १९२७ के अधिनियम ३७ प्रभावी होनेके दिन अर्थात् ५ जुलाई, १९२७ को कर रहा था और ऐसे व्यक्तिके बारेमें मान लिया जायेगा कि वह १९१३ के अधिनियम संख्या २२ के खण्ड २५ की शर्तोंके मुताबिक ही तत्सम्बन्धी प्रान्तमें प्रविष्ट हुआ था, परन्तु यदि उस समय तक वह अपनी पत्नी तथा/या बच्चोंको संघमें नही

ले आया होगा तो ऐसी पत्नी तथा/या बच्चोंको संघमें प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा।

(घ) संघमें या उसके किसी प्रान्तमें अवैध रूपसे प्रविष्ट और १ नवम्बर, १९२८ तक भी संरक्षण प्रमाणपत्र या उपर्युक्त पैरा (ख)की शर्तोंके मुताबिक दस्तावेज अपने पास रखनेका प्राधिकरण प्राप्त न कर लेनेवाले भारतीय पर उसके प्रवेशकी तिथिका विचार किये बिना, विधि-सम्मत कार्रवाई की जायेगी।

(ङ) ५ जुलाई, १९२४ से पहले अवैध रूपसे प्रविष्ट और इस तिथिके पश्चात् निष्कासन-योग्य अपराधके लिए दण्डित किसी भी भारतीयके मामलेमें प्रवास विधिकी व्यवस्थाओंको लागू करनेका मन्त्रीका अपना अधिकार सुरक्षित रहेगा।

आपको अधिकार दिया जाता है कि यदि आप चाहें तो इस पत्रको प्रकाशित कर सकते हैं।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,
सी० एस० शिम्ट
गृह मन्त्रीका सचिव

पी० के० देसाई महोदय
अवैतनिक महामन्त्री
दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस
पो० आ० बाक्स ५३३९, जोहानिसबर्ग

डी० एफ० मलानको वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीका पत्र

माउन्ट नेलसन होटल
केप टाउन
१४ मई, १९२८

प्रिय डॉ० मलान,

परसों आपसे अपनी मुलाकातके दौरान मैंने ट्रान्सवाल भारतीय समाजकी इस उत्कट इच्छाकी ओर आपका ध्यान दिलाया था कि 'माफी योजना'को लागू करनेमें १९१४को सीमारेखा मानना चाहिए। मुझे इस विचारको आपके समक्ष पुनः प्रस्तुत करने और आपको यह स्मरण दिलानेकी अनुमति दीजिए कि अन्य लोगोंके अतिरिक्त श्री गांधी और श्री पैट्रिक डंकन-जैसे दो व्यक्ति भी इसके समर्थक हैं।

साथ ही, मेरे देशवासी तीन पूरक मुद्दोंके बारेमें आश्वस्त होना चाहते हैं। यदि आपको असुविधाजनक न लगे तो मुझे भरोसा है कि आप अपने उत्तरमें मुझे यह कहनेकी सामर्थ्य दे देंगे कि आपने मुझे ये आश्वासन देनेका अधिकार दे दिया है:

१. जाली या अवैध प्रवेशके लिए पहले कभी माफी पा चुकनेवाले किसी भी भारतीयको माफीके लिए इस अवसर पर प्रार्थनापत्र देनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। अपने परिवारको लानेका उसका अधिकार किसी भी तरह खतरेमें नहीं पड़ेगा।

२. अब माफी पानेवाले पुरुषोंके नाबालिग पुत्रोंको साधारण तौर पर पंजीयन प्रमाणपत्र हासिल करनेकी अनुमति दी जायेगी।

३. यदि भविष्यमें कभी संरक्षण प्रमाणपत्र विधिकी दृष्टिसे त्रुटिपूर्ण पाये जायें या उन्हें धारण करनेवाले व्यक्तियोंके अधिकारोंका संरक्षण करनेमें अपर्याप्त समझे जायें, तो आप या आपके उत्तराधिकारी उनको पूरी तरह कारगर बनानेके लिए यथास्थिति वैधानिक या अन्य कोई आवश्यक कार्रवाई करेंगे।

निवेदन है कि अपना उत्तर देते समय आप मेरी भाषाकी शिथिलता पर न जायें बल्कि मेरे अनुरोधके सार-तत्त्व पर ही अधिक ध्यान दें।

हृदयसे आपका,
वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री

माननीय डॉ० डी० एफ० मलान, एम० एल० ए०
गृह मन्त्री, केप टाउन

वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको डी० एफ० मलानका पत्र

दक्षिण आफ्रिका संघ, गृहविभाग
केप टाउन
१६ मई, १९२८

प्रिय श्री शास्त्री,

'माफी योजना'के सम्बन्धमें इसी महीनेकी १४ तारीखके आपके पत्रके संदर्भमें आपके द्वारा उठाये मुद्दों पर मैंने ध्यानपूर्वक विचार कर लिया है और आपको निम्नलिखित बातें सूचित कर रहा हूँ:

१. १९१४ सीमा-रेखा: खेद है कि मैं भारतीय समाजकी इस इच्छाका पालन करनेमें असमर्थ हूँ। स्मट्स-गांधी समझौतेमें ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका यह अर्थ लगाया जा सके कि समझौता होनेकी तिथि तकके सभी अवैध और जाली प्रवेश-कर्त्ताओंको माफी दे दी जायेगी; और प्रस्तावित "१९१४ सीमा-रेखा"का कोई भी औचित्य नहीं है।

२. पहले की माफियाँ: मैं मानता हूँ कि पहलेकी किसी भी माफी योजनाके अन्तर्गत माफी पाये अवैध या जाली प्रवेशकर्त्ता किसी भी भारतीयको नई योजनाके अन्तर्गत माफीके लिए फिरसे प्रार्थनापत्र देनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी, बशर्ते कि उस माफीकी साक्षी देनेवाले दस्तावेजका वही उचित तथा वास्तविक धारणकर्त्ता हो।

३. माफीशुदा व्यक्तियोंके नाबालिग पुत्रोंका पंजीयन: जिन नाबालिग पुत्रोंको ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेकी अनुमति दी जा चुकी है, उनको साधारण तौर पर पंजी-यन प्रमाणपत्र प्राप्त करनेकी अनुमति दे दी जायेगी।

४. संशोधन विधान—मेरी राय है कि 'माफी अनुमति-पत्रके' प्रस्तावित रूपके आधार पर ही उसे धारण करनेवालों के अधिकारोंको 'माफी योजना' की शर्तों पर संरक्षण मिल जायेगा, लेकिन यदि धारणकर्त्ताके अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिए

अनुमति-पत्रको कभी अपर्याप्त माना जाये, तो मैं उस स्थितिमें अनुमति-पत्रको कारगर बनानेके लिए संसदमें संशोधन-विधान प्रस्तुत करनेके लिए बिलकुल तैयार हूँ।

हृदयसे आपका,
डी० एफ० मलान

परम सम्माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री
भारत सरकारके एजेंट, प्रिटोरिया

[३. माफी अनुमतिपत्रका प्रपत्र]

दक्षिण आफ्रिका संघ, प्रवास तथा एशियाई कार्य विभाग

१९२७ के अधिनियम संख्या ३७ द्वारा संशोधित
१९१३ का प्रवासी विनियम अधिनियम संख्या २२

यहाँ नीचे दी गई शर्तों तथा अपेक्षाओंके अधीन ———————— प्रान्तमें ——— का अवैध प्रवेश माफ किया जाता है और इसको कथित प्रान्तमें बने रहनेकी अनुमति दी जाती है।

शर्तें तथा अपेक्षाएँ

यह अनुमति-पत्र नीचे दी गई शर्तों तथा अपेक्षाओं और १९२७ के अधिनियम संख्या ३७ द्वारा संशोधित १९१३ के प्रवासी विनियमन अधिनियम संख्या २२ की व्यवस्थाओं तथा उसके अन्तर्गत बने विनियमोंके अधीन जारी किया जा रहा है।

(क) यह अनुमति-पत्र मन्त्री द्वारा रद किये जाने तक वैध रहेगा।

(ख) यह अनुमति-पत्र इसे धारण करनेवाले व्यक्तिके वे सभी अधिकार तथा विशेषाधिकार सुरक्षित करता है जिनका उपभोग वह १९२७ के अधिनियम ३७ के प्रभावी होनेकी तिथि, अर्थात् ५ जुलाई, १९२७ को कर रहा था और ऐसे व्यक्तिके बारेमें मान लिया जायेगा कि वह ——————— प्रान्तमें १९१३ के अधिनियम २२ के खण्ड २५ की शर्तोंके मुताबिक ही प्रविष्ट हुआ था, सिवाय इस बातके कि उसको कथित अधिनियमके खण्ड ५ (च) और (छ) द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा विशेषाधिकारोंका आग्रह करनेकी अनुमति नहीं दी जायेगी, जिसका अर्थ है कि यदि उसकी पत्नी तथा/या बच्चोंको इस तिथि तक प्रवेश नहीं मिला है तो उसे बादमें उनमें से किसी भी व्यक्तिको लानेकी अनुमति नहीं दी जायेगी।

(ग) यह अनुमति-पत्र इसे धारण करनेवाले व्यक्तिको कोई भी पंजीयन प्रमाण-पत्र, अधिवास प्रमाणपत्र या संघमें या उसके किसी भी प्रान्तमें प्रवेश करने, निवास करने या बने रहनेके लिए प्राधिकृत करनेवाले अन्य दस्तावेजोंको अपने पास रखनेका अधिकार देता है; परन्तु यदि मन्त्री इस अनुमति-पत्रको रद कर दे तो ऐसे दस्तावेज या दस्तावेजोंपर १९२७ के अधिनियम ३७ के खण्ड ५ द्वारा संशोधित १९१३ के अधिनियम २२ के खण्ड १० की व्यवस्थाओंके अन्तर्गत विचार किया जायेगा। इस पैराग्राफमें उल्लिखित दस्तावेजोंका खुलासा नीचे दिया जा रहा है, अर्थात्:[१]

१. साधन-सूत्रमें नहीं दिया गया है।

(घ) मन्त्री वचन देता है कि यह दस्तावेज रद नहीं किया जायेगा बशर्ते कि इसको धारण करनेवाला व्यक्ति ५ जुलाई, १९२४ के पश्चात् ऐसे अपराधके लिए दण्डित न हुआ हो जिसका स्पष्ट निर्देश १९२७ के अधिनियम ३७ द्वारा संशोधित १९१३के अधिनियम २२ के खण्ड २२ में किया गया है। उस स्थितिमें धारणकर्त्ताके मामलेमें १९२७के अधिनियम ३७के खण्ड ५ द्वारा संशोधित १९१३के अधिनियम २२ के खण्ड १०की शर्तोंके अनुसार आगे कार्रवाई की जायेगी।

————————————
प्रवास तथा एशियाई कार्य आयुक्त

(तिथिकी मुहर)

मैं, ———————————————— उपर्युक्त शर्तोंसे सहमत हूँ।

धारणकर्त्ताके हस्ताक्षर ————————————————

गवाह ————————————————

स्थान ———————————————— तिथि ————————

इस अनुमति-पत्रकी शर्तें मैंने धारणकर्त्ताको ———————— में समझा दी है/पढ़कर सुना दी हैं।

समझानेवालेके हस्ताक्षर ————————————————

बायें अँगूठेकी निशानी ———————————— दायें अँगूठेकी निशानी ————————

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-८-१९२८ और १६-८-१९२८

परिशिष्ट ४

सच्ची गोरक्षा[1]

गोरक्षाका सवाल बड़ा ही पेचीदा है। स्वाभाविक ही है कि अन्ध श्रद्धालु, जीवदयावाले और अर्थशास्त्री अपनी-अपनी दृष्टिके मुताबिक उसका अलग-अलग ढंगसे विचार करते हैं। परन्तु गोरक्षाके जिस आदर्शकी हिन्दू धर्मने कल्पना की है, वह अन्ध श्रद्धालुकी कल्पनासे बिलकुल भिन्न है, और जीवदया तथा अर्थशास्त्रके दृष्टिकोणसे कहीं आगे है। . . . . हमारे आर्थिक जीवनमें जो स्थान गायका है, वही अरब लोगोंके जीवनमें ऊँट और घोड़ेका है। . . . फिर भी अरबस्तानमें ऊँट-संरक्षण या अश्व-संरक्षणका आदर्श कभी नहीं रखा गया। . . . . पश्चिममें भी गाय 'ऋद्धि-सिद्धिकी जननी' का पद उत्तरोत्तर प्राप्त करती जा रही है और दुग्धालयोंका एक बड़ा विशद शास्त्र बनता जा रहा है। फिर भी हमारे सामने गोरक्षाका जो आदर्श है, पश्चिमके लोगोंने उसे उस अर्थमें ग्रहण नहीं किया। हिन्दू धर्ममें कल्पित गोरक्षाका आदर्श पश्चिमके दुग्धालयके आदर्शसे सर्वथा भिन्न ही नहीं, बल्कि उससे कहीं ऊँचे स्तरका

१. यहाँ सम्बन्धित अंश ही दिये जा रहे हैं।

है। पश्चिमका आदर्श सिर्फ आर्थिक सिद्धान्तों – लाभालाभके विचार – पर रचा गया है; जब कि हिन्दू धर्मका आदर्श गोरक्षाके आर्थिक पहलूको पूरी तरह स्वीकार तो करता है, मगर जोर देता है गोरक्षाके आध्यात्मिक पहलू पर। हिन्दू धर्मकी गोरक्षाकी जड़में यह विचार है कि अपने तप और आत्मत्यागके द्वारा निर्दोष गायको बलिसे बचाया जाये। . . .

[कालिदासके 'रघुवंशमें' 'नंदिनी-वरप्रदान'की] कथा है कि सुविख्यात रघुवंशके राजा दिलीप वृद्धावस्था आ जाने पर भी कोई संतान न होनेके कारण अपने वशिष्ठ गुरुकी सलाह पूछने उनके आश्रममें जाते हैं। ऋषि राजाको याद दिलाते हैं कि एक बार तुझसे अनजानमें सुरभि कामधेनुका अपमान हुआ था, उसके कारण मिले हुए शापका तू फल भोग रहा है। यह शाप सुरभिकी पुत्री नन्दिनीकी सेवा करने और वनमें सब प्रकारके अनिष्टसे उसकी रक्षा करनेसे धुल सकता है। राजा उसके प्रायश्चित्तस्वरूप सेवा-परायण रहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं और नौकरोंको छुट्टी दे देते हैं। उस सेवाका वर्णन कवि इस तरह करते हैं:

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूय नैर्दशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः सतस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ।।

(राजा उसे मीठी घासके कौर खिलाते, उसका शरीर सहलाते, मच्छर वगैरा उड़ाते, वह जहाँ जाती, वहीं जाने देते। उसीकी गतिके अनुकूल बनकर, छायाकी तरह उसके साथ-साथ रहकर) राजा उसकी सेवा करने लगे। . . . . राजाकी तपश्चर्यामें इतनी शक्ति थी और उनका प्रेम इतना सर्वजयी था कि वन्य सृष्टि तक उससे प्रभावित हो गई और (अनेन सत्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने) इन रक्षा करनेवाले राजाने वनमें पैर रखा कि बलवान प्राणियोंने दुर्बल प्राणियोंको सताना तुरन्त छोड़ दिया। . . . इस प्रकार इक्कीस दिन बीत गये। फिर राजाके भक्ति-भावकी परीक्षा करनेके लिए मुनिकी होमधेनु हिमालयकी एक गुफामें चली गई। . . . राजा पर्वतकी शोभा देखनेमें डूबे हुए थे कि इतनेमें एक सिंहने आकर गाय पर हमला कर दिया। राजाको इसका पता नहीं चला। जब गायका आर्तनाद सुना, तब राजाकी नजर पीछेकी तरफ पड़ी। क्या देखते हैं कि लाल गाय पर पंजा रखकर केसरी खड़ा है। राजा लज्जित हुए। एक बाण निकालकर सिंह पर छोड़ने जा रहे थे कि उनका दाहिना हाथ वहींका-वहीं रह गया और उन्हें ऐसा लगा मानो किसीने मन्त्रसे उनका सारा बाहुबल हर लिया हो। . . . सिंह बोला: "महीपाल, यह वृथा श्रम क्यों करते हो? मैं साधारण सिंह नहीं, बल्कि महादेवका किंकर कुम्भोदर हूँ। शिवजी के पादस्पर्शसे पवित्र हुए मेरे शरीर पर अस्त्र नहीं चल सकते।" . . . . राजा दीन होकर जवाब देते हैं – "हे मृगेन्द्र, मैं चल-फिर भी नहीं सकता . . . किन्तु अग्निहोत्री गुरुकी होमधेनु – उनके धन – का अपनी आँखोंके सामने नाश होते हुए मुझसे देखा नहीं जाता, इसलिए तू मुझ पर कृपा करके मेरी देह ले, इससे अपनी भूख मिटा और महर्षिकी गायको छोड़ दे। . . ."

सिंह राजाका संकल्प बदलनेके लिए उसे कई तरहसे समझाता है:

भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि ।।

(तुम अगर भूतदयासे प्रेरित हुए हो, तो अपना शरीर देकर तुम एक ही गायको बचा सकोगे। परन्तु जीते रहे तो हे प्रजानाथ, तुम अपनी प्रजाको पिताकी भाँति सदा संकटोंसे बचा सकोगे।)

इस प्रकार सिंह मानता नहीं और गायकी दयार्द्र आँखें राजाका दयाभाव और सेवाभाव बढ़ाती जाती हैं। सिंहको राजा और समझाते हैं। अन्तमें वे एक सुन्दर दलील देते हैं:

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः।
ऐकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ।।

(तुझे ऐसा लगता हो कि मेरी हिंसा नहीं हो सकती, मुझ पर तुझे दया आती हो, तो किसलिए इस नश्वर शरीरपर दया करता है? मेरा जो यशःशरीर —अमर यशरूपी मेरा जो शरीर—है उस पर दया कर, और इस नश्वर देहको खाकर तू सन्तुष्ट हो। जो केवल नश्वर पिंड है, उसपर मुझे कोई आस्था या स्पृहा नहीं है।)

इस दलीलसे सिंह मात हो जाता है और कहता है "तथेति" (ऐसा ही हो)। इस तरह राजा सिंहकी क्षुधा-शान्तिके लिए उसके चरणों पर अपना शरीर मांसके एक लोथड़ेकी तरह अर्पित करते हैं। . . . . परन्तु कैसा आश्चर्य! सिंहकी भयावनी छलाँगके बदले राजा पर आकाशसे पुष्पवृष्टि होती है और एक मृदुल वाणी सुनाई देती है—'हे वत्स उठ!' राजा उठता है और देखता है तो सामने अपनी माता-जैसी वही गोमाता दूधकी धार छोड़ती हुई खड़ी है और सिंह अदृश्य हो चुका है।

राजाकी गुरुभक्ति, सेवा और दयासे प्रसन्न हुई गाय राजाको उसका माँगा हुआ वर देती है:

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते पुत्रवरं वृणीष्व।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम् ।।

(तेरी गुरुभक्ति और मेरे प्रति दिखाई तेरी दयासे मैं प्रसन्न हुई हूँ। हे पुत्र, तू वर माँग। ऐसा मत समझ कि मैं सिर्फ दूध ही देती हूँ, मैं कामधेनु हूँ। प्रसन्न हो जाऊँ तो जो चाहे दे सकती हूँ।)

यहाँ दिलीपको साक्षात् प्रेममूर्ति चित्रित किया गया है। गायको बचानेके लिए प्राणार्पण किया जाये, या करोड़ों गायोंके दानका पुण्य प्राप्त किया जाये, इस धर्म-संकटमें उन्हें अपना मार्ग चुनते देर नहीं लगी। निःशंक होकर वे प्राण देना पसन्द करते हैं और ऐसा करते हुए, अकल्पित रूपसे दैवी सत्त्वको प्रसन्न करते हैं। सत्यकी अपनी अविरत शोधसे उन्हें गोरक्षाका सच्चा—अहिंसा और पूर्ण प्रेमका—मार्ग मिलता है; और यह मार्ग स्वीकार करने पर उन्हें सारी ऋद्धि-सिद्धि मिल जाती हैं।

गायकी जिस सेवा और संरक्षणको हिन्दू धर्मने पवित्र कर्त्तव्य माना है, उस गायका अर्थ, उस नामका पशु ही नहीं समझना चाहिए। हमारे धर्म-ग्रंथोंमें दुःख-पीड़ित धरतीकी कल्पना भी गायके रूपमें ही की गई है। धरतीको ही गो नाम दिया गया है। जब-जब पृथ्वी रूपी गोमाता पापके भारसे त्रस्त होती है, तब-तब यह श्री विष्णुके आगे पुकार करनेके लिए दौड़ती है। इस गोमाताकी सेवाका अर्थ है — दुःखसे पीड़ित समस्त मानव-जातिकी सेवा; 'जो मेहनत करते, कष्ट झेलते हैं और थक गये हैं फिर भी जिन्हें आराम नहीं मिलता' ऐसे सब मानव-बन्धुओंकी सेवा — दरिद्रनारायणकी सेवा . . .।

दिलीपका यह मार्ग है — पूर्ण प्रेम, आत्म-त्याग और आत्म-शुद्धिका मार्ग। हिन्दू धर्मने गोसंरक्षणके इसी आध्यात्मिक आदर्शको ऊँचेसे-ऊँचा धर्म माना है और इसी संदर्भमें यह वर दिया गया है:

न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्।

(यह न मान लेना कि मैं केवल दूध ही देती हूँ; मैं कामधेनु हूँ, प्रसन्न हो जाऊँ तो जो चाहे दे सकती हूँ।)

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-९-१९२८

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी-साहित्य और तत्सम्बन्धी कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय, जिसमें गांधीजी के दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तक के भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'इंडियन रिव्यू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी मासिक।

'नवजीवन': गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'प्रजाबन्धु': अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया': गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद': सम्पादक — द० बा० कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'बापुना पत्रो — २ सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती): सम्पादक — मणिबहेन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुना पत्रो — ४: मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): सम्पादक — द० बा० कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापुना पत्रो — ६: गं० स्व० गंगाबहेनने' (गुजराती): सम्पादक — द० बा० कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापुना पत्रो — ७: श्री छगनलाल जोशीने' (गुजराती): सम्पादक — छगनलाल जोशी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६२।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती): मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'सेल्फ रेस्ट्रेंट वर्सेस सेल्फ इंडलजेन्स' (अंग्रेजी): नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४७।

'स्टोरी ऑफ बारडोली' (अंग्रेजी): महादेव देसाई, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ जुलाई से ३१ अक्टूबर, १९२८)

१ जुलाई : गांधीजी साबरमती आश्रम, अहमदाबादमें।

६ जुलाई : गांधीजी ने 'हिन्दू' की स्वर्णजयन्ती पर सन्देश भेजा।

१३ जुलाई : बारबरा बाउरकी इस प्रार्थना पर कि आप मेरी मृत माताको पुनरुज्जीवित कर दें, गांधीजी ने लिखा "मैं केवल एक सामान्य मर्त्य प्राणी हूँ . . . अन्य मानव-प्राणियोंकी ही तरह . . . . मुझमें कोई अलौकिक शक्ति नहीं है।"

१८ जुलाई : सूरत-परिषद् हुई, जिसमें बारडोलीके किसानोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे वल्लभभाई पटेल, अब्बास तैयबजी ने सरकारी तौरपर तथ्योंका अनुमान लगानेमें गलती होनेके आरोपकी जाँच करानेके लिए कुछ शर्तों पर बम्बईके गवर्नरसे बातचीत की।

१९ जुलाई : गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में प्रकाशित 'असहयोग या सविनय प्रतिरोध' लेखमें लिखा : "मेरा उद्देश्य तो स्वराज्य-प्राप्तिका लक्ष्य सामने रखकर चलने-वाले असहयोग और किसी शिकायतको दूर करनेके उद्देश्यसे किये गये वैसे सविनय प्रतिरोधका भेद स्पष्ट करना है जैसा कि बारडोलीमें चल रहा है।"

२० जुलाई : बारडोलीके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट।

२२ जुलाई : 'नवजीवन' में प्रकाशित लेख 'सरकारकी कुबुद्धि' में गांधीजी ने बारडोली समझौतेकी न्यूनतम शर्तो पर विचार किया।

२६ जुलाई : बारडोलीके सम्बन्धमें गवर्नरके भाषणके उत्तरमें गांधीजी द्वारा दिया गया वक्तव्य 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुआ।

२ अगस्त : गांधीजी बारडोली पहुँचे।

४ अगस्त : सरभोंणमें पटेलों, तलाटियों तथा सरभोंण इलाकेके २५ गाँवोंके प्रति-निधियोंके बीच भाषण दिया।

५ अगस्त : रायममें अनुशासनके बारेमें भाषण दिया।

६ अगस्त : गांधीजी ने पूनामें बारडोली-समझौते पर बम्बई सरकार व बारडोलीकी जनता, दोनोंको बधाई दी।

११ अगस्त : वालोडमें सत्याग्रह-शास्त्र पर भाषण दिया।

१२ अगस्त : बारडोलीमें स्वयंसेवकोंके बीच भाषण दिया।
बारडोली-विजयके उपलक्षमें मनाये गये समारोहके अवसर पर सूरतमें भाषण दिया।

१३ अगस्त : गांधीजी साबरमती पहुँचे।

१६ अगस्त : गांधीजी ने सर्वसम्मत नेहरू-रिपोर्टका स्वागत किया। अहमदाबादमें बारडोली-विजयके निहितार्थों पर भाषण दिया।

२० अगस्त : ब्राह्म समाजके शताब्दी-समारोहमें भाषण दिया।

२८ अगस्त : नेहरू-रिपोर्ट पर विचार करनेके लिए लखनऊमें सर्वदलीय सम्मेलन हुआ।

३० अगस्त : सर्वदलीय सम्मेलनने भारतमें औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करनेके पक्षमें नेहरू-समिति द्वारा तैयार की गई रिपोर्टका सर्वसम्मतिसे अनुमोदन किया।

७ सितम्बर : अहमदाबादमें गूँगों और बहरोंकी शालामें, गांधीजी ने भाषण दिया। मोतीलाल नेहरू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये।

१० सितम्बर : गांधीजी ने अहमदाबादमें टॉल्स्टॉयकी जन्म-शताब्दी पर भाषण दिया।

१ अक्टूबर : अहमदाबादमें एनी बेसेंटके जन्म-दिवस पर भाषण दिया।

६ अक्टूबर : डॉ० बेसेंटकी अध्यक्षतामें मद्रास-सर्वदलीय सम्मेलन हुआ।

११ अक्टूबर : गांधीजी ने 'यंग इंडिया'में प्रकाशित लेख 'ईश्वर है'में लिखा :

"मुझे एक आभास-सा तो अवश्य होता है कि इस सतत परिवर्तनशील और नाशवान विश्वके पीछे कोई ऐसी चेतन शक्ति है, जो स्वयं अपरिवर्तनशील है, जो कण-कणको एक सूत्रमें बाँधे है, जो सृजन, संहार और नव-सृजन करती रहती है। वह सर्वज्ञ शक्ति ही ईश्वर है। और चूँकि अपने मात्र इन्द्रिय-ज्ञानके बलपर मैं जितनी भी वस्तुओंकी प्रतीति कर पाता हूँ, वे सभी नाशवान है, अनित्य हैं, इसलिए एक ईश्वर ही अनश्वर और नित्य है। . . . पूर्णतः सन्तुष्ट करने योग्य कोई भी तर्क मेरे पास नहीं है। आस्था तर्कसे ऊपरकी चीज है।"

२८ अक्टूबर : नवीन गुजराती शाला, अहमदाबादमें भाषण दिया।

३१ अक्टूबर : लाहौरमें पुलिस और राष्ट्रवादियोंके बीच हुई मारपीटमें लाजपतराय घायल हुए।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

ख

ग

ट

ठ

ड

त

थ

द

प

फ

ब

य